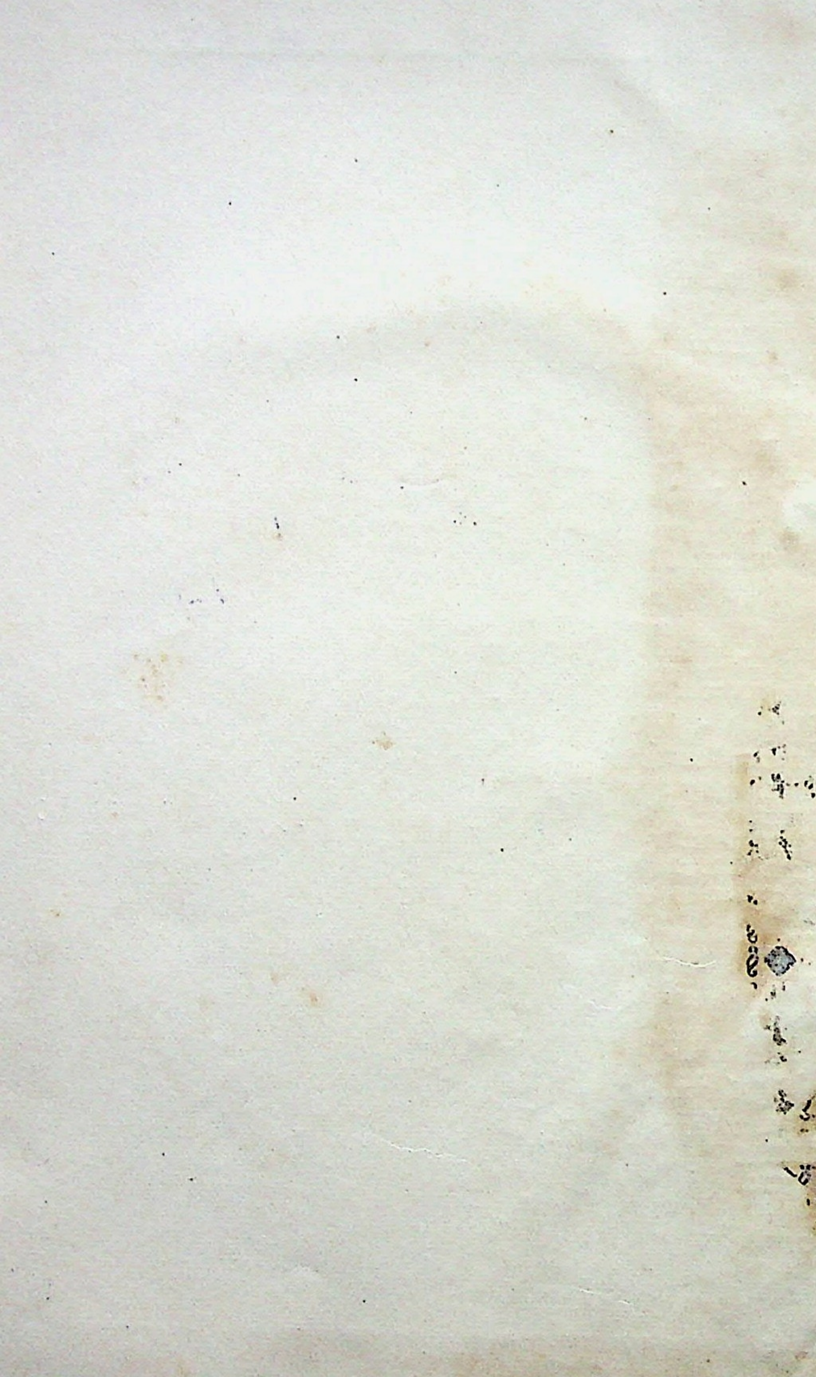
यजुर्वेद संहिता

भाषा-भाष्य

भाग २



❀ ओ३म् ❀

यजुर्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(द्वितीय खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा, विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

तृतियावृत्ति १००० | सं० २०१२ वि० | मूल्य ६) रुपये



मुद्रक—
शिरीशचन्द्र शिवहरे एम. ए.
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

भूमिका

यजुर्वेद आलोक भाष्य के प्रथम खण्ड की भूमिका में हमने कुछ आवश्यक विषयों पर प्रकाश डाला है। जिससे यजुर्वेद का बाह्य परिचय भली प्रकार विदित हो सकता है। शाखाभेद के विस्तार को प्रथम खण्ड की भूमिका में दर्शा दिया है। यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय को आलोचना-पूर्वक दर्शाने के लिये भूमिका के पृष्ठों में विशेष यत्न न करके हम पाठकों से सविनय विवेदन करेंगे कि वे विषयसूची से प्रतिपाद्य विषय को जानने का यत्न करें। अथर्ववेद के समान यजुर्वेद में प्रत्येक सूक्त या अध्याय के विषयों को शीर्षकों द्वारा नहीं दर्शाया गया है, प्रत्युत विषयसूची में अध्यायों के साथ ही कण्डिका या मन्त्र का अंक देते हुए मन्त्र का विषय संक्षेप में दर्शा दिया है।

बहुत से पाठक इस बात के लिये उत्सुक हैं कि यजुर्वेद के मन्त्रों से किये जाने वाले यज्ञों और महायज्ञों के प्रकरणों को स्पष्ट किया जावे। विचार बहुत महत्व का है, परन्तु यह कार्य श्रम और काल की अपेक्षा करता है। ऐसे विषय को स्पष्टरूप से दर्शाने के लिये ब्राह्मणग्रन्थों ने प्रयास किया है उन पर आलोचना और कर्मकाण्डों के रहस्यों का विवेचन करना भूमिका के इने गिने पृष्ठों में सीमित नहीं हो सकता।

प्रस्तुत भाष्य में कर्मकाण्डपरक अर्थों को सर्वथा नहीं किया इसलिये भूमिका में यजुर्वेद के उवट, महीधर आदि के कर्मकाण्डपरक अर्थों की

आलोचना या खण्डन-मण्डन करना सर्वथा अनुपयुक्त है। जो भी कर्म-काण्ड ब्राह्मण ग्रन्थों में है, जिसका आधार लेकर ब्राह्मणकारों की विचारमय व्याख्या है उसमें भी नाना भेद और कर्मकाण्डों की व्याख्याओं में भी भेद है, एक ही कर्मकाण्ड को लेकर मन्त्र के भाष्यकारों में भेद है, उन सब पर विचार करना भी यहां असंगत है।

सहृदय पाठक भाष्य की त्रुटियों को बताने की महानुभावता अवश्य करते रहें। त्रुटि करना मानुष धर्म है और त्रुटियां दूर करने का मार्ग दर्शाना देवधर्म है, वाचकों से इसी देवधर्म की आशा है।

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा
मीमांसातीर्थ, विद्यालङ्कार।

विषय सूची

अष्टादशोऽध्यायः (पृ० १-४८)

यज्ञ से अग्नि आदि दिव्य तत्व और उनके ज्ञाता विद्वानों की प्राप्ति, यज्ञ से न्यायाधीश आदि पदाधिकारियों की प्राप्ति। यज्ञ से पृथिवी, अन्तरिक्ष सूर्य, नक्षत्र, काल आदि पदार्थों के ज्ञान और उनके ज्ञाताओं की प्राप्ति। (१९) यज्ञ से सूर्य के समान तेजस्वी नाना पदाधिकारियों की प्राप्ति। उसमें अंशु, उपांशु, अदाभ्य, अधिपति, ऐन्द्रवायव आदि का विवरण। (२०) आग्रयण आदि राज्यांगों की प्राप्ति, (२१) यज्ञ से स्रुक् चमसादि यज्ञसाधन के पात्रों की प्राप्ति और उनकी राष्ट्र और देह में व्याख्या (२२) यज्ञ से अग्नि, धर्म, अर्क, प्राण, अश्वमेध आदि की प्राप्ति, उनकी व्याख्या। (२३) यज्ञ से व्रत, ऋतु, तप, सवंत्सर आदि की प्राप्ति। (२४) एक, तीन, पांच आदि एकान्तर क्रम से सेना-व्यूह और संख्यावृद्धि का नियम। (२५) यज्ञ से ४। ८। १२। क्रम से १८ तक के व्यूह। (२३) यज्ञ से भिन्न-भिन्न अवस्था और बल वाले पशुओं की प्राप्ति (२६) यज्ञ से सेना और नाना पशुओं की प्राप्ति। (२८) संग्राम, उत्तम सन्तान, ज्ञान, कर्म, ऐश्वर्य इनकी उत्तम रीति से शिक्षा और प्राप्ति। तेजस्वी पुरुषों के आदर, मुग्धों, अज्ञानियों को उत्तम ज्ञानोपदेश, प्रजापालक पुरुषों का, आदर उत्तम शिक्षा का आदेश। सूर्य के बारह नामों के अनुसार राजा के १२ नाम। (२९) यज्ञ से आयु, प्राण, चक्षुः, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा, ब्रह्मा, स्वः, पृष्ठ स्तोम, यजु, ऋक्, साम, बृहत्, रथन्तर आदि की प्राप्ति। इनकी व्याख्या। (३१) राष्ट्र में विद्वान् तेजस्वी पुरुषों का होना और उनका राष्ट्र को समृद्ध करना (३२) ऐश्वर्य का विस्तार और राष्ट्र की रक्षा। (३३) ऐश्वर्य के साथ दानशीलता, पराक्रम और बल की वृद्धि। (३४-३६) ऐश्वर्यवृद्धि के लिये राजा से प्रार्थना। (३७) साम्राज्य से राजा का अभिषेक (३८, ३९) अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, यज्ञ, मन इनकी तुलना से प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य। उसके भिन्न-भिन्न गुणों से ६ नाम। 'गन्धर्व' नाम का रहस्य। (४४) सब वर्णों का आश्रय राजा, (४५) राजा के समुद्र, मारुत

और अवस्यू नामों का रहस्य। पक्षान्तर में परमेश्वर की तुलना। (४६-४८) राजा और विद्वान शासक के कर्त्तव्य। राज्य के तेज और स्नेह की वृद्धि। (४९) राजा और पक्षान्तर में परमेश्वर से ज्ञान और जीवन-रक्षा की याचना। (५०) राजा के सूर्य के समान कर्त्तव्य। पक्षान्तर में भौतिक पदार्थों के सदुपयोग का आदेश। (५१) उन्नति के लिये अग्रणी नायक की नियुक्ति। पक्षान्तर में परमेश्वरोपासना और भौतिकाग्नि का उपयोग। (५२) नायक के अधीन सेना के दो पक्ष। सभापति के आगे तत्वनिर्णय में पक्ष, प्रतिपक्ष और अध्यात्म में आत्मा परमात्मा का वर्णन। (५३) राजा की चन्द्र और बाज से तुलना। पक्षान्तर में परमेश्वर का स्वरूप। हिरण्यपक्ष श्येन का रहस्य। (५४) राजा का कर्त्तव्य और जिम्मेवारी के पद। (५५) प्रजापालक राजा के मेघ के समान कर्त्तव्य। (५६) सर्वाशापूरक राजा और ऐश्वर्य की आकांक्षा। (५७) अग्रणी नायक का प्रजापालन का कर्त्तव्य और उसका आदर (५८) विद्वानों को उत्तम, पूर्व पुरुषों के उपार्जित पद प्राप्त करने का उपदेश। (५९) विद्वानों के समक्ष राजा को राष्ट्र के कोष का समर्पण। अध्यात्मरहस्य। (६०) सर्वोच्च सम्राट् और उसके ऊपर विद्वानों का शासन। पक्षान्तर में ईश्वरोपासना। (६३) अग्रणी नायक को सुखप्राप्ति के मार्ग पर ले चलने के साधनों का उपदेश। (६४) लेनदेन तथा प्रजा के उपकारक बड़े-बड़े कामों पर राजा का नियन्त्रण। (६५) अन्न, राज्य, बल और पराक्रम की वृद्धि, राज्य का विद्वानों के बल पर संचालन। (६६) सम्राट कैसा हो। (६७) उसके श्रेष्ठ कर्त्तव्य। (६८) अग्रणी नायक के दो मुख्य कर्त्तव्य। (६९, ७०) दुष्टों को दण्ड देने का विधान। (७१) शत्रुओं का प्रबल सैन्य से ताड़न। (७२, ७३) वैश्वानर अग्नि का वर्णन, राजा सभापति के कर्त्तव्य। (७४) राजा की रक्षा में प्रजा का ऐश्वर्यसुख-भोग। प्रजा का राजा के प्रति आदर। (७६) विद्वान् नायकों का राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। (७५-७७) राजा का प्रजा और उनकी सन्तानों की रक्षा का कर्त्तव्य।

एकोनविंशोऽध्यायः (पृ० ४८–१०८)

सौत्रामणी (१) ओषधियों के सदृश समान स्वभाव के शास्य-शासक तथा स्त्री-पुरुषों की संगति करके बल की वृद्धि का उपदेश। स्त्री-पुरुषों का परिपक्व वीर्य होकर गृहस्थ करने की आज्ञा। सौत्रामणी यज्ञ का रहस्य, सोम और सुरा की व्याख्या। (२) सोमसवन। अभिषेक-योग्य पुरुष का लक्षण। (३) राजा का सैन्यबल से सहायवान् होकर शत्रु पर आक्रमण (४) ज्ञानवान् पुरुष के मनोरथों को पूर्ण करने वाली श्रद्धा, सूर्यदुहिता का रहस्य। (५, ६) अभिषिक्त के कर्त्तव्य। (७) राजा-प्रजा के पृथक् अधिकार, सोम सुरा का रहस्य. (८) अभिषिक्त पुरुष का स्वरूप और बल। उसके अभिषेक के प्रयोजन. (९) तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु और सहः राजा के ६ रूप। पक्षान्तर में परमेश्वर से इन छहों पदार्थों की प्रार्थना। राजा की व्याघ्र श्येन, सिंह आदि से तुलना और उसकी 'विषूचिका' नाम संस्था का वर्णन। अध्यात्म में अन्तःप्रज्ञा का वर्णन। (११) पुत्र का माता पिता के प्रति कर्त्तव्य। पितृ-ऋण से मुक्ति, राजा का पृथ्वी के प्रति कर्त्तव्य। (१२–३१) राजा का बल-सम्पादन। राष्ट्रयज्ञ का विस्तार। (१३) यज्ञ से राज्य की तुलना। शष्प, तोक्म, लाजा और मधु आदि यज्ञगत पदार्थों के नामों का श्लेषपूर्ण अर्थ। सौत्रामणी का स्वाध्याययज्ञ रूप से दिग्दर्शन। (३२) अभिषिक्त पुरुष का इन्द्रपद। उसकी वृद्धि (३३) 'सरस्वती' और 'अश्विनौ' की वृद्धि का रहस्य। (३४) देह में शुक्र के समान राजा के ऐश्वर्यवान् पद का सार्वजनिक उपभोग। (३५) सैन्यबल की वृद्धि और उसका उपभोग। (३६) स्वधायी पिता, पितामह, प्रपितामहों का आदर, उनकी तृप्ति और उनका शुद्धि करने का कर्त्तव्य। पितरों का रहस्य। (३७) पितरों का शुद्धि करने का कर्त्तव्य। (३८) विद्वान् और राजा का दुःख संकट बाधन का कर्त्तव्य। (३९–४४) सब विद्वानों का पवित्र करने का कर्त्तव्य।

(४५) यमराज्य में पितरों की स्वधा का रहस्य । (४६) समान और एक चित्त वाले जीवों की लक्ष्मी को अपने में प्राप्त करने की इच्छा (४७) मर्त्यों और देवों के दो मार्ग । छान्दोग्यप्रोक्त तीन मार्गों का विवेचन (४८) देह में सन्तानोत्पादक दश प्राण युक्त वीर्य की प्रार्थना । अग्निस्वरूप पति । राष्ट्रपक्ष में दशवीरनायकों से युक्त सैन्य और नायक का वर्णन । (४९) अवर, पर और मध्यम पिताओं का वर्णन । (५०) आङ्गिरस, नवग्व, अथर्व और सोम्य पितरों अर्थात् पालकों का वर्णन, उनका रहस्य । (५१) वसिष्ठ पितरों का वर्णन और उसका रहस्य । (५२–५४) उनके मुख्य नायक सोम, राजा । (५५–५६) बर्हिषद् पितरों और सुविदत्र पितरों का वर्णन और उनका रहस्य । पितृजनों को आदर से बुलाना और उनसे रक्षा की प्रार्थना । (५८) अग्निष्वात्त पितरों का वर्णन । उनके देवयान मार्ग और उनकी स्वधा से तृप्ति का रहस्य । (५९) उनके सर्ववीर रयि का रहस्य । (६०) उनकी असुनीति तनु की कल्पना का रहस्य । अग्निष्वात्त, ऋतुमान् सोमपायी विप्रों का वर्णन । (६२) उक्त पालक जनों का सभ्यतापूर्वक आसनों पर विराजना । (६३) पालक जनों का ऐश्वर्यदान । उसका विविध रहस्य । (६५) उसका पितृजनों से सम्बन्ध । (६६) उसका पितृजनों का उत्तम पुष्टिकारक अन्नों का दान । (६७) विद्वानों और ऐश्वर्यवान् का पालक पुरुषों के प्रति कर्त्तव्य । (६८) पूर्व और पर तथा पृथिवीलोक और प्रजाओं पर अधिष्ठित पालक जनों का वर्णन । (६९) ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानवेत्ता पितरों का वर्णन, (७०) कामनावान् पितरों का वर्णन । सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा का शत्रु के प्रति कर्त्तव्य । (७१) अपां फेन से नमुचि के शिर के काटने का रहस्य । (७२) अभिषिक्त राजा का कोष, बल द्वारा विपद्-विजय सम्पत् प्राप्ति । आध्यात्मिक मृत्युंजय और मधु अमृत पान का रहस्य । (७३) हंस के दृष्टान्त से अध्यात्म में ज्ञानी के परमानन्द रस का पान

और राजा के ऐश्वर्य उपभोग का वर्णन। (७४) हंस के दृष्टान्त से शुचिषत् आत्मा और धर्मात्मा राजा का प्राणों और प्रजाओं से रस और ऐश्वर्य प्राप्ति का वर्णन। (७५) अन्न से पौष्टिक रस के समान राजा का सारभूत ऐश्वर्य और अध्यात्म में आनन्द रस की प्राप्ति। (७६) मूत्र, वीर्य तथा गर्भजरायु के दृष्टान्त से दान और उत्सर्ग के महत्व का वर्णन। (७७) सत्य के बल पर प्रजापालक की सत्य में श्रद्धा और असत्य में अश्रद्धा का उपदेश। (७८) वेद द्वारा सद् असत् के विवेक का उपदेश। (७९) अत्तार के दृष्टान्त से शुद्ध उपाय से आर्थोपार्जन का उपदेश। (८०) सीसे से शत्रुनाश करने और सूत्र से कपड़ा बुनने के दृष्टान्त से निर्बल राष्ट्र की वृद्धि का उपदेश। (८१) दो अश्वी और सरस्वती तीनों का राष्ट्ररक्षा और पोषण के साधनों का उत्पादन। (८२) उक्त तीनों अश्वों से शरीर को वैद्यों के समान वेतनबद्ध भृत्यों द्वारा सुदृढ़ करना। (८३) बुद्धिमती स्त्री के समान राजसभा का राष्ट्र में ऐश्वर्य और शोभा बढ़ाते रहना। (८४) वीर्य द्वारा सन्ततिजनन के समान राजा की उत्पत्ति। शरीर से मल के समान दुष्ट पुरुषों का राष्ट्र से निर्वासन। (८५) अन्न से बल प्राप्त करने के समान सुरक्षक राजा की बलवृद्धि, उदर के भीतरी अंगों से शासकों की तुलना। (८६, ८७) प्लीहा आदि भीतरी अंगों की तुलना। (८८) मुख से राज्यव्यवस्था की तुलना। (८९) राष्ट्र की चक्षु से तुलना। (९०) समृद्ध राष्ट्र की नासिका से तुलना। (९१) राजा और आत्मा की बैल से तथा राष्ट्र की मुख से तुलना। (९२) पूर्ण राष्ट्र की शरीर से तुलना। (९३) योग द्वारा शरीर-शोधन और चिकित्सा के समान ही राष्ट्र का शोधन और चिकित्सा। अंगों की सप्ताङ्गों से तुलना। पक्षान्तर में गृहस्थ का वर्णन। (९४) स्त्री के गर्भ में बालक के धारण के समान प्रजा के बीच राजा का धारण। (९५) दूध और मधु के समान अभिषेक द्वारा राजा का दोहन।

विंशोऽध्यायः (पृ० १०६–१५३)

(१) राजा, सभापति का स्वरूप और उसका प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (२) सर्वश्रेष्ठ पुरुष का सिंहासन पर विराजना और उसको प्रजापालन के कर्तव्योपदेश। (३) राजा के अभिषेक और उसके ९ प्रयोजन। (४) सम्राट् का नामकरण और उपाधिवितरण। (५) सम्राट् का तेजस्वी रूप सम्राट् और विराट् का आंख-कान का सा सम्बन्ध। (६–८) पदाधिकारों और अध्यात्म शक्तियों की तुलना। (१०) अंगों में आत्मा के समान राष्ट्र के अंगों में राजा की प्रतिष्ठा। (११) तेतीस विद्वान् देवों की प्रतिष्ठा। (१२) उनके परस्पर सहयोग से वृद्धि। (१३) राजा के शरीर के अंगों की राजा की शक्तियों या अधिकारों से तुलना। (१४–१८) विद्वानों का प्रजाजनों को असत्कर्मों और बन्धनों से छुड़ाना। (१९) आप्त पुरुषों का ओषधिवत् रक्षक और शत्रुनाश होने की प्रार्थना। (२०) आप्त पुरुषों का पापों से छुड़ाने का कर्त्तव्य। (२१) राजा का सर्वोत्तम पद। (२२) अभिषिक्त राजा का उपसर्पण और ऐश्वर्य धारण। (२३) सम्राट् की वैश्वानर ज्योति सूर्य के समान स्थिति। (२४) प्रजापति के अधीन व्रतोपायन और दीक्षाग्रहण। गुरु-शिष्य-सम्बन्ध का विवरण। (२५, २६) ब्रह्मक्षत्रयुक्त पुण्य लोक का वर्णन। (२७) सम्राट् को आशीर्वाद। (२८) दानशील उदार राजा का वर्णन। (२९) समृद्ध राजा का आश्रय करना। (३०) विद्वानों का राजा को उपदेश करने का धर्म। (३१) राजा का अभ्युक्षण, दीक्षा। (३२, ३३) राजा का सरस्वती (राजसभा) इन्द्र, और सुत्रामा पद पर स्थापन, भूताधिपति का पद। (३४) राष्ट्रशरीर की प्रधान शक्तियों के रक्षणकर्त्ता के पद पर नियुक्ति। (३६) शत्रु-विजय का आदेश। (३७) नराशंस, तनूनपात् पद, उसके कर्त्तव्य। (३८) गोत्रभित्, वज्रबाहु राजा का स्वरूप। (३९) सूर्य के समान हरिवान् इन्द्र राजा का स्वरूप। (४०) पति को स्त्रियों के समान

प्रजाओं और सेनाओं का अपना नायक वरण। (४१) उषा, नक्त नाम दो संस्थाओं का नायकस्वीकरण। (४२) अग्नि और वायु नाम दो मुख्याधिकारियों का राजा को स्वीकार। (४३) सरस्वती, इडा, भारती तीनों देवियों का राजा को वरण। (४४) तेजस्वी पुरुष को सैनापत्य पद। (४५) वट आदि के समान वनस्पति पद। (४६) इन्द्र, सेनापति पद के योग्य पुरुष का लक्षण। (४७, ५४) इन्द्र सुत्रामा के कर्त्तव्य। (५५) अग्नि के समान तेजस्वी पद पर अभिषिक्त नायक के लक्षण। (५६-६०) सरस्वती और अश्वियों के कर्त्तव्य। (६१-७७) उषा, नक्त, अश्वि, तीन देवियां, सविता, वरुण का इन्द्र पद को पुष्ट करना। (७८) अग्रणी नायक का स्वरूप। (७९) उसके कर्त्तव्य। (८०) राजा के बल वीर्य की पुष्टि। (८१) अश्वियों के कर्त्तव्य। (८२) मेघ के समान राजा के कर्त्तव्य। (८३) अधिकारियों के कर्त्तव्य। (८४-८६) विद्वत्सभा के कर्त्तव्य। (८७-९०) इन्द्र सुत्रामा का आदर कर।

एकविंशोऽध्यायः (पृ० १५३-२००)

(१) प्रजा की प्रार्थना सुनने का राजा का कर्त्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का स्मरण। (२) प्रजा की शरणयाचना, राजा का अभयदान। (३) प्रजा के परस्पर कलहों का करना, राजा का कर्त्तव्य। (४) उत्तम नायक को प्राप्त करने की प्रार्थना। (५-७) राजसभा और राज्यव्यवस्था की नौका के साथ तुलना, कर्त्तव्यदृष्टि से उसका उत्तम स्वरूप। (८-९) मित्र और वरुण पदों के कर्त्तव्य। (१०-११) अश्वों, अश्वारोहियों और ज्ञानवान् पुरुषों के लक्षण। (१२-२२) आप्री देवों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, सोम बर्हिः, द्वार, उषासानक्ता, दैव्य होता, इडा आदि तीन देवियां, त्वष्टा, वनस्पति, वरुण इन पदाधिकारों के कर्त्तव्य बल और आवश्यक सदाचार। तपः सामर्थ्य का वर्णन। (२३-२८) संवत्सर के ६ ऋतु भेद से यज्ञ

प्रजापति और प्रजापालक राजा के ६ स्वरूपों का वर्णन। (२६–४१) अधिकारप्रदान और नाना दृष्टान्तों से उनके और उनके सहायकों के कर्तव्यों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, नराशंस, बर्हि, द्वार, सरस्वती, उषा, नक्ता, दैव्य होता, तीन देवी, त्वष्टा, वनस्पति, अश्विद्वय इन पदाधिकारियों को अधिकारप्रदान। (४२–४६) अधिकारदान, उनके सहायकों के कर्तव्य। महीधर आदि के किये बकरे की बलिपरक अर्थ का सप्रमाण खण्डन। सरस्वती नाम विद्वत्सभा को अधिकार, उसके सहायकों का कर्तव्य। छाग, मेष, ऋषभ और उनके हवि, मद, तथा उनके पार्श्व, कटि, प्रजनन आदि अंगों के अवदान करने का रहस्य। (४७) स्विष्टकृत् अग्नि का विवरण। (४८ ५८) उक्त अधिकारियों के स्थान, मान, पद और उनका ऐश्वर्यवृद्धि का कर्तव्य। (५९) होता नाम अग्रणी नायक का वरण (६०) वनस्पति अधिकारी का वरण। (६१) वृत विद्वानों के कर्तव्य।

द्वाविंशोऽध्यायः (पृ० २०१–२२४)

(१) राजा का राष्ट्र में स्थान और उसका कर्तव्य। (२) परमेश्वर की व्यापक शक्ति के समान राजा की राज्य-व्याख्या का वर्णन। (३) परमेश्वर के गुणों का वर्णन, पक्षान्तर में राजा के गुणों का वर्णन। (४) राजा को और नायक विद्वानों को अधिकारप्रदान, (५) अधिकार पदों के लिये प्रोक्षण, अभिषेक और आदरयोग्य पुरुषों का वर्णन। (६) आदरणीय नायक पुरुष का नाना अवस्थाओं ४९ दशाओं में आदर सत्कार और रक्षा करने का उपदेश। (९) गायत्री। (१०–१४) हिरण्यपाणि सविता। आज्ञापक का स्वरूप (१५, १६) अग्नि अर्थात् विद्वान् दूत का वर्णन, अध्यात्म में ज्ञानी उपासक का वर्णन। (१८) तेजस्वी पुरुष की उत्पत्ति और उसका पृथ्वी के पालन का कर्तव्य। (१९) अश्व के दृष्टान्त से नायक भोक्ता आत्मा और परमेश्वर के १३ नाम, उनसे सूचित गुण, कर्तव्य और उन गुणों के

कारण उसका अभिषेक। (२०) प्रभु के 'क' आदि नाना गुण, कर्म-सूचक नाम और उनका आदर। (२१) नायक सखा। (२२) आदर्श राष्ट्र की समृद्धि की कामना। (२३) प्राण आदि शारीरिक शक्तियों की साधना। (२४) प्राची आदि ६ दिशाओं और १२ उपदिशाओं से राष्ट्र की रक्षा। (२५) नाना प्रकार के जलों के दृष्टान्त से, गुणभेद से नाना गुणों वाली सेनाओं और प्रजाओं का वर्णन। (२६) वात, धूम, अभ्र आदि नाना मेघ की दशाओं की तुलना के साथ-साथ नायक के नाना कर्मों का वर्णन। (२७) अग्नि आदि पदार्थों की साधना। (२८-३१) नक्षत्र आदि के सुखकारी होने की भावना। (३२-६४) यज्ञ से अन्न, ज्ञान, बल आदि की उत्पत्ति।

त्रयोविंशोऽध्यायः (पृ० २२४-२६३)

(१) हिरण्यगर्भ परमेश्वर का वर्णन, पक्षान्तर में राजा का वर्णन। (२) व्यवस्था में बद्ध राजा की सूर्य वायु और अन्तरिक्ष से तुलना। राजा का प्रजापति पद। (३) ईश्वर और राजा के महान् ऐश्वर्य का वर्णन। (४) व्यवस्थाबद्ध राजा का चन्द्र, अग्नि, नक्षत्रों से तुलित महान् सामर्थ्यों का वर्णन। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (५) दोषरहित तेजस्वी राजा की नियुक्ति, पक्षान्तर में परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। पक्षान्तर में सूर्य का वर्णन। (६) रथ में जुते अश्वों के समान दो नायकों की नियुक्ति। (७) राजा को सन्मार्ग पर लेजाने के लिये उसके स्तोतृ नायक विद्वान् की नियुक्ति। (८) गायत्र, त्रैष्टुभ और जागत तीन शब्दों से वसु, रुद्र और आदित्यों द्वारा स्तवन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन राजा की कीर्त्ति। तेजस्वी, शक्तिमान् राजा को राष्ट्रैश्वर्य भोग की आज्ञा। (९-१२) ब्रह्मोद्य। ब्रह्म और प्रभु राजा की शक्तिविषयक प्रश्नोत्तर। सूर्य, अग्नि, भूमि, द्यौ, अश्व, अवि और रात्रि विषयक प्रश्नोत्तर। (१३) राजा की शक्ति को पुष्ट करने के लिये सेनापति आदि पदाधिकारियों का उत्तम उद्योग। (१४)

रथ अश्व के दृष्टान्त से ब्रह्मा नाम विद्वान् के कर्तव्य और स्थिति का वर्णन। पक्षान्तर में अध्यात्मविवेचन। (१५, १६) ऐश्वर्यवान् स्वामी और अध्यात्म में आत्मा का वर्णन। (१७) अग्नि, वायु, सूर्य के दृष्टान्त से विजयाभिलाषी राजा के कर्तव्यों का उपदेश। अग्नि, वायु, सूर्य तीनों के पशु कहाने का रहस्य। (१८) प्राण आदि शक्तियों का उपयोग, राज्यलक्ष्मी और वसुधा का वीरभोग्या होना। कम्पीलवासिनी सुभद्रिका और सोने वाले अश्वक का रहस्य। पक्षान्तर में पतिवरा कन्या तथा अध्यात्म में स्पष्ट विवरण (१९) गणपति, परमेश्वर, विद्वान्, राजा और गृहपति का वर्णन, गर्भध परमेश्वर और गर्भध प्रकृति का रहस्य। (२०) राजा प्रजा की चतुर्वर्ग-साधना। गृहस्थ का चतुष्पाद स्वरूप। महीधर के अर्थों की असंगति। दुष्टों के प्रति राजा का व्यवहार। गृहस्थ पक्ष में चरकादि वैद्यक शास्त्रोक्त प्रजोत्पत्तिविद्या का मूल निदर्शन। (२२) समृद्ध, शक्तिमती प्रजा के ऊपर बलवान् राजा की स्थापना। दम्पति पक्ष में दोनों स्त्री-पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। (२३) शक्तिशाली राजा का स्वरूप और उसका मुख्य व्रत वाणी पर वश करना। दम्पत्ति पक्ष में शक्तिमान् पुरुष का स्त्री के हृदय का आकर्षक और एक स्त्री व्रत होने का उपदेश। (२४) माता पिता का प्रधान पद और स्नेह से रक्षार्थ ही राष्ट्र की समृद्धि के आधार पर राजा का सैन्यबल होता है। मन्त्रोक्त मुष्टि, गर्भ, वृक्ष आदि शब्दों का रहस्य विवेक। गृहस्थ पक्ष में माता पिता का उच्च पद और ऐश्वर्य या स्त्री के आधार पर पारिवारिक स्नेह की व्यवस्था। (२५) राष्ट्र प्रजाजन की माता राजसभा और पिता राजा दोनों का विस्तृत राज्य पर सुखी रहना और धुरन्धर वेदवित् ब्रह्मा की जिम्मेवारी और वाणी पर वश। (२६–२७) पर्वत पर बोझा ढोने वाले के समान राष्ट्रभार के उठानेवाले की जिम्मेवारी और वायुवेग से छाज द्वारा अन्नशोधन करने वाले के समान राष्ट्र का कण्टकशोधन। दम्पति पक्ष में गृहस्थ पुरुष के उत्तम

कर्तव्य। (२८) गाय के खुरों की उपमा से ब्राह्म और क्षात्र बलों का पृथ्वीपालन में उपयोग। इसी प्रकार गृहपति के कर्तव्य। (२९) न्यायशील पुरुषों को सभा में सत्य निर्णय करने का उपदेश। मन्त्रोक्त 'नारी' पद का रहस्य। (३०) हरिण और खेत तथा स्वामी और दासी के दृष्टान्त से प्रबल राजा की धनलालसा से प्रजा की समृद्धि के नाश हो जाने की चेतावनी। (३१) हरिण और यव तथा भृत्य और रानी के भोग के दृष्टान्त से दुष्ट राजा के द्वारा उत्तम प्रजा के नाश हो जाने की चेतावनी। (३२) विजयशील राजा की स्थापना। (३३) गायत्री आदि छन्दों के नामों से नाना प्रकार की उत्तम वाणियों से राजा के हृदय की शान्ति। (३४, ३५) द्विपदा आदि और महानाम्नी आदि वेदवाणियों से स्वामी का शान्तिकरण। इसी प्रकार गायत्री, द्विपदा महानाम्नी आदि भिन्न-भिन्न प्रजाओं का वर्णन। (३६) सेनाओं के शस्त्रों द्वारा विजयी पुरुषों की पालक शक्तियों का शान्ति प्रयोग। इसी प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा उत्तम पतियों की हृदयसुख शान्ति। (३७) उत्तम स्त्रियों के गुण, एवं उत्तम प्रजाओं के अपने स्वामी को प्रसन्न रखने और शान्त रखने का कर्तव्य। (३८) राजा का प्रजा के भोजनादि सुख का प्रबन्ध करना। (३९) प्रजाओं में शान्तिविधायक शासक का लक्षण। (४०) विद्वान् सदस्यों का शान्तिविधान का कर्तव्य। (४१) संवत्सर के अंगभूत दिन रात्रि के समान नाना राज्याङ्गों और उनके अध्यक्षों के कर्तव्य। (४२) राष्ट्र के पालक पुरुषों का कार्य, राष्ट्र का शासन और उनका शान्तिकारिणी व्यवस्थाएं बनाना। (४३) सूर्य, वायु, आकाश और नक्षत्रों के समान तेजस्वी, बलवान् और उदार दृढ़ स्थिर लोगों से राष्ट्र की न्यूनताएं दूर करना। (४४) सर्वाङ्ग शान्ति। (४५–४८) पुनः ब्रह्मोद्य। सूर्य चन्द्र अग्नि, भूमि, ब्रह्म, द्यौ, इन्द्र, वाणी के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर। (४९–५०) व्यापक परमेश्वर के तीन चरणों में विश्व की स्थिति, (५१–५२) पुरुष

अर्थात् जीव के आश्रय तत्व। (५३, ५४) अ० २३। ११। १२। के समान प्रश्न। पिशंगिला, कुरु पिशंगिला, शशा और अहि के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर और उनका रहस्यविवेचन। (५७, ५८) जगत् रूप यज्ञ के आश्रय तथा कारण पदार्थ, संचालक शक्तियों के सम्बन्ध में प्रश्न-उत्तर। (५९, ६०) सर्वज्ञविषयक प्रश्न। (६१, ६२) पृथिवी के पर अन्त, भुवन की नाभि, अश्व के रेतस् और वाक के परम व्योम सम्बन्धी प्रश्न और उनके उत्तर और रहस्य का स्पष्टीकरण। (६३) प्रजापति की उत्पत्ति, पक्षान्तर में राजा और परमेश्वर के प्रजापति नाम होने का कारण। (६४) होता द्वारा प्रजापालक राजा के अधीन ऐश्वर्ययुक्त राज्य का समर्पण। (६५) प्रजापति का अद्वितीय सामर्थ्य और उससे ऐश्वर्य की प्रार्थना।

चतुर्विंशोऽध्यायः (पृ० २६३–२९१)

(१, २) राजा के अधीन राष्ट्र के १६ पर्यङ्गों का वर्णन। (३–१९) अन्यान्य प्रत्यंगों तथा अधीन रहने वाले नाना विभागों के भृत्यों और उनकी विशेष पोशाकों और चिह्नों का विवरण (२४) ऋतु के अनुसार पक्षियों का वर्णन और उनसे राष्ट्र के हिताहित ज्ञान करने का उपदेश। (२१) समुद्र, मेघ, जल आदि से सम्बद्ध जीवों के ज्ञान का उपदेश। (२१—३९) भिन्न-भिन्न गुणों और विशेष हुनरों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के नाना पक्षियों और जानवरों के चरित्रों का अध्ययन और संग्रह।

पञ्चविंशोऽध्यायः (पृ० २९१–३२७)

(१) नाना प्रकार के शिल्पों तथा गुणों और रहस्यमय पदार्थों के ज्ञान के लिये शरीरगत अंगों का दृष्टान्तरूप से उल्लेख। (२, ३) बाह्य जगत् की शक्तियों की देहगत शक्तियों से तुलना (४, ५) शरीरगत पसुलियों से राष्ट्र के अधिकारियों की तुलना। (६) देह

के पीठ के मोहरों से राज्याधिकारियों की तुलना और उनके कर्तव्य-विवेचन। उदर में स्थित अंगों से राष्ट्र के अन्य पदार्थों की तुलना। अथवा उनकी शक्तियों से उनके उपयोगों की आलोचना। (८) शरीर के अंगों से अन्य पदार्थों की तुलना और उनके गुणों का विश्लेषण। (९) शरीर की और जगत् की प्रबल शक्तियों की तुलना। अपान और राजा की तुलना। (१०, १३) प्रजापति का वर्णन। परमेश्वर की उपासना (१४, १५) विद्वानों से प्रार्थना। (१६) उनका आदर सत्कार। (१७) सुखकारी ओषधि, माता पिता, भूमि, सूर्य, विद्वान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष और यज्ञसाधनों से सबसे उत्तम सुख की कामना। (१८, १९) ईश्वरोपासना। वायुओं के समान मातृभूमि के भक्त वीरों का वर्णन। उनके लक्षण और कर्तव्य। (२१) उत्तम वचन का सुनना, उत्तम दर्शन, स्थिर अंगों से सुखपूर्वक जीवन भोग की प्रार्थना। (२२) शत वर्ष के पूर्ण जीवन की कामना। (२३) अदिति के ९ प्रकार। (२४) ऐश्वर्यवान् बलवान् विद्वान् पुरुष के सामर्थ्यों का वर्णन। (२५) राजा की दी वृत्ति को मुख्य रूप से मानना। अधीन वृत्तिग्राहियों के कर्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर और विद्वान् दोनों की स्तुति। (२६-२७) प्रधान वीरपुरुषों के कर्तव्य। पूषा के विश्वदेव्य भाग, छाग और उनका अश्व के साथ आगे चलने का रहस्य। (२८) यज्ञ के होतादि कार्यकर्त्ताओं के समान राष्ट्र के प्रधान कार्यकर्त्ताओं का कर्तव्य। (२९) राज्य के राजसहायकों के सहोद्योग की आंकाक्षा। (३०) उत्तम कार्यकर्त्ताओं की कार्य में नियुक्ति। (३१) उनकी प्रधान शक्ति और अधिकार योग्य वेतन पर नियुक्ति। अश्व की रशना और रज्जु का रहस्य। (३२) राष्ट्र के सब कार्यों को विद्वानों के हाथ में रखने का उपदेश। अश्व के मांस को मक्षिका के खाने, उसके स्वरु स्वधिति में लगने, शमिता के नखों और हाथों में लगने का रहस्य। (३३) दुष्टों का दमन। (३४) राष्ट्र

की उपज का सदुपयोग और संग्रह। पक्षान्तर में ब्रह्मचर्य की रक्षा का उपदेश। (३५) वैश्यों, क्षत्रियों और विद्वान् परिव्राजकों के सहोद्योग की आकांक्षा। पक्षान्तर में ब्रह्मचारियों के व्रत की विवेचना। उनका भिक्षाव्रत। परिपक्व वाजी का रहस्य। (३६) उत्तम राष्ट्र के शोभाजनक भूषण, अध्यात्म में देह में स्थित आत्मा के विशेष गुण और शक्तियों का वर्णन। (३७) संकटों से रक्षा की चेतावनी और उनके उद्योग। (३८–३९) राजा के सब खान-पान विहार आदि पर विद्वानों का निरीक्षण। (४०) वेदज्ञान द्वारा राष्ट्र की बाधाओं को दूर करना। (४१) राष्ट्र के ३४ अंगों को दोषरहित करना। (४२) राष्ट्र के कार्यों का विभाग और उन पर योग्य विद्वान् अध्यक्ष की नियुक्ति। (४३) सेना आदि द्वारा राष्ट्रप्रजा को व्यर्थ न सताने का उपदेश। उत्तम मार्गों और उत्तम व्यवस्थाओं से राष्ट्र, राज्य और राजा की दीर्घायु। उत्तम पदों पर रथ में अश्व के समान उत्तम पुरुषों की नियुक्ति। (४५) उत्तम क्षात्रबल की प्राप्ति। (४६) राष्ट्र को दृढ़ बनाने का उद्योग। (४७, ४८) राजा को प्रजाप्रिय और तेजस्वी होने का उपदेश।

षड्विंशोऽध्यायः (पृ० ३२७–३२८)

(१) अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आपः, वरुण इनके समान परस्पर राजा-प्रजा का प्रेम से उपकारी होकर रहना। सात संसत् और आठवीं भूतसाधनी संस्था का वर्णन। उत्तम ज्ञान प्राप्ति का उपदेश। (२) सबके लिये कल्याणी वाणी का उपदेश। वृत्तिदाता और विद्वानों का प्रिय और पूर्णकाम हो। (३) बृहस्पति पद पर योग्य पुरुष का रूप। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (४,५) सभापति पद पर वाग्मी विद्वान् का वरण, उसके साथ विद्वानों का साहाय्य। (६, ७, ८) वैश्वानर पद पर योग्य पुरुष का वरण। उसका लक्षण।

(९) अग्नि पद पर योग्य पुरुष की स्थापना। (१०) महेन्द्र पद पर योग्य विद्वान् की स्थापना। (११–२६) उत्तम विद्वानों, नायकों और शासकों से भिन्न-भिन्न कार्यों की कामना।

सप्तविंशोऽध्यायः (पृ० ३२६–३६१)

(१–७) अग्नि नाम विद्वान् नायक के कर्तव्य और लक्षण (८, ९) बृहस्पति पद पर स्थित विद्वान् का वर्णन। (१०–२२) अग्नि और वाग्मी नाम विद्वानों का वर्णन। (२३, २४) वायु नाम सेनापति का वर्णन (२५, २६) 'क' प्रजापति का वर्णन। (२७–३४) नियुत्वान् वायु, सेनापति का वर्णन। (३५–४२) इन्द्र नायक का वर्णन, (४३, ४४) अग्नि रूप से नायक राजा का वर्णन उससे रक्षा की प्रार्थना। (४५) संवत्सर के पांच रूप और तदनुसार प्रजापालन के ५ रूप।

अष्टाविंशोऽध्यायः (पृ० ३६१–३९०)

(१–३४) होता द्वारा भिन्न-भिन्न अधिकारियों की नियुक्ति और उनके विशेष आवश्यक लक्षण, अधिकार और शक्तियों का वर्णन। (३५–४५) उनका इन्द्र सेनानायक और उनके ऐश्वर्य को बढ़ाने का कर्तव्य। (४६) अग्नि होता का वरण।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः (पृ० ३९१–४२६)

(१) घृत से तीव्र अग्नि या जाठराग्नि के दृष्टान्त से विवेकी विद्वान् का वर्णन। (२) संग्राम आदि के अवसरों पर संघ बना कर काम करने का उपदेश। (३) स्तुतियोग्य, वन्दन करने योग्य, प्रसन्नमुख योग्य पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति। (४) राष्ट्र प्रजा का विस्तृत करना और उसको व्यवस्थित रखना। पक्षान्तर में विद्युत् का वर्णन। (५) गृह के द्वारों से देवियों की तुलना। दोनों पक्षों में श्लिष्ट विशेषण। पक्षान्तर में शत्रुविजयी सेनाओं का वर्णन। (६) देह में प्राण और उदान के समान मित्र और वरुण का वर्णन। पक्षान्तर में दिन-रात्रि और

स्त्री-पुरुषों के कर्तव्यों का वर्णन। (७) उपदेशक और अध्यापक और पक्षान्तर में स्त्री-पुरुषों के परस्पर कर्तव्यों का वर्णन। (८) इडा, भारती, सरस्वती आदि संस्थाओं का कर्तव्य। (९) गृहस्थ में, राष्ट्र में और उपासना में क्रम से योग्य पुरुष, शिल्पी और उपासकों की नियुक्ति। (१०) तेजस्वी सूर्य और आश्रय वृक्ष के दृष्टान्त से नायक, मुख्य पुरुष का भृत्यों के प्रति कर्तव्य। (११) अग्रणी का कर्तव्य। (१२) उदय होते सूर्य, वाज और वेगवान् हरिण के समान सेनानायक का स्तुत्य रूप। (१३) राष्ट्र के अनुयोक्ता त्रिवेदज्ञ पुरुष का होना, उसका आज्ञापक होना। पक्षान्तर में अध्यात्म देहव्यवस्था का वर्णन। (१४) नायक और आत्मा के यम, आदित्य और अर्वा तीन नाम। उसके तीन बन्धन। (१५) उसके तीन स्थानों पर तीन तीन बन्धन। (१६) उसका सर्वोत्कृष्ट रूप। (१७) व्यवस्थाबद्ध नायक की अश्व से तुलना। उत्तम मार्गों से मुख्य व्यक्ति को जाने का आदेश। अध्यात्म से उन्नतिमार्ग का अनुसरण। (१८) विजिगीषु का उत्तम रूप ओषधियों के ग्रास का रहस्य। अध्यात्म में ओषधिमय जीवनप्रद भोजन का उपदेश। (१९) नायक के प्रति सबको सख्य भाव से रहने की आज्ञा। (२०) मुख्य अध्यक्ष का महान् सामर्थ्य, उसके हिरण्यशृंग और अयःपाद होने का रहस्य। (२१) वीरबाहु चुस्त शूरवीरों को दलबद्ध दस्ते बना कर युद्ध करने का आदेश। अध्यात्म में योगियों का वर्णन। (२२) बलवान् शरीर और मन होने और जंगलों में सेनादलों की स्थापना। (२३) शत्रु-उच्छेदक नायक का वर्णन। 'अज' का रहस्य। उत्तम पद पर स्थित पुरुष को माता पिता के आदर का उपदेश। अध्यात्म में मोक्ष प्राप्त पुरुष को प्रकृति परमेश्वर का दर्शन। (२५) नायक को विद्वानों को संगठन करने का आदेश। दूत का कर्तव्य। (२६) तनूनपात् नामक विद्वान् के कर्तव्य। ज्ञान और उपास्य और ग्राह्य ज्ञानों को उत्तम भाषा में प्रकट करने का उपदेश। (२७) उत्तम प्रशंसनीय नायक का महान्

सामर्थ्य कि उसके आश्रय में अन्य विद्वान् रहें। (२८) दानशील संगठन के केन्द्रस्थ व्यक्ति के कर्तव्य। (२९) प्रथम संस्थापक का कर्तव्य। आसन के समान विस्तृत होकर अन्यों का आश्रय होना। (३०) द्वारों के दृष्टान्त से गृहदेवियों के कर्तव्यों का वर्णन। पक्षान्तर में सेनाओं के कर्तव्य। 'अयन' शब्द का समुचित अर्थ। (३१) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (३२) मुख्य विद्वानों या स्त्री पुरुषों का कर्तव्य। ज्ञानोपदेश। (३३) भारती आदि तीन संस्थाओं के कर्तव्य। (३४) आकाश या सूर्य और पृथिवी के समान राजप्रजा वर्गों को नाना ऐश्वर्यों से सुशोभित करने का कर्तव्य। (३५) ऋत्वनुसार भोजनों की व्यवस्था (३६) यज्ञाग्नि की ज्वाला से हव्य के विस्तार के समान राजा के सत्य, न्यायवाणी पर समस्त प्रजाओं का सुखभोग। (३७) तेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशक विद्वानों को तेजस्वी ज्ञानदाता होने का आदेश। (३८) कवच, शस्त्रधर की मेघ से तुलना। (३९) धनुर्बल से विजय का उपदेश। (४०) प्रिय पत्नी के समान धनुष की डोरी की शक्ति। (४१) उसका शत्रुनाशकारी कार्य। (४२) पुत्र पिता की तूणीर से तुलना। (४३) घोड़ों की बागों का वर्णन। अध्यात्म-रहस्य-विवेक। (४४) वीरों का वर्णन। (४५) रथ का वर्णन। (४६) शक्तिमान् पालक वीर पुरुषों का वर्णन। (४७) विद्वान् ब्राह्मणों के लक्षण। (४८) तीव्र बाणों से सुख की आशा। उनका वर्णन। (४९) शरीर के कठोर होने का उपदेश। (५०) कशा का वर्णन। (५१) हाथबन्द कवच और कुशल वीर का श्लेष से वर्णन। (५२) वनस्पति, धनुर्दण्ड और नायक का वर्णन। (५३) नाना दृष्टान्तों से सारभाग प्राप्त करने का उपदेश। (५४–५७) दुन्दुभि और वीर पुरुष का श्लिष्ट वर्णन। (५८, ५९) भिन्न-भिन्न अधिकारियों के अधीन नियुक्त भिन्न-भिन्न भृत्यों के विभेदक चिह्न और लक्षण। भिन्न-भिन्न उपसमितियों का कपालभेद से भेद वर्णन। ८, ११, आदि 'कपालों' का रहस्य।

त्रिंशोऽध्यायः (पृ० ४२६-४५४)

(१) ऐश्वर्यवृद्धि के लिये यज्ञपति की स्थापना। वाणी के मधुर होने की प्रार्थना। सर्वप्रेरक सर्वोत्पादक प्रभु के तेज का ध्यान, धारण और स्थापन। गायत्री। (३) उत्तमों के ग्रहण बुरों के त्याग का उपदेश। (४) अद्भुत ऐश्वर्य के विभाजक परमेश्वर और सर्वशासक राजा की स्तुति। (५-२१) ब्रह्मज्ञान, क्षात्रबल, मरुद् (वैश्य) विज्ञान आदि नाना ग्राह्य शिल्प पदार्थों की वृद्धि और उसके लिये ब्राह्मण, क्षत्रियादि उन-उन पदार्थों के योग्य पुरुषों की राष्ट्ररक्षा के लिये नियुक्ति। त्याज्य कार्यों के लिये उनके कर्त्ताओं को दण्ड का विधान। (२२) अति विचित्र, विकृत पुरुषों की विशेष व्यवस्था।

एकत्रिंशोऽध्यायः (पृ० ४५५-४७१)

पुरुषसूक्तम्। (१) शहस्रशिर, सहस्र आंखों और सहस्र पैरों वाले पुरुष का वर्णन। इसका रहस्य। उसका भूमि को व्याप कर दश अंगुल ऊपर विराजने का रहस्य। (२) पुरुष, भूत, भव्य, अमृत के ईशान और अन्नातिरोही। (३) उसकी महिमा और चार पाद। त्रिपात् पुरुष का उत्क्रमण और मापन। (४) विराट् की उत्पत्ति। (६) यज्ञ प्रजापति से आज्यसम्भरण, पशुओं की उत्पत्ति। (७) यज्ञ परमेश्वर से समस्त वेदों की उत्पत्ति। उससे अश्वों और गवादि पशुओं की उत्पत्ति। (९) उस पुरुष का सर्वोपरि अभिषेक और विद्वानों द्वारा पूजा। (१०, ११) पुरुष प्रजापति की विविध अंग की कल्पना और वर्णविषयक प्रश्न और उत्तर। (१२) चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि की कल्पना। (१३) अन्तरिक्ष, द्यौ, भूमि, दिशा और लोकों की कल्पनायें। (१४) संवत्सर यज्ञ का स्वरूप। (१४) उसकी तीन परिधियां और सात समिधाएं। यज्ञपुरुष के बन्धन का रहस्य। (१६) यज्ञपुरुष से यज्ञकाण्ड का यजन। साध्य विद्वानों की परम सुख प्राप्ति।

(१७) मानुष जीव सर्ग। (१८) आदित्य वर्ण पुरुष का वर्णन। (१९) समस्त भुवनों का आश्रय प्रजापति। (२०) ब्राह्मी रुक्। (२१) देवों का वशकर्त्ता विद्वान् ब्राह्मण। (२२) प्रजापति की दो पत्नी लक्ष्मी और श्री। इनका रहस्य। समस्त अध्याय की राजपक्ष में योजना।

द्वात्रिंशोऽध्यायः (पृ० ४७१-४८२)

(१) परमेश्वर के अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि नाना नाम। (२) उससे समस्त संसार की उत्पत्ति। (३) उसका कोई परिणाम नहीं। (४) उसका सर्वतोमुख वर्णन। उसका त्रिज्योति षोडषी स्वरूप। (६) सबका धारक प्रभु। (७) वह सबका संचालक और सूर्यादि का प्रकाशक। (८) वह सर्वाश्रय सर्वव्यापक सर्वत्र ओतप्रोत है। (९) उस परम प्रभु का ज्ञाता सबके पिता का पिता है। (१०) वह सबका बन्धु, विधाता, सर्वज्ञ सर्वसुखद अमृत है। (११) वह व्यापक ही प्रकृति में भी व्यापक है। (१२) तन्मय जगत्। (१३) अद्भुत सदसस्पति। (१४, १५) उससे मेधा बुद्धि की प्रार्थना। (१६) ब्रह्म, क्षत्र दोनों के लिये ऐश्वर्य की प्रार्थना। समस्त मन्त्रों की राजपक्ष में योजना।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः (पृ० ४८२-५३९)

(१, २) प्रजापालक विद्वान् अग्नियों का वर्णन। (३-५) विद्वान् मित्रों और श्रेष्ठों का आदर करने का उपदेश। सूर्य चन्द्र या अग्नि सूर्य के समान दो शक्तियों का संसारपालन। (६) विद्वान् की शिशु से तुलना। (७) ३३३९ देवों का रहस्य। (८) मूर्धन्य अग्रणी और परमेश्वर का वर्णन। (९) अग्रणी नायक का दुष्ट संहार करने का कर्तव्य। (१०) वायुसहित सूर्य के जलपान के दृष्टान्त से राजा की ऐश्वर्यप्राप्ति। (११) वीर्यसेचन से पुत्रोत्पत्ति के समान

जलसेचन से अन्नादि और राजसामर्थ्य से बल की उत्पत्ति का वर्णन। (१२) सौभाग्यवृद्धि के लिए उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करने, दम्पति सम्बन्ध को सुदृढ़ करने और शत्रुओं का तेजों को जीतने का आदेश। (१३) तेजस्वी पुरुष का सूर्य और विद्युत् के समान वरण। (१४) पशुनाशकों के दण्डकर्त्ता जितेन्द्रियों के आदर करने का उपदेश। (१५) बहुश्रुत पुरुष को प्रजा के व्यवहारों को सुनाने का आदेश। (१६) अग्रणी नायक सबको सुखकर और दयाशील हो। (१७) मुख्य पुरुष के उत्तम शासन में प्रजा निरपराध रहे और वह प्रजा का अच्छा रक्षक रहे। (१८) जीवनवर्धक जलों के समान विद्वान् जन प्रमुख पुरुष की वृद्धि करें। (१९) गौओं, रश्मियों, सूर्य-पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री-पुरुषों और राजा-प्रजा का कर्त्तव्य। पक्षान्तर में उत्तम वचनों और आभूषणों से सजाने का उपदेश। (२१) मेघ के समान उदार पुरुष को मुख्य पद पर स्थापन करने का उपदेश। (२२) शासक का आदर्श सूर्य। (२३) सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना। (२३) सूर्यवत् उत्साही नायक। (२४) नायक सेनापति को शत्रु-नाश के नाना प्रकार के उपदेश। (२५–२७) साहसी पुरुष के कर्त्तव्य। (२८) राजा की स्तुति प्रजाओं को समृद्ध बनाने में है। पक्षान्तर में आचार्य का वर्णन। (२९) बलवान् का सहयोग। (३०–३३) मुख्य पदाधिकारियों का राष्ट्र को समृद्धिमान् बनाना। (३४) सभा, संग्रामों में उत्तम उपदेष्टा और आदेष्टा। (३५) संघ के वशकर्त्ता का सूर्यवत् उदय। (३६) उसका स्वरूप, उसका महान् सामर्थ्य। (३७, ३८) सूर्य के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन। उसके शुक्ल, कृष्ण दोनों प्रकार के रूपों का रहस्य। (३९, ४०) महान् परमेश्वर। (४१) परमेश्वर के आश्रय पर कमाये धन के समान कर्मफल का भोग। (४२) विद्वानों का कार्य निन्दनीय कार्यों से बचना। पक्षान्तर में भौतिक तत्वों से उत्तम देह रचना। (४३)

विजिगीषु नायक के कर्त्तव्य। (४४) वायु और सूर्य के दृष्टान्त से भागदुघ् नाम अध्यक्ष के कार्य। (४५) विद्युत् आदि तत्वों का सदुपयोग। पक्षान्तर में राष्ट्र के अध्यक्षों का कर्त्तव्य। (४६) वरुण और मित्र दोनों के कर्त्तव्य। (४७) व्यापक अधिकारवान् पुरुष की अध्यक्षता। (४८) सब अध्यक्षों का राष्ट्र को प्रेम करना। (४९) रक्षा के लिये सबका आह्वान। (५०) उनका रक्षण कर्त्तव्य। (५०, ५१) प्रजा का विद्वानों की शरण आना और रक्षा की याचना करना। (५२) विद्वानों को उत्तम आसन। (५३) परमेश्वर का विद्वानों के प्रति अपना स्वरूप प्रकाश। राजा का विद्वानों को ऐश्वर्यदान। (५४-५९) वायु, इन्द्र, अश्वी आदि के कर्त्तव्य। (६०-६८) विजयी पुरुषों के लक्षण। इन्द्र का स्वरूप। (६९) बड़े राजा और परमेश्वर की स्तुति। अन्य अधिकारियों के कर्त्तव्य।

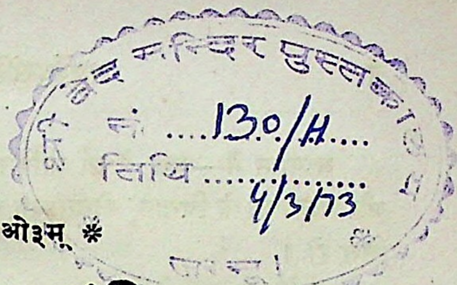
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः (पृ० ५४०-५७७)

(१-६) शिवसंकल्पसूक्त। (७) पालक अन्न। (८, ९) अनुमति नाम पुरुष और संस्था। (१०) सिनीवाली का रहस्य। (११) पञ्चनदी और सरस्वती का रहस्य। (१२) अंगिरा ऋषि, राजा। (१३) अग्रणी से रक्षा की प्रार्थना। (१४) राजा पृथ्वी और पति पत्नी के कर्त्तव्य। (१५) पृथ्वी के केन्द्र में राजा की स्थिति। (१६) उत्तम विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन। (१७-३१) विद्वानों और नायक राजा के कर्त्तव्य। (३२, ३३) रात्रि, उषा, राजशक्ति और स्त्री। (३४-३९) प्रातः उपासना। (४०) उषा के समान स्त्रियों का वर्णन। (४१, ४२) पूषा राजा और परमेश्वर। (४३, ४४) विष्णु, राजा और परमेश्वर। (४५) वरुण, परमेश्वर और राजा। (४६) अधिराट् का निर्माण। (४७) उसके अधीन अश्वियों के कर्त्तव्य। (४८, ४९) विद्वानों के कर्त्तव्य। (५०-५३) सुवर्ण और उत्तम सैन्य बल का वर्णन।

उत्तम आदर हो। (३) वाणी प्राण आदि का उत्तम उपयोग। (४) मन वाणी की शक्ति का उपयोग करने और समृद्धि की प्रार्थना। (५-७) प्रजापति प्रभु और परमेश्वर के नाना गुण कर्म स्वभावानुसार नाना नाम। (८-१०) देवमय राजा। लोम त्वचादि देह धातुओं को स्वच्छ रोग रहित रखने का उपदेश। (११) आयास आदि देह और आत्मा के धर्मों के लिये उत्तम आहार व्यवहार। (१२) तप धर्मादि के लिये उत्तम यत्न करने का उपदेश। (१३) नियन्ता का आदर परमेश्वर की उपासना।

चत्वारिंशोऽध्यायः (पृ० ६३७-६४६)

ईशोपनिषत् (१) परमेश्वर व्यापक। उसके दिये के भोग करने और लोभ त्यागने का उपदेश। (२) जीवन भर निःसंग होकर कर्म करने की आज्ञा। (३) आत्मा के नाशकों के दुर्गति। (४-५) आत्मा का स्वरूप। (६, ७) सर्वत्र आत्मदर्शन। (८) आत्मा का स्वरूप। (९-११) सम्भूति और विनाश दोनों का ज्ञान। उन दोनों की उपासना का फल, मृत्यु, मरण और अमृत भोग। (१२-१४) विद्या अविद्या का ज्ञान। उन दोनों की उपासना का फल। मृत्यु और वरण। (१५) देह और भौतिक जीवन की वास्तविकता। अन्त समय में 'ओ३म्' प्रभु का स्मरण। (१६) उत्तम मार्ग से चलने की भगवान् से प्रार्थना। सत्य तत्व पर हिरण्यमय आवरण। परम आत्मदर्शन। ब्रह्म में लय। मोक्षप्राप्ति।



* ओ३म् *

यजुर्वेद संहिता

अष्टादशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

१—२७ देवा ऋषयः । अग्निर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(यज्ञेन) यज्ञ, प्रजापालनरूप सत्कर्म से (मे) मुझ राजा या प्रजा जन को (वाजः च) अन्न, वीर्य और (प्रसवः च) ऐश्वर्य, (प्रयत्तिः) प्रयत्न, साधन और (प्रसितिः) उत्कृष्ट राज्यप्रबन्ध और प्रेम, (धीतिः च) उत्तम ध्यान या चिन्तन, (क्रतुः च) उत्तम कर्म और प्रज्ञान, बुद्धि, (स्वरः च) उत्तम स्वर, उत्तम कण्ठध्वनि और (श्लोकः च मे) उत्तम वाणी, (श्रवः च) उत्तम 'श्रव' गुरु-उपदेश या अन्न, (श्रुतिः च) उत्तम श्रवणयोग्य वेद, (ज्योतिः) विद्या का प्रकाश और (स्वः च) उत्तम सुख ये सब (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ उत्तम राज्य प्रबन्ध, व्यवस्था और राजा-प्रजा के सम्मिलित यत्न, सत्संगति द्वारा (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों । (१-२१) शत० ९।३।२।१–१० ॥

१—अथातो वसोर्धारामन्त्राः १—२७ ॥

अध्यात्म में—अन्न, ऐश्वर्य आदि सब पदार्थ मुझे (यज्ञेन) आत्मा और परमात्मा के चिन्तन, योगसाधन या उपासना द्वारा (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

प्रजापतिर्देवता । अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(मे) मुझे (प्राणः च) प्राण, जो शरीर में नाभि से ऊपर गति करता है, (अपानः च) अपान, जो नाभि से नीचे विचरता है, (व्यानः च) व्यान, शरीर की सब संधियों में व्यापक और मुख्य नाभिदेश में स्थित है, (असुः च) असु, नाग कूर्म आदि नाम वायु जो वमन आदि वेग करता, रोग-परमाणुओं को बल से बाहर फेंकता एवं बल के अन्य कार्यों में सहायक है, (चित्तं च) चित्त, स्मरण करने वाली शक्ति, (आधीतं च) बाह्य विषयों का ज्ञान और निश्चयकारिणी बुद्धि, धृति, (वाक् च) वाणी, वाग्-इन्द्रिय (मनः च) मन, संकल्प विकल्प वा ऊहापोह करने वाली शक्ति, (चक्षुः च) चक्षु, देखने वाली इन्द्रिय, (श्रोत्रं च) श्रोत्र, कर्णेन्द्रिय, (दक्षः च) ज्ञानेन्द्रियों का बल और (बलं च) कर्म इन्द्रियों का कौशल बल (च च०) उदान, समान, धनंजय आदि अन्य वायुएं, धारण, श्रवण, अहंकार, प्रत्यक्ष प्रमाण, सामयिक मान आदि पदार्थ भी (यज्ञेन) यज्ञ, आत्मसामर्थ्य, ज्ञानाभ्यास, सत्संग और उपासना से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों ।

ओजश्च मे सहश्च मेऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूंषि च मे शरीराणि च मऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

प्रजापतिः । भुरिग् अतिशक्वरी । पंचमः ॥

भा०—(ओजः च) ओज, शरीर में स्थित तेजोमय धातु, (सहः च) शत्रु पराजय का बल, सहनशीलता, (आत्मा च) आत्मा, परमात्मा या इन्द्रियगण, (तनूः च) उत्तम दृढ़ शरीर (शर्म च) गृह और गृहोचित सुख, (वर्म च) शरीररक्षक कवच, शस्त्रास्त्र, (अङ्गानि च) देह के अंग उपाङ्ग, (अस्थीनि च) छोटी-बड़ी समस्त अस्थियाँ, (परूंषि च मे) अंगुली आदि पोरु और मर्मस्थान, (शरीराणि च) शरीर के अन्य अवयव अथवा मेरे अन्यों के शरीर और सूक्ष्म देह, (आयुः च मे) पूर्णायु और जीवनोपयोगी साधन, (जरा च) और वृद्धावस्था और यौवन आदि भी (यज्ञेन) सत् कर्मानुष्ठान और परमेश्वर की कृपा से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों ।

ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(मे) मुझे (ज्यैष्ठ्यं च) ज्येष्ठता, बड़ाई, (आधिपत्यं च) अधिपाद का पद, (मन्युः च) मन्यु, मानस, कोप, ज्ञान और आत्म-मान, (भामः च) क्रोध, दुष्टों पर असहनशीलता, (अमः च) न्यायोचित प्राप्त गृह आदि पदार्थ (अम्भः च) जल, उसके समान शीतलता और समुद्र के समान गम्भीरता, (जेमा च) विजय और ऐश्वर्य, (महिमा च) महत्त्व, (वरिमा च) श्रेष्ठता, (प्रथिमा च) विस्तृत गृह, क्षेत्र, राज्य आदि, (वर्षिमा च) ज्ञान, अनुभव, आयु और पद की वृद्धि, (द्राघिमा च) दीर्घता, अर्थपरम्परा, (वृद्धं च) बढ़ा हुआ बल और धन, (वृद्धिः च) विद्या आदि गुणों की उन्नति, बढ़ोतरी, ये समस्त पदार्थ मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) परमेश्वर की कृपा और सत्कर्म रूप यज्ञ से मुझे प्राप्त हों ।

स॒त्यं च॑ मे श्र॒द्धा च॑ मे॒ जग॑च्च मे॒ धनं॑ च मे॒ विश्वं॑ च मे॒ मह॑श्च मे क्री॒डा च॑ मे॒ मोद॑श्च मे जा॒तं च॑ मे जनि॒ष्यमा॑णं च॑ मे सू॒क्तं च॑ मे सुकृ॒तं च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

प्रजापतिः । स्वराट् शक्वरी । धैवतः ।

भा०—(सत्यं च) यथार्थ, सत्यभाषण और सर्वहित, (श्रद्धा च) सत्य धारणा, (जगत् च) जगत्, जंगम सम्पत्ति, (धनं च) सुवर्णादि धन, धान्य, (विश्वं च) समस्त स्थावर पदार्थ, (क्रीड़ा च) क्रीड़ा, विनोद के साधन, (मोदः च) आनन्द, हर्ष, परमानन्द, (जातं च) उत्तम पुत्र पौत्रादि, अथवा उत्पन्न कृषि, सस्यादि (जनिष्यमाणं च मे) आगे उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य, (सूक्तं च) वेदमन्त्र, सुभाषित, सुविचार, (सुकृतं च) पुण्याचरण, (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ, धर्मानुष्ठान, ईश्वर कृपा, प्रजापालन व्यवहार और राज्यव्यवस्था द्वारा प्राप्त हों।

ऋ॒तं च॑ मे॒ऽमृतं॑ च मेऽय॒क्ष्मं च॒ मेऽना॑मयच्च मे जी॒वातु॑श्च मे दीर्घायु॒त्वं च॑ मेऽनमि॒त्रं च॑ मेऽभ॑यं च मे सु॒खं च॑ मे॒ शय॑नं च मे सू॒षाश्च॑ मे सु॒दिनं॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

भुरिगतिशक्वरी । पंचमः ।

भा०—(ऋतं च) ऋत, यज्ञ, सत्य विज्ञान, वेदशास्त्र, (अमृतं च) मोक्ष और पूर्णायु (अयक्ष्मं च), यक्ष्मा, तपेदिक आदि रोगों से रहित स्वस्थता, (अनामयत् च) रोगों का अभाव, (जीवातुः च) जीवनप्रद अन्न, औषधि पथ्य आदि, (दीर्घायुत्वं च) दीर्घ आयु, (अनमित्रं च) शत्रु का न होना, (अभयं च) अभय, निर्भयता, (सुखं च) सुख, (शयनं च) सुखपूर्वक निद्रा, (सुषा च) उत्तम उषाकाल, (सुदिनं च) उत्तम दिन, ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ, राष्ट्रपालन, सुकृत, धर्माचरण और ईश्वरोपासना से प्राप्त हों।

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

प्रजापतिः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(यन्ता च) नियमकर्त्ता, या अश्वादि का नियन्ता, या राष्ट्र, को नियम में रखने वाला और (धर्त्ता च) धारण-पोषण करने वाला पुरुष, (क्षेमः च) राष्ट्र आदि सम्पदा का संरक्षण, (धृतिः च) धैर्य, आपत्ति में भी चित्त की स्थिरता, (विश्वं च) समस्त अनुकूल पदार्थ, (महः च) यश, आदर, (संवित् च) उत्तम प्रतिज्ञा, या वेदशास्त्र का उत्तम ज्ञान, (ज्ञात्रम्) ज्ञान साधन और उत्कृष्ट विज्ञानसामर्थ्य, (सूः च) पुत्र और भृत्यादि को आज्ञा करने का सामथ्य और (प्रसूः) पुत्र आदि उत्पन्न करने का सामर्थ्य, उत्पन्न करने हारी माता, (सीरं च) कृषि के साधन हल आदि और अन्न आदि और (लयः च) कृषि आदि की बाधाओं के विनाशक साधन ये सब (मे) मुझे (यज्ञेन) पूर्वोक्त यज्ञ, से प्राप्त हों।

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

स्वराट् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(शं च) कल्याण और (मयः च) सुख, ऐहिक और पारमार्थिक, (प्रियं च) प्रिय पदार्थ और (अनुकामः च) धर्मानुकूल कामना, (कामः च) उत्तम स्त्री, पुत्र, धन आदि काम्य एवं प्राह्य विषयों की अभिलाषा, (सौमनसः च) उत्तम मन की स्थिति, शुभचित्तता, (भगः च) अष्टविध ऐश्वर्य, (द्रविणं च) सुवर्णादि द्रव्य, (भद्रं च) सुखदायी पदार्थ, (श्रेयः) श्रेष्ठ, मुक्ति का सुख, (वसीयः च) उत्तम

धन-धान्य समृद्धि, (यशः च) और यश, कीर्त्ति ये समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) परस्पर संग तथा धर्मानुष्ठान और प्रजापालन आदि सत्कर्म और ईश्वर कृपा से प्राप्त हों ।

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रञ्च म ऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(ऊर्क् च) परम रस वाला बलकारक अन्न, (सूनृता च) उत्तम ज्ञानमयी वाणी, (पयः च) पुष्टिकारक दूध, (रसः च) सारवान् पोषक रस, (घृतं च) घी (मधु) मधु, मधुर पदार्थ, अन्न, (सग्धिः च) बन्धु-बान्धवों के साथ मिलकर भोजन करना, (सपीतिः च) सबके साथ मिलकर दुग्ध आदि का पान करना, (कृषिः च) कृषि, खेती बाड़ी, (वृष्टिः च) और मेघों से वृष्टि, (जैत्रं च) विजय और सेना आदि सामर्थ्य, (औद्भिद्यं च) पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न होने वाले तरु, लता, गुल्म, वृक्ष, फल आदि पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) पूर्वोक्त यज्ञ, से (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों ।

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

आत्मा । निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(रयिः च) विद्या और लक्ष्मी, (रायः च) उत्तम ऐश्वर्य, मणि, मुक्ता आदि पदार्थ, (पुष्टं च) शरीर की हृष्ट-पुष्टता, आरोग्य, ऐश्वर्य की वृद्धि, (पुष्टिः च) पुष्टि और सुपथ्य होना, (विभु च) विविध पदार्थों की प्राप्ति, परमात्मा का ध्यान और (प्रभु च) सब पर प्रभुता, (पूर्णं च) पूर्णता, धन पुत्र आदि से भरे पूरे रहना, (पूर्णतरं च)

और भी अधिक ऐश्वर्य बढ़ना, (कुयवं च) कुत्सित यव आदि क्षुद्र जाति के धान्य, (अक्षितं च) क्षयरहित अन्न, शालि आदि धान्य (अन्नं च) गेहूं आदि अन्न, (क्षुत् च) भूख का अच्छा लगना और (अक्षुत् च) भोजन द्वारा भूख का न रहना, उसका अन्न द्वारा मिट जाना, ये सब पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ और राजा-प्रजा के परस्पर संग से प्राप्त हों।

वि॒त्तं च॑ मे॒ वेद्यं॑ च मे भू॒तं च॑ मे भवि॒ष्यच्च॑ मे सु॒गं च मे सु॒प॒थ्यं॑ च॑ म ऽऋ॒द्धं च म॒ ऽऋद्धि॑श्च मे क्लृ॒प्तं च॑ मे॒ क्लृप्ति॑श्च मे म॒तिश्च॑ मे सुम॒तिश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

श्रीमदात्मा । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(वित्तं च) वित्त, धन, सुविचारित तत्त्व, (वेद्यं च) प्राप्त करने योग्य द्रव्य, विचार करने योग्य ब्रह्मतत्त्व, (भूतं च) भूतकाल और (भविष्यत् च) भविष्यत् काल, (सुगं च) उत्तम जाने योग्य मार्ग, सुन्दर प्रदेश, (सुपथ्यं च) उत्तम मार्गों का होना, (ऋद्धं च) समृद्धि, समस्त आवश्यक पदार्थों की प्राप्ति (ऋद्धिः) योगज सम्पत्ति, (क्लृप्तं च) कार्य करने में समर्थ होना, (क्लृप्तिः च) और सामर्थ्य से प्राप्ति, (मतिः च) मनन और विवेक (सुमतिः च) शोभन उत्तम मति, मननशक्ति ये सब (यज्ञेन) पूर्वोक्त यज्ञ और आत्मसाधना से (मे) मुझे प्राप्त हों।

व्री॒हय॑श्च मे॒ यवा॑श्च मे॒ माषा॑श्च मे॒ तिला॑श्च मे मु॒द्गाश्च॑ मे॒ खल्वा॑श्च मे प्रि॒यङ्ग॑वश्च मेऽण॑वश्च मे श्या॒माका॑श्च मे नी॒वारा॑श्च मे गो॒धू॒मा॑श्च मे म॒सूरा॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

धान्यदा आत्मा । भुरिगतिशक्वरी । पंचमः ॥

भा०—(व्रीहयः च) धान्य, साठी के चावल आदि (यवाः च) जौ, गेहूँ, (माषाः च) उड़द, माष, अरहर आदि, (तिलाः च) तिल,

नारियल आदि, (मुद्गाः च) मूंग, (खल्वाः च) चने, (प्रियंगवः च) प्रियंगु नामक क्षुद्र धान, (अण्वः च) छोटा चावल, (श्यामाकाः च) सांवा चावल, (नीवाराः च) निवार नाम का बिना खेती से उपजने वाला वन्य धान, (गोधूमाः च) गेहूँ और (मसूराः च) मसूर ये, समस्त अन्न की जातियां और उनसे बने अनेक पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) पूर्वोक्त यज्ञ, से प्राप्त हों।

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

रत्नवान् धनवान् आत्मा । भुरिगतिशक्वरी । पंचमः ॥

भा०—(अश्मा च) सब प्रकार के पाषाण, हीरे आदि, (मृत्तिका च) सब प्रकार की मिट्टियां, (गिरयः च) पर्वत, उनसे प्राप्त भोग्य पदार्थ, (सिकताः च) समस्त बालुकामय देश, (वनस्पतयः च) समस्त वनस्पतियां, बड़े जंगल, आम्र आदि वृक्ष, (हिरण्यं च) सुवर्ण, चांदी आदि, (अयः च) लोहा, (श्यामं च) श्यामलोह, (लोहं च) लाल लोह, कान्तिसार आदि (सीसं च) सीसा और (त्रपु च) त्रपु, टीन, रांगा आदि ये सब धातु भी (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) राष्ट्रपालन के अधिकार शिल्प, रसायन, भूगर्भ विद्या आदि के प्रयोग से मुझे प्राप्त हों।

अग्निश्च मऽआपश्च मे वीरुधश्च मऽओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशवऽआरण्याश्च मे वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे भूतञ्च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

अग्न्यादियुक्त आत्मा । भुरिगष्टिः मध्यमः ॥

भा०—(अग्निः च) अग्नि विद्युत् आदि (आपः च) जल, जलाशय, नदी आदि, (वीरुधः च) लता, गुल्म आदि, (ओषधयः च) सोम आदि ओषधियां, (कृष्टपच्याः च) अनाज जो खेती से प्राप्त हैं और

(अकृष्टपच्याः च) वे अन्नादि पदार्थ जो बिना हल जोते ही भूमि से प्राप्त होते हैं, (ग्राम्याः पशवः) गांव और नगर में रहने वाले गौ आदि पशु और (आरण्याः च पशवः) जंगल में रहने वाले हरिण, सिंह आदि पशु और (वित्तं च) इनसे प्राप्त समस्त धन धान्य और (वित्तिः च) और आगे होने वाली प्राप्ति, (भूतिः च) समस्त ऐश्वर्य, (भूतं च) भूत, नानाविध प्राणि-समूह, ये समस्त ऐश्वर्य (मे) मुझे (यज्ञेन) पूर्वोक्त यज्ञ से प्राप्त हों ।

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

धनादियुक्त आत्मा । विराड् आर्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(वसु च) समस्त वास योग्य धन, गृहादि, (वसतिः च) वासस्थान, ग्राम आदि, (कर्म च) समस्त कर्म, यज्ञ, कूप, तड़ाग खोदना, व्यापार आदि, (शक्तिः च) कर्म करने की शक्ति, अधिकार व प्रेम, (अर्थः च) समस्त पदार्थ, संग्रह धन और योग्य अधिकार, (एमः च) प्राप्तव्य पदार्थ या यत्न, (इत्या च) इष्ट पदार्थ प्राप्त करने का साधन व ज्ञान (गतिः च) पुरुषार्थ द्वारा गमन सामर्थ्य और क्रिया इत्यादि समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ द्वारा प्राप्त हों ।

अग्निश्च म ऽइन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म ऽइन्द्रश्च मे सरस्वती च म ऽइन्द्रश्च मे पूषा च म ऽइन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म ऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

मित्रश्च म ऽइन्द्रश्च मे वरुणश्च मे ऽइन्द्रश्च मे धाता च म ऽइन्द्रश्च मे त्वष्टा च म ऽइन्द्रश्च मे मरुतश्च म ऽइन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा ऽइन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पृथिवी च म ऽइन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म ऽइन्द्रश्च मे द्यौश्च म

ऽइन्द्रश्च मे समाश्च म ऽइन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म ऽइन्द्रश्च मे दिशश्च मे इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

१६ अग्न्यादिविद्याविद् । निचृदतिशक्वरी । पंचमः । १७ मित्रैश्वर्यसहित आत्मा । स्वराट् शक्वरी । धैवतः । १८ राज्यैश्वर्यादियुक्त आत्मा । भुरिक्शकरी । धैवतः ॥

भा०—(अग्निः च) सूर्य और आग्नेय तत्व, (इन्द्रः च) उनका ज्ञाता इन्द्र, (सोमः च इन्द्रः च) सोम, जल तत्व, ओषधि और इन्द्र, उसकी विद्या के रहस्यों का जानने वाला, (सविता च इन्द्रः च) सविता सूर्य या ऐश्वर्यवान् और इन्द्र, सूर्यतत्व का विज्ञाता, सभापति और सभ्य, (सरस्वती च) सरस्वती, वेदवाणी और (इन्द्रः च) उसका ज्ञाता, आचार्य, विद्वान्, (पूषा च) सबका पोषण करने वाला अन्न और पशु तथा (इन्द्रः च) उनका ज्ञाता विद्वान् और अधिपति गुरु इन्द्र है। (बृहस्पतिः च) बृहस्पति, बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान्, ब्राह्मण, वैद्य और (इन्द्रः च) उसके ऐश्वर्यों का भी स्वामी, सेनापति, इन्द्र, ये सब (यज्ञेन) यज्ञ, परस्पर संगति, प्रजापालन और आत्म-साधना से (मे कल्पन्ताम्) मेरे राज्यव्यवहार में समर्थ एवं शक्तिशाली हों ।

(मित्रः च) मित्र न्यायाधीश और प्राण (इन्द्रः च) उसके ऊपर अधिष्ठित राजा, सभापति, विद्युत्, (वरुणः च) दुष्टों का वारण करने वाला अधिकारी 'वरुण', (इन्द्रः च) उस पर भी अधिष्ठित शत्रुनाशक इन्द्र, (धाता च) राष्ट्र का पोषक 'धाता' और न्याय, (इन्द्रः च) उस पर भी शासक ऐश्वर्यवान् अन्नपति इन्द्र, (त्वष्टा च) शिल्पों का कर्त्ता पुरुष 'त्वष्टा' और (इन्द्रः च) उसका अधिपति, व्यवहारकुशल 'इन्द्र', शत्रुघाती, (मरुतः च) वायु के समान वेगवान् वीर योद्धा (इन्द्रः च) इन्द्र, सेनापति, (विश्वे च देवाः) और समस्त विद्वान् पुरुष और (इन्द्रः च) उनका स्वामी इन्द्र ये सब ही अधिकारीगण और शासक अधिपति (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे राष्ट्र में परस्पर सुसंगति, सुव्यवस्था से हों ।

(पृथिवी च इन्द्रः च) पृथिवी और उसका अधिपति अग्नि के समान तेजस्वी इन्द्र, (अन्तरिक्षं च इन्द्रः च) अन्तरिक्ष और उसका अधिपति वायु के समान बलशाली इन्द्र, (द्यौः च इन्द्रः च) द्यौ, आकाश, उसके तुल्य विस्तृत राजसभा में सूर्य के समान तेजस्वी अधिकारी इन्द्र, (समाः च इन्द्रः च) वर्ष और उनका शासक सूर्य के समान तेजस्वी इन्द्र, (नक्षत्राणि च) नक्षत्र, अधीन सामन्त और (इन्द्रः च) चन्द्र के समान ऐश्वर्यवान्, इन्द्र, कालज्ञ, (दिशः च इन्द्रः च) दिशाएं और उनके में आकाश के समान व्यापक बलवान् राजा, इन्द्र, ये सब (मे यज्ञेन कल्पन्ताम) मेरे यज्ञ, उत्तम राज्यप्रबन्ध से हों।

अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती, पूषा, बृहस्पति, मित्र, वरुण, धाता, त्वष्टा, मरुत्, विश्वेदेव राष्ट्र के भिन्न-भिन्न विभाग हैं। उनके मुख्य अधिकारी या राजा का समान रूप से शासन है। इसलिये प्रत्येक के साथ 'इन्द्र' का सम्बन्ध है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, सभा, नक्षत्र और दिशा, ये भी गुणवाद से राजा के ही भिन्न-भिन्न अधिकारक्षेत्र हैं। तदनुसार उनको भी 'इन्द्र' नामक मुख्य राजा या अध्यक्षों के अधीन संगठित होना चाहिये।

अध्यात्म में—अग्नि जाठराग्नि, सोम वीर्य, सविता चक्षु, सरस्वती वाणी, पूषा उदर और बृहस्पति मन है। मित्र प्राण, वरुण, उदान, धाता मन, त्वष्टा आत्मा, मरुद्गण धनञ्जय आदि प्राण या इन्द्रियगण हैं, पृथ्वी चरण, अन्तरिक्ष मध्यभाग, द्यौः शिर, समा पूर्ण आयु के वर्ष, नक्षत्र लोम, दिशाएं श्रोत्र, ये सब इन्द्र आत्मा के साथ सम्बद्ध हैं।

अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च॒ऽम॒ उपा॒ꣳशुश्च॒ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ म॒ ऽऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ म आश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्रस्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

पदार्थविदात्मा। निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(अंशुः च) अंशु, सूर्य और उनके समान तेजस्वी अधिकारी पुरुष, (रश्मिः च) रश्मि, सूर्य की किरणों के समान उपभोग्य पदार्थों का संग्रहकारी पुरुष, (अदाभ्यः च) विनाशरहित, दृढ़ 'अदाभ्य' नामक राज्यविभाग, (अधिपतिः) अधिपति, अधिष्ठाता पूर्वोक्त 'निग्राह्य' नामक राज्य विभाग, (उपांशुः च) उपांशु नामक राज्यांग, (अन्तर्यामः च) भीतर व्यापक अन्तर्याम, वायु, (ऐन्द्रवायवः च) इन्द्र और वायु का सम्मिलित पद, (मैत्रावरुणः च) मित्र और वरुण का सम्मिलित पदाधिकारी, (आश्विनः च) सूर्यचन्द्रवत् आश्विन नामक अधिकारी, (प्रतिस्थानः च) शत्रु के प्रति चढ़ाई करने करने वाला अधिकारी, (शुक्रः च मन्थी च) शुक्र तेजस्वी और मन्थी शत्रुनाशक सब राज्याधिकारी और राज्यांग (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ, राष्ट्रव्यवस्था के द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों ।

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्कैवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

यज्ञानुष्ठानात्मा । स्वराड् अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(आग्रयणः च) आग्रयण और मार्गशीर्ष का विशेष यज्ञ, (वैश्वदेवः च) वैश्वदेव, (ध्रुवः च) ध्रुव, (वैश्वानरः च) वैश्वानर और (इन्द्राग्नः च) इन्द्र-अग्नि का पद, (महावैश्वदेवः च) महावैश्वदेव, (मरुत्वतीयाः च) मरुत्वतीय, (निष्कैवल्यः च) निष्कैवल्य, मोक्षोपदेश, (सावित्रः च) सावित्र, (सारस्वतः च) सारस्वत, (पात्नीवतः च) पात्नीवत् और (हारियोजनः च) हारियोजन ये समस्त राज्यांग और राज्यान्तर्गत अधिकार (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) परस्पर की संगठित व्यवस्था से अधिक बलवान् हों ।

मन्त्र १९ से २१ तक पठित अन्तर्याम आदि परिभाषाओं का वर्णन अध्याय ७ मन्त्र ४० तक और अ० ८ मन्त्र ७–२१ तक देखो।

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म ऽआधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

यज्ञवान् आत्मा । विराड् धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(स्रुचः च) स्रुच् स्रुव्, जुहू आदि (चमसाः च) चमस आदि यज्ञपात्र, (वायव्यानि च) वायव्य आदि पात्र, (द्रोणकलशः च) द्रोणकलश, सोमधारण के लिये कलश। (ग्रावाणः च) शिला, शिल बट्टा आदि सोम या अन्न कूटने के पाषाण, (अधिषवणे च) कुटे हुए सोम या अन्न रखने के फलक, (पूतभृत् च, आधवनीयः च) पूतभृत् और आधवनीय नामक सोम या अन्न रखने के दो पात्र, (वेदिः च) वेदि, (बर्हिः च) बर्हि, आसन, या दर्भ, (अवभृथः च) यज्ञान्तस्नान, (स्वगाकारः) स्वयं गान करने योग्य शंयुवाक नामक स्वस्तिवाचनकर्त्ता, ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ द्वारा सिद्ध एवं उत्तम कर्म करने और फल देने में समर्थ हों

राजा के पक्ष में—(१) 'स्रुचः', गौवैं स्रुक्। श० ६।३।१।८॥ इमे वै लोकाः स्रुचः। तै० ३।३।१।२॥ बाहू वै स्रुचौ। श० ७। ४।१।३६॥ योषा वै स्रुक्। वृषा स्रुचः। श० १।३।१॥ गवादि पशु, समस्त लोक, बाहुएं, वीर पुरुष, स्त्रियां और पुरुषगण ये सब, 'स्रुच्' कहाते हैं। (२) 'चमसाः'—१३ पात्र, 'राज्याङ्ग' नाना विभाग। देखो अ० ७।३॥ यज्ञ में आग्रयण आदि ग्रह। राज्य में आग्रयण आदि राज्याङ्ग, और देह में प्राण, त्वक्, दक्ष क्रतु, श्रोत्र, चक्षु,

२१—०'स्वगाकारश्चमेऽवभृथश्चमे०' इति काण्व०'

आत्मा, अन्य अङ्ग, आयु और प्रतिष्ठा ये 'चमस' कहाते हैं। संवत्सररूप प्रजापति के १३ मास चमस हैं। यज्ञ में—सूर्य, अग्निहोत्रहवणी, स्फ्य, कपाल, शम्या, कृष्णाजिन, ऊलूखल, मूसल, दृषद, उपल ये दश पात्र हैं। शरीर में दश प्राण के समान हैं। (३) 'वायव्यानि'—शरीर में प्राणादि के समान राष्ट्र में अन्यान्य विभाग, यजु अ० ७। २७, २८॥ अथवा सोम के छानने के पात्र और दशा पवित्र आदि। 'सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः' इत्यादि यजु० ८। ५९॥ (४) 'द्रोणकलश'—यज्ञ में सोमकलश। राजा के पक्ष में राष्ट्र या स्वयं राजा। प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः। श० ४। ३। ७। ६॥ राष्ट्रं द्रोणकशलः। तां० ६। ६। १॥ प्राणो वै द्रोणकलशः। तां० ९। ९। ३३॥ (५) 'ग्रावाणः'—प्राणा वै ग्रावाणाः श० १४। २। ३। ३३॥ पशवो वै ग्रावाणः। तां० ९। ९। ३३॥ विड् वै ग्रावाणः। श० ३। ९। ३। ३॥ विद्वांसो वै ग्रावाणः। श० ३। ९। ३। १४॥ शरीर में प्राण, राज्य में पशु, प्रजा और विद्वान् 'ग्रावा' हैं। (६) 'अधिषवणे'—सोम के उत्पादक शिलाफलकों के समान परस्पर मिलकर राज्य के उत्पादक राजा और प्रजा। पुत्र के उत्पादक माता और पिता। (७) 'पूतभृत्' वैश्वदेवो वै पूतभृत्। श० ७। ४। १। १२॥ (८) वेदिः पृथ्वी। (९) अवभृथः—वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा। श० १२। ९। २। ४॥ समुद्रो वा अवभृथः। वै० २। १। ५। २॥ राष्ट्र का उत्तम पालनकर्त्ता 'अवभृथ' है। देखो यजु० अ० ७। ५९॥ समुद्र के समान पृथ्वी को घेर कर उसका पालक पोषक। (१०) 'स्वगाकारः'—संवत्सरः स्वगाकारः। तै० २। १। ५। २॥ राष्ट्र के समस्त ऐश्वर्य को सूर्य के समान दौरा लगाकर अपनाने वाला राजा।

अ॒ग्निश्च॑ मे घ॒र्मश्च॑ मे॒ऽर्कश्च॑ मे॒ सूर्य॑श्च मे प्रा॒णश्च॑ मेऽश्वमे॒धश्च॑ मे पृथि॒वी च॒ मेऽदि॑तिश्च मे॒ दि॑तिश्च मे॒ द्यौश्च॑ मे॒ऽङ्गुल॑यः॒ शक्व॑रयो॒ दिश॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

यज्ञवान् आत्मा । भुरिक्शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(अग्निः च) अग्नि, अग्रणी और ज्ञानी नेता पुरुष और अग्निष्टोम यज्ञ, (घर्मः च) तेज, प्रताप, घर्म नामक प्रवर्ग्य इष्टि, (अर्कः च) अर्चनायोग्य सामग्री, अर्चनीय पुरुष और याग, (सूर्यः च) प्राण, (अश्वमेधः च) अश्वमेध यज्ञ और राष्ट्र (पृथ्वी च) पृथ्वी, (अदितिः च) अखण्ड राजनीति और राष्ट्रभूमि (दितिः च) विभक्त भूमि अथवा शत्रु को खण्ड-खण्ड करने वाली शक्ति, (द्यौः च) द्यौः, धर्म की प्रकाशक राजसभा, (अङ्गुलयः) अङ्गुलियों के समान पर-राष्ट्र को पकड़ने और वश करने वाली अग्रगामिनी सेनाएं, अथवा राष्ट्र के अङ्ग, (शक्वरयः) शक्तिशाली सेनाएं, (दिशः च) दिशाएं और उनमें रहने वाली प्रजाएं ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन) परस्पर संग और राष्ट्र-पालन द्वारा (कल्पन्ताम्) हों । शत० ९ । ३ । ३ । १ ॥

व्रतञ्च मे ऽऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऽऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

कालविद्याविद् आत्मा । पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(व्रतं च) सत्य, अहिंसा यम नियम आदि का पालन (ऋतवः च) वसन्त आदि ऋतु, (तपः च) ब्रह्मचर्य आदि तपस्या, (संवत्सरः च) बारह मासों से परिमित वर्ष, (अहोरात्रे च) दिन और रात, (ऊरु-अष्ठीवे च) जंघाएं और गोड़े तथा उनके समान प्रबल वैश्य वर्ग (बृहद्रथन्तरे च) बृहत् साम अर्थात् विशाल क्षात्रबल और रथन्तर साम अर्थात् ब्राह्मणगण ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ, द्वारा (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ।

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म ऽएकादश च म ऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्च-

दश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म ऽएकविंशतिश्च मऽएकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च म ऽएकत्रिंशच्च म ऽएकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

विषमाङ्कगणितविद् आत्मा (१) संकृतिः । (२) विराट संकृतिः । गान्धारः ॥

भा०—(एका च) एक और (तिस्रः च तिस्रः च) तीन और तीन, और (पञ्च च पञ्च च) पांच और पांच और (सप्त च सप्त च) सात और सात और (नव च नव च) नौ और नौ और (एकादश च एकादश च) ग्यारह और ग्यारह (त्रयोदश च त्रयोदश च) तेरह और तेरह, (पञ्चदश च पञ्चदश च) पन्द्रह और पन्द्रह (सप्तदश च सप्तदश च) सत्रह और सत्रह (नवदश च नवदश च) उन्नीस और उन्नीस (एकविंशतिः च एकविंशतिः च) इक्कीस और इक्कीस (त्रयोविंशतिः च त्रयोविंशतिः च) तेईस और तेईस (पञ्चविंशतिः च) पच्चीस और पच्चीस (सप्तविंशतिः च सप्तविंशतिः च) सत्ताईस और सत्ताईस (नवविंशतिः च नवविंशतिः च) उनतीस और उनतीस (एकत्रिंशत् च एकत्रिंशत् च) इकतीस और इकतीस और (त्रयः त्रिंशत् च) तेतीस इस क्रम से (मे) मेरी सेनाएं व्यूह बना कर (यज्ञेन) परस्पर के मेल और दान, अर्थात् ऋण, घटाने द्वारा (कल्पन्ताम्) हों ।

१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५, २७, २९, ३१, ३३ ये अयुग्म स्तोम या अयुग्म राशि हैं । इन-इन संख्या में सेनाओं को चला कर उत्तम राष्ट्र को प्राप्त होते हैं । व्यूह में ओर छोर के छोड़ने से दो-दो की क्रमशः वृद्धि और न्यूनता होती है ।

१		१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
१ २ ३		१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
१ २ ३ ४ ५	अथवा	१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७		१ २ ३ ४ ५
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९		१ २ ३
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११		१

गणित में इसी प्रकार दो-दो के जोड़ने वा परस्पर गुणन से संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि और दो-दो के घटाने वा परस्पर के भाग द्वारा संख्या की न्यूनता करनी चाहिये। व्यूहों में भी एक एक, तीन तीन, पांच पांच, सात सात की पंक्ति बना कर चलने का उपदेश है।

इसी प्रकार १, ३, ५, ७ आदि क्रम से बढ़ती राज्य-शक्तियों का वर्णन है, वे भी बलवान् बनें।

चत॑स्रश्च मेऽष्टौ च॑ मेऽष्टौ च॑ मे द्वाद॑श च मे द्वाद॑श च मे षोड॑श च मे षोड॑श च मे विꣳशतिश्च॑ मे विꣳशतिश्च॑ मे चतु॑र्विꣳशतिश्च मे चतु॑र्विꣳशतिश्च मेऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मेऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मे द्वात्रि॑ꣳशच्च मे द्वात्रि॑ꣳशच्च मे षट्त्रि॑ꣳशच्च मे षट्त्रि॑ꣳशच्च मे चत्वारिꣳशच्च॑ मे चत्वारिꣳशच्च॑ मे चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मेऽष्टाच॑त्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

समाङ्कगणितविदात्मा । १ भुरिक् पंक्तिः । २ निचृद् आकृतिः । पंचमः ॥

भा०—(चतस्रः च) चार, (अष्टौ च अष्टौ च) आठ और आठ, (द्वादश च द्वादश च) बारह और बारह, (षोडश च षोडश च) सोलह और सोलह, (विंशतिः च विंशतिः च) बीस और बीस, (चतुर्विंशतिः च चतुर्विंशतिः च) चौबीस और चौबीस, (अष्टाविंशतिः च अष्टाविंशतिः

च) अट्ठाईस और अट्ठाईस (द्वात्रिंशत् च द्वात्रिंशत् च) बत्तीस और बत्तीस, (षट्त्रिंशत् च षट्त्रिंशत् च) छत्तीस और छत्तीस, (चत्वारिंशत् च चत्वारिंशत् च) चालिस और चालिस, (चतुश्चत्वारिंशत् च चतुश्चत्वारिंशत् च) चवालिस और चवालिस, (अष्टाचत्वारिंशत् च अष्टाचत्वारिंशत् च) अड़तालीस और अड़तालीस की सेनाओं के व्यूह (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे यज्ञ परस्पर मेल, संयोग और विभाग, गुणन और भाग द्वारा हों।

१+१=२, १+२=३, ३+२=५, ५+२=७ इत्यादि। ३+५=८, ५+७=१२, ७+९=१६, ९+११=२०, ११+१३=२४। इस प्रकार अयुग्म संख्याओं के योग से युग्म संख्याओं की निष्पत्ति होती है। इसी प्रकार परस्पर गुणन और भाग से भी वृद्धि और न्यूनता होती है।

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे उक्षा च मे वशा च मे ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वांश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

पशुपालनविद्याविद्वात्मा (२६) ब्राह्मी बृहती। मध्यमः। (२७) भुरिगार्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(त्र्यविः च त्र्यवी च) तीन-तीन भेड़ें, भेड़ा (दित्यवाट् च दित्यौही च) दो वर्ष के बैल और गाय, (पञ्चाविः च पञ्चावी च) पांच छमाही अढ़ाई वर्ष के बैल और गाय, (त्रिवत्सः च त्रिवत्सा च) तीन वर्ष के बैल और गाय, (तुर्यवाट् च तुर्यौही च) चार वर्ष के बैल और गाय और उनके पालक पुरुष (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) उक्त यज्ञ, प्रजापालन द्वारा मुझे प्राप्त हो।

(पष्ठवाट् च पष्ठौही च) पीठ से बोझा उठाने वाले बैल, हाथी, गधा, घोड़ा आदि नर और मादा जन्तु, (उक्षा च वशा च) वीर्यसेचन में समर्थ बैल और वीर्य धारण में समर्थ गौएं (ऋषभः च) बलवान् बैल, (वेहत् च) गर्भघातिनी गौ, (अनड्वान् च) शकट में लगने वाला बैल और (धेनुः च) दुधार गौ, ये सब प्रकार के पशु और उनसे प्राप्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ द्वारा (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों ।

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिन ऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा । [२] इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऊर्जे त्वा वृष्ट्यै त्वा प्रजानां त्वाधिपत्याय ॥ २८ ॥

संग्रामविद्याविदात्मा । भुरिगाकृतिः । पंचमः । (२) आर्ची बृहती । ऋषभः ॥

भा०—(वाजाय स्वाहा) वाज अर्थात् संग्राम की उत्तम शिक्षा हो । अन्न प्राप्ति कराने वाले चैत्र के समान प्रजा में अन्न की प्राप्ति, वृद्धि कराने वाले शासक की उत्तम कीर्त्ति हो । (प्रसवाय) ऐश्वर्य और प्रजोत्पादन के लिये (स्वाहा) उत्तम पुरुषार्थ, सत् शिक्षा हो । अथवा 'प्रसव' अर्थात् वैशाख के समान प्रचण्ड सूर्य से युक्त मास के समान अधिक तेजस्वी पुरुष का 'स्वाहा' उत्तम मान हो । (अपिजाय) उत्तम बुद्धि और ज्ञान में प्रसिद्ध होने के लिये (स्वाहा) उत्तम शिक्षा हो अथवा 'अपिजाय' 'ज्येष्ठ' जिस प्रकार जल की अभिलाषा अधिक उत्पन्न करता है है उसी प्रकार ज्ञान में लोगों की अधिक प्रवृत्ति कराने वाले पुरुष का उत्तम यश हो । (क्रतवे स्वाहा) उत्तम विज्ञान और कर्म की उत्तम शिक्षा और अभ्यास हो । 'क्रतु' योगादि से युक्त आषाढ़ मास के समान उत्तम कर्म और ज्ञान में प्रवृत्त करने वाले पुरुष का उत्तम यश हो ।

(वसवे स्वाहा) वसु, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये उत्तम धन प्राप्त करने की शिक्षा हो। 'वसु' अर्थात् 'श्रावण' मास के समान प्राणियों को अन्न धन देकर बसाने वाले राजा का उत्तम यश हो। (अहर्पतये स्वाहा) दिनों के पालक, कालवित् पुरुष बनने की उत्तम शिक्षा हो। अथवा 'अहः-पति' दिन के स्वामी सूर्य के समान तापकारी, 'भाद्रपद' के समान शत्रुओं को संतापक वा दिन पति सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का उत्तम आदर हो। (अह्ने मुग्धाय स्वाहा) मेघ या कुहरे से आवृत दिन के समान अज्ञान-मोह से घिरे ज्ञानी पुरुष को उत्तम शिक्षा हो। मेघावृत 'आश्विन' मास के समान रजोविलास में अचेत हुए पुरुष को (सु-आहा) उत्तम शिक्षा हो। (मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा) मोह में प्राप्त विनष्ट होने वाले पुरुष को भी उत्तम शिक्षा हो। 'कार्त्तिक' मास के समान शीघ्र नाशवान् पदार्थों वा आचरणों में लिप्त पुरुष को उत्तम शिक्षा हो। (विनंशिने आन्त्यायनाय स्वाहा) विविध प्रकार से विनाश को प्राप्त होने वाले या राष्ट्र को विनाश करने पर तुले हुए 'आन्त्यायन' अर्थात् अन्तिम, चरम, नीचतम कोटि तक पहुँचे हुए राजा को भी उत्तम शिक्षा हो। 'मार्गशीर्ष' मास के समान हिम शीत द्वारा सबके विनाशक और सबके अन्त में स्वयं शेष रह जाने वाले सर्व शत्रुसंहारक पुरुष का उत्तम यश हो। (आन्त्याय भौवनाय स्वाहा) सबसे अन्त में होने वाले, सर्वोच्च, परम भुवनों में व्यापक लोकपति को सब भुवनों के पालन के ज्ञानों का उपदेश हो। भौवन अर्थात् जाठराग्नि को दीपन करके पुष्टिकारी प्राणियों के पोषक 'पौष' के समान प्रजाओं को पुष्ट करने वाले पुरुष का उत्तम यश हो। (भुवनस्य पतये स्वाहा) 'भुवन' समस्त प्राणियों के पालक को उत्तम शिक्षा हो। माघ के समान सबके पालक पुरुष का उत्तम आदर हो। (अधिपतये स्वाहा) सबके अधिपति को भी उसके पद के योग्य शिक्षा हो। इसी प्रकार 'फाल्गुन' मास के समान अन्नादि द्वारा सुखकर पुरुष को उत्तम मान हो। (प्रजापतये स्वाहा) प्रजा के पालक पुरुष

को राजधर्म की उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। द्वादश मासों के ऊपर संवत्सर रूप से विराजमान, संवत्सर के समान समस्त प्रजाओं को अपने उक्त बारहों रूपों में प्रजा के पालक राजा का उत्तम यश हो।

(इयं ते राट्) हे राजन्! यह तेरी राजशक्ति है। तू (मित्राय) अपने मित्र राजाओं को भी (यन्ता असि) वश करने वाला है, इससे तू (यमनः) 'यमन', सर्वनियामक है। (ऊर्जे त्वा) परम अन्न आदि पोषक पदार्थों की रक्षा के लिये, (वृष्ट्यै त्वा) प्रजा पर सुखों की वर्षा के लिये और (प्रजानां आधिपत्याय) प्रजाओं पर आधिपत्य या राज्य करने के लिये (त्वा) तुझे स्थापित करता हूँ।

विशेष विवरण देखो यजुर्वेद अ० ९। मं० २॥ सूर्य के १२ मास सूर्य के १२ रूप हैं, उसी प्रकार तेजस्वी राजा के ये १२ नाम हैं।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳫं श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳫं स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। [2]स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च। स्वर्देवा ऽअगन्मामृता ऽअभूम प्रजापतेः प्रजा ऽअभूम वेट् स्वाहा ॥२९॥

यज्ञानुष्ठानात्मा। (१) स्वराड् विकृतिः। पंचमः। (२) ब्राह्मी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(आयुः) आयु, दीर्घ जीवन, (चक्षुः) आंख, दर्शनशक्ति (श्रोत्रं) कान, श्रवणशक्ति, (वाग) वाणी, भाषणशक्ति, (मनः) मन, मननशक्ति, (आत्मा) आत्मा; देह में व्यापक धारणशक्ति, (ब्रह्मा) चारों वेदों का विद्वान् अथवा देह में अन्तःकरण चतुष्टय, (ज्योतिः) प्रकाश, स्वयंप्रकाश परमात्मा और विद्याप्रकाश, न्याय, (स्वः) परम सुख, आनन्दमय मोक्ष, (पृष्ठं) ज्ञान करने की इच्छा, पालनशक्ति, सर्वाश्रयता अथवा सर्वोपरि मोक्ष, (यज्ञः) उपास्य देव और उपासनादि धर्माचरण, (स्तोमः चः) स्तुति के मन्त्र, अथर्ववेद (यजुः च) यजु-

र्वेद (ऋक् च) ऋग्वेद, (साम च) सामवेद (बृहत् च रथन्तरं च) बृहत् और रथन्तर नामक साम ये समस्त (यज्ञेन) योग-साधन, सत्संग धर्मानुष्ठान, देवोपासना, विद्वत्समागम आदि से (कल्पताम्) सिद्ध हों। हम (देवाः) देव, विजयी, ज्ञानी होकर (स्वः) परम मोक्ष एवं सुखमय राज्य को (अगन्म) प्राप्त हों। हम (अमृताः) अमृत, मोक्ष सुख को प्राप्त एवं दीर्घायु (अभूम) हों। (प्रजापतेः प्रजाः अभूम) प्रजा के पालक परमेश्वर और उत्तम राजा की प्रजा बन कर रहें। (वेट्) उत्तम सत्कर्मानुष्ठान द्वारा (स्वाहा) उत्तम यश को प्राप्त करें। देखो यजुर्वेद अ० ९। २१, २२ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥ ३० ॥

व्याख्या देखो अ० ९। म० ५ ॥

विश्वे ऽअद्य मरुतो विश्व ऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा ऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो ऽअस्मे ३१

लुशो धानाक ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अद्य) आज (विश्वे मरुतः) समस्त विद्वान्, प्रजाजन और सैनिक पुरुष (आ गमन्तु) इस राष्ट्र में प्राप्त हों, (विश्वे) और सभी (ऊती) अपनी रक्षा और सामर्थ्य सहित आवें। (विश्वे अग्नयः) समस्त ज्ञानी, अग्रणी पुरुष (समिद्धाः) प्रदीप्त, तेजस्वी (भवन्तु) रहें। (विश्वे देवाः) समस्त दानशील, ज्ञानी, वीर पुरुष (अवसा) ज्ञान और पालन सामर्थ्य से (आ गमन्तु) प्राप्त हों और (विश्वम्) समस्त (द्रविणम्) ऐश्वर्य और (वाजः) अन्न (अस्मे) हमारे उपभोग के लिये (अस्तु) हो।

३०—अथातः वाज प्रसवीयम् सप्तर्चम्।

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥ ३२ ॥

वाजो अन्न तद्वान् विद्वान् देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(नः) हमारा (वाजः) अन्न, शास्त्रज्ञान, ऐश्वर्य और पराक्रम (सप्त) सातों (प्रदिशः) प्रदेशों अर्थात् लोकों और (परावतः) दूर-दूर तक फैली (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओं को प्राप्त हो। (नः वाजः) हमारा ज्ञान, ऐश्वर्य और पराक्रम (धनसातौ) धन, ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्त करने में (इह) इस राष्ट्र में भी (विश्वैः देवैः सह) समस्त विद्वानों, शासक विजयी पुरुषों द्वारा (अवतु) हमारी रक्षा करे।

वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽऋतुभिः कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा ऽआशा वाजपतिर्जयेयम् ३३

वाजपतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(वाजः) अन्नादि, ऐश्वर्य, पराक्रम (नः) हमारी (अद्य) अब (दानं) दानशक्ति को (प्रसुवाति) उत्पन्न करे। (वाजः) वह ऐश्वर्य, पराक्रम ही (देवान्) विद्वान्, विजयी पुरुषों को (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार (कल्पयाति) हृष्ट पुष्ट बनावे। (वाजः) अन्न आदि ऐश्वर्य ही (मा) मुझको (सर्ववीरं) समस्त वीर पुरुषों, पुत्रों और प्राणों से युक्त (जजान) करे। मैं (वाजपतिः) उस अन्न और बल का पालक होकर ही (विश्वाः आशाः जयेयम्) समस्त कामनाओं और दिशाओं को विजय करूं।

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति।
वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा ऽआशा वाजपतिर्भवेयम्। ३४

वाजपतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(वाजः) ऐश्वर्य, पराक्रम (नः) हमारे (पुरस्तात्)

आगे, (उत मध्यतः) और बीच में भी रहे। (वाजः) वह ऐश्वर्य, पराक्रम ही (देवान्) देव, विद्वानों, विजयी दानशील पुरुषों को (हविषा) अन्न आदि के परस्पर आदान-प्रतिदान से (वर्धयाति) बढ़ाता है। (वाजः हि) वह ऐश्वर्य ही (मा सर्ववीरं चकार) मुझे सब वीर सैनिकों, पुत्रों और प्राणों से युक्त करता है। मैं (वाजपतिः) ऐश्वर्य का स्वामी होकर (सर्वाः आशाः) सब अभिलाषाओं, दिशाओं पर (भवेयम्) प्रभु हो जाऊं।

सं मा॑ सृजामि॒ पय॑सा पृथि॒व्याः सं मा॑ सृजाम्य॒द्भिरोष॑धीभिः।
सो॒ऽहं वाज॑ꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

रसविद्याविद् विद्वान् अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(अग्ने) ज्ञानवन्! अग्रणी! विद्वान्! राजन्! मैं (मा) अपने को (पृथिव्याः पयसा) पृथिवी के पुष्टिकारक रस से (सं सृजामि) युक्त करूं और (मा) अपने को (ओषधीभिः) ओषधियों द्वारा भी (सं सृजामि) युक्त करूं। (सः अहं) वह मैं (वाजं) नाना अन्न, ऐश्वर्य का (सनेयम्) सेवन करूं।

पयः॑ पृथि॒व्यां पय॒ऽओष॑धीषु॒ पयो॑ दि॒व्य॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑ धाः।
पय॑स्वतीः प्र॒दिश॑ः सन्तु॒ मह्य॑म् ॥ ३६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। अनुष्टुप्।

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! सूर्य! तेजस्विन्! परमेश्वर! विद्वन्! तू (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधीषु) ओषधियों में (दिवि) द्यौलोक, आकाश या सूर्यप्रकाश में और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष, वायु या जल में (पयः) पुष्टिकारक रस और जल को (धाः) स्थापित कर। (प्रदिशः) समस्त दिशाएं (मह्यम्) मेरे लिये (पयस्वतीः) पुष्टिकारक रस से पूर्ण (सन्तु) हों।

विद्वान् पृथिवी ओषधि, सूर्य और वायु में से रस या सार बल को ग्रहण करें। राजा, प्रजाजन समस्त दिशाओं से अन्न आदि ग्रहण करें।

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥३७॥

सम्राड राजा । आर्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) शासन और ऐश्वर्य में और (अश्विनोः बाहुभ्याम्) सूर्य, चन्द्रमा दोनों के प्रताप, शीतलता और प्रचण्डता, सौम्य और उग्र रूप (बाहुभ्याम्) शक्तियों से, (पूष्णः) पुष्टिकारक अन्न या पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) वशीकरण और आकर्षण करने वाले सामर्थ्यों से (सरस्वत्यै वाचः) सरस्वती, ज्ञानरूप वाणी या विद्वत्सभा के उपदेश या व्यवस्था बल से (यन्तुः) नियन्ता (अग्नेः) शत्रुसंतापक सेनापति या राजा के (यन्त्रेण) नियामक बल से और (साम्राज्येन) साम्राज्य के अधिकार से तुझे (अभिषिंचामि) अभिषिक्त करता हूँ, सर्वप्रेरक पद देता हूँ । राजा सूर्य के समान प्रचण्ड, चन्द्र के समान शीतल, निग्रह और अनुग्रह के सामर्थ्य वाला हो । वह पूषा अर्थात् अन्न या पृथिवी के समान दानशील सरस्वती, वेदवाणी या व्यवस्था सभावत् आज्ञा देने का अधिकारी और नियामक सम्राट् हो ।

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥

ऋतुविद्याविद् विद्वान् । विराट त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ऋताषाट्) ऋत, सत्य व्यवहार का सहन करने वाला, असत्य को न सहनेवाला या ऋत, सत्य बल पर विजय करने वाला, (ऋतधामा) सत्य रूप तेज वाला, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (गन्धर्वः) जो गौ, पृथिवी, वाणी और इन्द्रियों को वश करने में समर्थ है। वह (अग्निः) 'अग्नि' कहे जाने योग्य है। (तस्य) उसके (ओष-

३८—अथातो द्वादश राष्ट्रभृतः ॥

धयः) तेज को धारण करने वाली ओषधियां (अप्सरसः) जल में उतारने वाली या जल से बढ़ने वाली होने से 'अप्सरस्' हैं। वे (मुदः नाम) समस्त प्राणियों को हर्ष देने से 'मुद' नाम वाली हैं। उसी प्रकार राजा के (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म के मार्ग में आगे बढ़ने वाली प्रजाएं भी (मुदः नाम) सब प्रजाओं को मोद देने को और स्वयं भी मोद करने वाली होने से 'मुद' नाम वाली हैं। (सः) वह तेजस्वी पुरुष (नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्राह्मण कुलों और (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुलों की (पातु) रक्षा करे। (तस्मै) उसे (वाट्) राज्य-भार वहन करने वाला (सु-आहा) प्रशंसनीय यश है और (ताभ्यः) उसकी उन ज्ञान कर्म में विचरने वाली विद्वान्, शक्तिशाली प्रजाओं को भी (सु-आहा) उत्तम यश प्राप्त हो।

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसऽआयुवो नाम। स नं इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

सूर्यो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य (संहितः) समस्त पृथिवी, जल आदि भूतों में किरणों से व्याप्त होकर उनको मिलाता तथा दिन और रात को सन्ध्या द्वारा मिलाता और (विश्वसामा) विश्व में समान रूप से व्यापक है, वह (गन्धर्वः) गौ, किरणों को धारण करता और पृथ्वी का पोषण करता है। उसी प्रकार विद्वान् राजा (संहितः) समस्त विद्वान् योग्य पुरुषों और शासकों और राज्यांगों को परस्पर मिलाता (विश्वसामा) राज्य में सबके प्रति समान भाव से रहता है, वह (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने में समर्थ 'सूर्य' कहाने योग्य है (तस्य) उसकी (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म में कुशल प्रजाएं, जल के परमाणुओं में व्यापक (मरीचयः) सूर्य की किरणों के समान स्वयं अज्ञान या शत्रु-

बल के नाश करने वाली सेनाएं (आयुवः नाम) परस्पर संगत, सुव्यवस्थित होकर रहने और युद्ध में जाने से 'आयु' नाम से कहाती हैं। (सः नः इदं०) इत्यादि पूर्ववत्।

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

चन्द्रमा देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—(चन्द्रमाः) चन्द्र (सुषुम्णः) उत्तम सुखप्रद, अथवा सुखस्वप्न या निद्रा देने वाला (सूर्यरश्मिः) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला और (गन्धर्वः) रश्मियों को धारण करने से 'गन्धर्व' है। (तस्य) उसके (नक्षत्राणि) नक्षत्रगण (अप्सरसः) स्त्रियों के समान भोग्य, एवं (भेकुरयः) भा, दीप्ति करने से 'भेकुरि' कहाती हैं उसी प्रकार आह्लादकारी राजा भी चन्द्र के समान (सुषुम्णः) प्रजाओं को उत्तम सुख देने वाला (सूर्यरश्मिः) सूर्य के समान तेजस्वी, (गन्धर्वः) पृथ्वी का रक्षक है। (तस्य) उसके (अप्सरसः) ज्ञान, कर्म और प्रजाओं में विचरण करने वाली उत्तम प्रजाएं (नक्षत्राणि) कभी परास्त न होने वाली होने से 'नक्षत्र' कहाती हैं। वे ज्ञान दीप्ति करने वाली होने से 'भेकुरि' कहाती हैं। (स नः इदं० इत्यादि) पूर्ववत्।

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो ऽअप्सरस ऊर्जो नाम। स न ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

वातो देवता। ब्राह्मी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(वातः) वायु, (इषिरः) तीव्र वेगवान्, (विश्वव्यचाः) समस्त विश्व में व्यापक (गन्धर्वः) गो नाम पृथिवी, मध्यम वाणी और विद्युत् को अन्तरिक्ष में धारण पोषण करता है, (तस्य) उसके आश्रय पर (आपः) जल ही (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में गतिमान् होकर मेघरूप में विचरते हैं। वे अन्न द्वारा विश्व के बलकारक होने से

(ऊर्जः नाम) 'ऊर्ज' नाम से हैं। उसी प्रकार (वातः) वायु के समान प्रबल वेग से जाने वाला अथवा प्रजाओं के प्राणों के तुल्य राजा (इषिरः) सबका प्रेरक (विश्वव्यचाः) राष्ट्र में प्राण के समान व्यापक, सर्वप्रिय, (गन्धर्वः) पृथ्वी को धारण पोषण करने में समर्थ है। (तस्य) उसके (आपः) आप्त जन ही (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म में निष्ठ, प्रजाएं (उर्जः नाम) राष्ट्र में बलकारक होने से 'ऊर्ज' कहे जाते हैं। (सः नः०) इत्यादि पूर्ववत्।

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽअप्सरसस्तावा नाम।
स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

यज्ञो देवता। स्वराड आर्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(यज्ञ) यज्ञ, प्रजापति (भुज्युः) सबका पालक रक्षक, भोग्य फल का देने वाला, (सुपर्णः) उत्तम पालन सामर्थ्यों से युक्त, (गन्धर्वः) वेद वाणी को धारण करने से 'गंधर्व' है। (तस्य) उसकी (अप्सरसः) प्रजाओं या कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त होने वाली (दक्षिणाः) कार्य में दक्षता की उत्पादक दक्षिणायें, (स्तावाः) सुपात्र में दी जाकर यज्ञकर्त्ता और यज्ञ दोनों की स्तुति के कारण होने से 'स्तावा' हैं। उसी प्रकार (यज्ञः) राष्ट्रपालक, राजा (भुज्युः) प्रजा का पालक और राष्ट्र का भोक्ता, (सुपर्णः) आदित्य के समान उत्तम पालन सामर्थ्यों, उत्तम रथवाहनों व विमानों से सम्पन्न, (यज्ञः) सबका संगतिकारक (गंधर्वः) पृथ्वी का धारण पोषक है। (तस्य) उसकी (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म में व्याप्त (दक्षिणाः) राष्ट्र कार्य में बल उत्पन्न करने वाली प्रजाएं (स्तावाः नाम) स्तुति योग्य होने से 'स्तावा' हैं। (स० नः इदं०)।

'भुज्यु' के विमानों का वर्णन देखो, ऋग्वेद मं० १। सू०। ११६ ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयो नाम। स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ४३

विश्वकर्मा मनो देवता । विराडार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—(मनः) ज्ञानवान् (विश्वकर्मा) समस्त विश्व का कर्त्ता, (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (विश्वकर्मा) राज्य के सब हितकर कर्मों को करनेहारा (मनः) शरीर में मन के समान सब का ज्ञाता, मननशील, (गन्धर्वः) पृथ्वी का पोषक है। (तस्य) उसके (ऋक्-सामानि अप्सरसः एष्टयः नाम) ज्ञानानुकूल या स्तुत्य 'साम' शत्रुनाशक उपाय ही सब इष्ट कार्यों की साधक एवं प्रजा की प्रेरक आज्ञाएं 'एष्टि' कहाती हैं। (सः न० इत्यादि) पूर्ववत्।

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त ऽउपरि गृहा यस्य वेह।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (भुवनस्य पते) समस्त भुवनों प्राणियों और लोकों के पालक ! स्वामिन् ! हे (प्रजापते) प्रजा के पालक ! (यस्य) जिस (ते) तेरे (उपरि) आश्रय पर (गृहाः) उत्तम ज्ञानों, तत्वों और पदार्थों का संग्रह करने वाले, गृह, गृहस्थ पुरुष (वा) और (यस्य) जिसके ऊपर (इह) इस राष्ट्र और लोक के अन्य प्राणी भी आश्रित हैं वह तू (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) ब्रह्म, वेद और ईश्वर के जानने वाले और (अस्मै क्षत्राय) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाले इस क्षत्रियवर्ग को (स्वाहा) उत्तम रीति से (महि शर्म) बड़ा सुख और शान्ति (यच्छ) प्रदान कर।

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

प्रजापतिर्देवता । आर्षिः । मध्यमः ॥

भा०—हे (प्रजापते) प्रजा के पालक ! राजन् तू (समुद्रः असि)

समुद्र के समान गम्भीर, रत्नैश्वर्यों का आकर, ऐश्वर्यों का उत्पादक है। तू (नभस्वान्) जल से युक्त आकाश में व्यापक वायु के समान सब जलों वा प्राणों का आधार, वायु के समान वेगवान् है। तू (आर्द्रदानुः) जलप्रद मेघ के समान आर्द्र भाव से प्रजा पर ऐश्वर्यों का त्याग करने हारा, दयालु है। तू (शंभूः) जल के समान शान्तिदायक, (मयोभूः) तू परमेश्वर के समान आनन्द जनक है। तू (मा) मुझ प्रजाजन को (अभि वाहि) साक्षात् प्राप्त हो। तू (मारुतः असि) प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा के समान वायु के समान तीव्रगामी शत्रुमारक सेनापतियों, का भी स्वामी है। तू (मरुतां गणः) प्राणों के गण के समान स्वयं विद्वानों का आश्रय, उनमें मुख्यरूप से गणना योग्य है। तू (अवस्युः) प्रजा की रक्षा करने का इच्छुक और (दुवस्वान्) उत्तम सेवा करने योग्य है। तू (शंभूः) शांति का जनक (मयोभूः) सुखों का उत्पादक होकर (मा अभि वाहि) मुझे प्राप्त हो (स्वाहा) हमारी यह प्रार्थना स्वीकार हो। परमेश्वर के विषय में विशेषण स्पष्ट हैं।

यास्ते॑ऽअग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑।
ताभि॑र्नोऽअ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ ४६ ॥

अग्निः । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! (याः ते) जो तेरी (रुचः) अग्नि की दीप्तियों के समान प्रीतियां (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष में रहती हुई (रश्मिभिः) किरणों के तुल्य नियम व्यवस्थाओं से (दिवम्) आकाशवत् राजसभा को (आतन्वन्ति) व्यापती हैं (ताभिः सर्वाभिः) उन सब प्रीतियों से (अद्य) आज के समान सदा ही (नः) हमें (जनाय रुचे) सर्वसाधारण प्रजाजन के प्रीति का पात्र (कृधि) कर। जैसे—परमेश्वर की सूर्यस्थ दीप्तियां आकाशस्थ ग्रह आदि को प्रकाशित करती हैं उसी प्रकार राजा के तेज व प्रेम से हम अन्य विद्वान्, राजगण भी तेजस्वी और लोकप्रिय हों। शत० ९।४।२।१४॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः।
इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥
बृहस्पतिः। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजीगीषु पुरुषो ! (वः) तुम्हारी (याः रुचः) जो प्रीतियां, दीप्तियां (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी राजा में, (गोषु) गौ आदि पशुओं और (अश्वेषु) अश्व आदि युद्धोपयोगी पशुओं में हैं, हे (इन्द्राग्नी बृहस्पते) इन्द्र ! अग्ने ! बृहस्पते ! सेनापते ! राजन् ! वेदज्ञ विद्वन् ! (ताभिः सर्वाभिः) उन सब प्रीतियों तेजों से (नः) हममें (रुचं धत्त) प्रेम और तेज का स्थापन करो। अर्थात् हम भी गौ आदि पशुओं का पालन करें और राजा, सेनापति आदि के प्रेमपात्र हों। व्याख्या देखो अ० १३। २२। २३ ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचथं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ४८ ॥
बृहस्पतिः। भुरिग् आर्षी अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(नः ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणों में (रुचा) अपने व्यापक प्रेम द्वारा (रुचं धेहि) परस्पर प्रेम और तेज प्रदान कर। (नः राजसु) हमारे राजगणों में (रुचं धेहि) प्रेम, तेज प्रदान कर। (विश्येषु) प्रजाओं में विद्यमान, वैश्यजनों में और (शूद्रेषु) शूद्रों में भी (रुचं धेहि) प्रेम प्रदान कर और (मयि) मेरे में भी तू अपने विशाल प्रेम द्वारा (रुचं धेहि) प्रेम प्रदान कर। अर्थात् राजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब में प्रेम पैदा करे। आपस में घृणा और द्वेष के बीज न बोवे और (मयि) मेरे निमित्त और प्रजाजनों में (रुचा रुचं) प्रेम द्वारा सब में प्रेम (धेहि) पैदा करे। अर्थात् प्रत्येक के प्रति सबका प्रेम हो। हर एक हर एक देशवासियों का प्रिय हो उसी प्रकार परमेश्वर भी हम में प्रेम पैदा करे।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न ऽआयुः प्रमोषीः ॥४९॥

शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य! सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद द्वारा (त्वा वन्दमानः) तेरी स्तुति करता हुआ मैं (त्वा यामि) तुझ से याचना करता हूँ, तुझे प्राप्त होता हूँ । (यजमानः) उपासना करने हारा (हविर्भिः) यज्ञ-योग्य हवियों और स्तुतियों से भी (तत्) उसी परम प्रेम की (आशास्ते) कामना करता है कि, हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति किये जाने हारे ! बहुतों को ज्ञान उपदेश देने हारे ! तू (अहेड-मानः) कभी अनादर न किया जाकर, स्वयं सौम्य भाव से (इह) यहां (बोधि) ज्ञान प्रदान कर और (नः आयुः) हमारे जीवन (मा प्र मोषीः) मत अपहरण कर । शत० ९ । ४ । २ । १७ ॥

'वरुण' स्वयंवृत, श्रेष्ठ राजा है । वह बहुतों के शिक्षक अति ज्ञानवान् 'ब्रह्म' अन्नादि या महान् राष्ट्ररूप ऐश्वर्य सहित हों, उसको अभिवादन करता हुआ प्रजाजन स्तुति-वचनों और उपादेय भेंटों सहित उसे प्राप्त हों, उससे प्रेम और रक्षा की याचना करे । वह प्रजा के प्रति अनादर और क्रोध न करे । वह अपना कर्त्तव्य समझे और प्रजाओं के जीवनों का अपहरण न करे, व्यर्थ प्रजा को दण्डित न करे ।

स्वुर्ण घर्मः स्वाहा स्वुर्णार्कः स्वाहा स्वुर्ण शुक्रः स्वाहा
स्वुर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वुर्ण सूर्यः स्वाहा ॥ ५० ॥

सूर्योऽग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(स्वः न) सूर्य के समान (घर्मः) तेजस्वी पुरुष शत्रुओं का तापदायक होकर (स्वाहा) उत्तम यश को प्राप्त हो । (स्वः न) सूर्य के समान (अर्कः) अर्चनीय, स्तुत्य पुरुष (स्वाहा) उत्तम पद को प्राप्त हो । (स्वः न ज्योतिः) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त

पुरुष (स्वाहा) उत्तम पद को प्राप्त हो ! (स्वः न सूर्यः) सुखमय सूर्य के समान सबका प्रेरक होकर राजा (स्वाहा) उच्च पद और उत्तम यश को प्राप्त हो । शत० ९ । ४ । २ । १९-२३ ॥

अग्निरर्कः असौ अदित्योऽश्वमेघः । तौ सृष्टौ नाना इवास्तां तौ देवा आहुतिभिः समतन्वन्त्समदधुः ॥ शत० ९ । ४ । ३ । १८ ॥ असौ वा आदित्यो घर्मः । अमुं तदादित्यं अग्नौ प्रतिष्ठापयति । शत० ९।४।३।१९ ॥

अर्थात् अग्रणी नेता में सूर्य के गुणों वाला बतलाया है ।

भौतिक पक्ष में—(घर्मः) ताप (अर्कः) अग्नि (शुक्रः) वायु (ज्योतिः) विद्युत् (सूर्यः) ये सब (स्वाहा) उत्तम विज्ञानपूर्वक क्रिया और प्रयोगों द्वारा (स्वः) सुखजनक हों ।

अ॒ग्निं यु॑नज्मि॒ शव॑सा घृ॒तेन॑ दि॒व्यꣳ सु॑प॒र्णं वय॑सा बृ॒हन्त॑म् । तेन॑ व॒यं ग॑मेम ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टप॒ꣳ स्वो॒ रुहा॑णा॒ऽ अधि॒ नाक॑मुत्त॒मम् ॥ ५१ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(घृतेन) घृत द्वारा जैसे (अग्निम्) अग्नि को यज्ञ में आधान किया जाता है उसी प्रकार (शवसा) बल पराक्रम के द्वारा (वयसा) व्यापक सामर्थ्य और ज्ञान से (बृहन्तम्) महान् (दिव्यम्) शुद्ध गुणों में उत्कृष्ट, (सुपर्णम्) उत्तम पालन करने वाले साधनों से सम्पन्न, (अग्निम्) ज्ञानवान् एवं शत्रु संतापक अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी पुरुष को (युनज्मि) राष्ट्र के उच्च पद पर नियुक्त करता हूँ । (तेन) उसके द्वारा स्वयं (वयम्) हम लोग (उत्तमम्) उत्तम, सर्वोत्कृष्ट (नाकम्) दुःखों से रहित (स्वः) सुखों से समृद्ध राष्ट्र को (अधिरुहाणाः) प्राप्त होते हुए (ब्रध्नस्य) महान्, सर्वाश्रय राष्ट्र के (विष्टपम्) भीतर प्रविष्ट, लोकों के पालक या पीड़ा, ताप आदि दुःखों से रहित स्थान को (गमेम) प्राप्त होवें । शत० ९ । ४ । ४ । ३ ॥

परमात्मा दिव्य तेजोमय, उत्तम ज्ञानवान्, सामर्थ्य से महान्, ज्ञानमय है। परमेश्वर योगाभ्यास से प्राप्य है उसी सुखमय उत्तम स्वर्ग-मय लोक को प्राप्त होकर आदित्य के समान तेजोमय ब्रह्म के क्लेश रहित स्वरूप को प्राप्त करें।

भौतिक पक्ष में—शिल्पी चिकने पदार्थ घी, तैल जातीय पदार्थों के बल से इस अग्नि, विद्युत् आदि को विमान आदि में जोड़ता है जो उत्तम गमन साधन, चक्रों और पक्षों से युक्त आकाश में गमन करे।

इमौ ते॑ प॒क्षाव॒जरौ॑ पत॒त्रिणौ॒ याभ्या॒ꣳरक्षा॒ꣳस्य॑प॒हꣳस्य॑ग्ने। ताभ्यां॑ पतेम सु॒कृता॑मु लो॒कं यत्र॒ ऽऋष॑यो ज॒ग्मुः प्र॑थम॒जाः पु॑रा॒णाः ॥ ५२ ॥

अग्निर्देवता। विराड् आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! (इमौ ते) ये दोनों (अजरौ) कभी नाश न होने वाले (पतत्रिणौ पक्षौ) पक्षी या विमानयन्त्र के दो पक्षों के समान युद्ध में आगे बढ़ने वाले सेना के दो पहलू हैं। (याभ्याम्) जिनसे तू (रक्षांसि) विघ्न-बाधा करने वाले शत्रुओं को (अप हंसि) मार भगाता है (ताभ्याम्) उन दोनों के बल पर (सुकृताम्) उत्तम आचारवान् पुण्यात्मा पुरुषों के (लोकम्) लोक, स्थान को (पतेम) प्राप्त हों (यत्र) जहां (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न, ज्येष्ठ, (पुराणा ऋषयः) ऋषि, ज्ञानद्रष्टा लोग (जग्मुः) प्राप्त होते हैं। शत० ९। ४। ४। ४॥

अथवा—सभा में वाद-विवाद करने वाले दो पक्ष हैं। जिनसे (रक्षांसि) बाधक तर्कों का नाश किया जाता है। उन द्वारा ही उत्तम विद्वानों के सिद्धान्त तक हम पहुँचें। जिस पर पूर्व उत्पन्न पुरातन मन्त्रार्थद्रष्टा लोग पहुँचे हैं।

५२—०'पक्षा अजरौ' ० इति काण्व०॥

अध्यात्म में—कार्य कारण रूप या आत्मा परमात्मा रूप अजर, अविनाशी उच्च लोक में ले जाने वाले हैं। जिनके बल पर ज्ञानी पुरुष बाधक पाप दोषों को नष्ट करता है। उन दोनों के बल पर वह सत्पुरुषों के द्रष्टव्य परमानन्द को प्राप्त होता है जहां विद्वान् ऋषिगण पहुँचते हैं।

इन्दुर्दक्षः श्येन ऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः। महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽआ निषत्तो नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ५३ ॥

इन्दुर्देवता। आर्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(इन्दुः) चन्द्र के समान शीतल स्वभाव, ऐश्वर्यवान्, (श्येनः) बाज के समान पराक्रमी, (दक्षः) बलवान्, प्रजावान्, (शकुनः) शक्तिशाली, (हिरण्यपक्षः) सुवर्ण आदि हित और रमणीय पदार्थों को ग्रहण करने हारा, (ऋतावा) सत्य कर्म और आचरण वाला, धर्मशास्त्र का स्वामी (भुरण्युः) प्रजा का पालक राजा (महान्) महान् होकर (सधस्थे) अपने अनुयायियों सहित एकत्र राज्यासन या सभाभवन में (ध्रुवः) ध्रुव, स्थिर होकर (आनिषत्तः) आदर से आसन पर विराजता है। हे राजन् ! (ते) तुझे (नमः अस्तु) नमस्कार हो। (मा) मुझ प्रजाजन को (मा हिंसीः) मत मार। शत० ९। ४। ४। ५ ॥

विमान पक्ष में—अन्तरिक्ष में वेग से जाने से 'इन्दु' उत्तमगति से 'श्येनः' शक्ति से चलने वाला होने से 'शकुन' है। उसके पक्ष सुन्दर धातु के बने होने से 'हिरण्यपक्ष' है।

दिवो मूर्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्। विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥ ५४ ॥

अग्निर्देवता। आर्षी उष्णिक्। ऋषभः।

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार (दिवः मूर्धा) सूर्य आकाश का

और तेजोमय पिण्डों या प्रकाश का (मूर्धा) उत्तमाङ्ग, शिर के समान सर्वोच्च है उसी प्रकार तू (दिवः) ज्ञानवान् पुरुषों की बनी राजसभा के (मूर्धा) मूर्धा, शिरोमणि, प्रधान, सर्वोच्च पद पर विराजमान (असि) है। तू (पृथिव्या नाभिः) पृथिवी के नाभि के समान समस्त पृथ्वी के राज्य का प्रबन्ध करने वाला राष्ट्र का मुख्य केन्द्र है। तू (अपाम् ऊर्ग्) जलों के उत्कृष्ट रस अन्न के समान (अपाम्) आप्त प्रजाजनों का (ऊर्क्) सर्वोत्तम बलरूप, पराक्रमी, सार रूप है। (ओषधीनाम्) वीर्यवती ओषधियों के बीच में सोम के समान तेजस्विनी क्षात्र सेनाओं में सेना-पति है। तू (विश्वायुः) वायु के समान समस्त प्रजाओं का जीवनप्रद, (शर्म) गृह के समान शरण और (सप्रथाः) समान रूप से सर्वत्र विख्यात, एवं सर्वत्र महान् है। (पथे) सबके मार्गस्वरूप, सबको उद्देश्य तक पहुँचाने वाले तुझे (नमः) नमस्कार हो। तुझे प्रजा के वश करने का बल अधिकार प्राप्त हो। परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है। शत० ९।४।४।१३॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त । दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! सभापते ! तू (विश्वस्य मूर्धन् अधि तिष्ठसि) सूर्य के समान समस्त राष्ट्र के शिर पर से विराजता है। तू (श्रितः) समस्त प्रजाओं द्वारा आश्रय किया है। (ते) तेरा (हृदयम्) हृदय (समुद्रे) अन्तरिक्ष के समान व्यापक सर्वोपकारक परमेश्वर में मग्न हो। (अप्सु आयुः) प्रजाओं के उपकार के कार्यों में तेरा जीवन व्यतीत हो। तू (अपः दत्त) ज्ञानों और उत्तम कर्मों का उपदेश कर। अथवा (अपः दत्त) राष्ट्र में मेघ के समान कृषि आदि के निमित्त जलों को प्रदान कर

और (उदधिं भिन्त) जिस प्रकार वायु जल धारण करने वाले मेघ का भेदन करता है उसी प्रकार तू भी जल के धारण करने वाले स्रोतों और नदी-प्रवाहों को काट काट कर राष्ट्र में नहरों के रूप में बहा। (दिवः) सूर्य से या आकाश से (पर्जन्यात्) मेघ से, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष-गत वायु से और (पृथिव्याः) पृथिवी से तथा (ततः) जहां कहीं भी जल हो वहां से प्रजा को जल प्राप्त करा और (नः) हमें (वृष्ट्या) मेघ के समान समस्त सुखों की वृष्टि से (अव) पालन कर। शत० ९। ४। ४। १२॥

इ॒ष्टो य॒ज्ञो भृगु॑भिराशी॒र्दा वसु॑भिः।
तस्य॑ न ऽइ॒ष्टस्य॑ प्री॒तस्य॒ द्रवि॑णे॒हाग॑मेः॥ ५६॥

गालव ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(यज्ञः इष्टः) जो प्रजापालन रूप यज्ञ एवं प्रजापति, राजा स्वयं (भृगुभिः) परिपक्व ज्ञान वाले विद्वानों और शत्रुओं को भून देने वाले वीरों द्वारा (इष्टः) सम्पादित किया जाता है वह (वसुभिः) वसु नामक विद्वानों, एवं प्रजा को बसाने हारे ऐश्वर्यवान् राजाओं द्वारा (आशीर्दाः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। हे (द्रविण) ऐश्वर्य ! ऐश्वर्य के उत्पादक साधक वर्ग ! (तस्य) उस (इष्टस्य) सुसम्पादित (प्रीतस्य) सबके प्रिय इस यज्ञ के द्वारा तू (नः) हमें (आगमेः) आ, प्राप्त हो।

इ॒ष्टो ऽअ॒ग्निराहु॑तः पिपर्त्तु न इ॒ष्टꣳह॒विः।
स्व॒गेदं दे॒वेभ्यो॒ नमः॑॥ ५७॥

गालव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—(आहुतः) आहुत द्वारा बढ़ाये गये (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, सत्कार प्राप्त विद्वान्, अग्रणी राजा (इष्टः) आदर सत्कार प्राप्त करके (नः) हमें (पिपर्त्तु) पालन करें और (इष्टम्) हमें

यथेष्ट (हविः) अन्नादि पदार्थों से (पिपर्त्तु) पूर्ण करे। (देवेभ्यः) विजिगीषु और ज्ञानप्रद, द्रष्टा, विद्वान् पुरुषों के निमित्त (इदम्) यह (नमः) अन्न आदि सत्कार (स्वगा) अपने हितैषी को प्राप्त हों, वह अनायास बिना मांगे आप से आप उन्हें प्राप्त हों।

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५८॥

५८—६५ विश्वकर्मा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो कर्त्तव्य कर्म और ज्ञान (आकूतात्) मन की प्रवृत्ति के भी पूर्व आत्मा के भीतर विद्यमान सत्य उत्साह है उससे, (हृदः) हृदय से, (मनसः) मनन करने वाले अन्तःकरण से (वा) और (चक्षु) आंख आदि बाह्य इन्द्रियों से (संभृतम्) सम्यक् प्रकार से प्राप्त हो और सञ्चित हो (तत्) उसके (अनु) अनुकूल ही (सुकृताम्) पुण्य आचारवान् सत्पुरुषों के (लोकम्) दर्शनयोग्य परम उस सुखधाम स्थान और स्थिति को (प्र इत) प्राप्त करो (यत्र) जहां (प्रथमजाः) हम में उत्कृष्ट पद को प्राप्त, (पुराणाः) हम से पहले उत्पन्न बुजुर्ग (ऋषयः) वेदार्थ के ज्ञाता और सत्य ज्ञान के द्रष्टा (जग्मुः) पहुँचे हैं। शत० ९।५।१।४५॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो ऽअत्र तꣳस्म जानीत परमे व्योमन् ॥५९॥

प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (सधस्थ) एकत्र बैठने के स्थान, सभाभवन, एवं सभा में विराजमान विद्वान्, शासक जनो ! (जातवेदाः) ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले समृद्ध पुरुष, (यम्) जिस (शेवधिम्) धन-कोश को (आवहात्) राष्ट्र से या व्यापारादि से प्राप्त करके राजकोष में जमा कराते हैं

५८—अतो अष्टौ वैश्वकर्मणानि।

(एतम्) उसको (ते) तेरे अधीन (परिददामि) प्रदान करता हूँ। (यज्ञपतिः) यज्ञरूप राष्ट्रव्यवस्था का पालन करने वाला राजा (वः अनु आगन्ता) आप लोगों के अनुकूल ही चलेगा। (अत्र) यहां, अब (तम्) उसको ही (परमे व्योमन्) परम, सर्वोत्कृष्ट विविध राष्ट्र कार्यों के रक्षक पद पर स्थित हुआ (जानीत स्म) जानो। शत० ९।५।१।४६॥

अध्यात्म में—जिस ज्ञान के खजाने को परमेश्वर या विद्वान् धारण करता है वह मैं जिज्ञासु जन को प्राप्त करता हूँ। यज्ञपतिः निष्ठ पुरुष तुमको परमात्मा के विषय में उचित उपदेश करे उसका ज्ञान करो।

एतं जा॑नाथ पर॒मे व्यो॑मन् देवा॑ः सधस्था वि॒द रू॒पम॑स्य।
यदा॒ गच्छा॒त्प॒थिभि॑र्दे॒व॒यानै॑रिष्टापू॒र्ते कृ॑णवाथा॒विर॑स्मै॥ ६०॥

प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् विजिगीषु, राजा लोगो! आप लोग (एतम्) इस अभिषिक्त सम्राट् को ही (परमे व्योमन्) परम, सर्वोच्च, अधिकार व रक्षक के अध्यक्ष पद पर (जानाथ) जानो। हे (सधस्थाः) साथ ही एक सभाभवन में विराजने वाले राजसभासद् पुरुषो! (अस्य) इस (रूपम्) सबके प्रति प्रिय लगने वाले स्वरूप, अधिकार और कर्त्तव्य को (विद) जानो और उसको जनाओ। (यद्) जब भी (देवयानैः) विद्वानों और राजाओं द्वारा गमन करने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आगच्छात्) यह प्राप्त हो, तब (इष्टापूर्ते) अपने इष्ट, यज्ञ, दान आदि परोपकार के कार्य और 'आपूर्त्त' कूप तड़ाग आदि प्रजा के हितकारी कार्यों को (अस्मै) इसके निमित्त (आविः कृणवाथ) प्रकट करो। शत० ९।५।१।४७॥

ईश्वर का ज्ञान योगाभ्यास आदि देवयान मार्गों से करें।

५९—'सधस्थं' इति उवटाभिमतः।

६०—०'कृणवथा'० इति काण्व०।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ६१
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

भा०—६१, ६२ दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो यजु अ० १५।५४,५५॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा।
ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(प्रस्तरेण) प्रस्तर, आसन (परिधिना) परिधि, (स्रुचा) स्रुक्, (वेद्या) वेदि, (बर्हिषा) बर्हि, कुश (ऋचा) ऋग् मन्त्र, इन पदार्थों से जैसे यज्ञ का क्रियाकाण्ड सम्पादित किया जाता है उसी प्रकार (प्रस्तरेण) प्रस्तर, उत्तम रीति से राष्ट्र को विस्तार करने में कुशल, व्यवस्थापक क्षत्रिय या सर्वोपरि प्रबल छत्रवत् आश्रयदाता क्षात्र बल, (परिधिना) परिधि अर्थात् राष्ट्र को सब ओर से धारण करने और रक्षा करने वाले वीर पुरुष, (स्रुचा) स्रुक् अर्थात् विद्वान् स्त्री-जन, गवादि पशु, वाणी अथवा प्रजाजन या तेजस्विनी सेना, (वेद्या) वेदि, पृथिवी (ऋचा) वाणी, ज्ञानमय व्यवस्था और धर्मशास्त्र, (बर्हिषा) और प्रजा-जन इन पदार्थों से (इमम्) इस (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत यज्ञ को (स्वः मन्तवे) सुख प्राप्त करने के लिये (देवेषु) विद्वान् विजयी, भूपति लोगों के आश्रय पर (नय) चला। शत० ९। ५। १। ४८॥

(१) 'प्रस्तरः'—यजमानो वै प्रस्तरः। श० २। ३। ४। ३। १९॥ क्षत्रं वै प्रस्तरः। श० १। २। ४। २०॥ (२) 'परिधिः'—दिशः परिधयः। ऐ० ५। ८। इमे लोकाः परिधयः। त० ३। ८। १८। ४॥ गुप्त्यै वा अभितः परिधयो भवन्ति। श० १। ३। ४।

२८ ॥ (३) 'स्रुक्'—वाग् वै स्रुक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥ योषा हि स्रुक् श० १ । ४ । ४ ॥ बाहू वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥ इमे वै लोका स्रुचः । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ (४) 'वेदिः'—पृथिवी वेदिः । ऐ० ५ । २८ ॥ (५) 'ऋक्'—वाग् इति ऋक् । तै० ३ । ४ । २३ । ४ ॥ (६) 'बर्हिः'—प्रजा वै बर्हिः । कौ० ५ । ५ ॥ क्षत्रं वै प्रस्तरो विश 'इतरं बर्हिः' श० १ । ३ । ४ । १० ॥

दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणाः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥

यज्ञो देवता । निचृद् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जो (दत्तम्) दिया जाय, (यत्) जो (परादाम्) दूसरों से लिया जाय, (यत् पूर्त्तम्) जो प्रजा के उपकार के लिये भी कूप, तड़ाग आदि बनवाये जावें, (याः च) और जो भी (दक्षिणाः) कर्म और परिश्रम के अनुरूप वेतन पुरस्कार आदि दिये जावें (तत्) उस सब को (वैश्वकर्मणः) विश्वकर्मा, राज्य के समस्त उत्तम कर्मों के प्रवर्त्तक राजा पद पर विराजमान (अग्निः) विद्वान् नेता ही (देवेषु) विद्वान् द्रष्टा पुरुषों के आधार पर (नः) हममें (स्वः) सुख की वृद्धि के लिये (दधत्) स्थापित या नियत करे । शत० ९ । ५ । १ । ४९ ॥

अर्थात् लेन-देन का व्यवहार, मकान, कूए बागीचे आदि और वेतन आदि सब राज व्यवस्था में रहें ।

यत्र धारा ऽअनपेता मधोर्घृतस्य च याः ।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

यज्ञः । विराड अनुष्टुप । गान्धारः ॥

भा०—(यत्र) जिस राज्य में से (मधोः) मधु के समान मधुर अन्न और जल की (घृतस्य च) और घी, दूध की (याः) जो (धाराः) धाराएं होती हैं वे कभी भी (अनपेताः) जुदी न हों । इसी प्रकार

(मधोः) शत्रु या दुष्ट पुरुषों के पीड़न, (घृतस्य च) घृत, तेज, पराक्रम की (धाराः) राज्य को धारण करने वाली शक्तियां (यत्र) जिस राष्ट्र से कभी (अनपेताः) लुप्त न हों। (तत्) ऐसे (स्वः) सुखकारी राज्य को (वैश्वकर्मणः अग्निः) राष्ट्र के सब उत्तम कर्मों के करने वाला प्रजापति, अग्रणी, विद्वान् शासक (नः देवेषु) हमारे विद्वानों के आधार पर (दधत्) स्थापित करे। शत० ९। ५। १। ५० ॥

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑ म ऽआ॒सन्।
अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानोऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम ॥६६॥

देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—मैं सम्राट् (जन्मना) जन्म अर्थात् स्वयं अपने आप प्रकट हुए स्वरूप से एवं स्वभाव से ही (अग्निः अस्मि) अग्नि के समान तीव्र, दुष्टों का संतापजनक और (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ पर अधिकारी रूप से विद्यमान, एवं ऐश्वर्यवान् और (अग्निः) समस्त पदार्थों को जानने हारा (अस्मि) होऊं। (घृतम्) जिस प्रकार अग्नि में घी पड़ते ही वह प्रकट होकर प्रदीप्त होता है उसी प्रकार (घृतम्) तेज ही (मे) मेरा (चक्षुः) चक्षु के समान स्वरूप को प्रकट रूप से दिखाने वाला हो। (अमृतम्) अन्न आदि हवि जिस प्रकार अग्नि के मुख में दिया जाता है उसी प्रकार (मे आसन्) मेरे मुख में, मेरे मुख्य पद के निमित्त (अमृतम्) अखण्ड अविनाशी, ऐश्वर्य या अमृत, अन्न आदि भोग्य पदार्थ हो। मैं (अर्कः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिधातुः) प्रज्ञा, शक्ति, उत्साह तीनों से राष्ट्र को धारण करने से समर्थ, (रजसः विमानः) लोकों का विविध रूपों से परिमाण और आदर करने वाला, (अजस्रः) शत्रुओं से न पराजित होने वाला (घर्मः) सूर्य के समान अति तेजस्वी, (हविः) राष्ट्र को अपने वश में लेने में समर्थ (नाम) सबको नमाने वाला (अस्मि) होकर रहूँ।

ऋचो नामा॑स्मि यजू॑ꣳषि नामा॑स्मि सामा॑नि नामा॑स्मि ।
ये अ॒ग्नयः॒ पाञ्च॑जन्या॒ ऽअ॒स्यां पृ॑थि॒व्यामधि॑ ।
तेषा॑मसि॒ त्वमु॑त्त॒मः प्र नो॑ जी॒वात॑वे सुव ॥ ६७ ॥

पूर्वोक्ते ऋषिदेवते । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—(ऋचः नाम अस्मि) ऋचाएं मैं हूँ । (यजूंषि नाम अस्मि) यजुर्गण मैं हूँ । (सामानि नाम अस्मि) सामगण मैं अर्थात् उन सबका आश्रय, प्रवक्ता हूँ । ऋच्, अर्थात् राष्ट्र की समस्त आज्ञाएं मेरे अधीन हों, वे मेरी प्रतिनिधि हों । राष्ट्र के समस्त 'यजुष्' परस्पर संगत राज्य-कर्म मेरे अधीन हों । 'साम' अर्थात् उनमें सौष्ठव, परस्पर समता और एकता के सब स्वरूप मेरे अधीन हों । शत० ९ । ५ । १ । ५३ ॥

हे राजन् ! (ये) जो (अस्यां पृथिव्याम् अधि) इस पृथिवी पर (पाञ्चजन्याः) पांचों प्रजाजनों के हितकारी (अग्नयः) ज्ञानवान् तेजस्वी नेता पुरुष हैं (तेषाम्) उन सब में (त्वम् उत्तमः) तू सब में श्रेष्ठ है । तू (नः) हमारे (जीवातवे) दीर्घ जीवन के लिये (प्र सुव) उत्तम रीति से राष्ट्र का संचालन कर ।

ऋग्वेद आदि अपने नामादि ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी, अथर्ववेदी, द्विवेदी त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि नाम धारण करें । वह सर्वहितार्थ यज्ञ के कर्त्ता हों ।

(१) 'यजूंषि'—यज्ञो ह वै नाम तद् यद् यजुः । श० ४ । ६ । ७ । १३ ॥ एष हि यत् एव इदं सर्वं जनयति । यन्तम् इदं अनु प्रजायते तस्माद् यजुः । एतमनुजवते तस्मात् यजुः । श० १० । ३ । ५ । २ ॥ मनो यजूंषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥ पितरो विशः····यजूंषि वेदः । श० १३ । ४ । ३ । ६ ॥ राष्ट्र स्वयं यजुः है । उसके समस्त अंग 'यजुः' हैं, राजा आदि शासक 'यजुः' हैं । राष्ट्र के पालक उनके कर्त्तव्यों का बोधक वेद 'यजुः' है ।

'सामानि'—तद् यत् संयन्ति तस्मात् साम। जै० उं० ३ । १ । ३३ । ६ । ७ ॥ साम्राज्यं वै साम। श० १२ । ८ । ३ । २३ । धर्म इन्द्रो राजा''''देवा विशः''''सामानि वेदः । श०''''''''॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च ।
इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥ ६८ ॥

६८—७४ इन्द्रो विश्वामित्रश्च ऋषी: । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(वार्त्रहत्याय) देश हित के विरोधी वर्त्तमान शत्रु का हनन करने में समर्थ और (पृतनाषाह्याय च) पर-सेना-विजयी सेनाओं के सर्वोत्तम विजय करने वाले (शवसे) बल, सेनाबल के शासन करने के लिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! (त्वा) तुझे हम (आवर्तयामसि) नियुक्त करते हैं। शत० ९ । ५ । २ । ४ ॥

सहदानुम्पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥

इन्द्रो विश्वामित्रश्च ऋषी । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुत प्रजाजनों से सत्कार को प्राप्त करने हारे ! (इन्द्र) इन्द्र ! शत्रुओं के विदारक सेनापते ! (सहदानुम्) बल से प्रजाओं का खण्डन या नाश करने वाले या अपने सहवासी का नाश करने वाले, (क्षियन्तम्) समीप बसे, समीप बसे, (कुणारुम्) कुत्सित वचन बोलने वाले दुष्ट पुरुष को तू (अहस्तम्) बे-हाथ का, निहत्था, निःशस्त्र करके (संपिणक्) अच्छी प्रकार कुचल डाल। जिससे वह समीप के लोगों को हानि न पहुँचा सके और (वृत्रम्) घेरनेवाले, (पियारुम्) मद्यपी अथवा हिंसाकारी (अभिवर्धमानम्) सब ओर बढ़नेवाले दुष्ट पुरुष को (अपादम्) बे-पांव का लंगड़ा करके (तवसा) अपने बल से (जघन्थ) विनष्ट कर। जिससे वह शक्ति में बढ़-कर प्रजाओं का नाश न करे।

६८—७५—वार्त्रहत्याय सप्तर्चमिन्द्रोऽपश्यत् । चित्याग्निदेवताकम् ।

वि न॑ऽइन्द्र॒ मृधो॑ जहि नी॒चा य॑च्छ पृतन्य॒तः।
यो ऽअ॒स्माँ२ऽ अ॑भि॒दास॒त्यध॑रं गमया॒ तमः॑ ॥ ७० ॥

शासो भारद्वाजः। इन्द्रः। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—व्याख्या देखो यजु अ० ८।४४। शत० ९।५।२।५॥

मृ॒गो न भी॒मः कु॑च॒रो गि॑रि॒ष्ठाः प॑रा॒वत॒ऽआ ज॑गन्था॒ पर॑स्याः।
सृ॒कᳬ सᳬशाय॑ प॒विमि॑न्द्र ति॒ग्मं वि शत्रू॑न्ताढि॒ वि मृधो॑ नुदस्व ७१

इन्द्रपुत्रो जय ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जैसे (कुचरः) ऊंचे नीचे, खाई, वन, पर्वत आदि सभी स्थानों पर विचरने वाला (भीमः मृगः न) भयानक पशु, सिंह बड़े जन्तुओं का नाश करता है वैसे हे (इन्द्र) शत्रुओं के विनाशक इन्द्र! तू भी (भीमः) अतिभयानक (मृगः) शत्रुओं की खोज लेने वाला, (कुचरः) गढ़, नगर, वन, पर्वत, आदि सर्वत्र विचरने में समर्थ, (गिरिष्ठाः) पर्वतों में निवास करने हारा होकर भी (परावतः) दूर-दूर के देशों तक (आ जगन्थ) पहुँचता है और (सृकम्) शत्रु के शरीरों में घुस जाने वाले (पविम्) पाप के शोधक वज्र को (संशाय) खूब तीक्ष्ण करके (तिग्मम्) खूब तीक्ष्णता से (परस्याः) शत्रुसेना के बीच में विद्यमान (शत्रून्) शत्रुओं को (वि ताढि) विविध प्रकारों से विनाश कर और (मृधः) संग्रामकारी सेनाओं को (वि नुदस्व) पीछे भगा, तितर-बितर कर। शत० ९।५।२।५॥

वै॒श्वा॒न॒रो न॑ ऊ॒तय॒ऽआ प्र या॑तु परा॒वतः॑।
अ॒ग्निर्नः॑ सुष्टु॒तीरुप॑ ॥ ७२ ॥

इन्द्र ऋषिः। वैश्वानरोऽग्निर्देवता आर्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों में अधिक प्रतिष्ठित, सबका हितैषी (अग्निः) अग्नि या सूर्य के समान तेजस्वी (परावतः) दूर देश से भी (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (आ प्र यातु) आवे और

(नः) हमारी (सु-स्तुतीः) उत्तम स्तुतियों को (उप) श्रवण करे । शत० ९ । ५ । २ । ६ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वाऽओषधीरा विवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्टोऽअग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥ ७३ ॥

इन्द्रकुत्सौ ऋषि । वैश्वानरो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(दिवि) द्यौलोक, महान् आकाश में (पृष्टः) प्राण, बल सेचन करने में समर्थ, सूर्य के समान तेजस्वी और (पृथिव्यां पृष्टः) पृथिवी में मेघ के समान और (पृष्टः) रस, वीर्य सेचन करने में समर्थ (विश्वाः ओषधीः) समस्त ओषधियों में अग्नि के समान जो (अग्निः) अग्रणी नेता (दिवि) राजसभा और विद्वत्सभा में, (पृथिव्याम्) पृथिवीवासी प्रजा में और (विश्वा ओषधीः) समस्त तेजस्विनी सेनाओं में (आ विवेश) राजारूप से विद्यमान है वह (वैश्वानरः) समस्त विश्व, राष्ट्र का नेता (सहसा) शत्रुपराजय करने वाले बल से (पृष्टः) सर्वत्र ज्ञात, एवं बलवान्, सर्वोत्तम (अग्निः) अग्रणी पुरुष (सः) वह (नः) हमें (दिवा) दिन और (नक्तम्) रात को भी (रिषः) हिंसक लोगों से (पातु) बचावे । शत० ९ । ५ । २ । ६ ॥

'पृष्टः'—पृषु वृषु सेचने । भ्वादिः पृष्टः वृष्टः वृषभ इति यावत् । कर्तरि क्तः । पृच्छतेर्वा ।

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् । अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ ७४ ॥

इन्द्रभरद्वाजावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी सेनापते ! (तव ऊती) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (तम् कामम्) उस २ अभिलाषा को (अश्याम) प्राप्त करें । हे (रयिवः) ऐश्वर्यवान् राजन् ! हम

(सुवीरम्) उत्तम वीरों और वीरपुत्रों से युक्त (रयिम्) राष्ट्र समृद्ध को (अश्याम) पावें। (अभि वाजयन्तः) शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए (वाजम्) ऐश्वर्य को (अश्याम) पावें। हे (अजर) अविनाशिन् ! (ते) तेरे (अजरम्) अविनाशी (द्युम्नम्) अक्षय ऐश्वर्य को हम (अश्याम) लाभ करें। शत० ९ । ५ । २ । ७ ॥

व॒यं ते॑ अ॒द्य र॑रि॒मा हि काम॑मुत्ता॒नह॑स्ता॒ नम॑सोप॒ सद्य॑ ।
यजि॑ष्ठेन॒ मन॑सा यक्षि दे॒वानस्रे॑धता॒ मन्म॑ना॒ विप्रो॑ ऽ अग्ने ॥७५॥

उत्कील आत्कीलो वा कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी नेतः ! विद्वन् ! (ते) तेरे (कामम्) अभिलषित पदार्थ को (अद्य) आज (वयम्) हम (उत्तानहस्ता) अभय-प्रद रूप से, उत्तान, उदार हाथों से (नमसा) नमस्कारपूर्वक सादर (उपसद्य) तेरे समीप पहुँच कर (ररिम) प्रदान करते हैं और (देवान्) विजिगीषु वीर राजगण को और (अस्रेधता) स्थिर, (मन्मना) मननशील (यजिष्ठेन) अति आदर, प्रेम से युक्त (मनसा) मन से (विप्रः) मेधावी, ज्ञानवान् होकर तू (यक्षि) प्राप्त होता है। शत० ९।५।२।९ ॥

धा॒म॒च्छद॒ग्निरिन्द्रो॑ ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑ ।
सचे॑तसो॒ विश्वे॑ दे॒वा य॒ज्ञं प्राव॑न्तु नः शु॒भे ॥ ७६ ॥

निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(धामच्छत्) सूर्य के समान तेज को धारण करने वाला (अग्निः) अग्रणी नेता, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (देवः) विज्ञानद्रष्टा, (ब्रह्मा) वेदज्ञ विद्वान्, (बृहस्पतिः) बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् महामान्य और (सचेतसः) प्रज्ञावान् शुभ चित्त वाले, सहृदय, (विश्वे देवाः) समस्त दानशील, विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (शुभे) कल्याण के लिये (नः) हमारे यज्ञ, राष्ट्र और प्रजापालक की रक्षा करें। शत० १० १ । ३ । ८ ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७८ ॥

निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३।५२ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अ० १९–२१ सौत्रामणी ॥ तस्याः प्रजापतिरश्विनौ सरस्वती च ऋषयः ॥

॥ ओ३म् ॥ स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन । मधुमतीम्मधुमता सृजामि सꣳसोमेन । सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ १ ॥

सुरा सोमश्च देवते । निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(स्वाद्वीं स्वादुना) जिस प्रकार उत्तम स्वादयुक्त ओषधि को स्वादु, उत्तम रस से मिलाया जाता है और (तीव्रां तीव्रेण) तीव्र स्वभाव करने वाली ओषधि को तीव्र रस से मिलाया जाता है और (अमृताम्) अमृत, दीर्घ जीवन देने वाली ओषधि को (अमृतेन) अमृतमय, रोगनाशक दीर्घ जीवनप्रद रस से मिलाया जाता है, उसी प्रकार (स्वाद्वीम्) उत्तम मधुर रस देने वाली (तीव्राम्) तीव्र स्वभाव वाली, (अमृताम्) अमृत, सदा जीवनदायिनी और (मधुमतीम्) मधुर अन्न आदि समृद्धि से युक्त (ताम्) उस राज्य सम्पत्ति, नारी और प्रजा को भी मैं विद्वान् महामात्र, राज्यकर्त्ता पुरुष मधुर स्वभाव के, तीक्ष्ण स्वभाव के अमृत, शत्रु को प्रहार करके मारने और स्वयं न मरने वाले, स्वयं चिरञ्जीवी और मधुर गुणों से युक्त सोम, स्वामी, आज्ञापक, पति और राजा के साथ (सं सृजामि) संयुक्त करूं । हे पुरुष ! राजन् ! तू (सोमः असि) सोम, प्रेरक, ऐश्वर्यवान्,

अभिषेक योग्य है। (अश्विभ्याम्) सूर्य जिस प्रकार दिन और रात्रि या द्यौ और पृथिवी के लिये तपता है और मुख्य औषध जिस प्रकार प्राण और अपान के हित के लिये पकाया जाता है उसी प्रकार तू भी (अश्विभ्याम्) माता-पिता और राष्ट्र के नर-नारी दोनों या प्रजा और राजा, राष्ट्र और राज-पद दोनों के लिये (पच्यस्व) परिपक्व हो। हे पुरुष! तू दम्पति भाव के लिये (पच्यस्व) परिपक्व वीर्य वाला हो। या हे वीर्यवन्! (सरस्वत्यै पच्यस्व) सरस्वती, वेदवाणी और शासन-आज्ञा के लिये, उसे शत्रु, मित्र, उदासीन, एवं राष्ट्र और सब पर शासन चलाने के लिये (पच्यस्व) अपने को परिपक्व कर। गृहस्थ पुरुष! सरस्वती प्रेमयुक्त स्त्री के लिये (पच्यस्व) परिपक्व वीर्यवान् हो। उत्तम रीति से प्रजा के पालन करने वाले इन्द्र पद के लिये अपने को परिपक्व करे। संगति देखो अथर्व० १९। ३१। १४॥ शत० १२। ७। ३। ५॥

(१) 'सौत्रामणी'—स यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स सौत्रामण्या यजेत। पाप्मानमेव तद् द्विषन्तं भ्रातृव्यं हत्वा इन्द्रियं वीर्यमस्य वृङ्क्ते। तस्य शीर्षच्छिन्ने लोहितमिश्रः सोमोऽतिष्ठत्। तस्मादबीभत्सन्त। त एतदन्धसोविंपानमपश्यन् सोमो राजा अमृतं सुत इति। तेन एनं स्वदयित्वा आत्मन् अधत्त। शत० १२। ७। ३। ४॥

शत्रु वाला राजा सौत्रामणी यज्ञ करता है। शत्रु को मार कर वह उसके ऐश्वर्य, को हर लेता है। उसके रुधिर से मिला 'सोम' ऐश्वर्य पाता है। उसको देख लोग ग्लानि करते हैं। तब 'सोमपान' राष्ट्र पालन के ज्ञान का दर्शन करते हैं। 'सोम' स्वयं राजा है। अभिषिक्त राजा अमृत के समान है। महाभारत में युधिष्ठिर की राज्य से ग्लानि और भीष्म का उपदेश मनन करने योग्य है।

(२) सोमो वै पयः, अन्नं सुरा। क्षत्रं वै पयो, विट् सुरा, सुरां पूत्वा पयः पुनाति विश एव तत्क्षत्रं जनयति। विशो हि क्षत्रं जायते।

सोम दूध के समान है। अन्न का विकार सुरा है। क्षत्र-बल दूध है। प्रजा सुरा है। सुरा को छान कर दूध छाना जाता है। अर्थात् प्रजा के बीच

में से क्षत्र-बल पैदा किया जाता है। क्षत्र-बल प्रजा में से ही पैदा होता है।

(३) पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १।३।३।४ ॥ यशो हि सुरा। श० १२।७।३।१४ ॥ प्रजापालक प्रजापति के दो भोग्य हैं सोम और सुरा। राजा और प्रजा। पुरुष सोम है। स्त्री सुरा है। यश, ऐश्वर्य, सुरा है।

(४) 'सोमः'—स्वा वै मे एषा इति तस्मात् सोमो नाम। श० ३। ९।४।२२ ॥ राजा वै सोमः। श० १४।१।३।१२॥ सोमो राजा राजपतिः। तै० २।५।७।३ ॥ यह मेरी अपनी ही सम्पत्ति है ऐसा समझने वाला स्वामी 'सोम' है। राजा सोम है। सोम राजाओं का भी स्वामी है।

परीतो षिञ्चता सुतꣳसोमो य उत्तमꣳ हविः।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२॥

भरद्वाज ऋषिः। सोमो देवता। स्वराट् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(यः) जो (सोमः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (उत्तमं हविः) उत्तम आदान प्रतिदान योग्य धन, ज्ञान, बल को (दधन्वान्) धारण करता है और (यः नर्यः) जो पुरुषों का हितकारी होने से (अप्सु अन्तरा) आप्त प्रजाजनों के बीच (सुषाव) अभिषिक्त किया जाता है उस (सुतम् सोमम्) अभिषिक्त सोम, राजा को (अद्रिभिः) वज्रों, या शस्त्रास्त्रधारी पुरुषों द्वारा (इतः) अब से (परि षिञ्चत) सब प्रकार से अभिषेक अर्थात् आभूषित या सुशोभित करो, उसके बल की वृद्धि करो। परिषेको ऽलंक्रिया।

सोमरस उत्तम (हविः) अन्न के ग्राह्य अंश को धारण करता है। वह देह को हितकारी है। जलों के बीच शीतल करके (सुषाव) जो आसव रूप से उत्पन्न किया जाता है उसको सेचन करो।

[1]वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिद्रुतः।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।
[2]वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

प्राङ्सोमो० 'प्रत्यङ्सोमो०' इति काण्व०।

आभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। १ निचृद् गायत्री। २ विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(सोमः) सोम, ऐश्वर्यवान् राजा (प्रत्यङ्) पीछे से (वायोः) वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रुरूप वृक्ष के शाखा-प्रशाखाओं और मूल को भी तोड़ देने में समर्थ सेनापति के (पवित्रेण) कण्टकशोधन करने वाले सेना-बल से (पूतः) शुद्ध, पवित्र, शत्रुरहित होकर (अतिद्रुतः) अत्यन्त अधिक वेग से आक्रमणकारी, तीक्ष्ण हो जाता है, वह राजा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् सेनापति या राष्ट्र का भी (युज्यः) सदा साथ देने वाला (सखा) मित्र होता है। शत० १२।७।३।१०॥

इसी प्रकार (वायोः पवित्रेण पूतः) प्रचण्ड वायु के समान बलवान् पुरुष के शत्रुरूप कण्टकों के शोधन करने वाले बल से (पूतः) पवित्र या अभिषिक्त या शत्रुरहित होकर (सोमः) अभिषिक्त राजा (प्राङ् अतिद्रुतः) आगे की तरफ वेग से बढ़ता है, वह (इन्द्रस्य युज्यः सखा) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रवासी प्रजाजन का सदा का साथी और मित्र हो जाता है।

पुनाति॑ ते परि॒स्रुत॒ꣳ सोम॒ꣳ सूर्य॑स्य दुहि॒ता।
वारे॑ण॒ शश्व॑ता॒ तना॑॥ ४॥

आभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। आर्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे राष्ट्रवासी जन! (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष की (दुहिता) समस्त ज्ञानरस को दोहन करने वाली, श्रद्धा, सत्यधारणा ही (ते) तेरे (परिस्रुतम्) सब प्रकार से अभिषिक्त (सोमम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (शश्वता) अनादि, नित्य से चले आये, (तना) विस्तृत, (वारेण) शत्रु के वारण करने हारे मौल बल, या वरण करने योग्य ऐश्वर्य से (पुनाति) पवित्र, शुद्ध, शत्रुरहित निष्कण्टक करती है। शत० १३। ७।३।११॥

सूर्य की दुहिता 'उषा', वरणीय प्रकार से सोम, ओषधि को पवित्र करती है।

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियथं सुरया सोमः सुतऽआसुतो मदाय। शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥

सोमः । निचृज्जगती । निषादः ।

भा०—(सुरया) सुखपूर्वक रमण करने योग्य ऐश्वर्य, राज्यलक्ष्मी या उत्तम प्रजा द्वारा (सुतः) अभिषिक्त किया और (मदाय) आनन्द प्रसन्नता के लिये (आसुतः) प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र अभिषिक्त हुआ (सोमः) सोम, ऐश्वर्यवान् पुरुष (ब्रह्म) ब्रह्म, ब्राह्मण वर्ग, (क्षत्रं) क्षत्रियगण को (पवते) पवित्र करता है और (तेजः) तेज, पराक्रम और (इन्द्रियम्) इन्द्रिय, राजोचित ऐश्वर्य को भी (पवते) उत्पन्न करता है। हे (देव) देव, दानशील, राजन् ! तू (शुक्रेण) शुद्ध करने वाले, तेज या सुवर्णादि द्रव्य से (देवताः) दानशील या विजिगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों को (पिपृग्धि) पूर्ण कर, पालन कर और (रसेन) रस, पुष्टिकारक अंश से युक्त (अन्नम्) अन्न (यजमानाय) यजमान, दानशील या अपने से संगत प्रजाजन के लिये (धेहि) सुरक्षित रख। शत० १२ । ७ । ३ । १२ ॥

सोम—ओषधि सवन क्रिया से उत्पादित सोम, ओषधि रस तेज, इन्द्रियों के बल को उत्पन्न करता है। तेजोवृद्धि करने वाले वीर्य रस से प्राणों की शक्ति को बढ़ाता है।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

इन्द्रः । विराट् प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—(कुविदङ्ग०.........०सुत्राम्णे) इस मन्त्र की व्याख्या देखो। अ० १० । ३२ ॥

६—पयोग्रहाः ।

(एष ते योनिः) हे राजन् ! तेरा यह योनि आश्रयस्थान या पद है। (त्वा) तुझको (वीर्याय) वीर्य-सम्पादन, अधिकार-प्राप्ति और (बलाय) बलवृद्धि के लिये नियुक्त करता हूँ। शत० १२। ७। ३। १३॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳ सृक्षाथां परमे व्योमन्। सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती॥ ७॥

सोमः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! हे राज्यलक्ष्मि ! अथवा राष्ट्रप्रजे ! (वाम्) तुम दोनों के लिये (देवहितम्) विद्वानों द्वारा शास्त्रविहित (नाना) पृथक्-पृथक् (सदः कृतम्) स्थान बना दिया है। तुम दोनों (मा संसृक्षाथाम्) परस्पर संसर्ग मत करो। दोनों विभागों को पृथक्-पृथक् रक्खो। हे प्रजे ! हे राज्यलक्ष्मि ! (त्वम् शुष्मिणी) तू बलशालिनी (सुरा) मदिरा के समान अति बलकारिणी, एवं 'सुरा' उत्तम ऐश्वर्य वाली या उत्तेजना देने वाली है और (एषः सोमः) यह 'सोम' राष्ट्र का प्रेरक है। तू (स्वाम् योनिम्) अपने आश्रयस्थान को (आविशन्ती) प्राप्त करती हुई (मा) मुझ राजा को (मा हिंसीः) मत मार। इसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (स्वां योनिम् आविशन् मा मा हिंसीः) अपने आश्रय को प्राप्त करके मुझ प्रजाजन का नाश मत कर। शत० २१। ७। ३। १४॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम्। एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा॥ ८॥

सोमः। निचृत् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे अधिकार-पद-योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र के नियन्ता राजा के विशेष धर्मों, नियमों, द्वारा बद्ध है। (आश्विनम् तेजः) सूर्य-चन्द्र, दिन-रात्रि, स्त्री-पुरुष, इन युगलों के समान राजा और प्रजा दोनों का सम्मिलित वीर्य है। (सारस्वतम् वीर्यम्) हे पुरुष ! तू

सरस्वती, वेदबाणी अर्थात् समस्त ज्ञानी विद्वानों का संयुक्त बल है। हे पुरुष! तू (इन्द्रम् बलम्) शत्रुनाश करनेवाले इन्द्र, सेनापति का बल, सेनाबल है (एषः ते योनिः) तेरा यह आश्रय या अधिकारपद है। (त्वा) तुझ योग्य पुरुष को (मोदाय) राष्ट्र के हर्ष के लिये स्थापित करता हूँ। (त्वा आनन्दाय) तुझको आनन्द, समृद्धि प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता हूँ। (त्वा महसे) तुझको बड़े भारी ऐश्वर्य और मान, प्रतिष्ठा, आदर, सत्कार प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता हूँ।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥९॥

सोमः। निचृत् शक्करी। धैवतः॥

भा०—हे राजन्! तू (तेजः असि) तेज, तीक्ष्ण पराक्रम स्वरूप है। (मयि तेजः धेहि) मुझ प्रजाजन में भी तेज को धारण करा। तू (वीर्यम् असि) वीर्य, सब अंगों में स्फूर्ति, उत्पन्न करनेवाला शरीर में वीर्य के समान है। तू (मयि) मुझमें भी उस (वीर्यम्) वीर्य को (धेहि) धारण करा। (बलम् असि) तू बल, अंगों में दृढ़ता उत्पन्न करनेवाला है। (मयि) मुझ प्रजाजन में भी (बलम् धेहि) उस बल को धारण करा। (ओजः असि) शरीर में जिस प्रकार ओज, अष्टम धातु, कान्ति उत्पन्न करनेवाला है, उसी प्रकार के (ओजः) प्राण सामर्थ्य को (मयि धेहि) मुझ में धारण करा। (मन्युः असि) तू शत्रु को न सहन करनेवाला क्रोध-रूप है उसी प्रकार के (मन्युम्) मन्यु को (मयि धेहि) मुझमें धारण करा। (सहः असि) हे राजन्! तू शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ शक्ति है। तू (सहः मयि धेहि) मुझ में भी वैसी शक्ति प्रदान कर। संगति देखो अथर्ववेद का० १९। सू० ३१। म० ११॥

विश्व में परमात्मा और शरीर में आत्मा तेजः वीर्य, बल, ओजः, मन्यु और सहः स्वरूप हैं उनसे तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु और सहः मिले।

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति।
श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥ १० ॥

हेमवर्चिर्ऋषिः । सोमः । आर्ष्युष्णिक् । धैवतः ॥ विषूचिकास्तुतिः ॥

भा०—(व्याघ्रम्) व्याघ्र के समान शूरवीर और (वृकम् च) भेड़ियों के समान शत्रु पर जा पड़नेवाले अथवा व्याघ्र जो आहार को सूंघ कर ही पता लगा लेता है उसी प्रकार जो सूक्ष्म सूक्ष्म लक्षण से शत्रु का पता लगा ले और वृक भेड़ आदि को बल से हर लेता है उसी प्रकार जो शत्रु राज्य को हर ले (उभौ) उन दोनों का जो (विषूचिका) विविध पदार्थों को सूचना करनेवाली संस्था (रक्षति) उनको शत्रु के पंजे में पड़ने से बचाती है इसी प्रकार की सूचना देनेवाली संस्था (श्येनम्) बाज के समान सहसा शत्रु पर (पतत्रिणम्) सेना के दोनों पक्षों (Wings) के साथ वेग से जा टूटने वाले विजयी की और (सिंहम्) सिंह के समान पराक्रमी शूरवीर पुरुष की (पाति) रक्षा करती है, उसको शत्रु की चालें बतलाकर शत्रु के हाथों पड़ने से बचाती है (सा) वह (इमम्) इस राजा को भी शत्रु की ओर से होने वाले (अंहसः) वध आदि क्रूर कर्म से (पातु) बचावे। व्याघ्र, वृक, बाज़ और सिंह ये जीव दूर से ही अपने आहार आदि के विषय में जान लेते। हैं उनकी जान लेने की घ्राणशक्ति 'विषूचिका' है। सेनापति, राजा, पराक्रमी पुरुषों की भी गुप्त समाचार देनेवाली जासूस संस्था 'विषूचिका' है और ऐसे यन्त्र भी प्राचीन साहित्य में 'प्रज्ञप्ति-साधन' कहे गये हैं। अर्थशास्त्र में 'गुप्त प्रणिधिसंस्था' रूप में है। शत० १२।७।२१॥

अध्यात्म में—विविध ज्ञानों को देनेवाले अन्न, प्रज्ञा विषूचिका है। विविध पदार्थों के ज्ञाता 'व्याघ्र', कर्म फलों के आदाता 'वृक' तीक्ष्ण ज्ञानी श्येन, पतत्री, हंस, आत्मा, दोषों के नाशक योगी 'सिंह' रूप आत्मा की प्रज्ञा है वही उसको पाप से बचाती है।

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥ ११ ॥

अग्निः । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जब (पुत्रः) पुत्र (प्रमुदितः) अत्यन्त हर्षित होकर (धयन्) स्तन्य पान करता हुआ (मातरम्) माता को (आपिपेष) गाढ़ आलिंगन करता है । (तत्) तब (एतत्) इस प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी, ज्ञानवान्, विद्वान् ! मैं (अनृणः) माता-पिता के ऋण से मुक्त (भवामि) हो जाता हूँ । (मया) मैंने (पितरौ) माता-पिता को (अहतौ) पीड़ित न रखकर सुखी कर दिया । पुत्र न होना भी माता-पिता को दुःखित रखना है । हे प्रेमी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (संपृचः स्थ) मुझ से सत्संग करने वाले हो, आप लोग (माम्) मुझे (भद्रेण) सुखप्रद कल्याण से (सं पृङ्क्त) संयुक्त करो । हे विवेकी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (विपृचः स्थ) विविध विषयों का ज्ञान करने और विवेक करनेवाले हो । आप लोग (मां) मुझे (पाप्मना) पाप से (वि पृङ्क्त) विमुक्त रखो । शत० १२ । ७ । ३ । २१–२२ ॥

राजपुरुषों को त्राण करने में समर्थ पुरुष, वीर राजा पुत्र है । वह माता या गायरूप पृथ्वी के पुत्र के समान ही उसका वत्स होकर उसके ऐश्वर्य प्राप्त करता है, माता के तुल्य पृथ्वी को सेना बल से लताड़ता है तो भी विद्वान् राजा ऋण मुक्त ही होता है । जब (पितरौ) माता-पिता के समान पालक पुरुष नर नारी कभी पीड़ित न हों, कष्ट न पावें ।

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

१२–३२ सोमसम्पत् । अनुष्टुभः । १३—विद्वांसः । भुरिग् अनुष्टुप् । गांधार ॥

१२–३२ देवा यज्ञमिति ब्राह्मणानुवाकः विंशतिरनुष्टुभः । सोमसम्पत् ।

भा०—(भिषजा) रोगों की चिकित्सा करने में कुशल (अश्विनौ) आयुर्वेद के विज्ञान में पारंगत ओषधिवित् और शल्य चिकित्सक दोनों और (सरस्वती) सरस्वती, वेदवाणी, या विद्वत्सभा जो (वाचा) वाणी के उपदेश द्वारा (भिषक्) अज्ञान, दोषों को दूर करने में कुशल और (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्राय) इन्द्र के निमित्त (इन्द्रियाणि) राजोचित ऐश्वर्यों और सामर्थ्यों को (दधतः) धारण कराते हुए (भेषजम्) रोग, निर्बलता को दूर करने वाले (यज्ञम्) परस्पर संगति करने वाले प्रजापालन व्यवहार का यज्ञ के समान ही (अतन्वत) उपदेश करते हैं।

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

भा०—१ (शष्पाणि) शष्प अर्थात् नये उगे धान्य, (दीक्षायै रूपम्) दीक्षा के रूप हैं। यज्ञ में जिस प्रकार दीक्षणेय इष्टि है उसी प्रकार सौत्रामणि में हरे धान्य हैं। उत्तम रीति से पालन करने वाले सुत्रामा, राजा की प्रजापालनी वृत्ति में 'शष्प' शत्रुओं को हनन करने के साधन ही राष्ट्रपति की दीक्षा का रूप हैं। 'शष्पाणि'—शष्यते हन्यते इति तच्छष्पम्। बालतृणं कान्तिक्षयो वा इति दया० उणा० ॥ शष् हिंसार्थो भ्वादिः। हिंसार्थस्य शसेर्वा स्तुत्यर्थस्य शंसेर्वा रूपम्।

२. (तोक्मानि प्रायणीयस्य रूपम्) तोक्म अर्थात् नये जौ, यज्ञ में 'प्रायणीय' के रूप हैं। राज्य-पालन में 'तोक्मा' शत्रु के हनन करने या प्रजा के प्रसन्न करने के कार्य ही 'प्र-अयनीय' अर्थात् उत्कृष्ट पद की प्राप्ति का रूप है। 'तोक्मानि—तोकं तुद्यतेः। चिन० १०।१।७॥ तोक्म, तुजेः स्तुचेः, तवतेः, तुद्यतेर्वा मननि ककारोऽन्तादेशः। तुज हिंसायाम्। ष्टुच प्रसादे। भ्वादिः।

इति सर्वानु०। अयं विंशतिकाण्डात्मको ब्राह्मणानुरूपोऽनुवाकः इति याज्ञिकोऽनन्तदेवः ॥

३. (लाजाः सोमस्य क्रयस्य रूपम्) लाजाएं सोम के क्रय के रूप हैं। 'लाजाएं' या प्रसन्न प्रजाएं, समृद्ध विभूतियां ही सोम रूप राजा के राजपद के वेतन के रूप हैं, 'लाजाः' दीप्त्यर्थस्य राजतेः। लत्वं छान्दसम्। आदित्यानां वा एतद्रूपं यल्लाजाः। तै० ३। ८। नक्षत्राणां वा एतद्रूपं यल्लाजाः। तै० १। ३। २। १। ५॥

४. (मधु सोमांशवः) मधु यज्ञ में सोम के अंशों के समान है। राजा के दुष्टों के धमन, या पीड़न करने वाला सैनिक बल या प्रजा के तृप्तिकारक या हर्षकर, बलकारी अन्न, सोम नाम राजा के अंशु अर्थात् राष्ट्र में व्यापक बल 'मधु' है। १४। ४॥

एतद् वै प्रत्यक्षात् सोमरूपं यन्मधु। श० ८। २। १५॥ धमतेर्वा मधु। देवराजयज्वा।

आ॒ति॒थ्य॒रू॒पं मास॑रं महावी॒रस्य॑ न॒ग्नहुः॑।
रू॒पमु॑प॒सदा॑मे॒तत्ति॒स्रो रात्रीः॒ सुरासु॑ता॥ १४॥

आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—५. (मासरम् आतिथ्यरूपम्) धान, सांवा चावल के भात और पूर्व कहे शष्प, तोक्म, लाज आदि का मिश्रण 'मासर' कहाता है। वह आतिथ्य इष्टि का रूप है। राष्ट्रपक्ष में—राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं का प्रतिमास वेतन दिया जाता है वह 'मासर' 'आतिथ्य' के समान है। 'मासरं' मासं मासं रीयते दीयते यत् तत् मासरम्। येन मासेषु रमन्ते। द०।

६. (नग्नहुः महावीरस्य) नग्नहु, महावीर यज्ञ में घर्मेष्टि का रूप है। राष्ट्रपक्ष में—नग्न, अकिंचन पुरुषों को अन्न वस्त्र आदि प्रदान ही 'महावीर' बड़े वीर त्यागी पुरुष का रूप है। यः नग्नान् जुहोत्यादत्ते इति नग्नहुः। दया०॥

७. (उपसदाम्) उपसद् इष्टियों का (एतत् रूपम्) यह रूप है जो (तिस्रः रात्रीः) तीन रातों तक (सुरा-सुता) सुरा, अन्न रस, सेवन किया

जाता है। राष्ट्रपक्ष में—समीप विराजनेवाले अधिकारी पुरुषों और समस्त राष्ट्रगत अधिकारों का ही उज्ज्वल स्वरूप है जो तीन रात तक, तीन दिनों तक सुख से भोग्य राज्यलक्ष्मी का (सुता) राजा के निमित्त अभिषेक है। इन तीन दिनों में ही समस्त राज्य-अधिकार राजा को सौंपे जाते हैं। अथवा उत्साह, बल, साहस इन तीन राजपालक शक्तियों से अभिषेक क्रिया की जाती है, यही उपसदों अर्थात् समस्त अधिकारों और राज-समितियों का उत्तम स्वरूप है।

'उपसदः'—वज्रा वा उपसदः। श० १०।२।५।२॥ जितयो वै नामैता यदुपसदः। ऐ० १। २४॥ इषुं वा एते देवाः समस्कुर्वत यदुपसदस्तस्य अग्निरनीकमासीत्; सोमः शल्यः, विष्णुस्तेजनः वरुणः पर्णानि। ऐ० १।२५॥

सोम॑स्य रू॒पं क्री॒तस्य॑ परि॒स्रुत्परि॑षिच्यते।
अ॒श्विभ्यां॑ दु॒ग्धं भे॑ष॒जमिन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सर॑स्वत्या॥ १५॥

सोमः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

८. (परिस्रुत् परिषिच्यते) जो परिस्रुत् का परिषेक किया जाता है। वह (क्रीतस्य सोमस्य रूपम्) कीने हुए सोम का रूप है। राष्ट्रपक्ष में—सब देशों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से जो अभिषेक किया जाता है वही राज्यलक्ष्मी द्वारा कीने गये, तदधीन हुए, सर्वाज्ञापक राजा का उत्तम रूप है। देखो शोडपिग्रह प्रकरण। शत० ५।१।२।१६॥

९. (अश्विभ्याम्) अश्वियों, स्त्री-पुरुषों और (सरस्वत्या) सरस्वती, वेद के विद्वानों की बनी सभा द्वारा (इन्द्राय) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा के हित के लिये (भेषजम्) सब कष्टों का निवारण करनेवाला (ऐन्द्रम्) इन्द्र का पद (दुग्धम्) सब प्रकार से पूर्ण किया जाता है। ओषधिरस के समान ही ऐश्वर्य और ज्ञान का लाभ लेना चाहिये।

आ॒स॒न्दी रू॒पꣳ रा॑जास॒न्द्यै वेद्यै॑ कु॒म्भी सु॑रा॒धानी॑।
अन्त॑रऽउत्तरवे॒द्या रू॒पं का॑रोत॒रो भि॒षक्॥ १६॥

१०. (आसन्दी) आसन्दी यह पृथ्वी ही (राजासन्द्यै रूपम्) राजा के बैठने के लिये आसन, पीढ़ी, सिंहासन का रूप है। 'आसन्दी'—इयं पृथिवी या आसन्दी अस्या हि इदं सर्वमासन्नम्। श० ६।७।१।१२ ॥

११. (सुराधानी कुम्भी वेद्यै रूपम्) सुरा अर्थात् उत्तम रीति से सुख ऐश्वर्य का भोग देने वाली राज्यलक्ष्मी को धारण करने वाली (कुम्भी) घट के समान गोलाकार पात्र (वेद्यै) वेदी, पृथ्वी का ही उत्तम रूप है।

१२. (अन्तरः उत्तरवेद्याः रूपम्) अन्तर् लोक अर्थात् अन्तरिक्ष उत्तर वेदी का रूप है।

१३. (कारोतरः) कारोतर अर्थात् 'छन्ना' के समान सार और असार पदार्थों का विवेचन करनेवाला विवेकी पुरुष ही (भिषक्) रोग और पीड़ाओं को दूर करने में समर्थ वैद्यवत् है। अतः छन्ना भिषक् का प्रतिनिधि है।

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्।
यूपेन यूपऽआप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना ॥ १७ ॥

यज्ञः। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

१४. (वेद्या वेदिः समाप्यते) यज्ञ की वेदी से यह समस्त पदार्थ के प्राप्त करानेवाली भूमि समान रूप से जानी जाती है।

१५. (बर्हिषा) यज्ञवेदी में बिछे कुश से (बर्हिः इन्द्रियम्) महान् इन्द्र, राजा का ऐश्वर्य (समाप्यते) तुलना किया जाता है।

१६. (यूपेन यूपः) यज्ञ के 'यूप' नामक स्तम्भ से (यूपः) सूर्य, वज्र, खड्ग, तेजस्वी बलवान् या स्वयं राजा ही (आप्यते) ग्रहण किया जाता है।

१७. (अग्निना अग्निः) यज्ञ में प्रदीप्त अग्नि से (अग्निः) अग्रणी अग्नि के समान तेजस्वी राजा के सेनापति व सभापति की तुलना की जाती है।

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती।
इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥ १८ ॥

गृहपतिः । निचृद् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

१८. राष्ट्र के (अश्विनौ) स्त्री-पुरुषगण (हविर्धानम्) अन्नों के रखने वाले यज्ञ में ग्राह्य हविष्य-पदार्थों के रखने वाले शकट के समान हैं।

१९. (यत् सरस्वती) जो सरस्वती, विज्ञान का उपदेश करने का कार्य है वह यज्ञ में (आग्नीध्रम्) 'अग्नीध्र' नामक अग्नि की देख-रेख करनेवाले ऋत्विक् के पद के समान है।

२०. (इन्द्राय) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (ऐन्द्रम्) इन्द्रोचित ऐश्वर्य (कृतम्) किया जाता है वह यज्ञ में (ऐन्द्रं सदः) ऐन्द्र सद्स्—राजा की राजसभा के समान है।

२१. इसी प्रकार—(ऐन्द्रं पत्नीशालम्) पालन करने वाली राजा की राजसभा का भवन यज्ञ में पत्नीशाला के समान है।

२२. (ऐन्द्रं गार्हपत्यः) राजा का राज्य में गृहपति के समान रहना ही यज्ञ में 'गार्हपत्य' अग्नि स्थापन के समान है। इस प्रकार महान् राज्यैश्वर्य पद भी एक धार्मिक गृहस्थ के तुल्य है।

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य ।
प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

यज्ञः । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

२३. (प्रैषेभिः) उत्तम आज्ञा-कर्मों द्वारा (प्रैषान्) भृत्यों को (आप्नोति) प्राप्त करता है। अथवा (यज्ञस्य प्रैषैः) यज्ञ के 'प्रैष' कर्मों से (प्रैषान्) राष्ट्र के कार्यों में प्रेरित भृत्यों के प्रति की गयी आज्ञाओं की तुलना की जाती है।

२४. (यज्ञस्य आप्रीभिः) यज्ञ की 'आप्री' ऋचाओं से राष्ट्र की (आप्रीः) सबको प्रसन्न रखने वाली वेतन, पारितोषिक आदि की तुलना की जाती है।

२५. (प्रयाजेभिः [प्रयाजान्]) यज्ञ के प्रयाजों द्वारा राष्ट्र के प्रयाज अर्थात् उत्तम दान, परितोषिक योग्य कार्यों की तुलना है।

२६. ([अनुयाजेभिः] अनुयाजान्) यज्ञ के 'अनुयाजों' से राष्ट्र के अनुयाज अर्थात् अनुकूल पुरुषों के अधिकार ऐश्वर्य प्रदान के कार्यों की तुलना है।

२७. (वषट्कारेभिः [वषट्कारान्]) यज्ञ के वषट्कार अर्थात् स्वाहाकारों से राष्ट्र के वषट्कारों अर्थात् योग्य पुरुषों के सत्कारों की तुलना की जाती है। इस प्रकार 'यज्ञ' द्वारा लोक और राज्य की नीति का उपदेश किया है।

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीᳬंष्या।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

यजमानः। भुरिग् उष्णिक्। ऋषभः ॥

२८. (पशुभिः पशून् आप्नोति) यज्ञगत पशुओं द्वारा राष्ट्र के पशुओं की तुलना है।

२९. (पुरोडाशैः हवींषि) यज्ञ के पुरोडाशों से राष्ट्र के अन्न आदि भोग्य पदार्थों की तुलना है।

३०. (छन्दोभिः [छन्दांसि]) यज्ञ में मन्त्ररूप छन्दों से राष्ट्र में नाना अधिकार और व्यवहारों, व्यवसायों, कानूनों, विधानों की तुलना है।

३१. ([सामिधेनीभिः] सामिधेनीः) यज्ञ में समिधा आधान की ऋचाओं द्वारा सामिधेनी अर्थात् राष्ट्र में सेना के विशेष अधिकार और सेनाबलों की तुलना है।

३२. (याज्याभिः [याज्याः]) यज्ञ की याज्या ऋचाओं से राष्ट्र की याज्या अर्थात् भूमि, अन्न और धन के दानों की तुलना है।

३३. ([वषट्कारैः] वषट्कारान्) यज्ञ के वषट्कारों से राष्ट्र में योग्य पुरुषों को योग्य अधिकार सत्कारों की तुलना है। इस प्रकार 'यज्ञ' राज्यरचना की व्याख्या करता है।

वज्रो वै सामिधेन्यः। कौ० ३। २, ३ ॥ 'याज्या'—इयं पृथिवी याज्या। श० १।७।२।११ ॥ अन्नं वै याज्या। कौ० १५। ३॥ प्रत्तिर्वै याज्या पुण्यैव लक्ष्मीः। ऐ० २।४० ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।
सोमस्य रूपꣳ हविषऽआमिक्षा वाजिनम्मधु ॥ २१ ॥

सोमः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—यज्ञ में (धानाः) भुने धान, खीलें, (करम्भः) भात की लप्सी, (सक्तवः) सत्तु, (परीवापः) हविष्य, (पयः) दूध, (दधि), दही (आमिक्षा) गरम दूध में खट्टा डालने से फटे दूध के स्थूल भाग आमिक्षा और (वाजिनम्) जल भाग 'वाजिन' और (मधु) मधुर मधु, ये सब पदार्थ (सोमस्य) सोमरूप (हविषः) अन्न हवि का (रूपम्) रूप हैं। उसी प्रकार राष्ट्र में भी (धानाः) धारण पोषण करने वाली गौएं, (करम्भः) राज्य के कार्य करने वाले कर्मचारीगण, (सक्तवः) समूह या संघ में एकत्र प्रजागण, (परीवापः) पृथ्वी पर सर्वत्र अन्न आदि बीजों का आवपन और शत्रु का नाशन, (पयः) पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह, (दधि) धारण पोषण के उपाय, (अमिक्षा) राजा और प्रजा के हितकारियों का सम्मिलित गण, (वाजिनम्) पशु समृद्धि और (मधु) अन्न समृद्धि, ये सब (हविषः) ग्रहण करने योग्य (सोमस्य) राष्ट्र, ऐश्वर्य और राजा का (रूपम्) उज्ज्वल रूप हैं।

धानानाꣳ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।
सक्तूनाꣳरूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

यज्ञः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(धानानां रूपं कुवलम्) धान, लाजाओं का रूप 'कुवल' 'बेर' का फल है अर्थात् जिस प्रकार कोमल बेर को बकरी आदि पशु अनायास खा जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के पोषक गौ आदि पशु भी अनायास दूसरों के उपयोगी हो जाते हैं। (गोधूमाः परीवापस्य रूपम्) गोधूम गेहूँ परिवाक का उत्तम रूप है। अर्थात् गेहूँ अन्न कृषि का उत्तम फल है।

(सक्तूनां रूपं बदरम्) सक्तुओं का उत्तम रूप 'बदर' है, सक्तु अर्थात् राष्ट्र में संघ बनाकर रहना शत्रु के लिये 'बेर' के समान होता है

अर्थात् जैसे बेर कांटों से घिरा होता है उसी प्रकार संघ में रहने से श. एक दम आक्रमण कर राज्य नहीं छीन सकता।

(उपवाकाः करम्भस्य रूपम्) 'करम्भ' दही से मिले सत्तु का रूप 'उपवाक' अर्थात् 'यव' है। 'करम्भ' अर्थात् क्रिया सामर्थ्य वीर्य से युक्त प्रजागण (उपवाकाः = उपपाकाः) शत्रु के समीप आने पर उसके दग्ध करने में समर्थ होते हैं।

पय॑सो रूपं यद्यवा॑ दृध्नो रूपं कर्कन्धूनि।
सोम॑स्य रूपं वाजिनथ्ं सौम्यस्य॑ रूपमामिक्षा॑ ॥ २३ ॥

सोमः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(पयसः रूपं यद् यवाः) जौ पयस् दूध के रूप हैं। दूध जिस प्रकार शरीर को पोषक है उसी प्रकार यव, अन्न, राष्ट्र की प्रजा को पुष्ट करता है। 'पयः' पुष्टिकारक वीर्य शरीर का पोषक है। यव, शत्रुओं को दूर करने में समर्थ सैनिक वीरजन राष्ट्र को पुष्ट करते हैं।

(दध्नः रूपं कर्कन्धूनि) दधि का रूप 'कर्कन्धू' अर्थात् पके बेरी के फल के समान है। दही वीर्य उत्पन्न करता है। पके बेर भी बल उत्पन्न करते हैं। (दध्नः) राष्ट्र में धारण समर्थ बल कांटेदार बेरी की झाड़ियों के समान हैं। बाड़ पशुओं से कोमल विटपों को खाये जाने से बचाती हैं उसी प्रकार शस्त्र धारक वीर सैनिक राज्य के 'दधि' राष्ट्र धार का बल का स्वरूप हैं।

'कर्कन्धू'—कर्क कण्टकं दधाति इति। कर्कन्धूः। इति दया० उणा०। अथवा कर्कान् कण्टकान् शत्रून् धुन्वते इति कर्कन्धूनि सेनाबलानि। कांटे रखने से ये कण्टकरूप शत्रुओं को धुन देने वाले वीर 'कर्कन्धू' हैं।

(सोमस्य रूपं वाजिनम्) सोम का रूप 'वाजिन' है। 'सोम', राजा 'वाज' अर्थात् अन्न और बल के स्वामी का रूप है। (सोमस्य रूपम् आमिक्षा) सोम, राजा का रूप 'आमिक्षा' है अर्थात् प्रजा पर सब सुखों का वर्षण अथवा राज्य के मुख्य पद पर अभिषेक क्रिया होना, अथवा सब ओर से दुष्ट पुरुषों का नाश करना ही राजा का रूप है। 'आमिक्षा'—

समन्तात् मेषति हिनस्ति इत्यामिक्षा । दया० उणा० । मेहति सिञ्चति वा सा आमिक्षा ।

आ श्रा॑वयेति॒ स्तो॒त्रिया॑ः प्रत्याश्रा॒वो॒ऽअनु॑रूपः ।
यजेति॑ धाय्यारू॒पं प्र॑गा॒था ये॑ यजाम॒हाः ॥ २४ ॥

विद्वान् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—('आ श्रावय' इति स्तोत्रियाः) 'आ श्रावय' इस प्रकार कहना यज्ञ में 'स्तोत्रिय' अर्थात् प्रथम तीन ऋचाओं के पाठ के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—(स्तोत्रियाः) विद्वान्, सत्यासत्य विवेकयुक्त विद्याओं के योग्य विद्यार्थी (आ श्रावय) 'हे गुरो सब विद्याओं को श्रवण कराओ' (इति) इस प्रकार प्रार्थना करें।

(प्रत्याश्रावो अनुरूपः) यज्ञ में प्रत्याश्राव 'अस्तु, श्रौषट' इस प्रकार कहना अनुरूप अर्थात् अन्त की तीन ऋचाओं के पाठ करने के समान है। इस प्रकार 'ब्रह्मयज्ञ' की यज्ञरूपता बतलाई है। राष्ट्रपक्ष में (प्रत्याश्रावः) विद्यार्थियों के प्रति विद्याओं का उपदेश (अनुरूपः) उनके योग्यता के अनुरूप हो।

(यज इति धाय्यारूपम्) 'यज' इस प्रकार कहना 'धाय्या' नाम ऋचा के पठन के समान है। राष्ट्रपक्ष में—(यज इति) 'प्रदान कर' इस प्रकार आदर से कहना (धाय्यारूपम्) धारण या ग्रहण कहने योग्य पदार्थ का उत्तम रूप है।

(प्रगाथाः ये यजामहाः) 'ये यजामहे' इत्यादि शब्द प्रगाथा ऋचाओं के पाठ के समान हैं। राष्ट्रपक्ष में—(ये) हम लोग (यजामहाः) यज्ञ दान आदि करते हैं, श्रेष्ठ आचारवान् हैं वे (प्रगाथाः) उत्तम स्तुति योग्य हैं।

अ॒र्ध॒ऽऋ॒चैरु॒क्थाना॑ᳬरू॒पं प॒दैरा॑प्नोति नि॒विदः॑ ।
प्र॒ण॒वैः श॒स्त्राणा॑ᳬरू॒पं पय॑सा॒ सोम॒ऽआप्यते ॥ २५ ॥

सोमः । भुरिगनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अर्ध-ऋचैः उक्थानां रूपं आप्नोति) अर्ध ऋचाओं द्वारा उक्थ नाम स्तोत्रों का रूप प्राप्त करता है। राष्ट्र में—समृद्ध स्तुतिवचनों से (उक्थानाम्) विशेष स्तुति योग्यों का स्वरूप प्राप्त होता है।

(पदैः निविदः आप्नोति) पदों द्वारा 'निविद्' ऋचाओं का ग्रहण करता है। राष्ट्र में—(पदैः) अधिकारसूचक पदों के द्वारा (निविदः) निखिल पदार्थों को प्राप्त करनेवाले ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त करता है।

(प्रणवैः शस्त्राणां रूपम् आप्नोति) यज्ञ में प्रणव अर्थात् ओंकारों द्वारा शस्त्रों अर्थात् स्तुतियुक्त मन्त्रों का स्वरूप प्राप्त करता है। राष्ट्र में—(प्रणवैः) प्रशंसनीय नवयुवकों द्वारा (शस्त्राणाम्) शस्त्रधारी पुरुषों का उत्तम स्वरूप प्राप्त करता है।

(पयसा सोमः आप्यते) 'पयस्' अर्थात् दुग्ध से यज्ञ में सोमलता के रस का रूप प्राप्त किया जाता है। राष्ट्र में—पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थ से ही (सोमः) समस्त राज्य पद, ऐश्वर्य, प्राप्त किया जाता है।

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम्।
वैश्वदेवꣳसरस्वत्या तृतीयमाप्तꣳसवनम् ॥ २६ ॥

यज्ञः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अश्विभ्याम्) अश्वियों से (प्रातःसवनम् आप्तम्) प्रातः सवन की तुलना है। (इन्द्रेण) इन्द्र ग्रह से (ऐन्द्रं माध्यंदिनम्) इन्द्र-देवताक माध्यंदिन सवन की तुलना है। (सरस्वत्या) सरस्वती द्वारा (तृतीयम्) तीसरे (वैश्वदेवं सवनम् आप्तम्) विश्वेदेव सम्बन्धी सवन की तुलना है। राष्ट्र में—'अश्वी' नामक पदाधिकारियों का स्थापन राष्ट्र के प्रातःसवन है। 'इन्द्र' पदाधिकारी का स्थापन माध्यंदिन सवन है। सरस्वती, वेदवाणी का प्रसार वैश्वदेव सायंसवन के समान है। सूर्य और चन्द्रवत् राष्ट्र के दो रक्षक 'अश्वी' राजा और अमात्य हैं। मध्याह्न में प्रखर सूर्यवत् राष्ट्र के बीच 'इन्द्र' प्रचण्ड सेनापति है। सायं रात्रि के समय नक्षत्रवत् उज्ज्वल विद्वान्गण हैं।

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥ २७ ॥
यज्ञः । भुरिगनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(वायव्यैः वायव्यानि आप्नोति) सोम और सौत्रामणी यज्ञों में वायव्य नामक पात्रों से वायव्यों की तुलना करे। (सतेन द्रोणकलशम् आप्नोति) बेंत के बने पात्र से सोमयाग के द्रोणकशल की तुलना है। (सुते कुम्भीभ्यां अम्भृणौ) सोम सवन हो जाने पर दो कुम्भियों से 'अम्भृण' नाम पात्रों की तुलना है। (स्थालीभिः स्थालीः आप्नोति) स्थाली पात्रों से स्थालीपात्रों की तुलना है। राष्ट्र में—वायु के समान वेगवान् सैनिकों द्वारा वेग के कार्यों को प्राप्त करता है। (सतेन) न्यायपूर्वक उचित भाग देने के व्यवहार से द्रोणकलशम् राष्ट्र को प्राप्त करता है। (सुते) राज्याभिषेक हो जाने पर जलाधार और धान्याधार दोनों प्रकार के (कुम्भीभ्याम्) पात्रों से (अम्भृणौ) प्रजा का पालन-पोषण दोनों कार्य करता है। (स्थालीभिः) स्थापन क्रियाओं से राष्ट्र की व्यवस्थापक शक्तियों को प्राप्त करता है।

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः ।
छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥ २८ ॥
यज्ञः । अनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—(यजुर्भिः [यजूंषि] आप्यन्ते) यजुओं से यजुओं की तुलना है (ग्रहा ग्रहैः) ग्रहों से ग्रहों की, (स्तोमाः [स्तोमैः]) स्तोमों से स्तोमों की और ([विष्टुतिभिः] च विष्टुतीः) विविध स्तुतियों से विविध स्तुतियों की और (छन्दोभिः छन्दांसि) छन्दों से छन्दों की (उक्थशस्त्रैः उक्थशस्त्राणि) उक्थ शस्त्रों से उक्थ शस्त्रों की, (साम्ना [साम, अवभृथेन] अवभृथः) साम गायन से साम गान की और अवभृथ स्नान की तुलना है। अर्थात् सौत्रामणि के ये अंश अन्य यज्ञों के उन अंशों के तुल्य हैं। राष्ट्रपक्ष में—जैसे यज्ञ में यजुर्वाक्य हैं उसी प्रकार राष्ट्र में (यजुः) व्यवस्थाकारक आज्ञा

और नियम हैं। यज्ञ में 'ग्रह' होम हैं राष्ट्र में (ग्रहाः) अंग प्रत्यंग, अधिकार विभाग हैं। यज्ञ में 'स्तोम' हैं राष्ट्र में, स्तुतियोग्य अधिकारपद हैं। यज्ञ में 'विष्टुति' ऋचाएं हैं राष्ट्र में योग्य पुरुषों की स्तुतियां हैं। यज्ञ में छन्द हैं राष्ट्र में अधिकार, कार्य-विभाग हैं। यज्ञ में 'उक्थशस्त्र' हैं राष्ट्र में वीर्यानुसार शस्त्र धारण हैं। यज्ञ में 'साम' हैं राष्ट्र में साम आदि उपाय हैं। यज्ञ में 'अवभृथस्नान' है राष्ट्र में प्रजा व भृत्यों के भरण-पोषण का कर्त्तव्य है।

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥ २९ ॥

इडा। निचृद् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(इडाभिः [इडाम्]) इडाओं से इडाओं की ([भक्षैः] भक्षान् आप्नोति) भक्षों से भक्षों की (सूक्तावाकेन [सूक्तवाकम्] सूक्तवाक से सूक्तवाक को, ([आशीर्भिः] आशिषः) आशीर्वादों से आशीर्वादों को (शंयुना [शंयुम्]) शंयु से शंयु को, (पत्नीसंयाजान् [पत्नीसंयाजैः]) पत्नीसंयाजों से पत्नीसंयाजों को (समिष्टयजुषा [समिष्टयजुः]) समिष्ट यजु से समिष्ट यजु को और ([संस्थया] संस्थाम्) संस्था से संस्था को (आप्नोति) प्राप्त करता है। अर्थात् सोमयाग के इडा आदि बिभागों से सौत्रामणी के इडा आदि विभागों की तुलना है। राष्ट्रपक्ष में—जैसे यज्ञ में 'इडा' है राष्ट्र में इडा, अन्न समृद्धि और भूमि हैं। यज्ञ में 'सोमभक्ष' हैं राष्ट्र में ऐश्वर्य, अन्न हैं। यज्ञ में 'सूक्तवाक' हैं, राष्ट्र में उत्तम वचन-प्रयोग हैं। यज्ञ में आशीर्वाद, राष्ट्र में आशीर्वादों के समान हैं। यज्ञ में 'शंयु' शांतिवचन है, राष्ट्र में भी प्रजा सुखकारक शांतिकर्म हैं। यज्ञ में 'पत्नीसंयाज', पत्नी के साथ मिलकर यज्ञ करना है, राष्ट्र में पालनशक्ति से समस्त प्रजाओं को सुखप्रदान रूप कर्म हैं। यज्ञ में 'समिष्ट यजु' राष्ट्र में समस्त विद्वानों और शासकों को सुसंगत कर योग्य वेतन आदि देना समिष्टयजु है। यज्ञ में संस्था' है। राष्ट्र में राजसभा आदि 'संस्था' या व्यवस्था है।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

यज्ञः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(व्रतेन) सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य आदि नियमपालन से (दीक्षाम् आप्नोति) पुरुष दीक्षा को प्राप्त करता है । (दीक्षया) दीक्षा से (दक्षिणाम् आप्नोति) दक्षिणा, प्रतिष्ठा और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है (दक्षिणा), प्रतिष्ठा से या शक्ति से (श्रद्धाम् आप्नोति) श्रद्धा, सत्य धारण करने की इच्छा को प्राप्त होता है । (श्रद्धया सत्यम् आप्यते) श्रद्धा से सत्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा से सत्य प्राप्त किया जाता है ।

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद् देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

यज्ञः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(देवैः) विद्वान् पुरुषों और (ब्रह्मणा) चारों वेदों ने (यज्ञस्य) यज्ञ कर्म का और राष्ट्र प्रजापालन रूप यज्ञ का और अध्ययन अध्यापन यज्ञ का भी (एतावद् रूपम्) इतना पूर्वोक्त क्रिया और इष्टियों सहित उज्ज्वल, एवं उत्तम स्वरूप (यत्) जो (कृतम्) वर्णन किया है (तत्) वह सब (सौत्रामणी यज्ञे सुते) सौत्रामणी नाम यज्ञ में अभिषवन करने पर भी (तत् एतत् सर्वम्) वह सब यज्ञ का स्वरूप (आप्नोति) प्राप्त होता है । (सौत्रामणी यज्ञे सुते) 'सुत्रामा' उत्तम रीति से त्राण, पालन करने वाले राजा के राष्ट्रपालन के निमित्त अभिषेक करने में भी यज्ञ का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध होता है । इसी प्रकार स्वाध्याय यज्ञ में सौत्रामणी यज्ञ अर्थात् यज्ञोपवीत आदि सूत्र जिस क्रिया में मणि, ग्रन्थि आदि रूप से धारण किये जायँ वह गुरु द्वारा किये शिष्योपनयन, वेदारम्भ अध्ययन अध्यापन आदि कार्य भी 'सौत्रामणी यज्ञ' हैं । उनमें शिष्य रूप सोम, ज्ञानरूप अमृत पान करता है । सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिन् इति सौत्रामणी । दयानन्दः ॥

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥३२॥

अश्विनौ, सरस्वती इन्द्रश्च । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(महिषाः) महान् पूजनीय पुरुष (सुरावन्तम्) राज्यलक्ष्मी च ज्ञानैश्वर्य से युक्त (बर्हिषदम्) आकाश में सूर्य के समान वृद्धिकर पूजनीय आसन और प्रजागण के ऊपर अधिष्ठाता रूप से विराजमान, (सुवीरम्) उत्तम प्राणों से युक्त, आत्मा के समान उत्तम वीर पुरुषों से युक्त (यज्ञम्) सब से पूजनीय, सबको सुव्यवस्थित, सुसंगत करने में कुशल, प्रजापति राजा व गुरु वा तेजस्वी ब्रह्मचारी को (नमोभिः) नमस्कारयुक्त आदरवचनों और शत्रुओं को नमाने में समर्थ शस्त्रबलों, वीर्यों से (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं और हम (देवतासु) विद्वान् पुरुषों के समूहों में, विद्वत्सभाओं में और (दिवि) राजसभा में (सोमम्) सब के प्रेरक और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (दिवि) आकाश में सूर्य के समान सर्वप्रकाशक, सर्वोपरि मार्गदर्शक के रूप में (दधानाः) धारण करते हुए (स्वर्काः) उत्तम अर्चना योग्य ज्ञान और अन्न आदि पदार्थों सहित (यजमानाः) उसकी सत्संगति लाभ कर और परस्पर सम्मिलित होकर (मदेम) स्वयं आनन्द लाभ करें और उन राजा आदि को भी (मदेम) तृप्त, प्रसन्न संतुष्ट करें । शत० १२ । ८ । १ । १ ॥

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

अश्व्यादयः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! (सुरया सुतस्य) उत्तम रूप से दान देने योग्य राज्यलक्ष्मी से अभिषिक्त हुए (सोमस्य) सबके प्रेरक (ते) तुझ राजा का (यः) जो (रसः) रस, बल, (ओषधिषु) रोगनिवारक ओषधियों, वीर्य को

३३—'०मश्विना इन्द्र' इति काण्व० ।

धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं में (संभृतः) एकत्र संगृहीत है (तेन) उस (मदेन) हर्षकारी बल से (यजमानम्) दानशील प्रजाजन को, (सरस्वतीम्) ज्ञानवती विद्वत्सभा को और (अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री पुरुषों को, दो मुख्य अधिकारी राजा रानी या और राजा मन्त्री दोनों को और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक सेनापति और (अग्निम्) ज्ञानवान् आचार्य एवं अग्रणी पुरुष को (जिन्व) तृप्त कर । अर्थात् प्रजाओं के धन से राजा वैश्यों को, विद्वानों को, प्रजा के स्त्री-पुरुषों और सेनापति आदि का पालन करे । शत० १२ । ८ । १ । ४ ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तꣳशुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳसोमꣳराजानमिह भक्षयामि ॥३४॥

सोमः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री और पुरुष सूर्य और चन्द्रवत् तापकारी और सौम्यस्वभाव के सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष दो अधिकारी और (सरस्वती) वेदवाणी से विज्ञ विद्वानों की सभा, (नमुचेः) कर आदि न देने वाले या दुर्भिक्षकालिक मेघ के समान प्रजा के निमित्त कुछ भी सुख प्रदान न करने वाले (आसुरात्) असुर, दुष्ट स्वभाव के राजा से (अधि) अधिक बलवान् (यम) जिस बलवान् पुरुष को (असुनोत्) अभिषिक्त करती है, राज्यपद पर बैठाती है (तम्) उस (इमम्) इस प्रत्यक्ष (शुक्रम्) बलवान् तेजस्वी, (मधुमन्तम्) अन्न आदि ऐश्वर्य और शत्रु-पीड़नकारी बल से युक्त, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यकारी या दुखी प्रजा के प्रति दयार्द्र (सोमम्) सन्मार्ग में प्रेरणा करने में समर्थ पुरुष को, (राजानम्) राजा रूप से (इह) इस राष्ट्र में (भक्षयामि) ऐश्वर्य के भोग का अधिकार प्रदान करता हूँ । शत० १२ । ८ । १ । ३ ॥

यह राजा का भोग ऐसा ही है जैसे ग्रहों का राशि भोग, अथवा व्यवहार में किसी के 'स्वास्थ्य का पान' प्रचलित है ।

यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

सोमः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र में (रसिनः) बलवान् (सुतस्य) अभिषिक्त राजा के (यत्) जिस (रिप्तम्) प्राप्त, क्रूर कर्म को (इन्द्रः) शत्रुनाशक सेनापति ने (शचीभिः) अपनी शक्तिशाली सेनाओं द्वारा (अपिबत्) स्वयं ग्रहण किया है (अहम्) मैं प्रजाजन, एवं राष्ट्र के शासक वर्ग सब (तत्) उसको (शिवेन मनसा) कल्याणमय शुभ चित्त से (अस्य) इस राष्ट्र के (राजानं सोमम्) सर्वशासक, ऐश्वर्यवान् राज्य के रूप में (भक्षयामि) भोग करता हूँ । अथवा, जो राष्ट्र का भाग प्रथम विजय के समय सेनापति के अधीन था जो पहले ऐश्वर्यांश सेना पर व्यय हो रहा था अब उसको विजय और अभिषेक के अनन्तर राजा को भोगने के लिये प्रदान करता हूँ । शत० १२ । ८ । १ । ५ ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥ ३६ ॥

पितरो देवताः । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(स्वधायिभ्यः) स्वधा, अन्न, जल या शरीर के पोषण योग्य वेतन स्वीकार करनेवाले (पितृभ्यः) राष्ट्र और प्रजा के पालक पुरुषों को (स्वधा नमः) अन्न, जल योग्य वेतन, आदर-सत्कार और अधिकार दिया जाय । (पितामहेभ्यः) उक्त पालकों के भी पालकों को और (प्रपितामहेभ्यः) उनसे भी ऊंचे पद पर विराजमान उनके भी पालक, शासकों और जो (स्वधायिभ्यः) अन्न, वेतन आदि ग्रहण करनेवाले हैं उनका (स्वधा नमः) अन्न, वेतन आदि से सत्कार किया जाय । राष्ट्र के शासकों में तीन श्रेणियां क्रम से उत्तरोत्तर अधिकार रक्खें ।

(पितरः) पालक पुरुष (अक्षन्) यह स्वीकार करें। (पितरः अमीमदन्त) पालक लोग तृप्त, सन्तुष्ट हों। (पितरः अतीतृपन्त) पालक जन प्रसन्न रहें। हे (पितरः) पालक पुरुषो! (शुन्धध्वम्) हम प्रजाजन को शुद्ध आचरण वाला, शत्रुरहित करो। शत० १२। ८। ७। ८॥

पिता, पितामह, प्रपितामह तीनों को पुत्र अन्न, वस्त्र आदि द्वारा पालन करें। उनको प्रसन्न रखें और वे सन्तानों को आशीष दिया करें।

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः। पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७॥

३७–५४ नवर्चं पावमानं सूक्तम्। सरस्वती। भुरिगष्टिः। मध्यमः॥

भा०—(सोम्यासः) ऐश्वर्य, राज्य कार्य में स्थित सोम राजा के समान शान्त, तेजस्वी (पितरः) पालक गुरु, आचार्य, विद्वान् ऋत्विग् आदि (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें। निन्दा योग्य असत् आचार से छुड़ाकर, शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करें। (पितामहाः मा पुनन्तु) पिता के समान पालकों के भी पालक, गुरुओं के गुरु, शासकों के शासक पुरुष मुझे पवित्र आचार वाला करें। (प्रपितामहाः पुनन्तु) उनके पूज्य लोग भी मुझे पवित्र बनावें। वे (पवित्रेण) पवित्र (शतायुषा) सौ वर्ष के पूर्ण दीर्घ जीवन से मुझे पवित्र करें। (पुनन्तु पिता०, पुनन्तु प्रपिता० पवित्रेण शतायुषा०) पूर्ववत्। जिसमें मैं (विश्वम्) समस्त, सम्पूर्ण (आयुः) जीवन का (व्यश्नवैः) भोग करूं। (३७–४५) शत० १२। ८। ९। १८॥

दिलीप वसिष्ठ से कहते हैं कि—

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम् ॥ रघुवंश १। ६३॥

जो मेरी प्रजाएं निर्भय, निरापद होकर पूर्ण आयु भोगती हैं उसमें आपका ब्रह्मतेज, सत् शिक्षा ही कारण है।

अग्न॒ऽआयू॑ᳬषि पवस॒ऽआ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः ।
आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म् ॥ ३८ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्वैखानसः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! विद्वन् ! राजन् ! पितः ! पितामह ! प्रपितामह ! तू (आयूंषि) दीर्घ जीवन और उसके घृत आदि पदार्थ और प्राणायाम आदि साधनों को (पवसे) प्रदान कर । (ऊर्जम्) परम उत्तम अन्नरस और पराक्रम, (इषम्) इच्छानुरूप फल अन्न आदि ऐश्वर्य (नः आसुव) हमें प्रदान कर । और (आरे) समीप और दूर के (दुच्छुनाम्) दुष्ट, प्रजाओं को कष्ट देने वाले शठ पुरुषों को पीड़ा को (बाधस्व) दूर कर ।

पुनन्तु॑ मा देवज॒नाः पु॒नन्तु॒ मन॑सा॒ धियः॑ ।
पु॒नन्तु॒ विश्वा॑ भू॒तानि॒ जात॑वेदः पुनी॒हि मा॑ ॥ ३९ ॥

देवजना विद्वांसः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(मा) मुझको (देवजनाः) विद्वान्, दानशील, गुरु, सूर्य आदि जन (पुनन्तु) पवित्र करें । (मनसा धियः) विचार करे मन, विज्ञान से युक्त, किये कर्म भी मुझे पवित्र करें । (विश्वा) समस्त (भूतानि) प्राणिगण और पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश आदि पदार्थ और हे (जातवेदः) विद्वान् और परमेश्वर ! ये सब (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें ।

प॒वित्रे॑ण पुनीहि मा शु॒क्रेण॑ देव॒ दीद्य॑त् ।
अग्ने॒ क्रत्वा॒ क्रतूँ॒१ऽ रनु॑ ॥ ४० ॥

ब्रह्म अग्निर्वा देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (देव) देव ! परमेश्वर, आचार्य ! हे (दीद्यत्) दीप्यमान ! तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवान् ! (मा) मुझको (शुक्रेण) शुद्ध, दीप्तिमय, (पवित्रेण) अपने पवित्र ज्ञान के उपदेश से (पुनीहि) पवित्र कर और (क्रत्वा) ज्ञान और उत्तम कर्म से (अनु) तदनुसार किये (क्रतून्) हमारे कर्मों, ज्ञानों को भी पवित्र कर ।

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तमन्त॒रा । ब्रह्म॒ तेन॑ पुनातु मा ॥४१॥

अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (अर्चिषि) शुद्ध तेज के (अन्तरा) बीच में (पवित्रम्) पवित्र, (ब्रह्म) ब्रह्म, वेद ज्ञान (विततम्) विस्तृत है (तेन मा पुनातु) उससे तू मुझे पवित्र कर । विद्वान् (अर्चिषि अन्तरा) ज्वाला के समान तेजस्वी मुख या जिह्वा पर (पवित्रं ब्रह्म विततम्) स्थित पवित्र ब्रह्म, वेदमन्त्रों के उपदेश से पवित्र करे । तेजस्वी राजा शुद्ध, पापशोधक तेज स्वीशासन में पवित्र, ब्राह्मणगण प्रजाजन को ज्ञान, सदाचार, उपदेश द्वारा पवित्र करे ।

पव॑मान॒ः सो ऽअ॒द्य नः॑ प॒वित्रे॑ण॒ विच॑र्षणिः ।
यः पोता॒ स पु॑नातु मा ॥ ४२ ॥

सोमो । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(यः) जो (अद्य) आज, नित्य ही, (विचर्षणिः) सब का सूर्य के समान द्रष्टा, (पवमानः) वायु और प्राण के समान सबका पवित्र कर्त्ता एवं व्यापक, (पोता) अग्नि के समान शोधक परमेश्वर, विद्वान् एवं राजा है (सः) वह (नः) हमें (पवित्रेण) ज्ञान और कर्म से (मा) मुझ राजा और प्रजा को (पुनातु) पवित्र करे ।

उ॒भाभ्यां॑ देव सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च ।
मां पु॑नीहि वि॒श्वतः॑ ॥ ४३ ॥

सविता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! हे (सवितः) सबके उत्पादक ! आप (पवित्रेण) पवित्र, शुद्ध ज्ञान, कर्म और (सवेन च) ऐश्वर्य, एवं राज्याभिषेक (उभाभ्याम्) दोनों से (माम्) मुझ अभिषेक योग्य राजा और प्रजाजन को भी (विश्वतः पुनीहि) सब प्रकार से पवित्र कर ।

वै॒श्व॒दे॒वी पु॑नती दे॒व्यागा॒द्यस्या॑मि॒मा ब॒ह्व्य॒स्त॒न्वो॑ वी॒तपृ॑ष्ठाः ।
तया॒ मद॑न्तः सध॒मादे॑षु व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम् ॥ ४४ ॥

विश्वेदेवाः । विराट त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(देवी) उत्तम कार्यों का प्रकाश करने वाली, (वैश्वदेवी) समस्त शासकों और विद्वानों की महासभा (पुनती) समस्त राज्य को पवित्र करती हुई, सत्यासत्य, धर्माधर्म का चलनी या सूप के समान विवेक करती हुई, (आगात्) प्राप्त हुई है। (यस्याम्) जिसमें (बह्व्यः) बहुत से (इमाः) ये (वीतपृष्ठाः) कमनीय स्वरूप वाले, ज्ञान प्राप्त किये, तेजस्वी (तन्वः) शरीर अर्थात् शरीरधारी जन विद्यमान हैं (तया) उससे (सधमादेषु) एकत्र आनन्दोत्सवों के अवसरों पर (मदन्तः) प्रसन्न और हर्षित होते हुए (वयम्) हम सब (रयीणां पतयः) ऐश्वर्यों के पालक, स्वामी (स्याम) हों। विशेष अवसरों पर प्रजाजनों के प्रतिनिधि, बड़े आदमी, अधिकारी आदि की महासभा उन्नति के विषयों पर विचार करें। इसी प्रकार (वैश्वदेवी) समस्त स्त्रियों में अधिक विद्यासम्पन्न विदुषी आचार्याणी प्राप्त हो। (यस्याम्) जिसके अधीन (बह्व्यः) बहुत सी (वीतपृष्ठाः) प्रश्न करने में कुशल जिज्ञासु, विद्यार्थिनी कन्याएं हों उनके द्वारा हम प्रजाजन (सधमादेषु) गृहस्थ के कार्यों में भी अति सुख प्राप्त करें और ऐश्वर्यों के स्वामी हों। इसी प्रकार (वीतपृष्ठाः) उपवीत, यज्ञोपवीत धारण किये ब्रह्मचारी (वैश्वदेवी) वैश्वदेवी वेदवाणी में दीक्षित हों हमारी उसी वेदवाणी से ज्ञान और धन प्राप्त करें।

ये स॒मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यम॒राज्ये॑ ।
तेषां॑ लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् ॥ ४५ ॥

पितरो देवताः । निचृद् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यमराज्ये) नियन्ता के राज्य में (ये) जो (समानाः) समान मान वाले, (समनसः) समान सहयोगी चित्त वाले, (पितरः) राज्य के पालक, अधिकारी जन हैं (तेषाम्) उनको (लोकः) रहने का निवासस्थान और (स्वधाः) भरण पोषण योग्य अन्न, वस्त्र, वेतन और (नमः) सत्कार प्राप्त हो। जिससे (यज्ञः) न्याय, प्रजापालन, सुसंगत राज्यव्यवस्था

(देवेषु) विद्वानों, शासकों और माण्डलिकों के बीच और भी दृढ़ और उत्तम हो। शत० १२। ८। १। १९ ॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः।
तेषाᳬश्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतᳬसमाः ॥ ४६ ॥

आशीः। श्रीर्देवता। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—(जीवेषु) जीवित मनुष्यों में से (ये) जो (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीवित सम्बन्धी, (समानाः) मेरे समान मान वाले और (समनसः) मेरे समान ज्ञान और चित्त वाले जन हैं (तेषाम्) उनकी (श्रीः) शोभा, सम्पत्ति (अस्मिन् लोके) इस लोक में (शतं समाः) सौ वर्ष, आयु भर (मयि कल्पताम्) मेरे में, मेरे अधीन, मेरे निमित्त सदा बनी रहे। उनके समान धन-ऐश्वर्य मेरा भी रहे। शत० १२। ८। १।२० ॥

द्वे सृतीऽअशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥४७॥

पितरो देवताः। स्वराट् पंक्तिः। पचमः ॥

भा०—(अहम्) मैं (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के लिये, उनके जीवन व्यतीत करने के (द्वे सृती) दो मार्ग (अशृणवम्) श्रवण करता हूँ। (पितृणाम्) एक पितरों का पितृयाण मार्ग (उत) और दूसरा (देवानाम्) देव, विद्वान् मुमुक्षुओं का (यत्) जो भी (पितरं मातरं च अन्तरा) पिता और माता दोनों के बीच, संसर्ग से उत्पन्न (इदम्) यह (विश्वम्) समस्त (एजत्) चर, संसार है वह (ताभ्याम्) उन दो मार्गों से ही (सम्-एति) सुखपूर्वक प्रयाण करता है। शत० १२। ८। १। २१ ॥

अथवा—जीवों के दो उत्तम मार्ग सुने जाते हैं। एक 'देवयान' मार्ग और दूसरा 'पितृयाण' मार्ग। (उत) और तीसरा (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा जीवों का मार्ग है उक्त दोनों से जीव संसार उत्तम लोक को प्राप्त होता है।

छान्दोग्य में तीन मार्ग बतलाये हैं:, जैसे—(१) तद् य इत्थं विदुः ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्ति स एनान् ब्रह्म गमय-

त्येष देवयानः पन्थाः ॥ (२) अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्त्ते दत्तम् इत्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति (३) अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न। तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीयं स्थानं तेनासौलोको न संपूर्यते।

(१) जो ज्ञान प्राप्त करते हैं और अरण्य में श्रद्धा और तपरूप से ब्रह्म की उपासना करते हैं वे प्रकाश को प्राप्त होते हैं, वह उन्हें ब्रह्म को प्राप्त कराता है यह देवयानमार्ग है। (२) जो नगर, ग्राम में इष्ट आपूर्त्त, यज्ञ कूपादि निर्माण में दान धर्म की उपासना करते हैं वे 'धूम' को प्राप्त होते हैं यह पितृयाणमार्ग है। (३) जो इन दोनों से भिन्न मार्ग से जाते हैं, वे जीव क्षुद्र जन्तु हैं जो बार-बार आते हैं, वे 'जायस्व म्रियस्व' कहाते है। उनसे यह लोक पूर्ण नहीं होता।

इदं हविः प्रजननं म अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

अग्निर्देवता। निचृदष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—(इदम्) वह (मे) मेरे (हविः) आदान, ग्रहण करने योग्य अन्न, वा दान करने और गर्भ में स्त्री द्वारा स्वीकार करने योग्य (प्रजननम्) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाला वीर्य (दशवीरम्) दश पुत्र उत्पन्न करने वाला, अथवा दशों प्राणयुक्त (सर्वगणम्) सर्व अंगों में व्यापक, अथवा सब उत्तम गुणों और अंगों से पूर्ण, सर्वाङ्गसुन्दर होकर (स्वस्तये) कल्याण के लिये हो। वह (आत्मसनि) अपने देह में बल धारण करने वाला, (प्रजासनि) प्रजा देने वाला, (पशुसनि) पशुओं और प्रजागण का बलदाता, (लोकसनि) लोक आत्मा को बल और तेज, देने वाला और (अभयसनि) अभय देने हारा हो। (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, पति (मे) मेरी (बहुलां प्रजाम्) बहुत सी प्रजाओं को (करोतु)

उत्पन्न करे और हममें (अन्नम्) अन्न, (पयः) पुष्टिकारक दुग्ध आदि पदार्थ और (रेतः) वीर्य को भी (धत्त) धारण करावे। शत० १२।८।१।२२॥

राष्ट्र में—'दशवीर' शरीर में दश प्राणों के समान दश वीर नेताओं से युक्त समस्त प्रजाजन को सुखी कल्याण युक्त करे। वह (हविः) कर द्वारा प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य राजा के स्वतः भोग योग्य और प्रजा, पशु, अन्य लोकों का भी आश्रय देनेवाला या उनको पुष्ट करने वाला हो। 'अग्नि' अग्रणी, वीर नेता सेनापति प्रजाओं की वृद्धि करे और राष्ट्र में अन्न (पयः) दूध आदि पशु सम्पत्ति और (रेतः) वीर्य, बल की वृद्धि करे॥

उदीरतामवर ऽउत्परास ऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं यऽईयुरवृका ऽऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु॥ ४९॥

ऋ० १०। १५। १॥ ४१—६१—शंखो यामायनः ऋषिः। पितरः। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—(अवरे) निकृष्ट, श्रेणी के, (परासः) उत्कृष्ट श्रेणी के और (मध्यमाः) बीच की श्रेणी के (सोम्यासः) राजा के अधीन रहने वाले, राष्ट्र के हितकारी, उत्तम स्वभाव के (पितरः) राज्य के पालक जन, (उद् उद् उद् ईरताम्) उन्नति को प्राप्त हों और राष्ट्र की उन्नति करें। (ये) जो (ऋतज्ञाः) सत्य व्यवहारों एवं ऋत, सत्य व्यवस्था नियमों के विज्ञ और (अवृकाः) भेड़िये या चोर के समान प्रजा घातक और धन के चोर न होकर (असुम्) प्राण को (ईयुः) धारण करते हैं, ईमानदारी से जीवन व्यतीत करते हैं (ते) वे (पितरः) पालक जन (नः) हमारी (हवेषु) संग्रामों में (अवन्तु) रक्षा करें।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वाऽअथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयꣳसुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥ ५०॥

शंखो यामायनः। पितरः। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(नः) हमारे (पितरः) पालन करनेवाले, पिता के समान पूजनीय, (अंगिरसः) अग्नि और अंगारों के समान तेजस्वी, दुष्टों के संता-

पक, (नवग्वाः) नवीन या स्तुति योग्य उत्तम-उत्तम वाणियों, ज्ञानों का उपदेश करनेवाले, (अथर्वाणः) अहिंसक, शत्रु से कभी परास्त न होने वाले, (भृगवः) दुष्ट पुरुषों को भूनने वाले स्वयं परिपक्व ज्ञानी, तेजस्वी, (सोम्यासः) सौम्य, सोम अर्थात् राष्ट्र के हितकारी हैं। (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) यज्ञ, राष्ट्र व्यवस्था करनेहारे पुरुषों की (सुमतौ) शुभ मति और (भद्रे सौमनसे) कल्याणकारी, सुखप्रद शुभचित्तता में (वयम्) हम सदा (स्याम) रहा करें।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवीछंष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१॥

ऋ० १० । १५ । ८ । शंखो यामायनः पितरः । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के या पूर्ण सामर्थ्य वाले, (पितरः) पालक पिता, गुरु, आचार्य आदि (वसिष्ठाः) अति अधिक ऐश्वर्यवान्, (सोम्यासः) सोम, राज्यैश्वर्य के हितकारी होकर (सोमपीथम्) राज्य, ऐश्वर्य या राजपद के पालन एवं भोग को (अनु-ऊहिरे) अनुकूल रहकर राज नियमानुसार राज्य कार्यों के भार उठाते हैं (यमः) नियन्ता राजा, पुत्र के समान (उशद्भिः) नाना कामनाएं करनेहारे (तेभिः) उनके साथ स्वयं भी (उशन्) कामना या कान्तिमान्, तेजस्वी होकर (हवींषि संरराणः) अन्न आदि भोग्य पदार्थों का दान करता एवं स्वयं भी भोगता हुआ (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामना योग्य भोग को (अत्तु) प्राप्त करें।

त्वछं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वछं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ ५२ ॥

ऋ० १० । ६१ । १ ॥ शंखो यामायनः । पितरः । स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (सोम) सर्व आज्ञापक अभिषेकयुक्त, राजन्! विद्वन्! हे (प्रचिकितः) उत्कृष्ट ज्ञानवान्! (त्वम्) तू (मनीषा) अपनी बुद्धि से (रजिष्ठम्) अति सरल (पन्थाम्) मार्ग पर (नेषि) ले चल (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम शासन नीति में हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन्! चन्द्र के समान,

दयार्द्र एवं शीतलस्वभाव ! (धीराः) बुद्धिमान् धैर्यवान् (पितरः) प्रजापालक जन, पुत्र के शासन में पिताओं के समान (देवेषु) राजाओं और ज्ञानवान् विद्वानों के बीच (रत्नम्) रमण करने योग्य श्रेष्ठ पद (अभजन्त) प्राप्त करें ।

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँ ऽरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥५३॥

ऋ० ९ । ९६ । ११ ॥ शंखः । पितरः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! हे (पवमान) वायु या सूर्य के समान शुद्ध करने हारे ! (हि) क्योंकि (त्वया) तेरे द्वारा ही (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के या विद्याओं में पूर्ण (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पालक पुरुष भी (कर्माणि) समस्त कार्य (चक्रुः) करते हैं । तू स्वयं (अवातः) किसी से पीड़ित और कम्पति न होकर, (वन्वन्) राष्ट्र का भोग व सेनाओं को उचित स्थानों पर विभक्त करता हुआ (परिधीन्) चारों तरफ स्थित शत्रुओं को (अप ऊर्णु) दूर हटा दे । और (वीरेभिः अश्वेभिः) वीर, अश्वारोहियों द्वारा (नः) हमारे लिये (मघवा) परम ऐश्वर्यवान् (भव) हो ।

त्वꣳ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी ऽआ ततन्थ ।
तस्मै त ऽइन्दो हविषा विधेम वयꣳस्याम पतयो रयीणाम् ॥५४॥

ऋ० ८ । ४८ । १३ ॥ शंखः । सोमः । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (सोम) सोम ! राजन् ! (त्वम्) तू (पतृभिः) राष्ट्रपालक शासकों एवं राजसभा के पुरुषों से (संविदानः) सहमति करता हुआ (अनु) तदनुसार (द्यावापृथिवी) सूर्य, पृथिवी के समान राजशक्ति और प्रजागण को (आततन्थ) विस्तृत कर । हे (इन्दो) चन्द्र के समान प्रिय ! (ते तस्मै) उस तुझे हम (हविषा) स्वीकार और प्रदान करने योग्य आदर, पुरस्कार द्वारा (विधेम) सत्कार करें, और (वयम्) हम (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों ।

बर्हिषदः पितरऽऊत्युर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ५५ ॥

ऋ० १० । १५ । ४ ॥ शंखः । पितरः । भुरिक् पांक्ति । पंचमः ॥

भा०—हे (बर्हिषदः) प्रजाओं पर शासकरूप से एवं उत्तम आसनों, पदों पर स्थित (पितरः) पालक जनो ! (वः) आप लोगों के लिये (इमा हव्या) इन अन्न आदि भोग्य पदार्थों को हम (चकृम) उत्पन्न करते हैं । आप लोग (ऊत्या) रक्षा के निमित्त (जुषध्वम्) उनको ग्रहण करें । (ते) वे आप लोग (शंतमेन) अति अधिक शान्तिदायक, सुखकारी (अवसा) रक्षण सामर्थ्य से (आगत) आओ (नः) हमें (शम्) शान्ति, सुख, (योः) और कष्टों का निवारण कर (अरपः) पाप और दुःख से रहित, सदाचार और सुख (दधात) प्रदान करो ।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ऽअवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्तऽइहागमिष्ठाः ॥५६॥

ऋ० १० । १५ । ३ । शंखः । पितरः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अहम्) मैं (सुविदत्रान्) उत्तम, विविध शुभ ज्ञानों के देने और जानने वाले (पितॄन्) पिता के समान पूजनीय, गुरु आदि पालक पुरुषों को (आ अवित्सि) प्राप्त करूं और (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (नपातं च) अविनाशी, सामर्थ्य और (विक्रमणं च) विविध व्यापक सृष्टिक्रम को भी (आ अवित्सि) जानूं और (ये) जो (बर्हिषदः) महान् ब्रह्म में ही स्थित ब्रह्मिष्ठ पुरुष (स्वधया) आत्मधारण शक्ति से (सुतस्य) स्वयं निष्पादित, (पित्वः) पान योग्य, परमानन्द, रसस्वरूप आत्मा या ब्रह्म का (भजन्ते) सेवन करते हैं । (ते इह) वे इस राष्ट्र या गृह में (आ अगमिष्ठाः) आवें ।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त ऽआ गमन्तु त ऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५७॥

ऋ० १० । १५ । ५ ॥ शंखः पितरः । निचृत् पांक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(सोम्यासः) सोम, राष्ट्र, ऐश्वर्य एवं राजा के हित, चाहने वाले (पितरः) पालक जन (बर्हिष्येषु) प्रजाओं के संगृहीत उत्तम पदार्थों वा आसनों के योग्य उत्तम सज्जनों में व (प्रियेषु) प्रिय, अतिमनोहर (निधिषु) धन केशों के आधार पर (उपहूताः) निमन्त्रित हैं। (ते) वे (आगमन्तु) आवें, (ते) वे (इह) राष्ट्र में (श्रुवन्तु) हमारे बचन सुनें। (ते अधि ब्रुवन्तु) वे अधिष्ठाता होकर आज्ञा और उपदेश दें। (ते) वे (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५८॥

शंखः। पितरः। विराट् पंक्ति। पंचमः॥

भा०—(नः) हमारे (सोम्यासः) राष्ट्र समृद्धि और ऐश्वर्य के इच्छुक (अग्निष्वात्ताः) अग्नि, अग्रणी रूप में स्वात्त, स्वीकृत, अथवा अग्रणी, ज्ञानी, विद्वान्, आचार्य आदि पदों को प्राप्त वा अग्निवत् तेजस्वी राजा द्वारा स्वीकृत होकर (पितरः) पालक जन (देवयानैः) देवों, विद्वानों से चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से, (आ यन्तु) आवें। (ते) वे भी (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में, ज्ञानमार्ग एवं प्रजापालन के कार्य में (स्वधया) अन्न आदि वेतनों द्वारा (मदन्तः) तृप्त, संतुष्ट होकर (अधि ब्रुवन्तु) शासक होकर आज्ञा करें और (अस्मान्) हमें (अवन्तु) दुष्ट पुरुषों के आघात से बचावें।

अग्निष्वात्ता पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥५९॥

शंखः। पितरः। निचृद् जगती। निषादः॥

भा०—हे (अग्निष्वात्ताः पितरः) पूर्वोक्त अग्निष्वात्त, अग्रणी रूप से राजा द्वारा स्वीकृत पालक पुरुषो! आप लोग (इह आगच्छत) यहां आओ और (सुप्रणीतयः) उत्तम मार्ग से ले जाने एवं न्याय और राजनीति के वर्तने में कुशल (सदः सदः सदत) अपने-अपने पृथक् घरों और एवं राजसभाओं में विराजमान होओ और (प्रयतानि) नियम पूर्वक,

नियत (हवींषि) स्वीकार योग्य अन्न आदि वेतनों को (अत्त) भोग करो। (अथा) और (बर्हिषि) विशाल राष्ट्र पर (सर्ववीरम् रयिम्) समस्त वीरों के उत्पादक ऐश्वर्य को (दधातन) धारण करो ।

ये ऽअग्निष्वात्ता ये ऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

शंखः । पितरः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अग्रणी, सेनापति, न्यायाधीश, आदि पदों पर स्थित, अग्नि आदि विज्ञान के वेत्ता वा राजा से स्वीकृत हैं और (ये) (अग्निष्वात्ता) जो मुख्य पदों पर नहीं स्थित वा जिनको राजा से नहीं चुने गये प्रत्युत प्रजा द्वारा चुने गये हैं, और जो (मध्ये दिवः) ज्ञान प्रकाश से युक्त, राजसभा के बीच (स्वधया) ज्ञान और वाक् धारणा, शक्ति और सामर्थ्य से (मादयन्ते) आनन्द प्रसन्न रहते और अन्यों को ज्ञान से तृप्त करते हैं । (तेभ्यः) उनके लिये भी (स्वराड्) स्वयं सर्वोपरि विराजमान, सूर्य के समान तेजस्वी बड़ा राजा (यथावशम्) यथाशक्ति, वश करने वाली शक्ति से (असुनीतिम्) प्राण धारण कराने वाली (तन्वम्) शरीरवृत्ति को (कल्पयाति) करे ।

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं यऽ आशुः। ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳस्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥

शंखः । पितरः । त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो (नाराशंसे) उत्तम पुरुषों के प्रशंसा योग्य सत्कार व्यवहार में (सोमपीथम्) राज्यैश्वर्य के पालन के पदाधिकारी को (आशुः) प्राप्त करते हैं उन (अग्नि-स्वात्तान्) अग्रणी, तेजस्वी पद को प्राप्त या सेनानायकों द्वारा स्वीकृत विद्वान् (ऋतुमतः) क्षात्र-बल के स्वामी पुरुषों को (हवामहे) आदर से बुलावें । (ते) वे (विप्रासः) मेधावी, विद्वान् पुरुष (नः) हमें (सु-हवाः) उत्तम समृद्धि के देने वाले (भवन्तु) हों । और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्यों के स्वामी बनें । 'ऋतुमतः—या षड् विभू-

लयः ऋतवस्ते। जै० १।२।१।१॥ ऋतव उपसदः श० १०।२।५॥ तदस्य ऋतवोऽभवन्। तै० ३।१२।९।४॥ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य। ऐ० १।३॥ ऋतव एते यदृतव्याः। क्षत्रं वा ऋतव्याः; विश इमा इतरा इष्टकाः॥ श० ७।१।१।७२॥ विभूतियाँ उपसद् अर्थात् उपसभाएं, या मोर्चे, राजाओं के सम्बन्धी जन, राजसभा के सदस्य और क्षत्रिय पदाधिकारी ये सब 'ऋतु' कहाते हैं।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे।
मा हिᳬसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्वऽआगः पुरुषता कराम ॥६२॥

ऋ० १०। १५। ६॥ शंखो यामायनः। ६३—७१ पितरो देवताः।
त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(जानु) गोड़े को (आच्य) संकोच कर सभ्यतापूर्वक (दक्षिणतः) दायें तरफ (निषद्य) बैठकर (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ, सब राष्ट्र को सुसंगत करने वाले प्रजापालक राजा को लक्ष्य करके (विश्वे) आप लोग सब (अभिगृणीत) अपना-अपना वक्तव्य प्रकट करो। हे (पितरः) प्रजा के पालक पुरुषो! (यद्) जब हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता = पुरुषतायाम्) पुरुषार्थ करते हुए, वा सामान्य मनुष्य होने से (आगः) अपराध भी (कराम्) कर दें। (केनचित्) किसी भी प्रकार से (नः) हमें (मा हिंसिष्ट) मत मारो।

आसीनासो ऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त ऽइहोर्जं दधात ॥६३॥

ऋ० १०। १५। ७॥ शंखः। पितरः। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (पितरः) पालक पिता लोगो! आप लोग (अरुणीनाम्) गौर वर्ण, तेजस्वी, एवं गौओं के समान प्रिय, मनोहर मातृजनों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुए (दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त) दानशील त्यागी पुरुष को ऐश्वर्य प्रदान करो। हे (पितरः) पालक, पिता जनो!

(पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (तस्य वस्वः) वह २ धन प्रदान करो। (ते) वे आप लोग (इह) इस गृहाश्रम में रहकर (ऊर्जम्) बल पराक्रम के गुण (दधात) धारण करो।

राजपक्ष में—(अरुणीनाम्) लाल ऊन की गद्दियों के (उपस्थे) पीठ पर या भूमियों पर अधिकारी रूप से (आसीनासः) बैठे हुए आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (रयिं धत्त) ऐश्वर्य, भूमि आदि अधिकार प्रदान करो। (पितरः पुत्रेभ्यः) पुत्रों को जिस प्रकार पिता लोग अपनी-अपनी जायदाद देते हैं उसी प्रकार आप लोग (तस्य वस्वः) वे वे नाना धन प्रजाओं को (प्रयच्छत) प्रदान करो। (ते) वे आप लोग (इह) इस राष्ट्र में, या इस राजा के अधीन, इसके निमित्त (ऊर्जम्) बल, पराक्रम (धत्त) धारण करो।

यम॑ग्ने कव्यवाहन॒ त्वं चि॒न्मन्य॑से र॒यिम् ।
तन्नो॑ गी॒र्भिः श्र॒वाय्यं॑ देव॒त्रा प॑नया यु॒जम् ॥ ६४ ॥

शंखः । अग्निः । विराट् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रणी नेतः! राजन्! हे (कव्यवाहन) विद्वान्, कवि, पुरुषों के देने योग्य ऐश्वर्य वा स्तुत्य गुणों के धारण करने हारे! (त्वम्) तू (यम्) जिस (रयिम्) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान को, (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (श्रवाय्यम्) सुनाने योग्य, प्रशंसनीय, (देवत्रा) देव विद्वानों को (युजम्) देने योग्य (चित्) ही (मन्यसे) मानता है (तत्) उसको (नः) हमें (पनय) प्रदान कर।

योऽअ॒ग्निः क॑व्य॒वाह॑नः पि॒तॄन्यक्ष॑दृता॒वृधः॑ ।
प्रेदु॑ ह॒व्यानि॑ वोचति दे॒वेभ्य॑श्च पि॒तृभ्य॒ऽआ ॥ ६५ ॥

ऋ० १० । १६ । ११ । शंखः । अग्निः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) ज्ञानवान्, विद्या से प्रकाशमान, (कव्यवाहनः) विद्वान् मेधावी पुरुषों के योग्य ज्ञानवचनों को धारण करने हारा,

(ऋत-वृधः) सत्य ज्ञान बढ़ाने वाले, (पितॄन्) पालक पुरुषों को (यक्षत्) पूजा सत्कार करता है। और (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का (देवेभ्यः) ज्ञानवान् पुरुषों और (पितृभ्यः) पालक पुरुषों के भी (आ आ प्रवोचत्) सर्वत्र उपदेश करता है।

त्वम॑ग्न ऽईडि॒तः क॑व्यवाहना॒ वा॑ड्ढ॒व्या॒नि॑ सु॒र॒भीणि॑ कृ॒त्वी। प्रादाः॑ पि॒तृभ्यः॑ स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ ॥ ६६ ॥

शंखः। अग्निर्देवता। निचृद्। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! ज्ञानवान्! हे (कव्यवाहन) विद्वानों के योग्य कर्मों और सामर्थ्यों को धारण करने वाले! (त्वम्) तू (ईडितः) स्तुति को प्राप्त होकर (हव्यानि) अन्न आदि पदार्थों को (सुरभीणि कृत्वा) उत्तम सुगन्ध युक्त, अन्नों के समान सुखजनक करके (अवाट्) ग्रहण कर और (पितृभ्यः) पालक जनों को भी (प्रादाः) प्रदान कर। (ते) वे लोग (स्वधया) देह के पोषणकारी अन्न और वेतन रूप से उसका (अक्षन्) भोग करें और (त्वम्) तू हे (देव) देव! राजन्! (प्रयता) उत्तम रीति से साधित अन्न आदि के समान उन (हवींषि) संग्रह योग्य कर आदि पदार्थों को (अद्धि) प्राप्त कर।

**ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ२ऽउ॑ च॒ न प्र॑वि॒द्म।
त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञꣳसुकृ॑तं जुषस्व ॥ ६७ ॥**

शंखः। पितरः। विराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(ये च पितरः) जो पालक जन, शासक (इह) यहां विद्यमान हैं (ये च) और जो (न इह) यहां नहीं हैं, (यान् च विद्मः) जिनको हम जानते हैं और (यान् उ च न प्रविद्म) जिनको हम नहीं भी जानते हैं, हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन्! हे विद्वन्! (ते) (यति) जितने भी हों (त्वम् उनको (वेत्थ) जान और (स्वधाभिः) योग्य अन्न आदि देहपोषक सामग्रियों से (सुकृतम्) उत्तम रूप से सम्पादित (यज्ञम्) प्रजापालनरूप 'यज्ञ' को (जुषस्व) सेवन कर।

इदं पितृभ्यो नमोऽअस्त्वद्य ये पूर्वासो य ऽउपरासऽईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥६८॥

शंखः । पितरः । स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(अद्य) आज विशेष दिन (ये पूर्वासः) जो पूर्व के हमारे पहले के और हमसे पूर्व नियुक्त हैं और (ये) जो (उ-परासः) अपने कार्य की अवधि समाप्त करके वनस्थ व संन्यस्त होकर, (ईयुः) चले गये हैं उन (पितृभ्यः) पालक पुरुषों के निमित्त (इदं नमः) यह नमस्कार, आदर एवं अन्न आदि (अस्तु) प्राप्त हो। और (ये) जो (पार्थिवे रजसि) पृथिवी लोक में (आ निषत्ताः) अधिष्ठाता रूप से हैं (ये वा) और जो (नूनम्) निश्चय से (सु-वृजनासु) उत्तम बल और आचार वाली (विक्षु) प्रजाओं पर (आ-निषत्ताः) अधिष्ठाता रूप से हैं उनको भी (इदं नमः अस्तु) यह अन्न, वेतन आदर प्राप्त हो।

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासोऽ अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ६९

ऋ० ४ । २ । २६ ॥ शंखः । पितरः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (अध) और (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारे (परासः) पर, उत्कृष्ट पद को प्राप्त (प्रत्नासः) पूर्व के (पितरः) गुरु जन (शुचि) शुद्ध, पवित्र (ऋतम्) सत्य, परम ज्ञान को (आशुषाणाः) प्राप्त हुए और (उक्थशासः) ज्ञानोपदेश करते हुए (क्षामाः भिन्दन्तः) विनाशकारिणी नीच प्रवृत्तियों को भेदते हुए, वा भूमियों पर कृषि करते हुए किसान के समान (दीधितिम्) पोषक अन्नवत् ज्ञान या आदित्यस्वरूप परमेश्वर को (अप व्रन्) प्राप्त होते हैं; और (अप) सुदूरवर्त्ती (अरुणीः) प्रकाशमय उच्चकोटि की भूमियों को (व्रन्) प्राप्त होते हैं।

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत ऽआवह पितॄन्हविषे ऽअत्तवे ॥ ७० ॥

ऋ० १० । १६ । १२ । पितरः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! पुत्र के समान प्रिय राजन् ! हम लोग (उशन्तः) कामना करते हुए (त्वा) तुझको (नि धीमहि) राज्यासन पर स्थापित करते हैं। और (उशन्तः) कामनावान् होकर ही (सम्-इधीमहि) सब मिल कर तुझे अग्नि के समान नित्य प्रदीप्त अर्थात् अधिक तेजस्वी करते हैं। तू (उशन्) स्वयं भी यश और अर्थ की कामना करता हुआ (उशतः) कामना वाले (पितॄन्) राज्य के पालक हम लोगों को (हविषे अत्तवे) अन्न, कर आदि ग्राह्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (आ वह) चल।

अ॒पां फेने॑न॒ नमु॑चेः॒ शिर॑ऽ इन्द्रोद॑वर्तयः।
विश्वा॒ यदज॑य॒ स्पृधः॑ ॥ ७१ ॥

ऋ० ८। १४। १३ ॥ इन्द्रो देवता। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! शत्रुविदारक ! वीर सेनापते ! राजन् ! (यत्) जब तू (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) संग्राम में प्रतिस्पर्धा करने वाली शत्रु-सेनाओं को (अजयः) विजय करता है तब (अपां फेनेन) जिस प्रकार सूर्य, वायु या विद्युत् वर्षा योग्य जलों की वृद्धि करके (नमुचेः) जल न छोड़ने वाले मेघ के (शिरः) घनीभूत भाग को (उत् अवर्त्तयः) छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार राजा भी (अपाम्) प्रजा और आप्त पुरुषों के (फेनेन) बल की वृद्धि करके उससे (नमुचेः) आग्रह और संग्राम भूमि को छोड़ने वाले शत्रु के (शिरः) शिर, सेना के मुख्य भाग को (उद् अवर्त्तयः) काट डाल। 'उद् अवर्त्तयः'—उत् पूर्वो वृतिधातुश्छेदनेऽर्थे वर्त्तते इति उवटः। 'फेनः'—स्फायतते वर्धते इति फेनः। दया० उणा०।

सोमो॒ राजा॒मृत॑ꣳ सु॒तऽ ऋ॑जी॒षेणा॑जहान्मृ॒त्युम्। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७२ ॥

७२—७९—अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः। ग्रहाः, सोमश्च। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(सोमः) सर्वप्रेरक (राजा) राजा, सबसे ऊपर विराजमान पुरुष भी (सुतः) राजपद पर अभिषिक्त होकर (अमृतम्) अमृत, अखण्ड

राज्य को पाता है। वह (ऋजीपेण) सरल, धर्मानुकूल आचरण से, अथवा संगृहीत प्रभूत धनकोप और सेनाबल द्वारा (मृत्युम्) प्रजा और राजा पर आने वाले मृत्यु अर्थात् प्राणसंकट को (अजहात्) दूर करता है। (ऋतेन), सत्य, वेदज्ञान से (सत्यम्) सच्चे (वि-पानम्) विविध प्रकार से राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ (इन्द्रियम्) राजोचित ऐश्वर्य, बल और (अन्धसः) अन्न के (शुक्रम्) शुद्ध, सारभूत वीर्य और (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् सेनापति के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (इदम्) इस प्रत्यक्ष (पयः) पुष्टिकारक अन्न, (अमृतम्) दीर्घजीवन या उत्तम जल और (मधु) मधुर पदार्थ को प्राप्त करता है। अध्यात्म में—सोम राजा ज्ञानी पुरुष योग आदि द्वारा ज्ञानसम्पन्न शुद्ध-बुद्ध होकर अमृतपद लाभ करता है और मृत्यु को पार कर जाता है। अन्न से जिस प्रकार वीर्य प्राप्त करता है उसी प्रकार ऋत, सत्य के बल पर सच्चे आत्मिक बल को और इन्द्र ऐश्वर्यवान् आत्मा के इन्द्रिय, ऐश्वर्यमय स्वरूप को साक्षात् दूध के समान स्वच्छ अमृत के समान अविनाशी मधु के समान मधुर आनन्द को प्राप्त करता है।

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु॥ ७३॥

अश्विसरस्वतीन्द्राः। आंगिरसः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(क्रुङ्) सारस जिस प्रकार (अद्भ्यः) जलों के बीच में से (क्षीरम्) दूध को (वि अपिबत्) पृथक् कर पान कर लेता है उसी प्रकार (आङ्गिरसः) ज्ञानवान् आत्मा, अभ्यासी विद्वान्, (क्रुङ्) अति सूक्ष्म, आत्मा या ज्ञानी, योगी, परमहंस (धिया) अपनी योगधारणावती बुद्धि से (अद्भ्यः) प्राणों के बीच में से (क्षीरम्) परम उपभोग्य, परमानन्दरूप आत्मरस को (वि अपिबत्) विशेष रूप से पान करता है। (ऋतेन सत्यम्० इत्यादि) पूर्ववत्॥

इसी प्रकार राजा 'क्रुङ्' हंस के समान अति सूक्ष्म या व्यापक, कुटिल दुर्बोध, गहन, नीतिमान् (आङ्गिरसः) वेद का ज्ञाता, अपने धारण पालन करने वाली राजनीति से आप्त प्रजाओं से ही 'क्षीरवत्' भोग योग्य सार पदार्थ को विविध रूपों में ग्रहण करता है।

सोमम॒द्भ्यो व्य॑पिब॒च्छन्द॑सा ह॒ꣳसः शु॑चि॒षत्। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृत॑ं मधु॑ ॥ ७४ ॥

अश्व्यादयः । सोमः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(हंसः) हंस जिस प्रकार (अद्भ्यः) जलों के बीच में (सोमम्) परम साररूप अंश को (वि अपिबत्) विशेष रूप से पान कर लेता है उसी प्रकार (शुचिषत्) शुद्ध ब्रह्म में विद्यमान योगी (हंसः) अपने समस्त सांसारिक दुःखों का नाश करने में समर्थ, परमहंस (छन्दसा) आत्मसामर्थ्य या प्राण के बल से (अद्भ्यः) प्राणों या प्राप्त ज्ञानों और कर्मों में से ही (सोमम्) परम ब्रह्मानन्द रसों का (वि अपिबत्) पान करता है और उसी प्रकार राष्ट्र में राजा शुचि, निष्पाप, निच्छल, धर्माध्यक्ष के आसन पर विराज कर 'हंस' शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों के हनन कर के निष्पक्षपात हो (छन्दसा) प्रजा के आच्छादन या रक्षा बल से आप्त प्रजाओं के बीच में से राष्ट्र के ऐश्वर्य को विविध उपायों से प्राप्त करता है। (ऋतेन सत्यम्० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

अन्ना॑त्परि॒स्रुतो॒ रसं॒ ब्रह्म॑णा॒ व्य॑पिबत् क्ष॒त्रं पयः॒ सोमं॑ प्र॒जाप॑तिः। ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ऽइन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृत॑ं मधु॑ ॥ ७५ ॥

अश्व्यादयः । प्रजापतिः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (परिस्रुतः) परिपक्व (अन्नात्) अन्न से प्राप्त (रसम्) रस के समान प्राप्त (क्षत्रम्) क्षात्रबल, (पयः) पुष्टिकारक अन्न और (सोमम्) ऐश्वर्य को (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद

और वेदज्ञ विद्वान् के साथ मिलकर (वि अपिबत्) विविध प्रकार से पान करने में समर्थ होता है। (ऋतेन० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

अध्यात्म में—प्रजापति आत्मा ब्रह्मज्ञान में परिपक्व अन्न से रस के समान आत्मा में प्रवाहित होने वाले ज्ञान और रक्षाकारी, पुष्टिकर, अध्यात्म ऐश्वर्य, सामर्थ्य को प्राप्त है।

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृतऽउल्वं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥

अश्व्यादयः। इन्द्रः। भुरिगतिशक्वरी। पंचमः ॥

भा०—जो (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (मूत्रं जहाति) मूत्रोत्सर्ग करता है परन्तु (योनिम्) स्त्री योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ वही अंग (इन्द्रियम्) पुरुष का उपस्थ-इन्द्रिय (रेतः) वीर्य को (विजहाति) विशेष रूप से उत्सर्ग करता है। उसी प्रकार (इन्द्रियम्) राजा या इन्द्र का बल, सेनाबल भी जो अन्यत्र प्रायः (मूत्रम्) छोड़ने योग्य पदार्थों का त्याग करता है अथवा जो छोड़ने या फेंकने योग्य अस्त्रों को शत्रु पर फेंकता है वही राजा का ऐश्वर्य बल (योनिम्) अपने आश्रयभूत राष्ट्र में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेतः) वीर्य, अर्थात् उत्पादन, प्रजावृद्धि के सामर्थ्य को (वि जहाति) विविध उपायों से और विविध रूपों में प्रदान करता, या फैला देता है और जिस प्रकार (गर्भः जरायुणा वृतः) गर्भ, गर्भगत जीव जरायुओं से ढका होकर भी (जन्मना) जन्म लेकर (उल्वम्) उस 'उल्व' अर्थात् जेर को (जहाति) छोड़ देता है। उसी प्रकार राजा भी (गर्भः) राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ होकर (जरायुणा) शत्रुनाशक बल से आवृत होकर अपने (जन्मना) राज्याभिषेक या विशेष प्रादुर्भाव के द्वारा (उल्वम्) संघ में एकत्र हुए अधिक सेना के भाग को (विजहाति) परित्याग करता है और देश के भिन्न २ स्थानों में स्थापित करता है। (ऋतेन-सत्यम्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाᳬं सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानᳬं शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥

अश्व्यादयः । प्रजापतिः । अतिशक्वरी । पंचमः ॥

भा०—(प्रजापतेः) प्रजा का पालक परमेश्वर, राजा और न्यायकर्त्ता, (ऋतेन) सत्य ज्ञान के बल से (सत्यानृते रूपे) सत्य और अनृत, सच और झूंठ दोनों के स्वरूपों को पृथक्-पृथक् विवेचना द्वारा (दृष्ट्वा) देखकर (वि आ अकरोत्) पृथक्-पृथक् उपदेश करता है । वह (अनृते) असत्य, सत्यज्ञान से रहित पदार्थ में (अश्रद्धाम्) अश्रद्धा, अप्रेम या अग्राह्य बुद्धि को (अदधात्) धारण करता और कराता है और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम् अदधात्) श्रद्धा अर्थात् सत्य करके मानने की बुद्धि को धारण करता है । उसी प्रकार प्रजापालक राजा भी सत्य और असत्य को (ऋतेन) वेद के द्वारा निर्णय करा कर प्रकट करे और असत्य मन्तव्यों को अग्राह्य ठहरावे और सत्य में प्रेम, विश्वास और मान्यता बुद्धि उत्पन्न करे । (ऋतेन) सत्य, वेद द्वारा प्राप्त (सत्यम्) सत्य पदार्थ (इन्द्रियम्) आत्मा का हितकारी (विपानम्) विविध प्रकार से रक्षा करनेवाला, (शुक्रम्) आत्मा की शुद्धि करने वाला, (अन्धसः इन्द्रस्य) अन्धकार के निवर्त्तक ऐश्वर्यवान् आत्मा और परमेश्वर प्रभु का (इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्य है जो (इदम्) साक्षात् (पयः) पुष्टिकारी दूध के समान सुखप्रद, बुद्धिवर्धक, (अमृतम्) जल के समान जीवनप्रद, मृत्यु के भय को हरनेवाला और (मधु) मधु के समान मधुर एवं ज्ञानरूप से मनन करने योग्य है । इसी प्रकार (ऋतेन) व्यवस्था ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त (सत्यम्) सत्य निर्णय या सज्जनों का हितकारी (इन्द्रियम्) चक्षु के समान मार्गदर्शक, मन के समान निर्णयकारक, (विपानम्) प्रजा का विशेष पालक, (शुक्रम्) शुद्ध, (अन्धसः इन्द्रस्य) अज्ञाननाशक राजा का (इन्द्रियम्) विशेष ऐश्वर्य के

समान शोभाकर है जो (इदम्) साक्षात् (पयः) सबको तृप्तिकारक, (अमृतम्) अमर, अविनाशी और (मधु) दुष्टों का दमनकारी है ।

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७८ ॥

अश्व्यादयः । प्रजापतिः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (वेदेन) ईश्वर से प्रकाशित-सत्य ज्ञान, वेद से द्वारा (सुतासुतौ) 'सुत' इन्द्रियग्राह्य एवं विद्वानों द्वारा उपदिष्ट और 'असुत' इन्द्रियों द्वारा अप्राप्य एवं विद्वानों द्वारा न उपदेश किये गये दोनों प्रकार के पदार्थों का (वि अपिबत्) विशेष रूप से ज्ञान ग्रहण करे । (ऋतेन० इत्यादि) पूर्ववत् ।

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳशुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७९ ॥

अश्व्यादयः । प्रजापतिः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(परिस्रुतः) सब प्रकार से अभिषिक्त (प्रजापतिः) प्रजापालक राजा (शुक्रेण) शुद्धि करने वाले उपाय से (शुक्रम्) शुद्ध किये गये (रसम्) सारवान् पदार्थ को (दृष्ट्वा) पर्यालोचन करके (पयः) पुष्टिकारक (सोमम्) ऐश्वर्य को (व अपिबत्) विविध उपायों से ग्रहण करता है । अथवा—(परिस्रुतः रसम्) परिपक्व अन्न के रस के समान उत्तम या भपके द्वारा प्राप्त सार पदार्थ के समान (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमान् अन्न, सुवर्ण आदि पदार्थ को भी (प्रजापतिः) राजा (शुक्रेण) शुद्ध निष्पाप उपाय से (दृष्ट्वा) देखभाल कर (पयः सोमम्) पुष्टिप्रद दूध के समान ऐश्वर्य को ओषधि के समान स्वच्छ करके (वि अपिबत्) पान करे, (ऋतेन सत्य०) पूर्ववत् ।

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिणऽऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति । अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ८०

अश्व्यादयः । सविता सरस्वती वरुणश्च देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(कवयः) क्रान्तदर्शी (मनीषिणः) बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुष जिस प्रकार (सीसेन) सीसे के बल पर (तन्त्रम्) राष्ट्र की (वयन्ति) वृद्धि करते हैं अर्थात् सीसे की गोलियों से दुष्ट शत्रुओं का संहार करके राष्ट्र को बढ़ाते हैं और जिस प्रकार वे (मनसा) मन से, आत्मचिन्तन से (तन्त्रम्) अति विस्तृत शास्त्र सिद्धान्त को (वयन्ति) ऊहापोह द्वारा विस्तृत व्याख्या करते हैं और जिस प्रकार (ऊर्णासूत्रेण) ऊन और अन्य कोमल सूत्रमय पदार्थों के सूत से उसके समान (तन्त्रम्) तन्तु से तने सूत्रजाल को विस्तृत पटरूप में (वयन्ति) बुनते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री-पुरुष, (सविता) आज्ञापक, सूर्य के समान विद्वान् पुरुष और (सरस्वती) ज्ञानी वेदज्ञ और (वरुणः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनापति ये सब मिलकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा के (रूपम्) उज्ज्वल कान्तिमान् रूप को (भिषज्यन्) शरीर के समान पीड़ा और बाधाओं से रहित, निष्कण्टक करते हुए (तन्त्रम्) राष्ट्र का (वयन्ति) विस्तार करते हैं।

तद॑स्य रू॒पम॒मृत॒ꣳ शची॑भिस्ति॒स्रो द॑धुर्दे॒वताः॑ सꣳररा॒णाः । लोमा॑नि॒ शष्पै॑र्बहु॒धा न तोक्म॑भि॒स्त्वग॑स्य मा॒ꣳसम॑भव॒न्न ला॒जाः ॥ ८१ ॥

अश्व्यादयः । अश्विनौ सविता सरस्वती वरुणश्च देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(तिस्रः देवताः) तीनों विजयशाली देवगण, (शचीभिः) अपनी-अपनी शक्तियों से (अस्य) इस राष्ट्र-प्रजा-पालक राजा को (अमृतम्) अविनाशी, अखण्ड (रूपम्) रूप (संरराणाः) अच्छी प्रकार प्रदान करते हुए (दधुः) धारण-पोषण करते हैं। वे (बहुधा) बहुत प्रकारों के (शष्पैः) शष्पों अर्थात् शत्रुओं को मारने और पालन करने वाले साधन अस्त्र-शस्त्रों से (अस्य लोमानि संदधुः) इस राष्ट्रमय प्रजापति के रोमों को निर्माण करते हैं। जैसे पशु के शरीर पर बाल रक्षा करते हैं और सेहे के शरीर के रोमरूप कांटे ही उसकी रक्षा करते हैं उसी प्रकार शस्त्रास्त्र भी

राजा और राज्य शरीर की रक्षा करते हैं। (न) और (तोक्मभिः) शत्रु को व्यथा देने और मारने वाले सेनाओं के बल एवं महास्त्रों द्वारा वे विद्वान् (अस्य) इस राष्ट्रमय प्रजापति के (त्वक्) शरीर पर लगी त्वचा के समान आवरण, परकोट की रचना करते हैं। बड़ी-बड़ी सेनाएं और परकोट आदि राष्ट्र की त्वचा के समान हैं। (न) और (लाजाः) शोभाजनक, कान्तिमान् विभूतियां ही (मांसम्) इसका 'मांस' अर्थात् मन को लुभाने वाले पदार्थ के समान (अभवन्) हैं। उस समृद्धि से ही राष्ट्र हृष्ट-पुष्ट रहता है, दूसरे उसी को देखकर लुभा जाते हैं, उनका मन हरने से ही समृद्धियां 'मांस' के समान हैं।

'न'—अध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नकराः सर्वे चकारार्थाः इति महीधरः। नकारः समुच्चये आ अध्यायपरिसमाप्तेरिति उवटः। यज्ञपक्षे—'न' निषेधार्थे इति दयानन्दः। स्वाध्याय यज्ञरूप में—शिष्य गुरु और परीक्षक, परस्पर ज्ञान का आदान-प्रदान करते हुए इसके अमृतरूप को धारण करते हैं। और लम्बे-लम्बे बालों के सहित लोमों को धारण करते हैं अर्थात् जटिल होकर व्रत से रहते हैं। (न तोक्मभिः) बालकों से यह यज्ञ नहीं होता। और (अस्य त्वग् मांसम् लाजा न अभवन्) उसके हवि में त्वचा, मांस, खीलें आदि हवि नहीं होतीं।

तद॒श्विना॑ भि॒षजा॑ रु॒द्रव॑र्तनी॒ सर॑स्वती॒ वय॑ति॒ पेशो॒ऽअन्त॑रम्। अ॒स्थि म॒ज्जानं॒ मास॑रैः कारोत॒रेण॒ दध॑तो॒ गवां॑ त्व॒चि ॥ ८२ ॥

अश्व्यादयः। अश्विनौ सरस्वती च देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(रुद्रवर्त्तनी) शरीर में ग्यारह रुद्रों, प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार कराने वाले (अश्विना) अश्विगण, विद्वान् स्त्री-पुरुष एवं गुरु और शिष्य और (सरस्वती) वेदविद्या, विदुषी स्त्री या विद्वत्-सभा ये तीनों मिलकर (तत्) उस राष्ट्र के (अन्तरम्) भीतरी (पेशः) सुन्दर रूप को, (वयति) बनाते, पुष्ट करते हैं। और (मासरैः) परिपक्व ओषधि रसों से जिस प्रकार वैद्य लोग (अस्थि मज्जानम्) देह की हड्डी और

मज्जाभाग को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार उक्त विद्वान् लोग भी (कारोतरेण) कूपसमूहों से और उत्तम शिल्पी, क्रियानिष्ठ मुख्य पुरुषों से (गवां त्वचि) भूमियों के पृष्ठ पर, और (मासरैः) अन्न आदि से राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और (मासरैः) मासिक वेतनबद्ध भृत्यों से राष्ट्र के (अस्थि) अस्थि के समान स्थिर कार्यों आधार स्थानों और (मज्जानम्) मज्जा के समान दृढ़ संधिबन्धों को, अथवा वर्ष के दिन-रातों के समान राष्ट्रशरीर के समस्त मुख्य और गौण अङ्ग-प्रत्यङ्गों को (दधतः) धारण करते हैं। इसी प्रकार ओषधि अन्न आदि से पुरुष स्त्रियों के और स्त्रियाँ पुरुषों के शरीरों को नीरोग रखें, और बढ़ावें।

'अस्थि मज्जानम्'—सप्त च ह वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहानि च रात्रयश्चेत्येतावन्त एव पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्चेत्यत्र तत्समम्॥ गो० पू० ५। ५॥ कारोतर इति कूपनाम। निघ० ३। २३॥

सर॑स्वती॒ मन॑सा पेश॒लं वसु॒ नास॑त्याभ्यां॑ वयति द॒र्शतं॒ वपुः॑।
रसं॑ परि॒स्रुता॑ न रोहि॑तं न॒ग्नहु॒र्धीर॒स्तस॑रं॒ न वेम॑॥ ८३॥

सरस्वती देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सरस्वती) विज्ञानवाली विदुषी स्त्री जिस प्रकार अपना (दर्शतम्) दर्शनीय (वपुः) शरीर बनाती है उसी प्रकार (सरस्वती) विज्ञानवान् विद्वानों की परिषद् भी (नासत्याभ्याम्) असत्य व्यवहारों से रहित, स्त्री-पुरुषों से मिलकर राजा के लिये (मनसा) अपने ज्ञान के बल से (पेशलम्) अति सुन्दर, सुवर्ण आदि से समृद्ध (वसु) ऐश्वर्य को (वयति) पट के समान निरन्तर बुनती-सी रहती, पैदा ही करती रहती है। और जिस प्रकार स्त्री (परिस्रुता) परिस्रवण किये गये चुआए गये लाख से, मेंहदी के पीसे हुए रस से (रोहितं रसं न) लाल रस को पैदा कर देती है उसी प्रकार पूर्वोक्त विद्वत्सभा और (धीरः नग्नहुः) बुद्धिमान्, 'नग्न' अर्थात् विशुद्ध ज्ञान के ग्रहण करने हारा सभापति (परिस्रुता) राष्ट्र के समस्त प्रान्तों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से ही (रोहितम्) 'रोहित', आदित्य

के समान तेजस्वी, (रसम्) सारभूत लाल पोषाक पहने राजा को उसी प्रकार उत्पन्न करते हैं जैसे (तसरं वेम न) तसर और वेमा मिलकर (रोहितं न) लाल पट बुना करते हैं।

अथवा—(सरस्वती) स्त्री और (नग्नहुः) सुन्दर स्त्री को स्वीकार करने वाला उसका पति दोनों मिलकर (रोहितम्) रक्त, कांचन वर्ण (तसरं वेम न) दुःखक्षयकारक पुत्र को जिस प्रकार उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (सरस्वती नग्नहुः धीरः) विद्वत्सभा और शुद्ध तत्वज्ञानी बुद्धिमान् सभापति दोनों (तत्सरम्) प्रजा के दुःखनाशक (रसम्) आनन्दप्रद (रोहितम्) लोहित, काञ्चन ऐश्वर्य से युक्त अथवा आदित्य के समान तेजस्वी और लाल उज्ज्वल पोषाक पहने सूर्यवत्, तेजस्वी राजा को (वयति) उत्पन्न करते हैं। सरस्वती—प्रशस्तं सरः विज्ञानं यस्याः सा। दया०। 'नग्नहूः'—नग्नं शुद्धं जुहोति गृह्णाति दया० ॥ अथवा—पतिपक्षे 'नग्नां' अन्येनानुपगतां कन्यां, अथवा नग्नशरीरे शुभलक्षणवतीं कन्यां जुहोति गृह्णाति यः सः। 'नग्निकां श्रेष्ठां यवीयसीमुपयच्छेत'। 'नग्नशरीरेपि शुभलक्षणवतीमिति' अष्टावक्रः। 'रोहितं'—देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य रोहित सूक्त (३ खण्ड)।

पय॑सा शुक्रम॒मृतं॑ ज॒नित्र॒ᳪं सुर॑या मू॒त्राज्ज॑नयन्त॒ रेतः॑।
अपा॒म॑तिं दु॒र्म॑तिं बाध॑माना॒ ऊव॑ध्यं॒ वात॑ᳪं स॒ब्वं त॒दा॒रात् ॥८४॥

अश्व्यादयः। सोमः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(पयसा) जिस प्रकार पुष्टिकारक अन्न से (अमृतम्) अमृत, आनन्दप्रद (जनित्रम्) पुत्रोत्पादक, (मूत्रात्) मूत्रेन्द्रिय से (रेतः) वीर्य को (सुरया) सुख से रमण करने योग्य स्त्री के संग सुरति द्वारा उत्पन्न कर (जनयन्त) प्रजा को उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार (पयसा) पुष्टिकारक अन्न और बल के आधार पर (सुरया) सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी के संग से (मूत्रात्) शत्रु के त्राण करने वाले सेना-बल से ही (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तियुक्त, (अमृतम्) अविनश्वर, अखण्ड (जनित्रम्)

और अधिक उत्पादक (रेतः) वीर्य या राजोचित तेज को (जनयन्त) विद्वान् लोग उत्पन्न करते हैं (तत्) और तब (अमितम्) राष्ट्र में से अमित, अज्ञानी या अदम्य और (दुर्मतिम्) दुष्टमति वाले या दुर्दान्त पुरुषों को (अप बाधमानाः) विनष्ट करते हुए (ऊवध्यं वातम्) पेट में बैठी अपान वायु और (सब्वम्) पक्काशयगत मल को जिस प्रकार दूर फेंक दिया जाता है उसी प्रकार (ऊवध्यम्) लटकाकर मारने योग्य (वातम्) वायु के समान प्रबल (सब्वम्) राजा के विपरीत संघ या षड्यन्त्र बना कर बैठने वाले शत्रु को (आरात्) दूर कर देते हैं। राष्ट्र के कार्यों को शरीर के दृष्टान्त से समझाया है कि उसमें वीर्य और सन्तति-जनक शक्ति के समान ही राष्ट्र में राजा का पद है। बुरे व्यक्ति मल और अपान के समान हैं। 'मूत्रात्'—मुच्यते यत् तत् मूत्रम्। उणादि० ४। १६३॥ 'सब्वं'—सप समवाये समवायं संघं कृत्वा स्थितम् इत्यर्थः।

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान। यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्॥ ८५॥

अश्व्यादयः। सविता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सविता) उत्पादक पुरुष-देह जिस प्रकार (पुरोडाशेन) सुसंस्कृत अन्न से (सत्यम्) सात्विक बल वीर्य को (जजान) उत्पन्न करता है और जिस प्रकार (सविता) सूर्य (पुरोडाशेन) प्रकाश से (सत्यं जनान) सत्पदार्थों के सत्य स्वरूप को प्रकट करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सुत्रामा) उत्तम प्रजापालक (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी राजा (हृदयेन) अपने हृदय से (सत्यम्) सज्जनों के हितकारक तथ्य, सुखकारक राज्य व्यवस्था, और न्याय को (जजान) प्रकट करता है। और जिस प्रकार (वरुणः) शरीर में अपान (यकृत्) यकृत्-कलेजे को (क्लोमानम्) पिलही या कण्ठनाड़ी को और (पित्तम्) पित्तखण्ड को और (मतस्ने) गुर्दों को (वायव्यैः) अपने वायु वेगों से (भिषज्यन्)

पीड़ाएं दूर करता हुआ भी (न मिनाति) नहीं विनष्ट होने देता उसी प्रकार (वरुणः) समस्त प्रजाओं द्वारा वरण किया गया एवं दुष्टों का वारक राजा (वायव्यैः) अपने वायु के समान बलवान् वीर पुरुषों द्वारा (भिषज्यन्) राष्ट्र-शरीर में बैठे रोगों के तुल्य शत्रुओं को दूर करके (यकृत्) शरीर में यकृत् (कलेजे) के समान राष्ट्र में यथानियम समस्त प्रजाओं को परस्पर सत्कर्म में लगाने वाले, दानशील, विद्वान्, धार्मिक पुरुष को (क्लोमानम्) शरीर में क्लोम, पिलही के समान दुष्ट पुरुषों के नाशक या कण्ठनाडी वा फुफ्फुस के समान प्राण-धारक पुरुषों को, (मतस्ने) आनन्द से सब को स्नान कराने वाले, शरीर में गुर्दों के समान 'मतस्ने' आनन्द से तृप्तिकारक ज्ञान से हृदय पवित्र करने वाले अध्यापक और उपदेशक या आनन्द से रहने वाले स्त्री-पुरुषों और राष्ट्र के भीतरी घटक और उपकारक अंगों को, और (पित्तम्) शरीर में पित्त के समान पालक, गुरुजन को भी (न मिनाति) पीड़ित नहीं करता ।

यकृत् । यजतीति यकृत् । यजेर्ऋतन् उणादिप्रत्ययः । इति दया० उणा० ।

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥

अश्व्यादयः । सविता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(श्येनस्य) बाज के समान तीव्र वेग से शत्रु पर आक्रमणकारी राजा की (स्थालीः) राज्य स्थापन की शक्तियां (आन्त्राणि) शरीर में आँतों के समान राष्ट्ररूप ऐश्वर्य का भीतर ही उपयोग करती हैं । वे (पात्राणि) पालन करने वाले अधिकारी शासकों के पद, शरीर में (मधु पिन्वमानाः) अन्न रस को शरीर में पहुँचा देने वाले (गुदाः) गुदागत स्थूल नाड़ियों के समान, आनन्द या मधु ऐश्वर्य को सर्वत्र पहुँचाने हारे हैं और (सुदुघा) ऐश्वर्यों की देने वाली यह पृथ्वी (धेनुः न) दुधार गौ के समान है । शरीर में (प्लीहा न) तिल्ली जिस प्रकार शरीरस्थ विकारों को नाश करती है उसी

प्रकार (श्येनस्य) बाज के समान शत्रु पर झपटने वाले वीर पुरुष का (पत्रम्) तलवार या विजय-रथ है। (नाभिः आसन्दी) जिस प्रकार शरीर में नाभि केन्द्र है, नाड़ियाँ वहां सब सम्बन्ध हैं उसी प्रकार 'आसन्दी' राजा के बैठने की गद्दी या राजधानी है। जिस प्रकार (उदरं न माता) शरीर में उदर, पेट समस्त अन्नों को लेकर रस ग्रहण करता और अपरस वा मल को बाहर निकालता है उसी प्रकार राजा की 'माता' उसको उत्पन्न करने वाली 'माता' ज्ञान करने हारी परिषद्, सत्य-असत्य, ग्राह्य-अग्राह्य का विवेक करती है। वह (शचीभिः) अपनी प्रज्ञाओं और शक्तियों से राज्य का सञ्चालन करती है।

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो ऽअन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८७॥

अश्व्यादयः। पितरः। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(वनिष्ठुः) शरीर में 'वनिष्ठु' अर्थात् त्रिक, कूल्हा जिसमें स्थूल आंतें रहती हैं वह भाग जिसमें (अग्रे) सबसे प्रथम स्त्री-शरीर में (योन्याम्) योनि के (अन्तः) बीच में स्थित (गर्भः) गर्भ रहता है, उसके समान ही राजा भी स्वयं (कुम्भः = कुं-भ) पृथ्वी को भी पोषण करने में समर्थ और (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (जनिता) राष्ट्र का उत्पादक होता है। शरीर में जिस प्रकार (प्लाशिः) शिश्न भाग (व्यक्तः) प्रकट है जो मूत्रादि बहाने में (शतधारः उत्सः इव) शतधार स्रोत के समान है उसी प्रकार राष्ट्र-शरीर में भी (प्लाशिः = प्राशिः) उत्तम पदों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कर भोगने वाला वैश्य भाग है जो (शतधारः उत्सः इव) सैकड़ों धारा वाले स्रोत या मेघ के समान ऐश्वर्यों को बहाता है और (कुम्भी) घर की धान और जल से भरी गगरी जिस प्रकार (पितृभ्यः) घर के पालक वृद्धजनों को भी (स्वधां दुहे) अन्न और जल प्रदान करती है (न) उसी प्रकार (कुम्भी) प्रजा का पालन करने वाली यह पृथिवी (पितृभ्यः) पालक, शासक पुरुषों को (स्वधाम्) अन्न और स्व अर्थात् देहधारक,

वेतन आदिक (दुहे) प्रदान करती है। गृहस्थ प्रकरण में—पति कलश के समान वीर्य शौर्य आदि से पूर्ण, (वनिष्ठुः) भोक्ता, (जनिता) सन्तानोत्पादक, (प्राशिः) समस्त पदार्थों का संग्रहीता, (शतधारः) सैकड़ों ज्ञान-वाणी वाला, (उत्सः) कूप के समान गंभीर, प्रेम का स्रोत होकर रहे, और (कुम्भी) इसी प्रकार वीर्यादि से पूर्ण स्त्री भी रहे। दोनों (पितृभ्यां स्वधां दुहे) अपने पालक जनों को अन्न, भोजन दें। पुरुष (यस्मिन् अग्रे) जिसमें प्रथम ही वीर्य रूप में सन्तान विद्यमान होती है और स्त्री जिसमें बाद में (योन्यामन्तः गर्भः) योनि के भीतर गर्भ रूप से सन्तान उत्पन्न होती है दोनों ही अपने (पितृभ्याम्) पिताओं के ऋण रूप (स्वधाम्) उनके अपने अंश रूप सन्तति को (दुहे) उत्पन्न करके सफल हों।

मुखꣳसदस्य शिरऽइत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती। चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

अश्व्यादयः। सरस्वती। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अस्य) इस राजा का (मुखम्) शरीर में मुख के समान और (शिरः) शिर के समान (सत्) संसत् राजसभा है। (आसन्) मुख में जिस प्रकार (जिह्वा) जिह्वा है उसी प्रकार (सतेन) विभक्त राजसभा में (पवित्रम्) सदाचारवान् (अश्विना) स्त्री-पुरुष और (सरस्वती) पवित्र वेदवाणी, व्यवस्था पुस्तक है। (पायुः) शरीर में 'पायु' गुदा भाग जिस प्रकार शरीर में से मल मूत्रादि दूर करके शरीर को शान्ति देता है (न) उसी प्रकार (चप्यम्) राष्ट्र में दुष्टों को दूर कर के प्रजा को सांत्वना और सुख की आशा दिलाने के श्रेष्ठ कार्य हैं। (वालः) शरीर में जिस प्रकार बाल रोगों को दूर करते हैं और पुच्छादि के बाल मशक आदि को दूर करते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस राजा के, राष्ट्र के (भिषग्) रोगों के निवारक वैद्यगण हैं। (वस्तिः शेपः न) जिस प्रकार शरीर में वस्ति अर्थात् मूत्र स्थान और पुरुष-शरीर में 'शेप' अर्थात् प्रजननेन्द्रिय दोनों में एक तो

वेग से मूत्र प्रवाहित करके शरीर को शुद्ध करता है दूसरा काम सुखाभिलाषी होता है उसी प्रकार राष्ट्र में (हरसा) शत्रु को मार भगाने में समर्थ वीर्य से (तरस्वी) अति वेगवान् सेनाबल दुष्टों को राष्ट्र से बाहर निकालता है और राष्ट्र के सुखों को प्राप्त भी कराता है। 'सतः' तिरः सतः इति प्राप्तस्य । निरु० ३ । ४ । ३ ॥ 'चप्यं' चप सान्त्वने । भ्वादिः ॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥८९॥

अश्व्यादयः । अश्विनौ देवते । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ग्रहाभ्याम्) एक दूसरे को ग्रहण या स्वीकार करनेवाले (अश्विभ्याम्) एक दूसरे को हृदय में व्याप्त करके परस्पर का सुख भोग वाले राजा-प्रजा और स्त्री-पुरुष दोनों से ही राजा या ऐश्वर्यमय राष्ट्र की (अमृतम्) अमृतमय (चक्षुः) शरीर में आंख के समान सत् असत् दिखाने वाली चक्षु बनती है (छागेन) बकरी के दूध से और (शृतेन हविषा) परिपक्व अन्न से जिस प्रकार शरीर में चक्षु के (तेजः) तेज, कान्ति की वृद्धि ही होती है उसी प्रकार राष्ट्र के शरीर में (छागेन) पर पक्ष के छेदन करनेवाले तर्क अथवा सैन्यबल से (शृतेन हविषा) संपक्व अन्न के भोजन से (तेजः) तेज, बल पराक्रम की वृद्धि होती है। (पक्ष्माणि) आंख के पलकों के बाल राष्ट्र में उनकी तुलना (गोधूमैः) खेत में उगे गेहूँ आदि धान्यों से करनी चाहिये । (उतानि) आंख के बचाव के लिये भौंहों के बालों की तुलना (कुवलैः) राष्ट्र भूमि में उगे झरबेरियों व कांटेदार वृक्षों से है। जैसे—(शुक्रम असितं न) श्वेत और काला (पेशः) दोनों प्रकार के चर्म (वसाते) आंख को ढके हुए हैं वैसे राष्ट्ररूप चक्षु को (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमान् स्वर्ण रजतादि धातु और (असितम्) काले वर्ण के लोहे, सीसा आदि धातु दोनों (पेशः) बहुमूल्य सुवर्ण आदि पदार्थ को अथवा (शुक्रम् असितं पेशः) श्वेत और काले, उजले और कृष्ण वर्ण के अथवा गृहस्थ और मुमुक्षु लोग (वसाते) राष्ट्र को बसा रहे हैं; राष्ट्रवासी स्त्री-

पुरुष राष्ट्र को एक आंख का रूप देते हैं। शस्त्र, बल और अन्न उसका तेज है, गेहूँ, धान उसकी पलके हैं, बेरी आदि कांटेदार वृक्ष भौंहें। गोरे और काले या गृहस्थ और मुमुक्षु आदमी या उजली काली धातुएं या चमकदार और बेचमकदार काले सफेद पदार्थ उसके भीतरी चमड़े हैं जो उसको ढांपते हैं।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽअमृतो ग्रहाभ्याम्। सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

अश्व्यादयः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—इन्द्र ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की 'नासिका' से तुलना करते हैं। (नसि) नाक में जिस प्रकार (मेषः) बल और जीवन का सेचन करने वाला प्राण शरीर की (अविः) रक्षा करता और (वीर्याय) शरीर में बल उत्पन्न करने के लिये है (न) उसी प्रकार राष्ट्र में (अविः) राष्ट्र का रक्षक पुरुष और (मेषः) उसको सुख समृद्धि से सेचन करने और शत्रुओं के प्रतिस्पर्द्धा करने में समर्थ होकर राष्ट्र के (वीर्याय) वीर्य, बल वृद्धि के लिये होता है। और यह नाक (ग्रहाभ्याम्) सदा ग्रहण करने योग्य प्राण और अपान या उच्छ्वास और निःश्वास दोनों के मार्गों से बनी है और वही (प्राणस्य) प्राण का भी (अमृतः) अमृत, जीवनप्रद (पन्थाः) मार्ग है उसी प्रकार (ग्रहाभ्याम्) एक दूसरे को स्वीकार करने वाले स्त्री-पुरुषों से ही इस राष्ट्र की रचना है, वह (प्राणस्य) मुख्य प्राण या बल का (अमृतः) अमृत जीवनप्रद, अविनाशी (पन्थाः) मार्ग है। और वही (सरस्वती) वाणी शरीर में (उपवाकैः) समीप ही स्थित वचनों से नासिका में (व्यानम्) व्यान नामक प्राण के विविध सामर्थ्यों को प्रकट करती है, उसी प्रकार राष्ट्र में (सरस्वती) विद्वत्सभा (उपवाकैः) नाना शास्त्र-प्रवचनों से (व्यानम्) विविध सामर्थ्य प्रकट करती है। (नस्यानि) जिस प्रकार नाक के लोम शुद्ध वायु का प्रवेश कराते हैं और हितकारी हैं उसी प्रकार (बर्हिर्बदरैः) कुश आदि ओषधियाँ और बेर आदि अन्य फल के वृक्ष

मानो राष्ट्ररूप नाक में लोम के समान हैं। संक्षेप में राष्ट्ररूप नाक में रक्षक राजा प्राण है, स्त्री-पुरुष दो प्राण के मार्ग हैं, विद्वत्सभा द्वारा बनाई नियमाज्ञावचन नाक में स्थित व्यान है और जंगल के ओषधि फलादि वृक्ष नाक के लोम हैं।

इन्द्र॑स्य रू॒पमृ॑ष॒भो बला॑य॒ कर्णा॑भ्या॒ꣳ श्रोत्र॑म॒मृतं॒ ग्रहा॑भ्याम्।
यवा॒ न ब॒र्हिर्भ्रु॒वि केस॑राणि क॒र्कन्धु॑ जज्ञे॒ मधु॑ सार॒घं मुखा॑त् ॥९१॥

अश्व्यादयः। इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—राष्ट्र की मुख से तुलना करते हैं। (बलाय) बल के कार्य के लिये जैसे (ऋषभः) बैल गाड़ी में जोता जाता है जैसे (ऋषभः) शरीर में गति देने वाला आत्मा या मुख्य प्राण (बलाय) शरीर में बल के कार्य करने के लिये है। और राष्ट्र में समस्त नरों में श्रेष्ठ बलवान् पुरुष कार्य के लिये नियुक्त होता है। वही (इन्द्रस्य रूपम्) शत्रु नाशक राजा, एवं आत्मा का स्वरूप मुख के समान है। कैसे? (ग्रहाभ्यां कर्णाभ्यां तस्य अमृतम्) जैसे शब्दों के ग्रहण करने वाले कानों से उस आत्मा का 'अमृत' अविनाशी, (श्रोत्रम्) श्रोत्र अर्थात् श्रवण शक्ति है, उसी प्रकार कानों के समान प्रिय वचनों को श्रवण करने वाले स्त्री-पुरुषों से ही उस राष्ट्ररूप मुख का मानो 'श्रोत्र' बना है। और (यवाः बर्हिः न) ओषधि आदि मानो राष्ट्ररूप मुख पर लगे (भ्रुवि केसराणि) भौंहों के रोमों के समान है। (कर्कन्धु) परिपक्व फल मानो (सारघम्) मधु मक्खियों द्वारा उत्पादित मधु आदि पदार्थ और अन्न (मुखात्) मुख से निकलने वाले (सारघं मधु) सारयुक्त अर्थ से पूर्ण मधुर वचन हैं।

आ॒त्मन्नु॒पस्थे॒ न वृक॑स्य॒ लोम॒ मुखे॒ श्मश्रू॑णि॒ न व्या॒घ्रलो॑म।
केशा॒ न शी॒र्षन्यश॑से श्रि॒यै शिखा॑ सि॒ꣳहस्य॒ लोम॒ त्विषि॑रि॒न्द्रिया॑णि ॥९२॥

अश्व्यादयः। आत्मा देवता। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—राष्ट्र की शरीर से तुलना (आत्मन्) देह में और (उपस्थे)

गुह्य भाग में (लोम) जो रोम हैं वे राष्ट्र में (वृकस्य लोम) भेड़िये के लोमों के समान हैं। अर्थात् भेड़िये के स्वभाव वाले भयंकर पुरुष शरीर में सामान्य लोम, गुह्यांग लोमों के तुल्य हैं। और (व्याघ्रलोम) व्याघ्र के लोम अर्थात् व्याघ्र के समान बड़े जन्तुओं पर भी आक्रमण करने वाले शौर्य गुण से सम्पन्न पुरुष (मुखे श्मश्रूणि) मुख पर लगे मोंछ के बालों के समान हैं। और (यशसे) यश के लिये, साहस कार्य करने वाले पुरुष, देह में (शीर्षन्) शिर पर लगे (केशः न) केशों के समान हैं। (श्रियै) लक्ष्मी और शोभा के लिये उद्यम करने वाले लोग (शिखा) सिर पर चोटी के बालों के समान हैं। (सिंहस्य लोम) सिंह के समान पराक्रम करने वाले स्वभाव के लोग शरीर में विद्यमान (त्विषिः) तेज या शान्ति के समान एवं (इन्द्रियाणि) शरीर में लगे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के समान हैं।

जिस प्रकार देह में भिन्न-भिन्न अंगों पर केश व बाल उन मर्मों की रक्षा करते, स्वास्थ्य, यौवन, तेज, कान्ति और पुरुषत्व और मान गर्व के द्योतक हैं उसी प्रकार राष्ट्र में वे तेजस्वी लोग भी राष्ट्र के भूमिरक्षण और राष्ट्र के गौरव, तेज, पराक्रम को बनाने वाले होते हैं।

अङ्गा॑न्या॒त्मन् भि॒षजा॒ तद॒श्विना॒त्मान॒मङ्गैः॒ सम॑धात् सर॑स्वती।
इन्द्र॑स्य रू॒पꣳ श॒तमा॑न॒मायु॑श्च॒न्द्रेण॒ ज्योति॑र॒मृतं॒ दधा॑नाः ॥९३॥

अश्व्यादयः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—(भिषजौ) समस्त रोगों की चिकित्सा करने वाले (अश्विनौ) सद्वैद्य जिस प्रकार (आत्मन्) देह में (अङ्गानि) अंगों को (सम् अधाताम्) ठीक-ठीक जोड़ देते हैं और जिस प्रकार (अश्विनौ) शरीर में व्यापक प्राण और अपान दोनों (आत्मन्) आत्मा के समक्ष (अंगानि) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सम्बद्ध किये रहते हैं (तत्) उसी प्रकार (अश्विना) व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री और पुरुष या मुख्य दो अधिकारी (आत्मन्) आत्मदेह रूप राष्ट्र में (अङ्गानि) राज्य के अंगों को जोड़ते हैं। और (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त स्त्री के समान राजसभा और राज्य

में विद्या-शिक्षा की व्यवस्था (अङ्गैः) राज्य के अंगों के साथ (आत्मानम्) आत्मा के समान राजा को (सम अधात्) संयुक्त करती है। पूर्वोक्त दो अश्विगण और सरस्वती तीनों (चन्द्रेण) चन्द्र के बल से (अमृतं ज्योतिः) अमृतमय सुखप्रद ज्योति के समान (चन्द्रेण) आह्लादकारी राजा या राज्य के साथ (अमृतम्) अविनाशी, सुखप्रद अन्न आदि समृद्धि और (ज्योतिः) परम तेज को (दधानाः) धारण करते हुए (इन्द्रस्य) शत्रुनाशक राजा के (रूपम्) स्वरूप को और (आयुः) जीवन को (शतमानम्) सौगुणा अथवा सौ वर्षों के परिमाण वाला कर देते हैं।

अध्यात्म में—(अश्विनौ अङ्गानि आत्मन्) प्राण और अपान दोनों का अभ्यास योग के अंगों को सुसम्पन्न करता है। (सरस्वती आत्मानम् अङ्गैः सम् अधात्) सरस्वती, वेदवाणी का स्वाध्याय आत्मा को योगाङ्गों से युक्त करता है। प्राणायाम और स्वाध्याय दोनों (इन्द्रस्य रूपं शतमानम् आयुः) जीव की आयु को सौ वर्षों का कर देते हैं। वे (चन्द्रेण) आह्लादजनक वीर्य या सोमचक्र के साथ (अमृतं ज्योतिः दधानाः) अमृत-आत्म ज्योति को धारण कराते हैं। 'अंगानि'—मन्त्राङ्गानि–सहायाःसाधनोपायाः विभागो देशकालयोः। विनिपात-प्रतीकारे मन्त्रः पञ्चांग इष्यते। सप्ताङ्गानि—स्वाम्यमात्यसुहृत्-कोश-राष्ट्र-दुर्ग-बलानि च। नीतिशास्त्र॥

योग के अष्टांग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि॥

सर॑स्वती॒ योन्यां॒ गर्भ॑म॒न्तर॒श्विभ्यां॒ पत्नी॒ सुकृ॑तं बिभर्त्ति।
अ॒पा॑ꣳ रसे॑न॒ वरु॑णो॒ न साम्नेन्द्र॑ꣳ श्रि॒यै ज॒नय॑न्न॒प्सु राजा॑॥९४॥

अश्व्यादयः। सरस्वती देवता। विराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—जिस प्रकार (सरस्वती) स्त्री (पत्नी) गृहपति होकर (योन्याम् अन्तः) योनिस्थान में (सुकृतम्) उत्तम रीति से स्थापित (गर्भम्) गर्भ को (बिभर्त्ति) धारण पोषण करती है, उसी प्रकार (योन्याम् अन्तः) संगत होने या एकत्र होने के स्थान सभाभवन में (पत्नी)

राष्ट्र का पालन करने वाली (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा (अश्विभ्याम्) राजा और प्रजा दोनों के लिये (सुकृतम्) उत्तम रूप से बनाये गये (गर्भम्) राष्ट्र के ग्रहण करने वाले राजा को (विभर्त्ति) धारण करती है। और (वरुणः) स्वयं वरण किया पति जिस प्रकार (अपां रसेन) प्राणों के वीर्य से (इन्द्रं जनयत्) जीव, बालक को उत्पन्न करता है। वैसे ही (वरुणः) समस्त प्रजा द्वारा चुना गया राजा, (अपां रसेन) आप्त पुरुषों के बल से (साम्ना) और साम उपाय से (अप्सु) प्रजाओं में (श्रियै) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (इन्द्रम्) ऐश्वर्य रूप राष्ट्र को (जनयत्) उत्पन्न करता है।

तेजः पशूनाᳬ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोमऽइन्दुः ॥ ९५ ॥

अश्व्यादयः। अश्विनौ देवते। निचृज्जगती। निषादः॥

भा०—जैसे (पशुनाम्) पशुओं को (दुग्धम्) दुहा गया दूध (हविः) खाने योग्य, (इन्द्रियावत्) शरीर में बलकारक, (तेजः) तेज उत्पन्न करता है। और जैसे (सारघं मधु) मधुमक्खियों से प्राप्त 'मधु' (इन्द्रियवत् तेजः) बल और तेज को उत्पन्न करता है वैसे (अश्विभ्याम्) राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों या मुख्य अधिकारियों ने और (सरस्वत्या) विद्वत्सभा ने मिलकर (परिस्रुता) सब ओर से स्रवण करने वाले अभिषेक के (पयसा) जल से (सुत-असुताभ्याम्) अभिषिक्त राजाओं और अनभिषिक्त प्रजाओं से (अमृतः) राष्ट्र के जीवन स्वरूप, अमर (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् (सोमम्) सबका आज्ञापक राजा (दुग्धः) मानो दुहकर सर्वश्रेष्ठ रूप में प्राप्त किया है।

इत्येकोनविंशोऽध्यायः॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकोनविंशोऽध्यायः॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।
मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः ॥ १ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । राजा सभेशो देवता । द्विपदा विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (क्षत्रस्य) वीर्य, क्षात्रबल और राज्य का (योनिः) आश्रय (असि) है । (क्षत्रस्य) राजकुल, क्षात्र सेना-बल का (नाभिः) नाभि, केन्द्र (असि) है । राष्ट्रवासी प्रजाजन (त्वा) तुझे (मा हिंसीत्) न मारें, हे राजन् ! (मा) मुझ राष्ट्रवासी जन को तू भी (मा हिंसीः) मत मार ।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत् पाहि ॥ २ ॥

प्रजापतिः । सभेशः । भुरिग् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(धृतव्रतः) व्रतों, नियमों को धारण करने वाला, (सु-क्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान्, कर्म कुशल पुरुष (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा के कष्टों को वारण करनेहारा (पस्त्यासु) न्यायगृहों, या प्रजाओं के बीच, (आ नि-ससाद) साक्षात् विराजे । हे राजन् ! तू (मृत्योः) प्रजा को मृत्यु के कारणों से (पाहि) बचा । (विद्योत्) विद्युत् के समान अग्नि आदि के बने अस्त्रों से (पाहि) बचा । अर्थात् राजा प्रजा की अकारण, एवं अकाल मृत्यु और शत्रु के आक्रमणों से रक्षा करे ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि ।
सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नाद्यायाभि षिञ्चामि ।
इन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ॥ ३ ॥

प्रजापतिः । सभेशः । अतिधृतिः । षड्जः ॥

१—क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि० । इति काण्व० ।

भा०—अभिषेक। हे राजन्! मैं अध्वर्यु, वेदज्ञ पुरुष, राजा और प्रजा का प्रतिनिधि (सवितुः) सर्वोत्पादक (देवस्य) सर्वप्रकाशक परमेश्वर के (प्रसवे) महान् ऐश्वर्यमय जगत् में (अश्विनोः) विद्या और कर्म दोनों में पारंगत विद्वान् और कर्मिष्ठ पुरुषों के (बाहुभ्याम्) शत्रुओं को पीड़न करने में समर्थ बाहुओं से और (पूष्णः) पुष्टि करने वाले, अन्न आदि से सबके पोषक, भूमिवासी कृषक वर्ग के हाथों से (अश्विनोः) वैद्य विद्या में निष्णात पुरुषों के (भैषज्येन) चिकित्सा या रोगनिवृत्ति के द्वारा सम्पादित (तेजसे) तेज, पराक्रम और (ब्रह्मवर्चसाय) ब्रह्मवर्चस, वीर्यरक्षा, वेदज्ञान की वृद्धि के लिये (अभिषिञ्चामि) तुझे अभिषिक्त करता हूँ और (सरस्वत्यै) प्रशस्त ज्ञान वाली वेदवाणी के (भैषज्येन) अविद्यादि दोषों के दूर करने के उपाय से मैं तुझको (वीर्याय) वीर्य, बल की वृद्धि के लिये और (अन्नाद्याय) राष्ट्र के भोग्य अन्न आदि पदार्थों के भोगार्थ अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिये (अभि षिञ्चामि) तेरा अभिषेक करता हूँ और (इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता सेनापति और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (इन्द्रियेण) बल से (बलाय) बल सेनाबल और (श्रियै) राजलक्ष्मी और (यशसे) कीर्ति के लिये (अभि षिञ्चामि) अभिषिक्त करता हूँ।

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा।
सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

प्रजापतिः। सभेशः। निचृदार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे उत्तम पुरुष! तू (कः असि) तू कौन है? तू (कतमः असि) उपस्थित पुरुषों में से कौन है? यह अपना परिचय सब को दे। (कस्मै वा) किसलिये तुझे यहां अभिषेक किया है? उत्तर—(काय) प्रजापालक, प्रजापति, राजा पद के लिये (त्वा) मैं तुझे अभिषेक करता हूँ। हे (सु-श्लोक) उत्तम कीर्त्ति वाले! हे (सु-मङ्गल) उत्तम मङ्गल कार्यों के करने हारे! हे (सत्य-राजन्) सत्य के प्रकाशक! और सत्य न्याय से प्रकाशमान, सत्यधर्मों के प्रकाशक यथार्थ में राजा स्वरूप! तुझे मैं

अभिषिक्त करता हूँ। अथवा—हे राजन्! (कः असि) तू सर्वकर्त्ता, प्रजापति है। तू (कतमः असि) प्रजापालकों में सबसे उत्तम है। (कस्मै त्वा) उसी सर्वोपरि कर्त्ता, प्रजापति के पद के लिये (काय त्वा) ब्रह्म, वेद ज्ञान और वैद्यक कर्मों की वृद्धि के लिये तुझे अभिषिक्त करता हूँ इत्यादि पूर्ववत्।

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणोऽअमृतꣳसम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५ ॥
प्रजापतिः। सभेशः। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे प्रजाजनो! राज्य में अभिषिक्त (मे) मुझ राजा की (श्रीः) शोभा, ऐश्वर्य (शिरः) मेरे शिर के समान प्रतिष्ठारूप है। (यशःमुखम्) यश, मुख के समान दर्शनीय हैं। (त्विषिः) ओज, कान्ति, पराक्रम, शौर्य (श्मश्रूणि केशाः च) शिर के केश और मूछों के समान तेजस्विता के सूचक हैं। (मे) मुझ राष्ट्र का (प्राणः) प्राण (राजा) का पद या स्वयं राजा (अमृतम्) जीवन रूप है। (सम्राट्) सम्राट् का पद (चक्षुः) आंख के समान सर्व साक्षीरूप हैं। (विराट्) विविध विद्वान् सभासदों से प्रकाशमान राजसभा (श्रोत्रम्) शरीर में श्रोत्र के समान प्रजा राजा के समस्त व्यवहारों को श्रवण करने वाला हो।

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदाऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६ ॥
प्रजापतिः। सभापतिः। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—(जिह्वा मे भद्रम्) शरीर में जिह्वा के समान (मे) मेरे राष्ट्र में (भद्रम्) सब कल्याण के कार्य हैं। (वाक् महः) वाणी विज्ञान है। (मनः मन्युः) मन ज्ञानवान् पुरुष के समान है। (स्वराड् भामः) स्वराड् का पद शरीर में विद्यमान क्रोध के समान है। (मोदाः प्रमोदाः) राष्ट्र में विद्यमान आमोद, प्रमोद (अङ्गुलीः अङ्गानि) हाथ की अंगुलियों और अन्य अंगों के समान हैं। (सहः) शत्रु के पराजय करने में समर्थ सैन्य

(मे मित्रम्) मेरा मित्र है। अध्यात्म में—अन्न ग्रहण और वचन दान करने वाली जिह्वा, वाणी मुझे (भद्रम्) कल्याण दे, वाणी मेरा यश का कारण हो, मन मनन शील हो, क्रोध व तेज तेजस्वी हो, हाथ आदि मेरे मित्रवत् हों।

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम॥ ७॥

प्रजापतिः। राजा। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(इन्द्रियं बलम् मे बाहू) इन्द्र, सेनापति का समस्त बल मेरे बाहू हैं। (वीर्यं कर्म मे हस्तौ) वीरोचित कर्म मेरे हाथ हैं। (क्षत्रम् मम आत्मा उरः च) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाला क्षात्रबल मेरा आत्मा और विशेष कर छाती के समान है। अध्यात्म में—भुजाओं में मेरे बल हो, हाथों में काम करने का सामर्थ्य और सत्कर्म हो, आत्मा बलवान् हो, छाती में सामर्थ्य हो।

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
ऊरूऽअरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः॥ ८॥

प्रजापतिः। सभापतिः। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(राष्ट्रं मे पृष्ठीः) राष्ट्र, जनपद मेरी पसुलियां हैं। (विशः) प्रजाएं (उदरम्) पेट, (अंसौ) दोनों कन्धे, (ग्रीवाः च) गर्दन के मोहरे, (श्रोणी) कटि, (ऊरू) जांघ, (अरत्नी) हाथ के भाग, (जानुनी) गोड़े (सर्वतः) ये सब (मे अङ्गानि) मेरे अंग हैं।

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्।
आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः॥ ९॥

प्रजापतिः। सभेशः। षट्पदाऽनुष्टुप् निचृज्जगती वा। गांधारः॥

भा०—(चित्तम्) चित्त (मे नाभिः) मेरी नाभि के समान है। (विज्ञानम्) विज्ञान (पायुः) पायु, गुदा के समान है। (अपचितिः)

पूजासामग्री या प्रजाओं का उत्पन्न होना, (मे भसत्) स्त्री शरीर के प्रजननाङ्ग के समान, (भगः) प्रजाओं का ऐश्वर्य, दोनों (मे) मेरे देह में, (आनन्दनन्दौ) भोग सुख सम्पन्न (आण्डौ) अण्डकोश के समान हैं। मैं (जंघाभ्यां पद्भ्याम्) समृद्ध जंघाओं और पैरों से (धर्मः अस्मि) धारण करने वाला स्वतः धर्म हूँ। इस प्रकार से (विशि) समस्त प्रजा के स्वरूप में भी (राजा) राजा मानो शरीर धर के (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा को प्राप्त है।

इसी प्रकार—प्रत्येक पुरुष के शरीर में राष्ट्र के समस्त धर्म विद्यमान हैं। समाज और राष्ट्र के भिन्न-भिन्न विभागों के कर्त्तव्य शरीर के भिन्न-भिन्न भागों के धर्मों से तुलना करके जानने चाहिये। इस प्रकार राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक अपने शरीर के अंगों के समान राष्ट्र के अंगों को जाने यही सच्ची देश भक्ति है।

प्रति॑ क्षुत्रे प्रति॑ तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वे॑षु प्रति॑ तिष्ठामि गोषु॑।
प्रत्यङ्गे॑षु प्रति॑ तिष्ठाम्यात्मन् प्रति॑ प्राणेषु प्रति॑ तिष्ठामि पुष्टे प्रति॑
द्यावा॑पृथि॒व्योः प्रति॑ तिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

प्रजापतिः। सभेशः। विराट् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—राजा की राष्ट्र के भिन्न-भिन्न भागों में प्रतिष्ठा। 'मैं' राजा (प्रति क्षत्रे) प्रत्येक क्षत्रिलकुल में (प्रति तिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। (राष्ट्रे प्रतितिष्ठामि) प्रत्येक राष्ट्र में या राष्ट्र के प्रत्येक भाग में प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। (अश्वेषु) अश्वों में और (गोषु) गौओं में भी (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठा प्राप्त करूं। (अङ्गेषु) समस्त अंगों में प्रतिष्ठित होऊं। (आत्मन् प्रतितिष्ठामि) आत्मा में प्रतिष्ठित होऊं। (प्राणेषु) प्राणों में (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठित होऊं। (पुष्टे प्रति) पुष्ट, पोषणकारी अन्न आदि पदार्थों में प्रतिष्ठित होऊं। (द्यावापृथिव्योः) आकाश और पृथिवी पर और (यज्ञे) यज्ञ में भी (प्रति तिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं।

त्रया दे॒वाऽएका॑दश त्रयस्त्रि॒ꣳशाः सुराध॑सः।
बृह॒स्पति॑पुरोहिता दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे। दे॒वा दे॒वैर॑वन्तु मा ॥ ११

प्रजापतिः । उपदेशकाः । पाङ्क्तिः । पंचमः ॥

भा०—(त्रयाः एकादश) तीन विशेष शक्तियों के ही अंशांश रूप से विद्यमान ११, ११, और ११ ये (त्रयः त्रिंशाः) तेंतीस (देवाः) देव, विद्वान्गण (सुराधसः) उत्तम धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न एवं (बृहस्पति पुरोहिताः) बृहस्पति, वेदज्ञ विद्वान् को अपना महामात्य पुरोहित, अग्रवर्ती प्रमुख बनाकर (देवस्य) देव (सवितुः) सबके प्रेरक राजा के भी राजा परमेश्वर के (सवे) परमैश्वर्य युक्त शासन या जगत् में रहें। और वे (देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष (देवैः) अपने दिव्य गुणों और व्यवहारों से (मा अवन्तु) मुझ प्रजाजन और राजा की रक्षा करें।

साधारणतः—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ये आठ वसु, दश प्राण और ग्यारहवां जीव ये ११ रुद्र, बारह मास १२ आदित्य, विद्युत् और यज्ञ ये सब मेरी रक्षा करें। अर्थात्—मैं शत्रु मित्र दोनों के देशों को वश करूं। पशु, गौ अश्वादिमान्, प्राणों से नीरोग, आत्मप्रतिष्ठ अर्थात् मानस दुख से रहित समृद्ध, इह और पर दोनों लोकों में कीर्तिमान्, धर्मात्मा और प्रभावशाली होऊं।

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्काराऽआहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

प्रजापतिः । विश्वेदेवाः । प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—(प्रथमा) प्रथम कोटि के विद्वान्, देव, रक्षकजन (द्वितीयैः) द्वितीय कोटि के विद्वानों, रक्षकों के साथ मिलकर हमारे कामनायोग्य पदार्थों की वृद्धि करें और (द्वितीयाः) द्वितीय कोटि के विद्वान् (तृतीयैः) तृतीय, सर्वोत्तम कोटि के विद्वान् पुरुषों से मिल कर और (तृतीयाः) तीसरे उच्च कोटि के विद्वान् (सत्येन) सत्य व्यवहार, वेदानुकूल न्याय

और धर्म से युक्त होकर, (सत्यं यज्ञेन) सत्य, व्यवहार भी, यज्ञ, परस्पर आदर और संगति और सत्यवाणी से सम्पन्न होकर, (यज्ञः यजुर्भिः) यज्ञ, यजुर्वेद के मन्त्रों से, वाणी को मानस विचारों से, और प्रजापालन को क्षत्रियों से और (यजूंषि सामभिः) आयुर्वेद के मन्त्रों को सामवेदोक्त गायनों से (सामानि ऋग्भिः) सामवेद के गायनों को ऋग्वेद की ऋचाओं से, (ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः) ऋचाओं को पुरोनुवाक्या अर्थात् अथर्ववेद के प्रकरणों से (पुरोऽनुवाक्याः) पुरोनुवाक्याओं को (याज्याभिः) यज्ञों में आहुति काल में पढ़ने योग्य ऋचाओं से, (याज्याः वषट्कारैः) याज्या ऋचाओं को वषट्कारों या स्वाहाकारों से (वषट्काराः आहुतिभिः) वषट्-कार अर्थात् स्वाहाकार आहुतियों से समृद्ध करें। और (आहुतयः) आहुतियां (मे कामान्) मेरी समस्त कामनाओं को (समर्धयन्तु) समृद्ध करें। (भूः स्वाहा) एक समस्त पृथिवी न्याय नीति द्वारा मेरे वश में अच्छी प्रकार हो। (१) 'सत्यं'—तद् यत् सत्यं त्रयी सा विद्या ।२।७।५।१।१८॥ सत्यं वा ऋतम् २।७।३।१।२३॥ यो वै धर्मः सत्यं वै तत् । सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति । धर्मं वा वदन्त सत्यं वदतीति । श० १४।४।२।२६॥ व्रतस्य रूपं यत् सत्यम् । श० १२।८।२।५॥ एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३।४।२।८॥ (२) 'यज्ञः'—स (सोमः) तायमानो जायते स यत् जायते तस्माद् यज्ञः । यज्ञो ह वै नाम एतत् यद् यज्ञः । श० ३।७।४।२३॥ यज्ञो वै विशः । यज्ञे ह सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि । श० ८।७।३।२१॥ वाग् यज्ञस्य रूपम् । श० १२।८।२।४॥ (३) 'यजूंषि'—एष हि यद् इदं सर्वं जनयति । एतं यन्तमिदमनुप्रजायते । तस्माद् वायुरेव यजुः । अयमेवाकाशो जूः । यदिदमन्तरिक्षमेतं हि आकाश-मनुजायते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं यच्च जूश्च । तस्माद् यजुः । श० १०।३।५।२॥ 'इषे त्वा । उर्जे त्वा । इत्येवमादि कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । गो० पू० १।२७॥ मन एव यजूंषि । श० ४।६।७।५॥ यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहु-र्योनिम् । तै० ३।१२।१।२॥ (४) 'सामानि'—देवाः सोमं साम्ना समानयन् ।

तत्साम्नः सामत्वम् । तै० २।२।८।७॥ स प्रजापतिः हैवं षोडशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् । तद् यत्सार्धं समैत् तत्साम्नः सामत्वम् । जै० ३। १।४।७॥ तद् यत् संयन्ति तस्मात्साम । जै० ३०।१।३।३।६॥ तद्यदेष सर्वैर्लोकैः समः तस्मात् साम । जै० ३०।१।२२।५॥ सा च अमश्चेति तत्साम अभवत् । जै० ३०।१।५।३।२॥ साम हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० ४।७।५।६॥ क्षत्रं वै साम । श० १२।८।३।२३॥ साम हि सत्याशीः । ता० ११।१०।१०॥ धर्म इन्द्रो राजा । तस्य देवाः विशः । सामानि वेदः । श० १३।४।३।१४॥ (५) 'ऋचः'—प्राणा वा ऋक् । कौ० ७।१०॥ वाग् ऋक् । जै० ३।४।२३।४॥ अमृतं ऋक् । कौ० ७।१०॥ अस्थि वा ऋक् । श० ७।५।२।२५॥ मुय आहुतयो यदृचः । श० १।५।६।४॥ (६) 'पुरोऽनुवाक्याः'—प्राण एव पुरोऽनुवाक्या । श० १४।६।१।१२॥ पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया यजति । शत० १४।६।१।९॥ (७) 'याज्या'—इयं पृथिवी याज्या । श० १।४।२।१९॥ वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव । ऐ० २।४॥ अन्नं वै याज्या । गो० उ० ३।२२॥ प्रत्तिर्वै याज्या पुण्या लक्ष्मीः । ऐ० ३।४०॥ (८) 'वषट्काराः'—स वै 'वौक्' इति करोति । वाग् वै वषट्कारः वाग् रेतः । रेत एतत् सिञ्चति । षड् इति ऋतवः । ऋतवो वै षट् । ऋतुष्वेवैतद् रेतः सिच्यते । यो धाता स एव वषट्कारः । ऐ० ३।४९॥ (९) 'आहुतयः'—तद् यदाह्वयति तस्मादाहुतिर्नाम । श० ११।२।२॥ आहितयो ह वै ता आहुतय इत्याचक्षते । श० १०।६।१।२॥ अर्थात्—प्रथम श्रेणी के द्वितीय श्रेणी के पुरुषों से बलवान् बनें, द्वितीय कोटि के तृतीय अर्थात् उच्च-कोटि के पुरुषों से समृद्ध हों । उच्च कोटि के लोग सत्य, न्याय और धर्म से बढ़ें । सत्य वाग् यज्ञ से, यज्ञ सत्य व्यवहार को बढ़ावें । यज्ञ यजुओं से बढ़े अर्थात् वाणी, मन के विचार से पुष्ट हो और प्रजा का परस्पर संगठन वायु के समान बलवान् और अन्तरिक्ष के समान आवरणकारी रक्षक राजा के बल से बढ़े । यजुर्वेद सामवेद से बढ़े अर्थात् क्षात्रबल सबके समान सहकार्यकारिता पुष्ट हो । सामवेद

ऋक से बढ़े अर्थात् क्षत्रिय लोग वैश्यों की सहायता से बढ़ें। ऋचाएं पुरोनुवाक्या से बढ़ें अर्थात् अन्न का बल प्राण या अन्न की वृद्धि से हो। पुरोनुवाक्या याज्या से बढ़े अर्थात् पुण्य लक्ष्मी अन्न सम्पत्ति से बढ़ें। याज्या वषट्कार से बढ़े अर्थात् पुण्य लक्ष्मी वीर्य और सामर्थ्य की वृद्धि से बढ़े। वषट्कार आहुतियों से बढ़े अर्थात् बल वीर्य परस्पर के संघर्ष और स्थिर सम्पत्तियों के प्रधान कर्त्तव्य रक्षणों से बढ़ें। शत० १२।८।३।३०॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ् म॒ आन॑ति॒राग॑तिः।

मा॒ꣳसं म॒ ऽउप॑नति॒र्वस्व॒स्थि म॒ज्जा म॒ ऽआन॑तिः॥ १३॥

अनुष्टुप्। गांधारः। अध्यापकोपदेशकौ, लोमत्वङ्मांसास्थिमज्जानो लिंगोक्ताः॥

भा०—राजा के शरीर की राज शक्तियों से तुलना। (प्रयतिः) राष्ट्र में समस्त जनों का प्रयत्न, श्रम या उत्तम शासन (मम) मेरे शरीर के (लोमानि) लोमों के समान, राष्ट्र की रक्षा के साधन हैं। (आनतिः) शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों को झुकाने वाली शक्ति और (आगतिः) मेरी आज्ञा पाते ही उनका आना, ये दोनों शक्तियां (मे त्वक्) मेरी त्वचा के समान राष्ट्र की रक्षा करने वाली हैं। (उपनतिः) लोगों को आदर से झुकाने वाली शक्ति (मे मांसम्) मेरे शरीर के मांस के समान राष्ट्र-शरीर को स्वस्थ समृद्ध होने के समान है (वसु अस्थि) मेरी प्रजा को बसाने का सामर्थ्य और ऐश्वर्य मेरे शरीर में अस्थि के समान राष्ट्र-शरीर के दृढ़ आधार के समान है। (मे आनतिः) प्रेम से, लोगों का मेरे गुणों के समक्ष झुकाने वाला बल (मे) मेरे शरीर विद्यमान (मज्जा) मज्जा के समान, राष्ट्र-शरीर में सबको सुख, शान्ति देने वाला है। शत० १२।८।३।३१॥

यद्दे॒वा दे॑व॒हेड॑नं॒ देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम्।

अ॒ग्निर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः॥ १४॥

अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

(१४—१६) तिस्रः कूष्माण्डीसंज्ञा ऋचः। '०हेळेन०' इति काण्व०।

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो ! (देवासः) उत्तम गुणवान् और विद्यावान्, विजयशील (वयम्) हम लोग (यत्) जो भी (देव-हेडनम्) विद्वान्, ज्ञानी पुरुषों का अनादर और अपराध (चकृम) करें (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् परमेश्वर, आचार्य और राजा (मा) मुझको (तस्मात् विश्वात्) उस प्रकार के सब (एनसः) अपराध, पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे। शत० १२।९।२।२॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनांᳬसि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳬहंसः॥ १५॥

वायुर्देवता। निचृद् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(यदि) चाहे (दिवा) दिन के समय (यदि नक्तम्) चाहे रात्रिकाल में (वयम्) हम लोग (एनांसि) अपराध और पाप (चकृम) करें तो भी (वायुः) वायु बल व्यापक, अन्तर्यामी परमेश्वर ज्ञानी आप्त पुरुष एवं राजा (तस्मात् विश्वात् एनसः) उस सब अपराध से और (विश्वात् अंहसः) सब प्रकार के पाप से भी (मा मुञ्चतु) मुझे मुक्त करे। शत० १२।९।२।२॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न ऽएनांᳬसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वᳬहंसः॥ १६॥

सूर्यो देवता। निचृद् अनुष्टुप। गांधारः॥

भा०—(यदि जाग्रत्) यदि जागते और (यदि स्वप्ने) यदि सोते में भी (वयम्) हम (एनांसि) पाप (चकृम) करें तो (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर, विद्वान्, राजा (मा) मुझको (तस्मात् एनसः) उस पाप से और (विश्वात् अंहसः) समस्त प्रकार के पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे। शत० १२।७।२।२॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि॥ १७॥

लिंगोक्ता देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(वयम्) हम (यत्) जो (एनः) पाप (ग्रामे) ग्राम में, (यत् अरण्ये) जो पाप जंगल में, (यत् सभायाम्) जो पाप सभा में, और (यत् इन्द्रिये) जो अपराध पर स्त्री दर्शन आदि चित्त में और चक्षु आदि इन्द्रियों में, (यत् शूद्रे) जो शूद्र या सेवक जन पर, यद् अर्ये और जो पाप स्वामी के प्रति, (चकृम) करें और (यत्) जो अपराध हम (एकस्य) एक, किसी भी पुरुष के (धर्मणि अधि) धर्म या कर्त्तव्य-पालन के भङ्ग करने में करें (तस्य) उस अपराध का, हे परमेश्वर ! विद्वन् ! राजन् ! तू (अवयजनम्) नाश करने वाला (असि) हो। शत० १२।९।२।३ ॥

यदापो॑ अ॒घ्न्या इति॒ वरु॒णेति॒ शपा॑महे॒ ततो॒ वरुण नो मुञ्च। अव॑भृथ निचुम्पुण निचे॒रुर॑सि, निचुम्पु॒णः। अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॒ऽयक्ष्यव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतम्पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ॥ १८ ॥

भा०—(यदाप० इत्यादि) देखो अ० ६। २२ ॥ (अवभृथ० इत्यादि) देखो व्याख्या अ० ३। ४८ ॥

स॒मु॒द्रे ते॒ हृद॑यम॒प्स्व॒न्तः सन्त्वा॑ विश॒न्त्वोष॑धीरु॒ताप॑ः। सु॒मि॒त्रि॒या न॒ऽआप॒ऽओष॑धयः सन्तु दुर्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ १९ ॥

भा०—(समुद्रे० इत्यादि) व्याख्या देखो अ० ८। २५ ॥ (सुमित्रिया० इत्यादि) व्याख्या देखो अ० ६। २२ ॥

द्रु॒प॒दादि॑व मुमुचा॒नः स्वि॒न्नः स्ना॒तो मला॑दिव।
पू॒तं प॒वित्रे॑णे॒वाज्य॒माप॑ः शुन्धन्तु॒ मैन॑सः ॥ २० ॥

आपो देवताः। भुरिग् अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—(आपः) जलों के स्वच्छ करने वाले, स्वतः शान्ति और जीवन के देने वाले आप्त जन, सदाप्राप्त परमेश्वर (मा) मुझको (एनसः) पाप से ऐसे (शुन्धन्तु) शुद्ध करें जैसे (मुमुचानः) मुक्त होने या टूटने वाला फल (द्रुपदात् इव) वृक्ष से अथवा (मुमुचानः द्रुपदादिव) जिस प्रकार छूटने वाला पशु काष्ठ के बने खूंटे से छूट जाता है और जिस प्रकार

(स्विन्नः) पसीने से भरा पुरुष (स्नातः) नहा-धोकर (मलात् इव) मल से रहित हो जाता है और जिस प्रकार (पवित्रेण) छानने के कम्बल या वस्त्र से (पूतम्) छना हुआ (आज्यम्) घी कीट, मल आदि से स्वच्छ हो जाता है। शत० १२।९।२।७॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ २१॥

प्रस्कण्व ऋषिः। सूर्यो देवता। विराड् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(वयम्) हम (उत्तरम्) इस लोक से उत्कृष्ट और उच्च (स्वः) सुखमय लोक को और (उत्तमम्) सबसे उत्तम उत्कृष्ट, (ज्योतिः) परम ज्योति-स्वरूप, (देवत्रा देवम्) प्रकाशमान पदार्थों में भी सबसे अधिक प्रकाशमान, दानशीलों में सबसे अधिक दानशील विजिगीषुओं में सबसे अधिक विजिगीषु (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर और राजा को (पश्यन्तः) देखते हुए (तमसः) अन्धकार से (परि) दूर (उद् अगन्म) ऊपर उठें। शत० १२।९।२।८॥

अपो अद्यान्वचारिषᳬं रसेन समसृक्ष्महि। पयस्वानग्न ऽआगमं तं मा सᳬं सृज वर्चसा प्रजया च धनेन च॥ २२॥

प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिः। पंचमः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! ज्ञानवन्! तेजस्विन्! (अद्य) आज मैं (अपः) जलों के समान स्वच्छ आप्त पुरुषों को पाकर ज्ञान और कर्मानुष्ठानों को (अनु अचारिषम्) नियमानुकूल यथाविधि आचरण कर चुका हूँ और (रसेन) ज्ञान के उत्तम रस या बल से हम (सम् असृक्ष्महि) संयुक्त हैं (पयस्वान्) शक्तिवर्धक ज्ञानरस से युक्त होकर मैं (आगमम्) तेरी शरण आता हूँ (तं मा) उस मुझको (वर्चसा) तेज, वीर्य (प्रजया) प्रजा और (धनेन च) धन, से (संसृज) युक्त कर। शत० १२।९।२।९॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।
समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्।

वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभूः कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥ २३ ॥

समिद् अग्निर्वैश्वानरश्च देवताः । स्वराड अतिशक्वरी । पंचमः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! प्रभो ! (त्वम्) तू (एधः असि) अग्नि में रखे काष्ठ के समान तेज को बढ़ा देने वाला स्वतः प्रकाशस्वरूप है । हम (एधिषीमहि) सदा वृद्धि को प्राप्त हों । तू (समित् असि) संग लगे अग्नि को काष्ठ के समान प्रकाशित करने वाला है, तू स्वयं (तेजः असि) तेजः स्वरूप है । (मयि) मुझ में तू (तेजः देहि) तेज प्रदान कर । (पृथिवी) पृथिवी, यह लोक (सम् आववर्ति) अच्छी प्रकार रहे, (उषाः) उषा (सम्) अच्छी प्रकार सुखदायिनी हो, (सूर्यः सम् उ) सूर्य हमें सदा सुखदायी हो । (इदं विश्वं जगत्) यह समस्त जगत् (सम् उ) हमें सुखकारी हो । और मैं (वैश्वानर-ज्योतिः) समस्त विश्व के हितकारक जाठर अग्नि, सामान्य अग्नि, विद्युत् और सूर्य और परमेश्वर की सब ज्योतियों के समान ज्योति धारण करने वाला, सर्वोपकारक (भूयासम्) होऊं । मैं (विभून्) बड़े-बड़े, विविध (कामान्) कामनायोग्य ऐश्वर्यों को (व्यश्नवै) प्राप्त करूं । (भूः स्वाहा) संसार के उत्पादक, परमेश्वर और पृथ्वी को उत्तम न्याय धर्म और सत्य ज्ञान द्वारा प्राप्त करूं । शत० १२ । ९ । २ । १० ॥

अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ॥ २४ ॥

अश्वतराश्विर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (व्रतपते अग्ने) व्रतों और सत्य कर्मों के पालक अग्ने ! तेजस्विन् ! (त्वयि) अग्नि में समिधा के समान तुझ में (समिधम्) प्रदीप्त हो जाने में समर्थ अपने आपको मैं (अभि आदधामि) तेरे समक्ष शिष्य-रूप से स्थापित करता हूँ और (व्रतं च) व्रत और (श्रद्धां च) सत्य धारक बुद्धि को (उप-एमि) प्राप्त होता हूँ और (अहम्) मैं (दीक्षितः) दीक्षित होकर (त्वा इन्धे) तुझे भी प्रज्ज्वलित करता हूँ । अग्नि में जल के अग्नि

को भी प्रदीप्त करता है उसी प्रकार शिष्य व्रत और विद्या से प्रदीप्त होकर गुरु के यश का कारण हो। वीरगण अपने नायक रूप अग्नि में काष्ठ के समान अपने को समर्पित करें, उसी पर विश्वास रख कर आज्ञा पालन करते हुए पराक्रम करें।

यत्र ब्रह्म॑ च क्षत्रं च॑ सम्यञ्चौ॒ चर॑तः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञे॑षं यत्र॑ देवाः सहाग्निना॑ ॥ २५ ॥

आश्वतराश्विर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(यत्र) जहां (ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मणगण और वेद ज्ञान, क्षात्रबल, शौर्य, वीर्य और क्षत्रियगण दोनों (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार से पुष्ट होकर (सह) एक साथ (चरतः) विचरण करें, विद्यमान हों (तम्) उस दर्शनीय (लोकम्) जनसमाज को मैं (पुण्यम्) पुण्य, निष्पाप पवित्र, (प्रज्ञेषम्) जानता हूँ, (यत्र) जहां (देवाः) विद्वान्गण और विजयशीलजन (अग्निना) तेजस्वी आचार्य एवं नायक सेनापति या राजा के साथ निवास करते हैं।

वह आत्मा अच्छा है जिसमें ज्ञान और बल दोनों हों जिसमें इन्द्रिय साथ सुख से रहें। वह समाज और देश उत्तम है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय हृष्ट-पुष्ट रहें और विद्वान् प्रजागण राज्य के साथ रहें। आचार्य कुल उत्तम है जिसमें दीक्षित ब्राह्मण और क्षत्रिय सभी धर्म का आचरण करें और विद्वान् शिष्यगण आचार्य के साथ रहें।

यत्रेन्द्र॑श्च वायुश्च॑ सम्यञ्चौ॒ चर॑तः सह।
तं लोक पुण्यं प्रज्ञे॑षं यत्र सेदिर्न विद्यते॑ ॥ २६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्॥

भा०—(यत्र) जहां, जिस लोक में (इन्द्रः च वायुः च) इन्द्र और वायु (सम्यञ्चौ) पूर्ण बलवान् होकर (सह चरतः) एक साथ विचरण करते हैं मैं (तं लोकम्) उस लोक, स्थान, प्रदेश, आत्मा और समाज को (पुण्यम्) प्रवित्र (प्रज्ञेषम्) जानता हूँ। (यत्र) जहां (सेदिः) अन्नादि

के न मिलने के कारण उत्पन्न विपत्ति, दुर्भिक्ष आदि क्लेश (न विद्यते) नहीं होता। (१) मोक्ष में इन्द्र अर्थात् जीव और वायु अर्थात् व्यापक परमेश्वर दोनों साथ विचरते हैं, वह पुण्य लोक है। वहां भूख प्यास, जन्म मरण कष्ट नहीं। (२) जिसमें इन्द्र, राजा, वायु सेनापति दोनों सुसंगत रहते हैं वह देश पुण्य है जहां अन्नादि का अभाव और प्रजाजन का नाश नहीं होता। (३) वह शरीर पवित्र है जिसमें आत्मा और प्राण सुसंगत रहें, जहां रोगादि क्लेश नहीं।

अ॒ꣳशुना॑ ते अ॒ꣳशुः पृ॑च्यतां॒ परु॑षा॒ परुः॑।
ग॒न्धस्ते॒ सोम॑मवतु॒ मदा॑य॒ रसो॒ऽअच्यु॑तः॥ २७॥

सूर्यो देवता। विराड अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(ते अंशुना) तेरे व्यापक सामर्थ्य से (अंशुः) राष्ट्र का व्यापक सामर्थ्य और (परुषा परुः) पोरू से पोरू (पृच्यताम्) जुड़ा रहे। (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध, शत्रुनाशक बल और (अच्युतः) कभी न्यून न होने वाला अटूट (रसः) रस, बल (मदाय) आनन्द सुख के लिये (सोमम्) सोम, ऐश्वर्य, राष्ट्र के राजपद की (अवतु) रक्षा करे।

सि॒ञ्चन्ति॒ परि॑ षिञ्च॒न्त्युत्सि॑ञ्चन्ति पु॒नन्ति॑ च।
सुरा॑यै ब॒भ्र्वै मदे॒ किन्त्वो॑ वदति॒ किन्त्वः॑॥ २८॥

सोम इन्द्रो वा देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—दानशील राजा का वर्णन। प्रजाजन (सिञ्चन्ति) राजा को अभिषेक करते हैं, (परि षिञ्चन्ति) सब ओर से आये प्रजाजन उसका अभिषेक करते हैं, (उत्सिञ्चन्ति) उसको उत्तम पद पर अभिषिक्त करते हैं और उसको (सुरायै) सुखपूर्वक देने योग्य या उत्तम भोगने योग्य, (बभ्र्वै) सब के भरण पोषण करने वाली राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति के लिये (पुनन्ति) पवित्र करते हैं, जिससे राजा राजपद पाकर भी पाप व्यसनों में न फंसे, वह भी (मदे) लक्ष्मी की प्राप्ति के सुख में तृप्त होकर सबको (वदति) कहता है (किन्त्वः किन्त्वः) हे प्रजाजने! तुझे क्या चाहिये? तुझे

क्या चाहिये ? तुझे क्या कष्ट है, तुझे क्या दुःख है ? वह राज्यलक्ष्मी पाकर दरिद्रों को दुःखितों का कष्ट पूछा करे।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ २९ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हममें से (धानावन्तम्) धारण पोषण करने वाली नाना गौओं या शक्तियों से युक्त, (करम्भिणम्) क्रियाशील, उद्यमी पुरुषों से सम्पन्न, (अपूपवन्तम्) इन्द्रियों के सामर्थ्य वाले और (उक्थिनम्) वेदशास्त्र के ज्ञान-प्रवचन से युक्त प्रजाजन को (प्रातः) प्रातः, सब से प्रथम (जुषस्व) प्राप्त कर।

करोतेरम्बच्। करम्बः। उणादि०। अपूपमिन्द्रियम्। श०॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ३० ॥

नृमेधपुरुमेधावृषी। इन्द्रो देवता। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वायु के समान वेगवान् वीर पुरुषो ! हे शत्रुओं को मारने हारो ! आप लोग (वृत्रहन्तमम्) नगर को रोक लेने वाले शत्रु को मारने वालों में सबसे श्रेष्ठ (बृहत्) महान् शक्तिमान् राष्ट्र के उस अधिकार का (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा को (गायत) उपदेश करो (येन) जिससे (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान और न्याय व्यवहार की वृद्धि करने वाले (देवाय) देव, दानशील राजा के (जागृवि) सदा जागने वाले, सदा सावधान, (देवम्) सर्वविजयकारी, (ज्योतिः) तेज को (अजनयन्) उत्पन्न करते हैं, प्रकट करते हैं। विद्वान्‌गण, विघ्ननाशक इन्द्र प्रभु का गायन करें।

अध्वर्यो ऽअद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र ऽआ नय।
पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

इन्द्रो देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो विद्वन् ! यज्ञवत् अखण्ड राज्य के संयोजक महामात्य तू (अद्रिभिः) अजेय शस्त्रधारियों से (सुतम्) अभिषिक्त हुए (सोमम्) राजा को (पवित्रे) पवित्र राज सिंहासन पर (आ नय) प्राप्त करा और (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त, राष्ट्र के (पातवे) पालन करने के लिये (पुनीहि) उसके आत्मा, मन इन्द्रियों को पवित्र कर।

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका ऽअधिश्रिताः। यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

नारायणीयः कौडिन्य ऋषिः। आत्मा परमात्मा च देवते। पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—राजा के कर्त्तव्य। हे राजन्! (यः) जो परमेश्वर (भूतानाम्) समस्त चराचर प्राणियों का (अधिपतिः) सर्वोपरि स्वामी है। (यस्मिन् लोकाः) जिसके आश्रय पर समस्त लोक, (अधिश्रिताः) आश्रित हैं, (यः) जो (महान्) सबसे महान् होकर (महतः) बड़े-बड़े आकाशादि महत् परिणाम के पदार्थों और महत्तत्व आदि प्रकृति के विकारों को भी (ईशे) अपने वश कर रहा है (तेन) उस परमेश्वर के परम ऐश्वर्य से (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं (गृह्णामि) राज्य पद के लिये स्वीकार करता हूँ। (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं राज्य कार्य का मुख्य प्रवर्त्तक 'अध्वर्यु' (मयि) अपने ही उत्तरदायित्व पर (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ अर्थात् जैसे परमात्मा समस्त भूतों का पति है वैसे राजा भी राष्ट्र का स्वामी बने, जैसे उसमें समस्त लोक स्थित हैं, वैसे उसके आश्रय पर समस्त लोक जन हैं। जैसे वह बड़े आकाशादि पर वश करता है वैसे राजा बड़े-बड़े राजाओं पर वश करे।

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥

काक्षीवतः सुकीर्तिर्ऋषिः। सोमो देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—इसकी व्याख्या देखो अ० १०। २३॥

प्राणपा मे॑ऽअपानपाश्च॑क्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च॑ मे ।
वाचो मे॑ विश्वभे॑षजो मन॑सोऽसि विलाय॑कः ॥ ३४ ॥

लिंगोक्ता देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे परमेश्वर राजन् ! विद्वन् ! आचार्य ! तू (मे) मुझ शिष्य जन और प्रजाजन के (प्राणपाः) प्राणों का पालक, (अपानपाः) अपानों का पालक, (श्रोत्रपाः) श्रोत्रों का पालक, (मे वाचः) मेरी वाणियों के (विश्वभेषजः) सब दोषों को दूर करने वाला और (मनसः) मन को (विलायकः) विविध मार्गों में लगाने हारा है। वा अपने में मान करने वाला है।

आश्विन॑कृतस्य ते सर॑स्वतिकृतस्येन्द्रे॑ण सुत्राम्णा कृतस्य॑ ।
उप॑हूतऽउप॑हूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

ग्रहाः लिंगोक्ता देवताः । निचृदुपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—मैं अधीनस्थ अधिकारी पुरुष भी (उपहूतः) आदरपूर्वक निमन्त्रित वा अधिकार प्राप्त हूँ। हे राष्ट्र जन ! मैं (अश्विन-कृतस्य) प्रजा के स्त्री-पुरुषों द्वारा कृत, निश्चित, (सरस्वतीकृतस्य) विद्वत्सभा द्वारा (कृतस्य) नियत (ते) तेरे हित के लिये (उपहूतस्य) आदरपूर्वक प्राप्त अधिकार का मैं (भक्षयामि) उपभोग करूं।

समि॑द्धऽ इन्द्र॑ऽउषसामनी॑के पुरोरुचा॑ पूर्वकृद् वा॑वृधानः ।
त्रिभिर्दे॒वैस्त्रि॒ꣳशता वज्र॑बाहुर्ज॒घान वृत्रं वि दुरो॑ ववार ॥ ३६ ॥

[३६—४७] इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः । आंगिरस ऋषिः ॥

भा०—(समिद्धः) अति प्रदीप्त, अति तेजस्वी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार (उषसाम् अनीके) उषाओं या प्रभात काल के मुख में (पुरोरुचा) अपने आगे चलने वाली अति दीप्ति से (पूर्वकृतम्) पूर्व विद्यमान अन्धकार को नाश करता हुआ आगे बढ़ता है उसी प्रकार (समिद्धः)

३६—इतः सौत्रामणिकं होत्रम् । अतः एकादशेन्द्रस्याप्रियः ॥

सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक इन्द्र, सेनापति (उपसाम्) शत्रु के गढ़ों को जलाने हारे, या शत्रु सेनाओं को अपने आग्नेयास्त्रों से जलाने वाले सैन्यों के या (उपसाम्) स्वयं दाहकारी आयुधों के (अनीके) सेनासमूह के, अग्रभाग में, (पुरोरुचा) आगे-आगे फैलने वाली दीप्ति से या दीप्तिमान् शक्ति से (पूर्वकृत्) पूर्व ही शत्रु पर आक्रमण करने हारा होकर, या पूर्ण बलवान् शत्रु का नाशक होकर स्वयं (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वज्रबाहुः) खड्ग को हाथ में लिये, बलवान्, दण्डधर राजा, (त्रिभिः त्रिंशता देवैः) तेंतीस देवों अर्थात् राष्ट्र के निमित्त विजय करने वाले कुशल पुरुषों के साथ मिलकर (वृत्रं जघान) आवरणकारी शत्रु का नाश करे। और (दुरः) शत्रु दुर्ग के द्वारों को (विववार) विविध रूप से खोल दे। आत्मा के पक्ष में—इन्द्र, आत्मा योग द्वारा तेजस्वी होकर अज्ञाननाशक, ध्यान योग से प्रकट ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं के प्रारम्भ में स्वयं उग्र दीप्ति से अन्धकार को नाश करे आवरणकारी तम और अन्धकारी देहबन्धन का नाश करे और द्वारों को खोल दे।

नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥

इन्द्रस्तनूनपाद् देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(नराशंसः) आश्रित जनों से स्तुति के योग्य, (शूरः) शूरवीर, निर्भय, (प्रति मिमानः) राष्ट्र के प्रत्येक कार्य को स्वयं जानता और करता हुआ (तनूनपात्) अग्नि के समान, तेजस्वी, जाठर अग्नि जैसे शरीर को नहीं गिरने देता वैसे ही राष्ट्र का पतन न होने देने वाला और शरीर को प्राणवत् राष्ट्र का रक्षक होकर (यज्ञस्य) राज्य रूप यज्ञ या प्रजापति, राजा के (धाम) धारण सामर्थ्य और प्रताप को (प्रति) बनाये रक्खे। वह (गोभिः) गवादि पशुओं से (वपावान्) लक्ष्मीवान् एवं (गोभिः वपावान्) भूमियों से कृषि-सम्पत्तिमान् और शास्त्र-वाणियों से बुद्धिमान्

होकर (मधुना) स्वयं मधु, ज्ञान, अन्न और बल से (समञ्जन्) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, (हिरण्यैः) सुवर्ण आदि रमणीय और हितकारी पदार्थों से (चन्द्री) प्रजा का आनन्दकारी, ऐश्वर्यवान् और (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (यजति) यज्ञ करता, दान देता, राष्ट्र को व्यवस्थित करता है ।

ईडितो देवैर्हरिवाँ२ऽ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

इड इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—(देवैः) देव, विजीगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों द्वारा (ईडितः) स्तुति और आदर प्राप्त (हरिवान्) उत्तम घोड़ों वाला (अभिक्रुष्टिः) सब दिशाओं में आक्रमण करने और गमन करने में समर्थ, सब प्रजाओं का स्वामी, (आजुह्वानः) शत्रुओं द्वारा ललकारा गया या विद्वानों द्वारा आदर से बुलाया हुआ (हविषा) राष्ट्र से प्राप्त कररूप ऐश्वर्य से (शर्धमानः) शत्रुओं का पराजय करता हुआ, (पुरन्दरः) शत्रु के गढ़ों को तोड़ने वाला, (गोत्रभिद्) शत्रुवंशों का उच्छेद करने वाला, (वज्रबाहुः) खड्ग आदि वीर्य को धारण करने वाला वह राजा (नः) हमारे (यज्ञम्) राष्ट्र के पालन कार्य, प्रजापति पद को (जुषाणः) प्रेम से स्वीकार करता हुआ हमें (आ यातु) प्राप्त हो ।

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्नऽइन्द्रः प्राचीनꣳसीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳस्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥

आंगिरस ऋषिः । बर्हिष्मान् इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बर्हिः जुषाणः इन्द्रः) अन्तरिक्ष में विराजमान सूर्य जिस प्रकार (पृथिव्याः) पृथिवी के (प्राचीनम्) प्राचीन दिशा के प्रदेश में (प्र-दिशा) प्रबल तेज से विराजता है और (हरिवान्) किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार (आदित्यैः) अपने किरणों से (अरक्तम्) प्रकाशित (बर्हिः)

३९— दूषितो०' इति काण्व० ।

महान् ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष में (आ सीदत्) विराज जाता है। उसी प्रकार (हरिवान्) तीव्र वेगवान् अश्वों और तीव्र मतिमान्, विद्वान्, वीर पुरुषों का स्वामी, (इन्द्रः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् राजा (प्र-दिशा) अपने उत्कृष्ट शासन के बल से (पृथिव्याः) पृथिवी (बर्हिः) महान्, बृहत् राष्ट्र या ऐश्वर्य को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ, (उरुप्रथाः) अति विस्तृत शक्तिशाली होकर (आदित्यैः) सूर्य के किरणों के समान तेजस्वी, (वसुभिः) बसने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों द्वारा, अथवा (आदित्यैः वसुभिः) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर (अक्तम्) प्रकाशित; तेजोमय (स्योनम्) सुखकारी (प्रथमानम्) विख्यात, विस्तृत एवं (प्राचीनम्) अति उत्कृष्ट राज्य को (आसीदत्) विराजे।

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्त सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः
॥ ४० ॥ ऋ० २। ३। ५॥

द्वार्वान् इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जिस प्रकार (कवष्यः) उत्तम स्तुति करने वाली, (जनयः) पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ (सुपत्नीः) उत्तम गृहपत्नियां, स्त्रियां, (धावमानाः) रजोधर्म से शुद्ध हुई (वृषाणम्) वीर्य सेचन में समर्थ पति के पास जाती हैं उसी प्रकार (कवष्यः) उत्तम, हर्ष ध्वनि करने वाली, (दुरः) अति वेगवती (जनयः) उत्तम रूप से सजाई गई, (सुपत्न्यः) उत्तम रीति से नगर की रक्षा करने वाली (द्वारः) द्वारों के समान शत्रुओं का वारण करने वाली (धावमानाः) बड़ी उत्सुकता से समीप आती हुई सेनाएं (वृषाणम्) बलवान् (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को (यन्तु) प्राप्त हों और जिस प्रकार (सुवीराः) उत्तम पुत्रवती स्त्रियां (महोभिः) आनन्द उत्सवों से (वीरं प्रथमानाः) अपने वीर पति की प्रशंसा करती हैं उसी प्रकार (सुवीराः) उत्तम वीर पुरुषों से सजी (देवीः) शोभा वाली, विजय-

शील, (महोभिः) तेजों से (वीरम्) वीर्यवान् राजा की (प्रथमानाः) शक्ति और यश को विस्तृत करती हुई (द्वारः) शत्रुओं का वारण करने वाली द्वारों के समान सुदृढ़ सेनाएं (विश्रयन्ताम्) विविध रूप से विविध देशों और दिशाओं में खड़ी हों ।

जिस प्रकार पत्नियां पति के स्वागत के लिये द्वार पर आ जाती हैं उसी प्रकार प्रजाएं राजा के स्वागत के लिये द्वार पर आवें ।

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥

ऋ० २ । ३ । ६ ॥

उषासानक्तौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार (उषासानक्ता) उषा, प्रभातवेला और नक्त, रात्रिवेला दोनों (इन्द्रम्) सूर्य को (पेशसा) उत्तम रुचिकारक तेज से (संवयन्ती) आवरण करती हुई (यजतः) संगत होती हैं उसी प्रकार (बृहती) बड़े भारी दो सेनाएं या प्रजा और सेना की पंक्तियां (पयस्वती) पुष्टिकारक तेज, पराक्रम और अन्न को धारण करने वाली, (सुदुघे) उत्तम शक्ति और ऐश्वर्य से राजा को पूर्ण करने वाली होकर (शूरम् इन्द्रम्) शूरवीर राजा को (तन्तुम्) पट के तन्तुओं के समान स्वयं (ततम्) विस्तृत (पेशसा) ऐश्वर्य या उज्ज्वल रूप से (संवयन्ती) मानो बुनती सी हुईं, उसके विस्तृत रूप को प्रकट करती हुईं (सुरुक्मे) सुखप्रद ऐश्वर्य सहित होकर (देवनाम्) तेजस्वी और विजयी पुरुषों के बीच (देवम्) तेजस्वी विजिगीषु पुरुष को (यजतः) प्राप्त होती हैं ।

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥४२॥

दैव्यो होतारो अध्यापकोपदेशकौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

४२—०होतारा इन्द्र० इति काण्व० ।

भा०—(दैव्यौ होतारौ) देवों, विद्वानों में प्रतिष्ठा से विद्यमान, (होतारौ) यज्ञ के होताओं के समान राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ अधिकारी वायु और अग्नि, सेनापति और विद्वान् महामात्य दोनों (प्रथमा) सबसे मुख्य (सुवाचा) उत्तम वाणी वाले, (पुरुत्रा मनुषः) बहुत से मनुष्यों को (ममानौ) अपने वश करके राज्य का निर्माण करते हुए और (इन्द्रम्) शत्रुनाशक या ऐश्वर्यवान् राजा को (यज्ञस्य) सुव्यवस्थित राज्य के या प्रजापति के पद के (मूर्धन्) मुख्य शिरोभाग पर (मधुना) अपने ज्ञान और बल से (दधाना) स्थापन करते हुए (प्राचीनं ज्योतिः) प्राची दिशा में उत्पन्न सूर्य के समान उदित होते ही तेजस्वी राजा को (हविषा) अन्न, बल, ज्ञान और कर द्वारा हवि से अग्निवत् (वृधातः) बढ़ाते हैं।

तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥४३॥
ऋ० २ । ३ । ८ ॥

इडासरस्वतीभारत्यस्तिस्रो देव्यो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती) सरस्वती, विद्वत्-सभा या विद्वान् जन ! (इडा) इडा, धर्मसभा और (देवी) विजयशालिनी, (भारती) धारण पोषणकर्त्री, प्रबन्धक सभा, (विश्वतूर्तिः) समस्त कार्यों के विना विलम्ब के अतिशीघ्रता से करने में समर्थ, (तिस्रः) तीनों (देवीः) दिव्य गुण वाली, एवं विद्वान् सदस्यों से बनी सभाएं (हविषा) अन्नादि ऐश्वर्य, ज्ञान और बल से (वर्धमानाः) बढ़ती हुई (जनयः पत्नीः न) पुत्रोत्पादन करने वाली पत्नियों के समान, (इन्द्रम्) अपने ऐश्वर्यशील स्वामी राजा या राज्य कार्य को (जुषाणाः) प्राप्त करके (पयसा) ऐश्वर्य, वीर्य, सामर्थ्य से (अच्छिन्नं तन्तुम्) अटूट सन्तान के समान विस्तृत राज्य-प्रबन्ध को बढ़ानेवाली हों।

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥४४॥

४३—०तिस्रा० इति काण्व० ॥

त्वष्टा रूपेणेन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(त्वष्टा) राज्य के समस्त उत्तम कार्यों को सम्पादन करने में समर्थ तेजस्वी क्षत्रिय (वृष्णे) शत्रुओं की शक्ति को बांधने वाले (इन्द्रस्य) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजपद के लिये (शुष्मम्) बलवीर्य को (दधत्) धारण करे । और वह (अपाकः) जिससे अधिक और प्रशंसनीय न हो अर्थात् सबसे अधिक प्रशंसनीय और (यशसे) यश, कीर्त्ति के लिये (अचिष्टुः) समस्त देश भर में पूजनीय होकर (पुरूणि) बहुत सी प्रजाओं को (दधत्) धारण करे । वही (वृषा) सेचन में समर्थ मेघ और समर्थ पुरुष के समान (भूरिरेताः) प्रचुर शक्तिशाली होकर (वृषणम्) मेघ के समान समस्त सुखों की धाराएं वर्षाने वाले राष्ट्र को या प्रभूत बल को (यजन्) प्राप्त करता हुआ यज्ञस्य प्रजापालक राष्ट्र के (मूर्धन्) सर्वोच्च पद पर रहकर (देवान्) विजयशील विद्वान् पदाधिकारियों और राज-सभासदों को (सम् अनक्तु) एकत्र करे ।

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः ।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥

वनस्पतिरूप इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वनस्पतिः) वन में लगे वृक्षों के समान अगणित असंख्य प्रजा और सेनाजनों का पालक, महावृक्ष वट आदि के समान बहुतों को आश्रय देने वाला राजा स्वयं (पाशैः) सभी बन्धनों से (अवसृष्टः न) मुक्त सा होकर भी (त्मन्या) अपने तेजः सामर्थ्य से (सम् अञ्जन्) प्रकाशमान होता हुआ (देवः) सूर्य के समान तेजस्वी, अन्यों को प्रकाशप्रद होकर (शमिता न) सब को शान्तिदायक एवं दण्डकर्त्ता-सा हो जाता है । वह (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (जठरम्) उदर के समान कोश को (हव्यैः) ग्रहण करने योग्य अन्न और ऐश्वर्यमय बहुमूल्य रत्नों से (पृणानः) पूर्ण करता हुआ (यज्ञम्) सुव्यवस्थित, सुसंगत राष्ट्र को (मधुना घृतेन)

मधुर घी से भोजन के समान (मधुना) मधुर (घृतेन) तेज से (स्वदाति) स्वयं सुख से भोग करता है।

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर ऽइन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट्।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा ऽअमृता मादयन्ताम् ॥४६

स्वाहाकृतयो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(स्तोकानाम्) अल्प शक्ति वाले पुरुषों में से जो (वृषभः) महान् (तुराषाट्) दुष्ट पुरुषों को पराजित करने हारा, (वृषायमाणः) प्रजाओं पर मेघ के समान सुखवर्षक (शूरः) शूरवीर है, वह (इन्द्रः) इन्द्र पद के योग्य है। उस (इन्द्रम् प्रति) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र राजा के (प्रति) प्रति (घृतप्रुषा) स्नेह और तेज को सेचन करने वाले (मनसा) मन से (मोदमानाः) अति प्रसन्न (अमृताः देवाः) जीवित, अधिकारी राजपुरुष (स्वाहा) उत्तम यश व वचनों द्वारा (मोदयन्ताम्) हर्ष अनुभव करें और प्रजा को सुखी करें।

आ यात्विन्द्रोऽवस ऽउप न ऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥४७॥

ऋ० ४। २१। १॥

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का विदारण करने वाला, विजयी (शूरः) शूरवीर (नः अवसे) हमारी रक्षा करने के लिये (इह) इस राष्ट्र में (उप-आयातु) प्राप्त हो। (स्तुतः) उत्तम गुणों से प्रशंसित वह (सधमाद् अस्तु) समस्त प्रजा और शासन के साथ सु-प्रसन्न होकर रहे। (यस्य) जिसके (पूर्वीः) पूर्ण सामर्थ्य वाले (तविषीः) बड़े-बड़े बल के कार्य और शक्तियां विद्यमान हैं और जो स्वयं (वावृधानः) सदा वृद्धिशील है वह (अभिभूति) शत्रु के पराजय करने में समर्थ अपने (क्षत्रम्) क्षात्र बल, वीर्य को (द्यौः न) सूर्य के समान (पुष्यात्) तेजस्वी, प्रचण्ड और पुष्ट करे।

४७—(४७–५२) षड् याज्यानुवाक्या।

आ न॑ऽइन्द्रो॑ दूरादा न॑ऽआसाद॑भिष्टिकृदव॑से यासदुग्रः।
ओजि॑ष्ठेभिर्नृपति॒र्वज्र॑बाहुः सङ्गे स॒मत्सु॑ तु॒र्वणिः॑ पृत॒न्यून् ॥४८॥
ऋ० ४। २०। १॥

इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(नः) हमारा (इन्द्रः) शत्रुओं को फोड़ देने में समर्थ ऐश्वर्य-वान् राजा (दूरात्) दूर देश से और (आरात्) समीप से भी (नः अवसे) हम प्रजा की रक्षा के लिये (उग्रः) अति बलवान् होकर (आ यासत्) आवे। और वह (ओजिष्ठेभिः) अति पराक्रमी, वीर पुरुषों के (सङ्गे) संग में (समत्सु) संग्राम के अवसरों पर (पृतन्यून्) सेना द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं को (तुर्वणिः) विनाश करने में समर्थ (वज्र-बाहुः) वीर्यवान् बाहुओं वाला शस्त्रास्त्र सम्पन्न होकर (नृपतिः) नरों का पालक हो।

आ न॑ इन्द्रो॒ हरि॑भिर्या॒त्वच्छा॒र्वा॒ची॒नोऽव॑से॒ राध॑से च।
तिष्ठा॑ति व॒ज्री म॒घवा॑ विर॒प्शीमं य॒ज्ञमनु॑ नो॒ वाज॑सातौ ॥४९॥
ऋ० ४। २०। २॥

इन्द्रो देवता। पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(वज्री) वीर्यवान्, शस्त्रबल से युक्त, (मघवा) ऐश्वर्यवान्, (विरप्शी) महान्, (इन्द्रः) इन्द्र, सेनापति, (अर्वाचीनः) अभिमुख दिशा में आगे की तरफ बढ़ने वाला, सदा उदयशील (नः) हमारे (अवसे) रक्षा और (राधसे च) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (अच्छ) भली प्रकार (आयातु) आगे बढ़े। वह (वाजसातौ) संग्राम में या ज्ञान और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ, प्रजापति के महान् कार्य को (अनु तिष्ठाति) करे।

त्रा॒तार॒मिन्द्र॑मवि॒तार॒मिन्द्र॒ꣳ हवे॑ हवे सु॒हव॒ꣳ शूर॒मिन्द्र॑म्।
ह्वया॑मि श॒क्रं पु॑रुहू॒तमिन्द्र॑ꣳ स्व॒स्ति नो॑ म॒घवा॑ धा॒त्विन्द्रः॑ ॥५०॥
ऋ० ४। ४७। ११॥

गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारण करने वाले और (त्रातारम्) कष्टों से बचाने वाले पुरुष को (ह्वयामि) बुलाता हूँ । (हवे-हवे) प्रत्येक संग्राम में मैं (अवितारम्) रक्षा करने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् पुरुष को बुलाता हूँ । मैं (सुहवम्) उत्तम संग्राम करने वाले शूरवीर, (इन्द्रम्) इस राष्ट्र के धारणकर्त्ता 'इन्द्र' राजा को बुलाता हूँ । मैं (शुक्रम्) शक्तिशाली, (पुरुहूतम्) बहुत प्रजाओं द्वारा स्वीकृत, (इन्द्रम्) अन्नादि के रक्षक पुरुष को (ह्वयामि) बुलाता हूँ । वह (मघवान्) धनादि से समृद्ध (इन्द्रः) पृथ्वी का पालक (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याण और सुख (धातु) प्रदान करे ।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ऽ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो ऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

ऋ० ४ । ५७ । १२ ॥

इन्द्रो देवता । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(सुत्रामा) राज्य के उत्तम साधनों से पालन करने वाला, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (स्ववान्) अपने सहायकों से युक्त, (विश्ववेदाः) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करके (अवोभिः) रक्षा साधनों से (सुमृडीकः भवतु) प्रजा को सुखकारी हो । वह (द्वेषः) शत्रुता करने वाले को (बाधताम्) पीड़ित करे और दण्डित करे और राष्ट्र में (अभयं कृणोतु) समस्त प्रजा को भय रहित करे । और हम प्रजाजन (सुवीर्यस्य) उत्तम सामर्थ्य और पराक्रम के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों ।

तस्य वयꣳ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम । स सुत्रामा स्ववाँ२ऽ इन्द्रोऽअस्मेऽआराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥५२॥

ऋ० ४ । ४७ । १२ ॥

इन्द्रो देवता । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(वयम् अपि) हम भी (तस्य) उस (यज्ञियस्य), प्रजापति पद के योग्य, राज्य कार्य में कुशल पुरुष के (सुमतौ) शुभ उत्तम ज्ञान और (भद्रे) सुखकारी (सौमनसे) उत्तम चित्त की प्रसन्नता में (स्याम) रहें। (सः) वह (सुत्रामा) उत्तम रक्षक (स्ववान्) उत्तम धनैश्वर्य और सहायकों से युक्त, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति (सनुतः) सदा (द्वेषः) द्वेष करने वाले पुरुषों को (अस्मे) हमसे (आरात् चित्) दूर ही (युयोतु) करे।

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा के चिन्नियमन्वि न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ऽइहि ॥ ५३ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद् बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! राजन् ! तू (मयूररोमभिः) मोर के पंखों के समान नील वर्ण के लोमों वाले (मन्द्रैः) अति उत्तम (हरिभिः) अश्वों अथवा मोर के पंखों से सजे शत्रुसंहारक सेनानायकों सहित (आयाहि) प्राप्त हो। (पाशिनः विं न) फन्दा लगाने वाले शिकारी जिस प्रकार पक्षी को फांस लेते हैं उसी प्रकार (त्वा) तुझको (केचित्) कोई भी (मा नियमन्) न बांध लें। तू (तान्) उन दुष्ट बन्धनों को भी (अतिधन्वा इव) बड़े धनुर्धर के समान (अति) वीरता से पार करके (आ इहि) प्राप्त हो।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥

ऋ० ७। २३। ६ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(वृषणम्) बड़े बलवान्, (वज्रबाहुम्) वीर्यवान् और शस्त्रों से सुसज्जित बाहु वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (एव इत्) ही (वसिष्ठासः) बड़े-बड़े धनाढ्य, राष्ट्रवासी पुरुष (अर्कैः) उत्तम आदर सत्कारों से (अभि अर्चन्ति) पूजा सत्कार करें। (सः) वह (स्तुतः) कीर्त्तिमान पुरुष (नः) हमारे (वीरवद्) वीरों से युक्त और (गोमत्)

गौ, अश्व आदि पशुओं से समृद्ध राष्ट्र की (धातु) रक्षा करे। हे वीर पुरुषो (यूयम्) आप लोग (नः) हमें सदा (स्वतिभिः) सुखकारी उपायों से (पात) पालन करो।

समिद्धोऽअग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमंशुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

विदर्भिऋषिः। अश्विनौ सरस्वती इन्द्रश्च देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (अश्विनौ) प्रजा के स्त्री-पुरुषो! (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी राजा (सम् इद्धः) अपने तेज से अति प्रदीप्त (तप्तः) पराक्रम से शत्रुतापी, (धर्मः) आदित्य के समान (विराट्) विविध ऐश्वर्यों से तेजस्वी होकर (सुतः) अभिषिक्त है। (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त वेदवाणी के समान विदुषी, विद्वत्सभा (धेनु) गाय के समान समस्त सार पदार्थों को प्राप्त करने वाली (इह) इस राष्ट्र में (शुक्रम्) शुद्ध, (इन्द्रियम्) इन्द्र, राजा के पद के योग्य (सोमम्) समस्त राज्यैश्वर्य को (दुहे) पूर्ण करती है।

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती।
मध्वा रजांसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

विराड अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(तनूपा) शरीर की रक्षा करने वाले, (भिषजा) सर्व रोग निवारक वैद्य के समान राष्ट्र के रक्षक, (उभे अश्विना) दोनों अश्व युक्त, सेना के पति, राजा, मन्त्री या राजा, स्त्री-पुरुष गण और (सरस्वती) वेद वाणी के समान ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा ये सब (मध्वा) मधुर अन्न, ज्ञान और बल से (रजांसि) समस्त लोक और (इन्द्रियम्) राजोचित ऐश्वर्य का, (पथिभिः) नाना सत्-उपायों और मार्गों से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (वहान्) प्राप्त करावें।

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम।

५५—अतो द्वादश आप्रियः।

अधा॑ताम॒श्विना॒ मधु॑ भेष॒जं भि॒षजा॑ सु॒ते ॥ ५७ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सरस्वती) ज्ञानसम्पन्न विद्वत्-सभा, (इन्द्राय) दुःख नाशक ऐश्वर्ययुक्त राजपद के लिये (नराशंसेन) उत्तम पुरुषों द्वारा गुण स्तवन के सहित (नग्नहुम्) दरिद्रों के पालक, प्रजा के सुखदायक (इन्दुम्) दयालु, ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अधात्) राज्य पद पर स्थापित करे और (भिषजा अश्विना) रोगनिवारक वैद्यों के समान विवेकी विद्वान् स्त्री पुरुष (सुते) अभिषिक्त राजा या राष्ट्र में (भेषजम्) रोग निवारक ओषधि के समान (मधु) मधुर अन्न और सेना बल को (अधातम्) धारण करें। सेना पोलीस आदि भी शरीर में रोग शम का ओषधि के समान उपद्रवकारी पुरुषों की शान्ति के लिये हों और अन्नादि पदार्थ भूख शान्ति के लिये हों। वह व्यर्थ प्रजा को पीड़ित न करें और व्यसनों में धन नष्ट न करें ॥

आ॒जुह्वा॑ना॒ सर॑स्वती॒न्द्रा॑येन्द्रि॒याणि॑ वी॒र्य॑म् ।
इडा॑भिर॒श्विना॒विष॑ꣳ स॒मूर्ज॒ꣳ स ꣳ र॒यिं द॑धुः ॥ ५८ ॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों के सामर्थ्यों और इन्द्रोचित ऐश्वर्यों का और (वीर्यम्) परम शक्ति, अधिकार (आजुह्वाना) प्रदान करती हुई (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञानवती विदुषी के समान विद्वत्सभा और (अश्विनौ) ओषधियों से ही अन्न और बल को उत्पन्न करा देने वाले वैद्यों के समान (अश्विनौ) नाना विद्याओं में विख्यात स्त्री और पुरुष या उच्च दो अधिकारी (इडाभिः) नाना प्रकार के अन्नों से (इषम्) इच्छानुसार अन्न (ऊर्जम्) बल पराक्रम और (रयिम्) ऐश्वर्य (सं सं दधुः) प्रदान करें।

अ॒श्विना॒ नमु॑चेः सु॒तꣳ सोम॑ꣳ शु॒क्रं प॑रि॒स्रुता॑ ।
सर॑स्वती॒ तमा भ॑रद् ब॒र्हिषेन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ ५९ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अश्विनौ) नाना विद्याओं में कुशल राष्ट्र के स्त्री पुरुष अथवा वसन्त और ग्रीष्म के समान सौम्य और प्रचण्ड अधिकारी, सन्धि और विग्रह के कर्त्ता अधिकारीगण, (नमुचेः) न छोड़ने योग्य शत्रु से ही प्राप्त करके (परिस्रुता) अभिषेक क्रिया द्वारा (सुतम्) अभिषिक्त (शुक्रम्) शुद्ध किये गये (सोमम्) राज्य को प्राप्त करते हैं। (सरस्वती) विद्वत्सभा भी (तम्) उसको (बर्हिषे) बड़े भारी सामर्थ्य या प्रजा के लिये (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शासक के (पातवे) भोग के लिये (आभरत्) प्रस्तुत करती है।

'अश्विनौ'—अथ यदेनं (अग्निम्) द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यां अरणीभ्यां मन्थन्ति द्वौ वा अश्विनौ तदस्याश्विनं रूपम् ॥ऐ० ३।४॥ मुख्यौ वा अश्विनौ यज्ञस्य। श० ४।१।५।१७॥ वसन्तग्रीष्मावेवाश्विनाभ्यामवरुन्धे। श० १२।२।२।३४॥ गृहस्थपक्ष में—स्त्री पुरुष, ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी (नमुचेः) अत्याज्य, अखण्ड ब्रह्मचर्य से प्राप्त जिस (सोमम्) वीर्य को सम्पादित करते हैं उसको (सरस्वती) उत्तम स्त्री (बर्हिषा) सन्तति रूप से (इन्द्राय पातवे) अपने सौभाग्य के भोग के लिये अपने भीतर (आभरत्) धारण करती है। अर्थात् वीर्याधान द्वारा पुरुष को सुख और सन्तति दोनों प्राप्त होते हैं।

कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः।
इन्द्रो न रोदसी ऽउभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥

अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (अश्विभ्याम्) दिन और रात्रि द्वारा या वायु सूर्य और चन्द्र द्वारा (व्यचस्वतीः) विस्तृत रूप से व्यापक (दिशः) दिशाओं को पूर्ण करता है, उनमें व्यापता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक, एवं ऐश्वर्यवान् राजा (अश्विभ्याम्) नाना भोग समृद्धि के भोक्ता स्त्री पुरुषों या व्यापक अधिकार वाले मुख्य अधिकारियों द्वारा (कवष्यः) नाना शत्रुवारक वीर प्रजाओं और सेनाओं को वचनों और वाद्य ध्वनियों से गूंजती हुई (दुरः) नगर के द्वारों या शत्रुवारक सेनाओं

को (दुहे) पूर्ण करता है। जैसे (इन्द्रः) सूर्य (सरस्वती) अपनी तीव्र व्यापक शक्ति से (उभे-रोदसी) दोनों आकाश और पृथ्वी को (दुहे) पूर्ण करता है, और उनसे दोनों के रसों का दोहन करता है वैसे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा द्वारा (उभे) दोनों राजा और प्रजागण तथा स्त्री और पुरुष के वर्गों को (दुहे) पूर्ण करता उनसे ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः।
संजानाने सुपेशसा समञ्जात सरस्वत्या॥ ६१॥

अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—अश्वी नामक राष्ट्र के दो मुख्य कार्यकर्त्ताओं के कर्त्तव्य—(अश्विना) दोनों अश्विगण, (उपासा नक्तम्) उषा, दिन और नक्त, रात्रि काल के समान हैं। उषा जिस प्रकार अपने तेज से पदार्थों को तपाती है उसी प्रकार राजा के वह मुख्य अधिकारी हैं जो दुष्ट पुरुषों को तपावें और रात्रि जिस प्रकार शीतल स्वभाव है उसी प्रकार दुःखितों को सान्त्वना देने वाला दूसरा अध्यक्ष है। वे दोनों अधिकारी राष्ट्र के कार्यों में व्यापक होने से 'अश्वी' हैं। एक प्रजा के हितकारी नियमों का प्रकाशन करता है दूसरा उसको न पालन करने वालों को दण्ड देता है। वे दोनों (इन्द्रम्) ऐश्वर्यसम्पन्न राष्ट्र या राष्ट्र के राजा को (इन्द्रियैः) इन्द्र पद के योग्य अधिकारों और बलों से (समञ्जते) युक्त करते हैं। और स्वयं (संजानाने) परस्पर सहमति करके खूब ज्ञानपूर्वक (सरस्वत्या) उत्तम ज्ञानसम्पन्न विद्वत्सभा द्वारा राजा को (सुपेशसा) उत्तम ऐश्वर्य या रूप से (सम्-अञ्जाते) सम्पन्न करते हैं।

पातं नोऽअश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते॥ ६२॥

अनुष्टुप् गान्धारः॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य, चन्द्र और दिन रात्रिवत् प्रताप और शान्ति से युक्त दो अधिकारी जनो! आप दोनों (नः) हमारी (दिवा) दिन के समय रक्षा करो और हे (सरस्वति) सरस्वती! विद्वत्सभे! तू हमें (नक्तम्) जिस काल में कोई सत्य पदार्थ स्पष्ट न हों उसे दर्शा कर (पाहि) अनर्थ से बचा। (दैव्या होतारा) दिव्यगुणसम्पन्न, सब सुख देने वाले (भिषजा) रोग चिकित्सक वैद्यों के समान राष्ट्र शरीर के दोषों को दूर करने वाले आप दोनों (सुते) अभिषिक्त व्यवस्थित राष्ट्र में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (सचा) एक साथ मिलकर (पातम्) रक्षा करें। अध्यात्म में—प्राणापानौ वै दैव्यौ होतारौ। ए० ३। ४॥ वाक् सरस्वती। इन्द्र, आत्मा।

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा।
तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥

विराट् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(सरस्वती) सरस्वती, (भारती) भारती, (इडा) इडा ये (तिस्रः) तीनों और (अश्विनौ) दोनों, सद्-वैद्यों के समान उक्त अधिकारी (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (इन्द्राय) इन्द्र, राजा के लिये (तीव्रम्) तीव्र (मदम्) आनन्द और हर्षजनक (सोमम्) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को (सुषुवुः) उत्पन्न करते हैं। अथवा—(इन्द्राय) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के लिये (मदम्) हर्षजनक (तीव्रम्) तीव्र, तीक्ष्ण स्वभाव के राजा को उत्पन्न करते हैं।

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियं ँ रूप ँरूपमधुः सुते ॥ ६४ ॥

अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(अश्विनौ) पूर्वोक्त दोनों अश्वी नाम अधिकारियों और (सरस्वती) विदुषी माता के समान विद्वत्सभा (मधु) मधुर भी (सुते इन्द्रे) अभिषिक्त इन्द्र राजा में (भेषजम्) सर्व रोगों, उपद्रवों को शान्त करने वाले (यशः) यश या वीर्य, बल और अधिकार प्रदान करती है। (त्वष्टा)

समस्त पदार्थों को घड़ कर बनाने वाला शिल्पी विश्वकर्मा जिस प्रकार (इन्द्रे) विद्युत् के बल पर (श्रियम्) नाना शोभाजनक, बहुमूल्य सम्पत्ति और (रूपं-रूपम्) नाना सुन्दर पदार्थ, (अधुः) स्थापित करता है उसी प्रकार विश्वकर्मा लोग राजा के आधार पर नाना राष्ट्र के कार्य करें ।

ऋ॒तु॒थेन्द्रो॒ वन॒स्पतिः॑ शशमा॒नः प॑रि॒स्रुता॑ ।
की॒लाल॑म॒श्विभ्या॒ं मधु॑ दु॒हे धे॒नुः सर॑स्वती ॥ ६५ ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वनस्पतिः) वृक्ष जिस प्रकार (शशमानः) वृद्धि को प्राप्त होकर (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (परिस्रुता) जलादि सेचन करने से (मधु कीलालं दुहे) मधुर अन्न, फल प्रदान करता है उसी प्रकार वनस्पति स्वभाव का (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (शशमानः) उत्तम रीति से वृद्धि प्राप्त होकर (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (ऋतुथा) अपने बल वीर्य के अनुसार (मधु) मधुर बलकारी (कीलालम्) अन्न और अन्न के समान नाना भोग्य पदार्थों को (दुहे) उत्पन्न करता है ।

कीलालम्—कीलालममृतं पयः इति अमरः । कल गतौ चुरादिः । कील बन्धने खण्डने च भ्वादिः । कलयति कल्पते वा तत् ज्ञानं कीलालम् । कीलयति बध्नाति, खण्डयति बध्यते खण्ड्यते वा तत् कीलालम् प्रबन्धः, शत्रुच्छेदकं बलं, अन्नं वा । इसी प्रकार कीलाल का अर्थ ज्ञान, बल, अन्न भी हैं ।

गोभि॒र्न सोम॑म॒श्विना॒ मास॑रेण॒ परि॒स्रुता॑ ।
सम॑धात॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ स्वाहेन्द्रे॑ सु॒तं मधु॑ ॥ ६६ ॥

निचृद् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) अश्विगणो ! दो मुख्य अधिकारीजनो ! आप लोग (सरस्वत्या) सरस्वती नामक विद्वत्समिति के साथ मिलकर (गोभिः) पशुओं से और (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा प्राप्त सब दिशाओं की लक्ष्मी और (मासरेण) प्रति मास देने योग्य वेतन के नियम से (स्वाहा) उत्तम

राज्य की नीति से (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में (मधु सुतम्) मधुर, सर्वप्रिय अभिषिक्त पुरुष को (सम् अधातम्) स्थापित करो। अथवा—(इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् पुरुष में (मधु) मधुर, आनन्दजनक (सुतम्) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र की (सम् अधातम्) अच्छी प्रकार स्थापना करो।

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

[६७—६९] अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। भुरिग् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(अश्विनौ) पूर्वोक्त दो अधिकारी जन और (सरस्वती) विद्वत्सभा (धिया) बुद्धिपूर्वक और राष्ट्र के धारण करनेवाली शक्ति से (नमुचेः) कभी न छोड़ने योग्य, सदा वध कर देने योग्य शत्रु से अथवा शत्रु के हाथ कभी न देने योग्य राष्ट्र से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक राजा के लिये (हविः) अन्न समृद्धि या स्वीकार करने योग्य (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य या इन्द्रपद और (शुक्रम्) शुद्ध तेजोमय (वसु) प्रजा को बसानेवाला राष्ट्र और (मघम्) ऐश्वर्य सम्पत्ति इन पदार्थों को (आजभ्रिरे) प्राप्त कराते हैं।

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन्।
स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥ ६८ ॥

अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(अश्विना, सरस्वती) दोनों प्रकार के वैद्य और विदुषी माता जिस प्रकार पुत्र को (हविषा) अन्न से (अवर्धयन्) पुष्ट करते हैं (आसुरे नमुचौ) प्राणों में रमण करनेवाले आत्मा में (मघं बलं बिभेद) अति उत्तम बल प्राप्त करता है उसी प्रकार (अश्विनौ सरस्वती) उत्तम पदों को प्राप्त होकर अश्विजन और विद्वत्सभा तीनों मिलकर (हविषा) अन्नादि समृद्धि और उत्तम उपाय से (यम् इन्द्रम्) जिस शत्रुनाश करनेवाले पुरुष को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं (सः) वह ही (आसुरे नमुचौ) असुर स्वभाव के

६८—'०मुचा आसु०' इति काण्व० ॥

नमुचि अर्थात् उपेक्षा न करने योग्य शत्रु के पास (सचा) विद्यमान (मघम्) ऐश्वर्य को (बिभेद) उससे छीन लेता है और (बलम्) उसके बल, सेना-बल और यन्त्र-बल को (बिभेद) तोड़ डालता है।

तमिन्द्रं॑ प॒शवः॑ स॒चाश्विनो॒भा सर॑स्वती।
दधा॑नाऽअ॒भ्य॒नूषत ह॒विषा॑ य॒ज्ञऽइ॑न्द्रि॒यैः ॥ ६९ ॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(पशवः) नाना पशु सम्पत्तियाँ, अथवा दूरदर्शी पुरुष (सचा उभा अश्विना) परस्पर संयुक्त दोनों मुख्य पदाधिकारी और (सरस्वती) सरस्वती, विद्वत्सभा (तम् इन्द्रम्) उस ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक, राष्ट्र और राष्ट्रपति को (दधानाः) धारण करते हुए (यज्ञे) प्रजापालनरूप यज्ञ में (हविषा) अन्नादि सामग्री और (इन्द्रियैः) ऐश्वर्यों और राजकीय बलों से (अभि अनूषत) सब प्रकार से बढ़ाते उसकी प्रशंसा करते हैं।

य ऽइन्द्र॑ ऽइन्द्रि॒यं द॒धुः स॑वि॒ता वरु॑णो॒ भगः॑ ।
स सु॒त्रामा॑ ह॒विष्प॑ति॒र्यज॑मानाय सश्चत ॥ ७० ॥

[७०—७२] इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सविता) उत्पादक या अभिषेककर्त्ता, (वरुणः) राजा का वारण करने वाला, (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष सबका आज्ञापक, (वरुणः) राष्ट्र की विपत्तियों का निवारक, सेनापति और (भगः) ऐश्वर्यवान् कोषाध्यक्ष ये तीनों मिलकर (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् शत्रुविजयी इन्द्र पद के योग्य पुरुष में (इन्द्रियम्) इन्द्रपद के योग्य ऐश्वर्य और बल को (दधुः) स्थापन करते हैं। (सः) वह (सुत्रामा) राष्ट्र की उत्तम रीति से रक्षा करनेहारा (हविष्पतिः) समस्त ग्राह्य पदार्थों का स्वामी होकर (यजमानाय) दानशील, करप्रद माण्डलिक पूजनीय प्रजाजन के लाभ के लिये उस राजपद को (सश्चतु) प्राप्त करे।

स॒वि॒ता वरु॑णो॒ दध॒द्यज॑मानाय दा॒शुषे॑ ।
आद॑त्त नमु॑चे॒र्वसु॑ सु॒त्रामा॒ बलमिन्द्रि॒यम् ॥ ७१ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सविता) सबका प्रेरक, (वरुणः) दुष्टों का निवारक श्रेष्ठ पुरुष, (दाशुषे) करप्रद (यजमानाय) अपने से मिले हुए मित्र राजा का (सुत्रामा) उत्तम त्राणकर्त्ता होकर (नमुचेः) अत्याज्य शत्रु के (बलम् इन्द्रियम्) बल, ऐश्वर्य (वसु), धन को स्वयं (आदत्त) ले ले।

वरु॑णः क्ष॒त्रमि॑न्द्रि॒यं भगे॑न सवि॒ता श्रिय॑म्।
सु॒त्रामा॒ यश॑सा॒ बलं॒ दधा॑ना य॒ज्ञमा॑शत ॥ ७२ ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वरुणः) शत्रुओं का निवारक, (इन्द्रियम्) इन्द्र राजा के योग्य (क्षत्रम्) क्षात्रबल को (सविता) सर्वाज्ञापक, ऐश्वर्य का उत्पन्न करनेवाला स्वयं (भगेन) कोष के अध्यक्ष के साथ मिलकर (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी को और (सुत्रामा) उक्त रीति से राष्ट्र की रक्षा करनेहारा राजा स्वयं (यशसा) अपने अंश से, वीर्य से (बलम्) सेनाबल को (दधानाः) धारण करते हुए (यज्ञम्) यज्ञ, सुव्यवस्थित राष्ट्र को (आशत) वश किये रहें, या भोग करें।

अ॒श्विना॒ गोभि॑रिन्द्रि॒यमश्वे॑भिर्वी॒र्यं॒ बल॑म्।
ह॒विषेन्द्र॒ꣳ सर॑स्वती॒ यज॑मानमवर्धयन् ॥ ७३ ॥

[७३–७५] अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(गोभिः) दुग्धों से जिस प्रकार शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य बढ़ता है और (अश्वेभिः) व्यापक प्राणों से वीर्य और बल बढ़ता है उसी प्रकार (अश्विनौ) राज्य के दोनों मुख्य पदाधिकारी क्रम से (गोभिः) गौ आदि पालतू पशुओं से (इन्द्रियम्) राजा के ऐश्वर्य को बढ़ावें और (अश्वेभिः) घोड़ों से या घुड़सवारों से (वीर्यम्) शरीर में वीर्य के समान राष्ट्र में तेज और वीरकर्म से युक्त (बलम्) सेना के बल की वृद्धि करें। और (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा (यजमानम्) सबके स्नेही,

राज्य के व्यवस्थापक, सर्वाश्रयप्रद (इन्द्रम्) इन्द्र, राजा को (हविषा) आदान योग्य रूप से (अवर्धयन्) वृद्धि करें।

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा।
सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

निचृद् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(ता) वे दोनों (नासत्या) सदा सत्य धर्म में वर्त्तमान, (सुपेशसा) उत्तम रूप वाले, (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण आदि धातुओं के व्यापार-वृत्ति करने वाले, अथवा हितकारी मनोरम मार्ग से जाने वाले (नरा) नेता और (सरस्वती) विद्वत्सभा (हविष्मती) प्रदान करने योग्य ज्ञान और श्रवण करने योग्य उपायों से सम्पन्न होकर हे (इन्द्र) राजन्! (नः) हमारे (कर्मसु) समस्त कार्यों में (अवत) रक्षा करें।

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती।
स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(ता) वे दोनों (सुकर्मणा) उत्तम कर्म करने वाले (भिषजा) राष्ट्र के दोषों को दूर करने हारे हैं। (सा) वह (सरस्वती) ज्ञानवती विद्वत्सभा (सुदुघा) उत्तम दुग्ध देने वाली गौ के समान ज्ञानरस प्रदान करती है और (शतक्रतुः) सैकड़ों कर्म करने वाले (वृत्रहा) शत्रुओं को मारने वाले, (इन्द्राय) इन्द्र पद, राजपद के लिये (ऐश्वर्यम् दधुः) ऐश्वर्य को धारण करें।

युवꣳसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥

[७६, ७७] अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः। विराड् अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे (अश्विना) मुख्य पदाधिकारियो! (युवम्) तुम दोनों एवं हे (सरस्वति) ज्ञानवाली विद्वत्सभे! तुम मिलकर तीनों (आसुरे)

७६—'०नमुचा आसुरे०' इति काण्व०।

असुर स्वभाव के (नमुचौ) शत्रु के सदा विद्यमान रहते हुए (सुरामम्) उत्तम रीति से भोगने करने योग्य, सुन्दर (इन्द्रम्) इन्द्र पद या ऐश्वर्य-युक्त राष्ट्र को (कर्मसु) समस्त कर्मों में (विपिपानाः) विविध उपायों से रक्षा करते हुए (अवतम्) प्राप्त हों, उसकी रक्षा करें ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । ३४ ॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥७८॥
ऋ० १० । ९१ । १४ ॥

[७८, ७९] अग्निर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके अधीन (अश्वासः) अश्ववत् वेगवान् अश्वारोही जन, (ऋषभासः) श्रेष्ठजन, एवं महावृषभ के समान परोपकारी, (उक्षाणः) सेचन वा कार्यभार उठाने में समर्थ युवा पुरुष, (वशाः) इन्द्रियों और देशों पर वश करने में समर्थ वशी, तपस्वी, तेजस्वी लोग, (मेषाः) शत्रुओं से स्पर्द्धापूर्वक लड़ने वाले योद्धा लोग (आहुताः) आदर-पूर्वक बुला-बुला कर (अवसृष्टासः) उनके अधीनस्थ अधिकारी बनाये गये हैं उस (कीलालपे) शत्रु छेदन में समर्थ बल की रक्षा करने वाले (सोमपृष्ठाय) राष्ट्र और राजपद के पालक एवं उसको अपने पर लेने वाले (वेधसे) बुद्धिमान्, महापुरुष (अग्नये) ज्ञानवान् सर्व नेता पुरुष के लिये (हृदा) हृदय से (चारुम्) श्रेष्ठ (मतिम्) मान आदर (जनय) करो ।

ईश्वर में 'अश्व' तीव्र वेगवान् सूर्य विद्युत् आदि पदार्थ, मेघवत् (उक्षाणः) नद, जल वर्षक, पृथिवी, (मेष) सूर्य ये सब उत्पन्न होते और प्रलय काल में फिर लीन हो जाते हैं । उस कीलालप स्वतः उच्छेद्य संसार

७७—'०तरा अश्वि०' इति काण्व० ।

के रक्षक अथवा कीलाल-अमृत के रक्षक (सोम) संसार के पालक, जगत् के विधाता ज्ञानवान् स्वप्रकाश, परमेश्वर के लिये हृदय से उत्तम स्तुति कर। उवट और महीधर दोनों ने इस मन्त्र का अर्थ किया है,....'जिस अग्नि में घोड़े, बैल, सांड, बांझ गायें और मेंढे काट-काट कर डाल दिये और पकड़-पकड़ कर ला-ला कर झोंक दिये उस अग्नि के लिए उत्तम शुद्ध चित्त रख।' विद्वान् के पक्ष में—जिस पुरुष के अधीन घोड़े, बैल, सांड, बांझ गौएं और मेंढे भी (आहुताः) पकड़-पकड़ कर लाये गये और (अवसृष्टासः) सधा लिये जाते, अधीन रहकर नाना चर्मों में नियुक्त करने योग्य बना लिये जाते हैं, उस (कीलालपे) उत्तम अन्नाहारी या अन्नरक्षक (सोमपृष्ठाय) सौम्य गुण के पोषक (अग्नये) विद्वान् के लिये हृदय से उत्तम विचार रक्खो। अर्थात् पशुओं के सधाने वाले लोगों को भी तुच्छ दृष्टि से न देखो। म० दया० ॥

अहा॑व्यग्ने ह॒विरा॒स्ये॑ ते स्रु॒ची॑व घृ॒तं च॒म्वी॑व॒ सोमः॑ ।
वा॒ज॒सनि॑ᳬ र॒यिम॒स्मे सु॒वीरं॑ प्रश॒स्तं धे॑हि य॒शसं॑ बृ॒हन्त॑म् ॥७९॥

ऋ० १० । ९१ । १५ ॥

अग्निर्देवता । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक! (ते) तेरे (आस्ये) शत्रु के उखाड़ फेंकने वाले बल के निमित्त (हविः) ग्रहण करने योग्य समस्त राष्ट्र (स्रुचि घृतम् इव) स्रुवे में घृत के समान और (चम्वि) यज्ञ-पात्र में (सोमः इव) सोम के समान, अथवा (चम्वि) सेना के ऊपर (सोमः) उसके आज्ञापक के समान, अथवा (चम्वि सोमः) पृथ्वी पर राजा के समान (अहावि) प्रदान किया या धरा जाता है वह तू (अस्मे) हम पर (वाजसनिम्) संग्राम द्वारा प्राप्त होने योग्य अथवा बहुत जन और ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (धेहि) दे और हम पर (प्रशस्तं सुवीरम्) उत्तम, बढ़िया सुस्वभाव के वीर (यशसम्) यशस्वी (बृहन्तम्) बड़े पुरुष को (धेहि) स्थापित कर।

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् ।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

[८०—९०] एकादशर्चं शस्त्रम् । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः ।
विराडनुष्टुप गान्धारः ॥

भा०—(अश्विनौ) शरीर में प्राण और अपान दोनों (तेजसा) तेज के साथ (चक्षुः) चक्षु इन्द्रिय को (दधतुः) धारण करते हैं और (सरस्वती) बल को धारण करने वाली चेतना शक्ति (प्राणेन वीर्यम्) प्राण के द्वारा वीर्य को शरीर में धारण करती है । (इन्द्रः), मुख्य प्राण, जीव (वाचा) वाक्-शक्ति के साथ और (बलेन) बल से (इन्द्राय) जीव के लिये (इन्द्रियम्) इन्द्रियगण को (दधौ) धारण करता है । उसी प्रकार (अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री-पुरुष या मुख्य अधिकारी (तेजसा) तेज से उसी प्रकार (अश्विनौ) दोनों मुख्य अधिकारी (तेजसा) तेज, पराक्रम से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राज्य के (चक्षुः) चक्षु या निरीक्षण के कार्य को धारण करें और (सरस्वती) विद्वत्सभा, (प्राणेन) प्राण के समान जीवनप्रद अन्न और वेतन आदि पदार्थों द्वारा राष्ट्र के (वीर्यम्) वीर्य, बल और पराक्रम को धारण करें । (इन्द्रः) सभापति (वाचा) ज्ञानमय वेदवाणी, व्यवस्था-पुस्तक से और सेनापति (वाचा) अपनी आज्ञाकारिणी वाणी से और (बलेन) सेना-बल से (इन्द्राय) ऐश्वर्य सम्पन्न राज्य के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (दधुः) धारण करें ।

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना ।
वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥ ऋ० २ । ४१ । ७ ॥

[८१—८३] गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराट गायत्री । षडजः ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यव्यवहार में रहनेवाले, (अश्विना) राष्ट्र के व्यापक शक्ति से युक्त ! हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलानेहारे (वर्त्ती) न्यायोचित मार्ग से वर्त्तनेवाले अधिकारी पुरुषो ! आप दोनों (गोमत्) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न (अश्वावत्) अश्वों और अश्वारोहियों से भरपूर,

(नृपाय्यम्) और मनुष्यों की रक्षा करने वाले राज्य को (सु यातम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो।

न यत्परो नान्तर ऽआदधर्षद्वृषण्वसू।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः॥ ८२॥ ऋ० २।४१।८॥

विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (वृषण्वसू) जलों के वर्षण करने वाले मेघ और विद्युत् के समान सुखों का वर्णन करनेवाले होकर प्रजाओं को बसाने वाले आप दोनों अधिकारी सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष जनो! (यत्) जिससे (परः) बाहर का शत्रु और (अन्तरः) राज्य का भीतरी शत्रु और (दुशंसः) दुःसाध्य (मर्त्यः रिपुः) शत्रु पुरुष, अपकीर्ति फैलाने वाला पापी पुरुष (न आदधर्षत्) राष्ट्र और राजा का अपमान और आघात न कर सके वैसे आप राज्य को वश करो।

ता नु ऽआ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्।
धिष्ण्या वरिवोविदम्॥ ८३॥ ऋ० २।४१।९॥

निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् एवं विशेष आसन पर प्रतिष्ठित (अश्विना) राष्ट्र पर विशेष अधिकार प्राप्त पुरुषो! (ता) वे आप दोनों (नः) हमें (पिशङ्गसंदृशम) सुवर्ण के समान सुन्दर दीखने वाले (वरिवोविदम) धन समृद्धि को प्राप्त करने वाले (रयिम्) राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को (आ वोढम्) धारण करो, उसका सञ्चालन करो।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥ ८४॥ ऋ० १।३।१०॥

[८४–८६] मधुच्छन्दा ऋषिः। सरस्वती देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(पावका) पवित्र करने वाली (वाजेभिः) ऐश्वर्यों, बलों और ज्ञानों से (वाजिनीवती) बलयुक्त पुरुषों से बनी सेनाओं और विद्वान्

८३—०वोळ्हम० इति काण्व० ९॥

पुरुषों से बनी उपसमितियों से युक्त (धियावसुः) बुद्धि और क्रिया व्यापार द्वारा ऐश्वर्यवती, अथवा अपने धारणा पालन सामर्थ्य से सबको बसानेवाली होकर (यज्ञम्) प्रजापालक यज्ञ में या प्रजापति राजा को (वष्टु) तेजस्वी बनाये।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥ ऋ० १।३।११॥

निचृद् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(सूनृतानाम्) उत्तम सत्य वाणियों की (चोदयित्री) प्रेरणा देनेवाली, आज्ञा करने वाली, (सुमतीनाम्) उत्तम बुद्धियों को और बुद्धिमान् पुरुषों को (चेतन्ती) ज्ञानवान् करती हुई, (सरस्वती) सरस्वती, वेदवाणी जिस प्रकार (यज्ञं) यज्ञ, परमेश्वर को (दधे) धारण करती, उसका ज्ञान धारण करती और उसका प्रतिपादन करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (सूनृतानाम्) उत्तम सत्य सिद्धान्तों, उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को प्रेरित और आघोषित करती हुई, (सुमतीनाम्) राष्ट्र के हित के लिये शुभ मतियों, विचारों को (चेतन्ती) प्रकट करती हुई, (यज्ञम्) प्रजापति राजा को और राज्य को भी (दधे) धारण करती है। यह 'सरस्वती' व्यवस्थापिका, राष्ट्रसभा (Legislative council) या धारासभा या विधान परिषद् है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति ॥ ८६ ॥ ऋ० १।३।१२॥

गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(सरस्वती) वेदवाणी (केतुना) अपने महान् ज्ञान से (महः अर्णः) बड़े भारी ज्ञान या शब्दसागर को (प्र चेतयति) प्रकट करती है। और (विश्वाः धियः) समस्त कर्मकाण्डों, कर्मों, कर्त्तव्यों को (वि राजति) प्रकाशित करती है। उसी प्रकार विद्वत्सभा (केतुना) विज्ञान बल से (महः अर्णः) बड़ा ज्ञान प्रकट करती है। राष्ट्र के (विश्वा धियः) समस्त

कर्मों या समस्त बुद्धियों, बुद्धिमान् पुरुषों या सामर्थ्यों को (वि राजति) विविध रूपों में प्रकाशित करती है ।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुताऽइमे त्वायवः ।

अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ८७ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥

[८७–८९] मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (चत्रभानो) अद्‌भुत्-अद्‌भुत् ज्ञानों के प्रकाश करनेवाले ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! (इन्द्र) ज्ञानों के द्रष्टा ! सभापते ! राजन् ! (इमे) ये (सुताः) राष्ट्रगत ऐश्वर्य, एवं अभिषिक्त राजगण (त्वायवः) तुझे प्राप्त होते हैं और वे (अण्वीभिः) अल्पबल की प्रजाओं के द्वारा (तना) विस्तृत गुण, कीर्त्ति द्वारा (पूतासः) अभिषेक द्वारा पवित्र हैं ।

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।

उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥ ऋ० १ । ३ । ४ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (धिया) बुद्धि और उत्तम कर्म द्वारा (विप्रजूतः) विद्वान् मेधावी पुरुषों से शिक्षित होकर (सुतावतः) ऐश्वर्य प्रदान करने वाले (वाघतः) विद्वान् पुरुषों को (ब्रह्माणि) अन्नों, धनों, ऐश्वर्यों, वीर्यों और अधिकारों को (उप आ याहि) प्राप्त हो ।

इन्द्रा याहि तूतुजानऽउप ब्रह्माणि हरिवः ।

सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ८९ ॥ ऋ० १ । ३ । ५ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (हरिवः) ज्ञानी पुरुषों और वीर अश्वारोहियों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) राजन् ! तू (तूतुजानः) राष्ट्र के कार्यों को विद्युत् के समान शीघ्रता से करता हुआ (ब्रह्माणि) अधिकारों, वीर्यों और ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त कर । (नः) हमारे (सुते) अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में भोग्य ऐश्वर्य और अन्न को (दधिष्व) धारण कर ।

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬं सोम्यं मधु ॥ ९० ॥
ऋ० १ । ३ । ६ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । निचृद् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अश्विनौ) राष्ट्र के मुख्य दो अधिकारी (सजोषसा) परस्पर प्रीतियुक्त होकर (सरस्वत्या) सरस्वती, विद्वत्सभा के साथ मिलकर (मधु) उत्तम राष्ट्र के ऐश्वर्य को (पिबताम्) भोग करें । और वे (सुत्रामा) राष्ट्र का उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ (इन्द्रः) शत्रुनाशक राजा, सेना-पति (वृत्रहा) शत्रु एवं विघ्नकारी वारक या बाधक कारणों का नाशकारक होकर (सोम्यं) ऐश्वर्य एवं राजपद के योग्य (मधु) मधुर अन्नादि से युक्त राष्ट्र का (जुषन्ताम्) भोग करें, या प्रेम से पालन करें ।

इति विंशोऽध्यायः ॥ इति पूर्वविंशतिः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये विंशोऽध्यायः ॥

रसवस्वङ्कचन्द्राब्दे कार्तिकेऽपरपक्षके ।
द्वादश्यां मङ्गले शुक्लयजुषोऽर्द्धं समाप्यते ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामवस्युराचके ॥ १ ॥ ऋ० । १ । २५ । १९ ॥

[१, २,] शुनःशेप ऋषिः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ (मे) मेरी, मुझ प्रजाजन की (हवम्) स्तुति, पुकार को (श्रुधि) श्रवण कर और (अद्य

१—'०मृडय'० इति काण्व० ।

च) आज और सदा हमें (मृडय) सुखी कर। (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ मैं (त्वाम्) तुझसे अपना रक्षक (आचके) चाहता हूँ।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ २ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १९। मं० ४९॥

त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअव यासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्
॥ ३ ॥ ऋ० ४। १। ४॥

[३, ४] वामदेव ऋषिः। अग्निर्वरुणश्च देवते। विराट् त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नेतः! ज्ञानवन्! विद्वन् (त्वम्) तू (नः) हमारे बीच में (विद्वान्) विद्यावान् है। अतः तू (वरुणस्य देवस्य) समस्त शत्रुओं के नाशक एवं सर्वश्रेष्ठ, देव, विजयशील राजा के द्वारा (हेडः) प्राप्त अनादर एवं उसके प्रति हमसे हुए अनादर या अवज्ञा के भाव को या उसके कोप को (अव यासिसीष्ठाः) दूर कर। तू ही (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूजा करने योग्य, (वह्नितमः) कार्यभार को वहन करने में सर्वोत्तम, नेता और (शोशुचानः) अग्नि के समान शुद्ध और अन्यों को शुद्ध करने हारा, ज्ञानदीप्ति से प्रकाशमान है। तू (अस्मत्) हमसे (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषभावों को (प्र मुमुग्धि) दूर कर।

स त्वं नोऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो नऽएधि
॥ ४ ॥ ऋ० ४। १। ५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! (सः) वह (त्वम्) तू (नः) हमारा (ऊती) अपने रक्षा सामर्थ्य से (अवमः) सबसे उत्तम रक्षक, (नेदिष्ठः) हमारे अति समीप (भव) हो। और (अस्याः) इस

३—'हेळो'० इति काण्व०। ४—०मृळीकं० इति काण्व०।

(उषसः) प्रभात काल के (व्युष्टौ) प्रकाशित होने पर (नः) हमें (वरुणम्) वरण करने योग्य राजा व प्रभु का (अव यक्ष्व) सत्संग कर। और तू (रराणः) उत्तम भेंट पुरस्कार आदि प्रदान करता हुआ (मृडीकम्) सुखकर राजा सुखकारी, पद या ऐश्वर्य को (वीहि) प्राप्त कर। (नः) हमें (सुहवः) सुख प्रदान करता (एधि) रह।

म॒हीमू॒ षु मा॒तर॑ꣳ सुव्र॒ताना॑मृ॒तस्य॒ पत्नी॒मव॑से हुवेम।
तु॒वि॒क्ष॒त्राम॒जर॑न्तीमुरू॒चीꣳ सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिꣳ सु॒प्रणी॑तिम् ॥ ५ ॥

अथ० ७। ६। २॥

अदितिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हम लोग, (महीम्) बड़ी माननीय, (सुव्रतानाम् मातरम्) उत्तम व्रतों, नियमों, कर्त्तव्य आचरणों को निर्माण करने वाली एवं सदाचारवान् पुरुषों की माता के समान (ऋतस्य) सत्य व्यवस्था धर्म और न्याय के (पत्नीम्) पालन करने वाली (तुविक्षत्राम्) बहुत से क्षत्र बल से युक्त, (अजरन्तीम्) कभी नाश न होने वाली, सदा नूतन-नूतन सभासदों से बनी, (उरूचीम्) विशाल राष्ट्र के शासक रूप से व्यापक (सुशर्माणम्) उत्तम गृह, सभाभवन में विद्यमान, उत्तम सुख देने वाली (सुप्रणीतिम्) उत्तम, सुखकारी नीति, राजनीतिक प्रगतियों वाली (अदितिम्) सदा अखण्ड शासन वाली, महासभा को (हुवेम) स्वीकार करें। इसी प्रकार जो उत्तम सदाचारी पुरुषों की माता (ऋत) अन्न, यज्ञ और जीवन की मालिक वीरों से सुरक्षित सदा अजर, विस्तृत, सुखप्रद, अखण्ड, उत्तम राष्ट्र को हम (हुवेम) अपनावें।

सु॒त्रामा॑णं पृथि॒वीं द्याम॑ने॒हस॑ꣳ सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिꣳ सु॒प्रणी॑तिम्।
दैवीं॒ नाव॑ꣳ स्वरि॒त्राम॑नागस॒मस्र॑वन्ती॒मा रु॑हेमा स्व॒स्तये॑ ॥ ६ ॥

अथ० ७। ६। ३॥ ऋ० १०। ६३। १०॥

गयप्लात ऋषिः। अदितिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सुत्रामाणम्) उत्तम रीति से रक्षा करने वाली, (पृथिवीम्) अति विस्तृत, (द्याम्) ज्ञान प्रकाश से युक्त, (अनेहसम्) गौ के समान नाश न करने योग्य, क्रोधरहित (सुशर्माणम्) उत्तम भवन या शरण-प्रद सुखसाधनों से युक्त, (सुप्रणीतिम्) उत्तम राजा प्रजा की नीति से युक्त, (सु-अरि-त्राम्) उत्तम रीति से शत्रु से प्रजा की रक्षा करने वाली, (अस्रवन्तीम्) अपना रहस्य शत्रु को न देने वाली, छिद्ररहित, (अना-गसम्) अपराधरहित निर्दोष, (दैवीम्) विद्वानों की बनी हुई (नावम्) नाव के समान समस्त कष्टों को पार उतारने और सबको सन्मार्ग में चलाने वाली (अदितिम्) दूसरों के उपजाप आदि के प्रयोगों से अद-ण्डित, एकदम फूट से रहित राजसभा या राज्य-व्यवस्था का (स्वस्तये) सुख और कल्याण प्राप्त करने के लिये (आ रुहेम) आश्रय लें। नाव के पक्ष में—वह डूबने से बचाने वाली, विस्तृत, निर्दोष, उथल-उथल न होने वाली, उत्तम घर-युक्त तथा डूबते को बचाने के साधनों वाली, उत्तम रचना और चाल वाली, उत्तम संचालन के प्रबन्ध वाली, उत्तम पतवारों वाली, निर्दोष, मृत्यु आदि के भय से रहित, बिना छिद्र की, जल को भीतर आने न देने वाली, विद्वानों की बनाई नाव को हम सुखवृद्धि के लिये चढ़ें। 'सुत्रामा' इन्द्र का वर्णन पूर्व अध्याय में सौत्रामणी प्रकरण में आ चुका है। यहां उसी प्रजापालक राजशक्ति एवं विद्वत्सभा का नौका रूप से श्लेष से वर्णन है यह मन्त्र पृथिवी और सूर्यपक्ष में भी लगता है।

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम्।
शतारित्राᳩस्वस्तये ॥ ७ ॥

गयप्लात ऋषिः। स्वर्या नौर्देवता। यवमध्या विराट् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(अस्रवन्तीम्) अपना रहस्य बाहर न जाने देने वाली, गुप्त मन्त्र रखने वाली, (अनागसम्) बुरे पापाचारियों से रहित, निर्दोष, धर्मानुकूल कार्यों को करने वाली, (शतारित्राम्) संकट से पार जाने के सैकड़ों उपायों से युक्त (सुनावम्) उत्तम मार्ग से प्रेरित करने वाली

नौका के समान राजसभा और धर्मसभा का (आरुहेयम्) मैं राजा आश्रय लूं।

नौः, नुदति प्रेरयतीति नौः। ग्लानुदिभ्यां डौ प्रत्ययः। उणादि २। ६४॥ इति दया०॥

आ नो॑ मित्रावरुणा घृतैर्गव्यू॑तिमुक्षतम्।
मध्वा॒ रजा॑ꣳसि सुक्रतू॥ ८॥ ऋ० ३। ६२। १२॥

विश्वामित्र ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(मित्रावरुणौ) हे मित्र! समस्त लोकों को स्नेह से देखने और मृत्यु से बचाने वाले न्यायाधीश! और हे वरुण! सबसे वरण करने योग्य, संकटों, दुष्ट चोरों के वारण करने हारे अधिकारिन्! तुम दोनों (गव्यूतिम्) मार्ग को दो-दो कोस (घृतैः) जलों और तेजस्वी पुरुषों से (नः) हमारे हित के लिये (आ उक्षतम्) सेचित करो। अर्थात् जैसे मित्र और वरुण, वायु और मेघ जलों से सेचन करते हैं उसी प्रकार राजा के दो महकमे प्रति दो कोसों पर जलस्थानों, जनरक्षक पुलिस के सैनिकों और विद्वान् पुरुषों से प्रजाजन को पुष्ट करें अर्थात् प्रति दो कोस में पुलिस चौकी जल के प्याऊ और पाठशाला हों। हे (सुक्रतू) उत्तम कर्मों को करने एवं उत्तम प्रज्ञा वालो! आप (मध्वा) मधुर ज्ञान, अन्न, बल, सुख ऐश्वर्य से (रजांसि) समस्त लोकों को (सिञ्चतम्) युक्त करो।

प्र बा॒हवा॑ सिसृतं जी॒वसे॑ न॒ऽआ नो॒ गव्यू॑तिमुक्षतं घृतेन॑।
आ मा॒ जने॑ श्रवयतं युवाना श्रु॒तं मे॑ मित्रावरुणा ह॒वेमा॥ ९॥
ऋ० ७। ६२। ५॥

वसिष्ठ ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र, सबके स्नेही एवं मरण से त्राणकारिन्! और हे वरुण, दुष्टों के वारक! तुम दोनों (नः जीवसे) हम प्रजाजनों के जीवन की रक्षा के लिये (बाहवा) अपने बाहुओं, शत्रुगण या विपक्षों के बाधक, पीड़क अस्त्रादि साधनों और वीरों को (प्र सिसृतम्) आगे बढ़ाओ। जिस प्रकार शरीर रक्षार्थ बाहुएं आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार

प्रजा रक्षार्थ क्षत्रिय लोग आगे बढ़ें। और (घृतेन) मेघ जैसे जल से पृथिवी को सींचता है, वैसे आप दोनों अधिकारी (नः) हमारे (गव्यूतिम्) राष्ट्र के प्रति दो कोस भूमि को (घृतेन) जलवत् प्राणप्रद या तेजस्वी विद्वान् और वीर क्षत्रिय गण से (आ उक्षतम्) सर्वत्र पुष्ट करो। हे (युवानौ) सदा युवाओ! अथवा संधि और विग्रह, मेल और फूट कराने में कुशल पुरुषो! आप दोनों (जने) समस्त राष्ट्र जन के बीच (मा) मुझको राजा, शासक रूप से (आ श्रवयतम्) आघोषित कर दो और (मे) मेरी (इमा हवा) इन आज्ञाओं की (श्रुतम्) श्रवण करो।

राजा, और अधिकारियों को अपने राज्य में प्रति दो कोस में राज्य की चौकी, प्याऊ, पाठशाला, धर्मस्थान आदि बनाने की आज्ञा दे, प्रजा की रक्षा के लिये बाहुवत् वे प्रजा की रक्षा करें, वे राजा की आज्ञा आघोषित करें, उसकी आज्ञा पर ध्यान दें और पालन करें।

शन्नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः ।
ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृक॒ꣳ रक्षा॑ꣳसि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः ॥१०॥
वाजे॑वाजेऽवत वाजिनो नो॒ धने॑षु विप्रा ऽअमृता ऽऋतज्ञाः ।
अ॒स्य मध्वः॑ पिबत मा॒दय॑ध्वं तृ॒प्ता या॑त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥११॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ९ । १६, १८ ॥

समि॑द्धोऽअ॒ग्निः स॒मिधा॒ सुस॑मिद्धो॒ वरे॑ण्यः ।
गा॒य॒त्री छन्द॑ ऽइन्द्रि॒यं त्र्यवि॒र्गौर्वयो॑ दधुः ॥ १२ ॥

[१२–२२] स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । आप्रियो देवता अग्निः । विराडनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष, अग्रणी नेता (समिधा समिद्धः) काष्ठ से प्रज्ज्वलित आग के समान (सम्-इधा) उत्तम ज्ञान प्रकाश से (सम्-इद्धः) खूब प्रज्ज्वलित और (सु-सम्-इद्धः) सूर्य के समान अत्यन्त देदीप्यमान, तेजस्वी होकर (वरेण्यः) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष (गायत्री) समस्त जीवों के प्राणों की रक्षा करने वाली पृथिवी के समान (छन्दः) समस्त जनों का आच्छादन या रक्षा करने वाला पुरुष, (त्र्यविः) शरीर,

इन्द्रिय और आत्मा इन तीनों की रक्षा करने वाला, (गौः) विद्वान् पुरुष, ये सब 'इन्द्र' या राजा के ऐश्वर्यमय राज्य में (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य आत्मिक बल और (वयः) बल, ज्ञान, दीर्घ आयु को (दधुः) धारण, स्थापन करें।

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती।
उष्णिहा छन्दं ऽइन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १३ ॥

विद्वांसः तनूनपाद् देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(तनूतपात्) शरीर को न गिरने देने वाले प्राण के समान (शुचिव्रतः) शुद्ध धर्माचरण, शीलवान् पुरुष और (तनूपाः) शरीरों अर्थात् पुत्रादि की रक्षा करने वाली (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री और विद्वत्सभा और (उष्णिहा छन्दः) उष्णिहा छन्द, और (दित्यवाड् गौः)। 'दित्यवाड्' बैल ये चारों ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र में (इन्द्रियम्) राजा के योग्य ऐश्वर्य को और (वयः) दीर्घ आयु, ज्ञान, बल को (दधुः) धारण करें। अर्थात् (उष्णिहा छन्दः) २८ अक्षरों के समान २८ वर्षों तक अपने बल वीर्य को आच्छादित करने वाला पगड़ी पहने के समान विशेष अधिकार से शोभित पुरुष और दित्यवाड् गौ अर्थात् दो वर्ष का वृषभ जिस प्रकार पुष्ट वीर्य और बल को धारण करते हैं उसी प्रकार लोग राष्ट्र में राजा के ऐश्वर्य और बल की वृद्धि करें। १. उष्णिहा— उष्णिक् इत्युत्स्नानात्। स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणः। अपिवोष्णीषिणोवेत्यौपमिकम्। देव० य० ३। ४। आयुर्वा उष्णिक्। ऐ० १।५॥ चक्षुरुष्णिक्। शत० ।१०।२।१।१॥ पशवो वा उष्णिक्। ता० २ ।१०।१४॥ दित्यवाड् गौः—'द्विवर्षः पशु' इति महीधरः। अथवा दित्यं खण्डनीयं धान्यं वहति इति दित्यवाड्॥ दितये हितं वहति। दया०॥

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो ऽअमर्त्यः।
अनुष्टुप् छन्दं ऽइन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥ १४ ॥

विराडनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(इडाभिः) हवियों-अन्नों द्वारा (ईड्यः) पूजनीय अग्नि के समान और स्तुतियों द्वारा प्रशंसनीय ज्ञानवान् पुरुष और (अमर्त्यः) कभी नाश न होने वाला (देवः) देव, दिव्य गुणों से युक्त, तेजस्वी, (सोमः) सूर्य या वायु के समान प्राण देने वाला राजा, (अनुष्टुप् छन्दः) अनुष्टुप् छन्द, अर्थात् ३२ वर्ष तक इन्द्रियों और बलों का रक्षक ब्रह्मचारी और (पञ्चाविः गौः) अढ़ाई वर्ष का बैल अथवा पांचों इन्द्रियों का संयमी, पांच अनुचरों से सुरक्षित विद्वान् जिस प्रकार (इन्द्रियम्) प्राण बल, और (वयः) दीर्घजीवन को धारण करते हैं वैसे ही लोग राष्ट्र में ऐश्वर्य, बल, वीर्य और जीवन को धारण करें। अनुष्टुप् छन्दः—द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप्। कौ० २६। १॥ प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । तां० ४। ८। ९॥ पञ्चाविः गौः। सार्धद्विवर्षः। पण्मासःकालोऽविः।

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः।
बृहती छन्द ऽइन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः॥ १५॥

निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(पूषण्वान्) पृथिवी को धारण करने वाला (अग्निः) सूर्य जिस प्रकार (सु बर्हिः) उत्तम रीति से आकाश में व्याप्त है वैसे पुष्टिकारक भूमि और अन्नों से युक्त, अथवा पोषक जनों से युक्त, अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष (सु-बर्हि) उत्तम प्रजा से युक्त होता है। (स्तीर्णबर्हिः) वह पुरुष यज्ञ में वेदि पर कुशाओं को बिछाने वाले यज्ञकर्त्ता के समान पृथिवी पर अपनी प्रजाओं को फैला देता है। वह (अमर्त्यः) अमर हो जाता है। वह सदा प्रजा रूप से जीता रहता है। इसी प्रकार तेजस्वी राजा उत्तम प्रजा वाला, धनधान्य सम्पन्न पोषक अन्न सम्पत्ति और भूमियों और प्रजाओं के पोषक अधिकारियों से युक्त हो। वह शत्रु के नाशकारी क्षात्रबल को फैला कर बैठे वह नाश को प्राप्त नहीं होता। (बृहती छन्दः) छत्तीस अक्षरों के बृहती छन्द के समान ३६ वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालक पुरुष और (त्रिवत्सः गौः) तीन वर्ष के हृष्टपुष्ट बैल के समान युवा पुरुष, ये सब

(इन्द्रियम्) ब्रह्मचर्य बल और दीर्घ जीवन को धारण करते हैं। उसी समान प्रजागण भी राष्ट्र में बल, वीर्य, अन्न और दीर्घ जीवन धारण करें।

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः।
पङ्क्तिश्छन्दं इहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १६ ॥

अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—(देवीः) तेजवाली स्त्रियां, (दुरः) प्रकाश वाले बड़े-बड़े द्वार और (महीः) बड़ी विस्तृत (दिशः) दिशाओं के समान (महीः दिशः) पूजनीय, गुरुवाणियां और (ब्रह्मा) चतुर्वेदों का विद्वान् (देवः) ज्ञान का प्रकाशक, (बृहस्पतिः) वेद वाणी का पालक, अथवा महान् राष्ट्रपति देव राजा और (पंक्तिः छन्दः) चालीस अक्षरों वाले पांक्त छन्द के समान ४० वर्ष तक का ब्रह्मचारी पुरुष और (तुर्यवाड् गौः) चतुर्थ वर्ष का बैल अथवा (तुर्यवाड) चतुर्थ आश्रम का सेवी, विद्वान् परिव्राट् और (गौः) आदित्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ये सब (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन स्वयं धारण करते हैं, वे ही राष्ट्र में भी ऐश्वर्य, तेजबल और दीर्घ जीवन धारण करावें।

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः।
त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १७ ॥

निचृदनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—(यह्वी) बड़ी, पूजनीय, (सुपेशसा) उत्तम रूप वाली, (उषे) दो उषाएं और सायं प्रातः की सन्धि वेलाओं के समान उत्तम ज्ञान प्रकाश वाली, पाप, अज्ञान का दहन करने में समर्थ, उपदेशिका और अध्यापिका, धर्मसभा और विद्वत्-सभा और (विश्वे देवाः) समस्त ज्ञानी और विजयी पुरुष, (अमर्त्याः) दिव्य पदार्थ पृथिवी सूर्य के समान स्थिर रहने वाले, अनश्वर, सुरक्षित एवं नित्य हैं। वे और (त्रिष्टुप् छन्दः) ४४ अक्षरों वाले त्रिष्टुप् के समान ४४ वर्षों तक के अक्षत ब्रह्मचर्यवान् पुरुष और (पष्ठवाड् गौः) पृष्ठ से भार उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र का

कार्यभार अपने ऊपर लेने वाले पुरुष ये सब (इह) इस राष्ट्र में (इन्द्रियम्) बल, वीर्य, ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ जीवन, अन्न और ज्ञान को (दधुः) स्वयं धारण करें और धारण करावें।

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा।
जगती छन्द ऽइन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः॥ १८॥

निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(दैव्या) देवों, शरीरस्थ प्राणों में व्यापक (होतारौ) सबको अपने भीतर ग्रहण करने वाले, (भिषजा) वैद्यों के समान शरीर के समस्त रोग विकारों को दूर करने वाले, (इन्द्रेण सयुजौ) इन्द्र आत्मा के साथ सदा संयुक्त और (युजा) सदा स्वयं साथ रहने वाले प्राण अपान और उन्हीं के समान (दैव्या होतारा) देवों, विद्वानों में हितकारी (भिषजाः) शरीर और मन एवं समाज शरीर के दोषों को भी सद्वैद्य के समान दूर करने वाले (इन्द्रेण) राजा के साथ (सयुजौ) सहयोग रखने वाले, (युजा) सदा परस्पर संयुक्त और (जगती छन्दः) ४८ अक्षर के जगती छन्द के समान, ४८ वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालक विद्वान् पति और (अनड्-वान् गौः) शकट को उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र के शकट को उठाने वाला वीर बलवान् पुरुष, ये सभी (इन्द्रियम्) बल, ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ आयु और ज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं।

तिस्र ऽइडा सरस्वती भारती मरुतो विशः।
विराट् छन्द ऽइहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः॥ १९॥

अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती और भारती नामक (तिस्रः) तीन समितियां और (मरुतः) वायुओं के समान तीव्र वेग वाली या देशदेशान्तर में गमन करने वाली, शत्रुमारक वीर सेना रूप (विशः) प्रजाएं और (विराट् छन्दः) ४० अक्षरों के विराट् छन्द के अनुसार ४० वर्षों का अक्षत ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष और (धेनुः गौः)

दुधार गौ ये सब राष्ट्र में (इन्द्रियम्) राजा के ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ जीवन को धारण करते हैं वे राष्ट्र में भी धारण करावें।

त्वष्टा॑ तुरीपो॒ ऽअद्भु॑त ऽइन्द्रा॒ग्नी पु॑ष्टि॒वर्ध॑ना।
द्विप॑दा॒ छन्द॑ ऽइन्द्रि॒यमु॒क्षा गौर्न वयो॑ दधुः ॥ २० ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(त्वष्टा) शिल्पी, नये यन्त्र और पदार्थ बनाने वाला, त्वष्टा या विद्युत् (अद्भुतः) आश्चर्यजनक रूप से (तुरीपः) शीघ्रता से स्थानान्तर में जाने में समर्थ है। इसी प्रकार (इन्द्राग्नी) सेनापति ग्राम और नगर के नेता दोनों ही (पुष्टिवर्धना) राज्य की पुष्टि को बढ़ाते हैं। (द्विपदा छन्दः) द्विपदा ऋचा के समान दो पैरों से प्रतिष्ठित होने वाली मानव सृष्टि और (उक्षा गौः) वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ ये सब राष्ट्र में (इन्द्रियम् वयः) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन को (दधुः) धारण करावें।

श॒मि॒ता नो॒ वन॒स्पतिः॑ सवि॒ता प्र॑सुवन् भग॑म्।
क॒कुप् छन्द॑ ऽइ॒हेन्द्रि॒यं व॒शा वे॒हद्वयो॑ दधुः ॥२१॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वनस्पतिः) वन का पालक या वट आदि महावृक्ष के समान (शमिता) शान्ति और शरण देने वाला (सविता) और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (भगम्) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता है, वह (ककुप् छन्दः) ककुप्-२८ अक्षरों का छन्द, तदनुसार २८ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालक पुरुष (वशा) पृथ्वी, राष्ट्र को वश करने वाली सभा और (वेहत्) दुष्टों के षड्यन्त्रों को गर्भ में ही विविध उपायों से नाश करने वाली राजा की नीति, ये सब (इह) ऐश्वर्य से पूर्ण, राष्ट्र और राजा में (वयः) दीर्घ जीवन, बल और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को स्वयं (दधुः) धारण करें और करावें।

स्वाहा॑ य॒ज्ञं वरु॑णः सुक्ष॒त्रो भे॑ष॒जं क॑रत्।
अति॑छन्दा ऽइन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑ष॒भो गौर्वयो॑ दधुः ॥ २२ ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वरुणः) सबसे वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ राजा (सुक्षत्रः) उत्तम धन-ऐश्वर्य और क्षात्र बल से युक्त होकर (स्वाहा) उत्तम उपदेश, शिक्षा, सद् रीति नीति से (यज्ञम्) सुसंगत राष्ट्र या प्रजापति के पद को (भेषजम्) रोगहर ओषधि के समान राष्ट्र के दोष दूर करने के उपाय (करत्) करता है। जिस प्रकार (अतिछन्दाः) और अति शब्द के योग से कहे जाने वाले, छन्द, अतिधृति, अत्यष्टि, अतिशक्करी, अतिजगती, ये चारों छन्द अपने विशुद्ध नाम धृति, अष्टि, शक्करी और जगती इनसे ४, ४ अक्षर अधिक हैं उसी प्रकार अन्यों से सामर्थ्य में अधिक पुरुष, (बृहत् ऋषभः गौः) और बड़े विशाल बलीवर्द के समान बहुत अधिक भार उठाने में समर्थ ये सब (वयः) दीर्घ जीवन, बल और (इन्द्रियम्) वीर्य इन्द्रियसामर्थ्य और ऐश्वर्य को स्वयं भी धारण करते हैं। राष्ट्र और राजा में भी इन पदार्थों को धारण करावें।

वसन्तेन ऽऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः ।
रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥

[२३—२८] लिंगोक्ता देवताः । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वसवः देवाः) वसु नामक देव, विद्वान् पुरुष, (वसन्तेन ऋतुना त्रिवृता) वसन्त, त्रिवृत् स्तोम और (रथन्तरेण) रथन्तर साम और तेज, पराक्रम से (इन्द्रे) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में (हविः वयः दधुः) अन्न बल और दीर्घजीवन को धारण करें करावें।

ग्रीष्मेण ऽऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २४ ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(रुद्राः देवाः) रुद्र नामक देव, विद्वान् गण, (ग्रीष्मेण ऋतुना) ग्रीष्म ऋतु से (पञ्चदशे) पंचदश नामक स्तोम के आधार पर (बृहता) बृहत् नामक साम से (यशसा) और यश से (इन्द्रे) इन्द्र राजा और राष्ट्र

में (बलं वयः हविः दधुः) बल दीर्घायु और अन्नादि ऐश्वर्य धारण कराते हैं।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २५ ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(आदित्याः) 'आदित्य' विद्वान् (वर्षाभिः ऋतुना) वर्षाऋतु से (सप्तदशे स्तोमे) सप्तदशस्तोम के आधार पर (वैरूपेण) वैरूप साम से (विशौजसा) प्रजा और पराक्रम से (इन्द्रे हविः वयः दधुः) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में अन्न, बल और दीर्घ जीवन धारण कराते, करते हैं।

शारदेन ऽऋतुना देवा ऽएकविꣳश ऽऋभवं स्तुताः ।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २६ ॥

स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(शारदेन ऋतुना) शरद् ऋतु से, (ऋभवः देवाः) ऋभु, तेजस्वी विद्वान् (एकविंशे) एकविंशस्तोम के आधार पर (वैराजेन) वैराज साम से और (श्रियम्) लक्ष्मी से (इन्द्रे) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में (श्रियम्) शोभा, लक्ष्मी, ऐश्वर्य (हविः) अन्न और (वयः) दीर्घ जीवन (दधुः) धारण कराते और करते हैं।

हेमन्तेन ऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः ।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २७ ॥

भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(मरुतः देवाः) मरुत् नामक देव, विजिगीषु पुरुष, (हेमन्तेन ऋतुना) हेमन्त ऋतु से, (त्रिनवे स्तुताः) त्रिणव नाम स्तोम में स्तुत होकर (बलेन) बल से (शक्वरीः) शक्वरी नामक साम से (इन्द्रे हविःसहः वयः) राष्ट्र और राष्ट्रपति इन्द्र में अन्न, शत्रु-विजयकारी बल और दीर्घ जीवन (दधुः) धारण कराते, स्वयं भी करते हैं।

शैशिरेण ऽऋतुना देवास्त्रयस्त्रिꣳशेऽमृता स्तुताः ।
सत्येन रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २८ ॥

भा०—(अमृताः देवाः) अमृत नामक देव, विद्वान् पुरुष (शैशिरेण ऋतुना) शिशिर ऋतु के साथ, (त्रयस्त्रिंशे) त्रयस्त्रिंश नामक स्तोम में (स्तुतः) वर्णित होकर (रेवतीः) रेवती साम द्वारा (सत्येन) सत्य के बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राष्ट्रपति इन्द्र में या उसके निमित्त या उसके आश्रय पर (क्षात्रम् हविः वयः दधुः) धन, अन्न और दीर्घ जीवन धारण कराते और स्वयं करते हैं। संवत्सर और यज्ञ दोनों प्रजापति के रूप हैं। राजा, आत्मा और परमात्मा भी प्रजापति है। उनके अंग प्रत्यंगों की कल्पना द्वारा राजा के अधीन अधिकारीगणों के कर्त्तव्य का निरूपण उक्त ६ मन्त्रों में किया गया है, जैसे—१. वर्ष में ६ ऋतु राजा, प्रजापति के ६ प्रकार के आधार रूप हैं। प्रथम ऋतु वसन्त, जिसके आश्रय पर लोग बसें जो बसावे वह मुख्य अधिकारी 'वसन्त' के समान है। प्रकृति, प्रजा का स्वतः राजा 'बसन्त' है। प्रजाओं को सुखपूर्वक वास देनेहारे अधिकारी 'वसु' हैं, वे पृथिवी आदि आठ वसुओं के समान प्रजाओं को शरण दें। प्राणों के समान वे प्रजा को जीवन दें, उनका मुख्य संघ "त्रिवृत्" है। त्रिवृत् स्तोम में तीन ऋचाएं हैं उसी प्रकार तीन अधिकारी हैं। उसका बल 'रथन्तर' है, रथों से देश-देशान्तर में जाते और तेज, पराक्रम से रथ सेना संग्रामों को तरते हैं। वे उस पराक्रम से ही राज्य और राजा का बल बढ़ाते हैं।

२. नेता, प्रजापति राजा का दूसरा रूप है, वह ग्रीष्म ऋतु के समान है। सूर्य जैसे प्रखर हो भूभागों को तपा कर जल शोष लेता है वैसे राजा तेज से अधीन भूपतियों से ग्रहण करता है। उस कार्य में नियुक्त पुरुष 'रुद्र' देव हैं। उनको देखकर जमींदार लोग रोते हैं। ये भी शरीर में भूख प्यास लगाने वाले तीव्र प्राणों के समान होने से भी रुद्र हैं। जैसे शरीर में दस अंग और पांच प्राण हैं उसी प्रकार राष्ट्र में उनके १५ अधिकारियों की स्थिति है। उनका 'यश', वीर्य और ख्याति अंग में बृहत् साम के समान है।

३. वर्षा ऋतु प्रजापति का तीसरा रूप है। उसका कार्य मेघ के समान संगृहीत ऐश्वर्य को प्रजा के हित पुनः प्रजा पर बरसा देना है। यह कार्य 'आदित्य' नामक अधिकारियों का है। उनकी स्थिति सूर्य में किरणों के समान है। उनका वर्णन 'सप्तदश' स्तोम से है अर्थात् दश इन्द्रियां, पंच प्राण, आत्मा और मन इन १७ के समान ये राष्ट्रशरीर में कार्य करते हैं। उनका पराक्रम नाना रूप से प्रकाशित होने से यज्ञ में वैराज साम के समान है। वे प्रजा की सम्पत्ति और बल बढ़ाते हैं।

४. प्रजापति का तीसरा रूप 'शरद् ऋतु' है। वह वर्षा काल के मेघों को छिन्न-भिन्न कर आकाश को स्वच्छ करता, चन्द्र को निर्मल करता, अन्न और फलों की वृद्धि करता और जलों को स्वच्छ करता है उसी प्रकार राजा प्रजा के शत्रुओं को दूर करता, संकट हटाता, अन्नादि सम्पदा बढ़ाता, सबको प्रसन्न करता है। ये अधिकारी 'ऋतु देव' हैं। 'ऋत' सत्य से प्रकाशित होना, ज्ञान-विज्ञान-कौशल से प्रजा को सुखी करना, उनका कर्त्तव्य है। इस वर्ग में न्यायाधीश, विद्वान्, शिल्पी, वैज्ञानिक हैं। ये 'एकविंशस्तोम' से वर्णित हैं। यज्ञ में २१ ऋचा वाले स्तोम के समान शरीर में हाथ पांवों की दश-दश अंगुली एवं २१ वां आत्मा, इनके समान नये-नये पदार्थों को प्राप्त करते हैं और राष्ट्र को उत्तम मार्ग में चलाते हैं। उनकी तुलना वैराज साम से है। वे श्री, शिल्प, कौशल से राज्य और राज कार्य में शोभा करते और अन्न, ऐश्वर्य और दीर्घजीवन प्रदान करते हैं।

५. प्रजापति का पाचवां स्वरूप 'हेमन्त ऋतु' है। वह तीव्र शीत से प्राणियों को कष्ट देता, जलों को असह्य शीतल कर देता है, नदियों को संकुचित करता है। उसी प्रकार राजा दुष्टों को तीव्र दण्डों से दण्डित कर उनको संकुचित करता है, प्रजाओं पर वश करता है। मरुद्गण, देव हैं। वे दुष्टों को दमन करने वाले वायु के समान वेगवान् सैन्य हैं। उनका स्तोम 'त्रिनव' है। शरीर में हाथ पांव के अंग २० अंगुलियां, पांच प्राण,

मन और आत्मा के समान राष्ट्र के २७ अंग हैं। यज्ञ में शक्कर साम के समान उनका स्वरूप 'शक्करी' अर्थात् शक्तिमती सेनाएं हैं, वे बल से ही शक्तिमती होने से 'शक्करी' हैं। वे शत्रु को पराजयकारी 'सहः' और वीर्य और राष्ट्र के दीर्घजीवन को धारण करते हैं।

६. प्रजापति का ६ टा रूप शिशिर-ऋतु है। शिशिर पतझड़ घर के वृक्षों में नया रस सेचन करता है नये पत्र और नये पुष्प खिलाने के निमित्त रस उत्पन्न करता है। उसी प्रकार प्रजा में नवीन साहस, नवीन शक्ति, नवीन ऐश्वर्य संचारित करने वाला राजा शिशिर के समान है। उसके अधीन कार्यकर्त्ता 'अमृत देव' हैं। वे प्रजा में जलों के समान अमर जीवन प्रदान करते हैं। उनकी स्थिति यज्ञ में त्रयस्त्रिंश स्तोम के समान है। शरीर में पञ्च स्थूल भूत, पंच तन्मात्रा, पंच कर्मेन्द्रिय, चार अन्तः-करण, जीव, शिर, २ हाथ, २ जांघें, १ उदर, २ उरःस्थल, ये अंग हैं। उसी प्रकार वे भी राष्ट्र-शरीर के स्थूल, सूक्ष्म विभागों के घटक, अंग हैं। वे ऐश्वर्यवान् होने से 'रेवतीः' कहाती हैं। वे यज्ञ में रैवत् साम के समान हैं। वे राष्ट्र में 'क्षत्र' धन अन्न, वीर्य, दीर्घायु धारण कराते हैं।

सभी मुख्य, गौण अधिकारी राजा के प्रतिनिधि हैं और राजा सब का आत्मा के समान है। गुणभेद से 'वसन्त' आदि राजा के रूप होकर भी भिन्न-भिन्न विभागों के प्रधान पदाधिकारियों के भी ये नाम हैं। उनके भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य वर्ष में ऋतुओं के अनुसार और शरीर में अंगों के अनुसार जानने चाहिये। विशेष संगति देखो। अ० १०। मं० १०, १४॥ अ० ९। ३४॥ अ० ११। ५८, ६०, ६५॥ वसन्तादि ऋतुओं के विशेष रहस्य देखो अ० १३। मं० ५४—५८॥ तथा अ० १३। मं० २५॥ तथा अ० १४। मं० ६, १५, २७, ५७॥ वसु आदि के कर्त्तव्यों के विषय में अ० १४। मं० २५॥ स्तोमों के स्वरूप देखो अ० १४।२८-३१॥

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॒ग्निमि॒डस्प॒दे॒ऽश्विनेन्द्र॒ꣳ सर॑स्वतीम॒जो धू॒म्रो न गो॒धूमै॒ः कुव॑लैर्भेष॒जं मधु॒ शष्पै॒र्न तेज॒ऽइन्द्रि॒यं पय॒ः सोम॒ः

परिस्रुतां घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

(२६–४१) द्वादश आप्रियः। अग्न्यश्विसरस्वतीन्द्राः लिंगोक्ता देवताः।
निचृदष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—(१) (होता समिधा अग्निम् इडस्पदे अश्विनौ, इन्द्रं सरस्वतीं यक्षत्) यज्ञ में (होता) होता नामक विद्वान् ऋत्विक् जिस प्रकार (समिधा) काष्ठ से (अग्निम्) अग्नि को प्रज्वलित करता है उसी प्रकार (होता) राष्ट्र को पदाधिकारियों के प्राप्त करने और उनको मननपूर्वक स्वीकार करने वाला पुरुष (इडस्पदे) इस पृथ्वी के प्रधान आसन पर (अश्विनौ) विद्याओं और राष्ट्र भागों के अच्छे ज्ञाता, सूर्य और चंद्र और शरीर में प्राण और अपान के समान दोषनाशक प्रधान सचिव रूप दो अधिकारियों को (इन्द्रम्) शत्रुनाशकारी, बलवान् सेनापति को और (सरस्वतीम्) ज्ञानी पुरुषों की बनी विद्वत्सभा को (यक्षत्) नियुक्त करे।

(२) (अजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैः भेषजम्) (अजः) बकरा बकरी जाति का पशु और अजवायन, अजमोद नामक ओषधि जिस प्रकार अपने उग्रगन्ध से नाना रोगों को (भेषजम्) दूर करता है और (धूम्रः) तीव्र धूम जिस प्रकार रोगकारी अंशों को नष्ट करता है और (गोधूमैः) गेहूँ के अन्नों से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है और (कुवलैः) बेर आदि झाड़ियों से जिस प्रकार पौधों को पशुओं को खाये जाने से बचाया जाता है उसी प्रकार (अजः) शत्रुओं पर नाना अस्त्र शस्त्रों को फेंकने में कुशल वीर योद्धा पुरुष (न) और (धूम्रः) उनको अपने बल, साहस, वीरता, पराक्रम और युद्धनीति से कंपा देने और धुन डालने वाला पुरुष (गोधूमैः) पृथ्वी के देशों को कंपाने में समर्थ वीर पुरुषों और अस्त्रशस्त्रों से और (कुवलैः) अति घोर गर्जनाकारी अथवा शत्रु की भूमि को घेर लेने वाले सेनादलों सहित (भेषजम्) शत्रु तथा प्रजापीड़कों को दूर करने का उचित उपाय है।

(३) (शष्पैः मधु न तेजः इन्द्रियम्) शष्प, नवांकुरित धान और उसकी जाति के धान्यों से जिस प्रकार मधु खाद्य अन्न और तेज, प्राणबल

और शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार राष्ट्र में (शष्पैः) शत्रु के मारने में समर्थ वीर पुरुषों और घोर घातक अस्त्रों से (मधु) शत्रुओं को पीड़न में समर्थ (तेजः) पराक्रम और (इन्द्रियम्) इन्द्र, विद्युत् और सूर्य का सा राजकीय ऐश्वर्य और पराक्रम उत्पन्न होता है। (४) (परिस्रुता) उत्तम रीति से प्राप्त रस से जिस प्रकार (पयः) दुग्ध आदि पुष्टिप्रद अन्न और (सोमः) परिस्रवणक्रिया से प्राप्त सोम, ओषधियों का रस तीव्र गुणकारी हो जाता है उसी प्रकार (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (पयः) राष्ट्र के पोषकवर्ग और (सोमः) ऐश्वर्यवान् अभिषिक्त राजा दोनों ही राष्ट्र में बलवान् हो जाते हैं। (५) (घृतं मधु व्यन्तु) हे पूर्वोक्त अश्वि, इन्द्र, सरस्वती, सोम आदि पदाधिकारियो विद्वत्सभा के सभासद्-गण ! साधारण मनुष्य शरीर की पुष्टि के लिये घी, दुग्ध और अन्न के समान आप लोग (घृतम्) तेज और (मधु) बल, अन्न और ज्ञान को राष्ट्र अभ्युदय के लिये (व्यन्तु) प्राप्त करें। (६) (आज्यस्य होतः यज) हे होता ! तू जिस प्रकार यज्ञ में घृत की आहुति देता है उसी प्रकार हे राष्ट्र के पद प्रदान करने हारे (होतः) विद्वन् ! तू (आज्यस्य) वीर्य, विजयोपयोगी बल (यज) प्रदान कर।

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

भुरिगत्यष्टिः। गान्धारः।

भा०—(१) (तनूनपात् होता सरस्वतीम् अश्विनौ इन्द्राय यक्षत्) (तनूनपात्) शरीर के न्यून अंश को पुष्ट कर उसको पालन और पूर्ण करने में समर्थ (होता) राष्ट्र के पदाधिकारों का प्रदाता, विद्वान् (सरस्वतीम्) ज्ञानवाणी के उपदेष्टा गुरुवत् ज्ञानमय विद्वत्सभा और (अश्विनौ) विद्याओं में पारंगत दो विद्वान् पुरुषों को (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र की उन्नति के लिये (यक्षत्) नियुक्त करे। (२) (पथा मधुमता

इन्द्राय वीर्य भरन्) जिस प्रकार (मधुमता) जलमय मार्ग से विद्युत् प्राप्ति के लिये शक्ति प्राप्त की जाती है उसी प्रकार राष्ट्र के सञ्चालक (मधुमता) मधुर, उत्तम फलों से युक्त (पथा) नीति मार्ग से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा को (वीर्यम्) बल (भरन्) प्राप्त करा। (३) (अविः मेषः न भेषजम्) शीत में जैसे भेड़ भेड़ा ही ऊन द्वारा शीत का उपाय है (मेषः न) मेढ़े के समान प्रतिपक्ष से टक्कर लेने वाला, शत्रुजन पर शस्त्रों और प्रजा पर सुख साधनों का वर्षण करने वाला (अविः) रक्षक ही (भेषजम्) बाधाओं को दूर करने का उत्तम उपाय है। (४) (बदरैः उपवाकाभिः तोक्मभिः भेषजम् यक्षत्) जिस प्रकार (बदरैः) बेर जैसी झाड़ियों की बाड़ से उद्यानों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र पर आने वाले शत्रुओं को (बदरैः—बधरैः) हिंसाकारी शस्त्रों से लैस सेना दलों से (यक्षत्) उपाय करे। राष्ट्र की मूर्ख जनता को (उपवाकाभिः) गुरुओं की दीक्षा व उपदेश क्रियाओं से शिक्षित करे। (तोक्मभिः) व्यथादायी उपायों से राष्ट्र के भीतरी दुष्टों का उपाय करे। (५) (पयः सोमः परिस्रुता०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳसुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्रश्विनोर्वपाऽइन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(१) (होता नराशंसं नग्नहुं पतिं न सुरया अक्षत्) (न) जिस प्रकार (नराशंसम्) समस्त पुरुषों से प्रशंसनीय (नग्नहुं) सुन्दर स्त्री को स्वीकार करने वाले (पतिम्) पालक पति को (सुरया) उत्तम रमणी के साथ संगत कर दिया जाता है उसी प्रकार (होता) राष्ट्र के पदाधिकारियों का नियोजक विद्वान् (सुरया) उत्तम राज्यलक्ष्मी से (नाराशंसम्) नेतृ पुरुषों से प्रस्तुत, (नग्नहुम्) दरिद्रों के पोषक, (पतिम्) पालक, राष्ट्रपति को (अक्षत्) संगत करे।

(२) (भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्) जैसे विवाहित होने पर यदि प्रजोत्पत्ति में कोई बाधा हो तो (मेषः) वीर्य पुष्टिकर औषध ही (भेषजम्) रोगनाशक होता है और (सरस्वती भिषग्) उत्तम ज्ञानमय वाणी या उसका धारक विद्वान् ही भिषक्, चिकित्सक है। अथवा (मेषः) वीर्यवान् युवा पुरुष ही जैसे प्रजोत्पत्ति का (भेषजम्) उपाय है और (सरस्वती) स्त्री ही (भिषक्—अभि-षक्) उससे संगत होती है। उसी प्रकार बाधक कारणों को दूर करने में (मेषः भेषजम्) प्रतिद्वन्द्वी से टक्कर लेने वाले मेढ़े के समान वीर पुरुष ही (भेषजम्) उपाय है और (सरस्वती) वेदवाणी, विद्वत्सभा ही (भिषग्) उस उपाय को बतलाने वाले वैद्यवत् है।

(३) (रथो न चन्द्री) जैसे मार्ग पार करने का साधन रथ है वैसे ही नीति मार्ग पर चलने का उत्तम साधन (चन्द्री) सुवर्ण आदि धन सम्पन्न कोशवान् पुरुष ही है।

(४) (अश्विनोः वपा इन्द्रस्य वीर्यम्) जिस प्रकार (अश्विनोः) स्त्री पुरुषों की (वीर्यम्) वीर्य ही (वपा) सन्तानोपत्ति की शक्ति है, उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र का (वीर्यम्) बल ही (अश्विनोः) प्रधान पद पर नियुक्त महामात्यों की (वपा) शत्रु-उच्छेदन करने की शक्ति है। (५) (बदरैः उपवाकाभिः० इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षदिडेडितऽआजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३२॥

विराड् अतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—(१) (होता सरस्वती आजुह्वानः इडा यक्षत्) पदाधिकारियों को नियुक्त करने हारा विद्वान् 'होता' (ईडितः) स्वयं आदर सत्कार प्राप्त करके (सरस्वतीम्) विद्वानों से पूर्ण विद्वत्सभा या वेद-

वाणी की व्यवस्था को (आजुह्वानः) प्रदान करता हुआ, (इडा) अन्न सम्पदा से (इन्द्राय) राष्ट्र को (यक्षत्) संयुक्त करे । (२) (बलेन इन्द्रं वृषभेण गवा इन्द्रियं वर्धयन्) बल, सेनाबल से 'इन्द्र' राजा को (वर्धयन्) अधिक शक्तिशाली करता हुआ और (वृषभेण) सांड और (गवा) गौ जाति के पशुओं से (इन्द्रियम्) इन्द्र, राजा के ऐश्वर्य को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ । (३) (यवैः कर्कन्धुभिः मधु लाजैः न मासरं भेषजं यक्षत्) (यवैः) जौ आदि धान्यों से (मधु) राष्ट्र के अन्न समान रोगनाशक, शत्रु-नाशक पुरुषों से राष्ट्र बल को मधुर उसी प्रकार (कर्कन्धुभिः) कांटेदार वृक्षों से (मधु) बेर फल के समान मधुर फल एवं हिंसाकारी शस्त्रों के धारक वीर पुरुषों से (मधु) शत्रु के नाशक बल को और (लाजैः न) लाजाओं, खीलों के समान शुभ्रवर्ण धातुओं से (मासरम्) प्रतिमास दिये जाने वाले वेतन को (भेषजम्) उपायन या भेंट रूप (यक्षत्) प्रदान करे।

(४) (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(होता) उक्त 'होता', पदाधिकारी, पुरुषों का नियोक्ता नाना दोषों को दूर करने के साधन और उपाय (यक्षत्) प्राप्त करे । (१) (बर्हि ऊर्णम्रदाः भिषक्) ऊन जैसे शरीर की शीत से रक्षा करती है उसी प्रकार (बर्हि ऊर्णम्रदाः) प्रजा राजा और राष्ट्र की कम्बल के समान रक्षाकारी होकर (भिषक्) उसकी त्रुटियों को दूर करे । (२) (नासत्या अश्विना भिषजा) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे, सदा सत्यप्रेमी पूर्वोक्त दो अधिकारी भी वैद्यों के समान राष्ट्र के असद्-व्यवहारों को दूर करें । (अश्वा) वेगवती घोड़ी के समान तीव्र बुद्धि अथवा हृदयग्राहिणी और (शिशुमती) उत्तम बालकों से युक्त (धेनुः) गौ के समान मधुर रस

देने वाली विदुषी स्त्री राजा और राष्ट्र के दोषों को (भिषग्) दूर करे और (सरस्वती) सरस्वती, विदुषी स्त्री और विद्वत्सभा भी (भिषग्) नाना दोषों को दूर करे। ये सब (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और राजा के लिये (भेषजम्) ओषधि रसों के समान नाना उपाय (दुहे) प्रदान करें। (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश ऽइन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳशुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता यक्षत्) उक्त होता, विद्वान् अश्वि दो नामक अधिकारी और सरस्वती विद्वत्सभा को नियुक्त करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (अश्विभ्याम्) उक्त दोनों कुशल अधिकारियों द्वारा (दिशः न) दिशाओं के समान (कवष्यः) विशाल अवकाशवाली और (व्यचस्वतीः) अति विस्तृत (दुरः) द्वारों के समान (दिशः) अवकाश वाली विस्तृत दिशाओं को और (रोदसी न) सूर्य, चन्द्र या वायु और सूर्य द्वारा अवकाश और पृथ्वी जिस प्रकार दुही जाती है, उनके उपभोग्य पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं, उसी प्रकार विद्वान् नेता और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों द्वारा राष्ट्रवासी स्त्री पुरुषों या राजा प्रजावर्ग दोनों को (दुघे) दोहे, उनसे ऐश्वर्य प्राप्त करे। (सरस्वती) सरस्वती, विद्वत्सभा (इन्द्राय) राजा के लिये (पयः) दूध को (धेनुः) दुधार गौ के समान (भेषजम्) सर्व रोग-हर औषध, (शुक्रम्) शरीर, में बलकारी वीर्य और (ज्योतिः) प्रकाश और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य उत्पन्न करे। इसी प्रकार (अश्विनौ) शरीर में व्यापक प्राण और अपान के समान दोनों अधिकारी (इन्द्राय) शरीर के अधिष्ठाता, इन्द्र, जीव के समान राष्ट्र के स्वामी के लिये (भेषजं शुक्रं न) सर्व रोगहर औषध और वीर्य के समान ऐश्वर्य और (ज्योतिः) जीवन-बल और (इन्द्रियम्),

राज्य सामर्थ्य को (दुहे) उत्पन्न करें। (पयः सोमः परिस्रुता०) इत्यादि पूर्ववत्॥

होता यक्षत् सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३५ ॥

भुरिगष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(होता) होता, विद्वान् (यक्षत्) राष्ट्र की सुव्यवस्था के अधिकारियों को योग्य पद पर नियुक्त करे। (सुपेशसा) उत्तम रूप व ऐश्वर्य से सम्पन्न, (उषे) प्रातःसायं की सन्ध्याओं या सूर्य चन्द्र के समान (अश्विना) अश्वि नामक विद्वान् दोनों अधिकारी (दिवानक्तम्) दिन और रात (सरस्वत्या) सरस्वती, विद्वत्सभा से (सम् अञ्जाते) एक मत करके रहें और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (त्विषिम्) कान्ति, तेज को (भेषजम्) रोगहारी रस के समान स्थापना करें। तब (श्येनः न) श्येन या बाज जिस प्रकार बड़े वेग से अपने से निर्बल पक्षियों पर आक्रमण करता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने (रजसा) तेजस्वी लोक-समूह से निर्बल शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने में समर्थ हो। वह (हृदा) हृदय से या हरणकारी आक्रमण से और (श्रिया) श्री—शोभा और ऐश्वर्य से (न) भी (मासरं) भात, अन्न या मासिक वेतन के समान अपने अधीन शत्रु को भोग करे। (पयः सोम० इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः। शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियम्। पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३६ ॥

निचृदष्टिः मध्यमः ॥

भा०—(होता) पदाधिकारियों का नियोक्ता विद्वान् (दैव्या होतारौ) देवों, प्रजा के विद्वान्, दानशील पुरुषों के हितकारी (होतारौ) प्रधान वशकारी अधिकारी दो पुरुषों को और (अश्विना) अधिकार और राजनीति

विद्या में व्यापक, (भिषजा) शरीर के रोगों के चिकित्सकों के समान राष्ट्र दोषों के सुधारक पुरुषों को और (इन्द्रं न) शत्रुहन्ता पुरुष को भी (यक्षत्) नियुक्त करे। (भिषक् भेषजैः न) वैद्य जिस प्रकार औषधों द्वारा शरीर में बल उत्पन्न करता है उसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम विद्वत्सभा (दिवा नक्तम्) दिन रात (जागृवि) जागती हुई, सावधान रह कर, (सीसेन) सीसा के बने गुलिकास्त्र से (शूषम्) बल, सामर्थ्य और (इन्द्रियम्) इन्द्र, राजा के उचित मान, ऐश्वर्य को भी (दुहे) उत्पन्न करे। (पयः सोमः०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती। वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥३७

धृतिः। ऋषभः ॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त पदाधिकारियों का नियोजक 'होता' (तिस्रः देवीः) तीन सभा (यक्षत्) व्यवस्थित करे। (त्रिधातवः) शरीर की तीन धारक धातु वात, पित्त, कफ जिस प्रकार (भेषजं न) ओषधि को धारण कर लेते हैं उसी प्रकार (त्रयः) वे तीन (अपसः) कर्मों के करने वाले प्रधान नेताओं के अधीन होकर (इन्द्रे) राजा में (रूपम्) रुचि, रूप, कान्ति धारण करावें। (अश्विनौ) इनमें भी दो मुख्य अधिकारी अश्वी हैं वे दोनों और (इडा) इडा, भूमि की प्रबन्धकर्त्री संस्था (इन्द्रे) राजा में (हिरण्यम् दुहे) सुवर्ण आदि धातुमय ऐश्वर्य को धारण करावें और (भारती) भारती, कला-कौशल की नियामक संस्था भी (अश्विना) दो अधिकारियों को प्राप्त होकर (इन्द्रे रूपं हिरण्यम् दुहे) राजा में उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें। (सरस्वती) सरस्वती, विद्वत्सभा (वाचा) वाक्, त्रयी विद्या, वाणी, व्यवस्था और आज्ञा द्वारा (इन्द्राय महः इन्द्रियं दुहे) राजा के अति आदर योग्य बड़े भारी सामर्थ्य को प्रदान करे। (पयः सोमः०) इत्यादि पूर्ववत्।

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३८ ॥

भुरिक् कृतिः । निषादः ॥

भा०—(होता) उचित पदों पर उचित व्यक्तियों को नियुक्त करने वाला अधिकारी (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, (ऋषभम्) सेचने में समर्थ वृषभ के समान उत्तम भूमि में उत्तम बीज वपन करने में समर्थ, एवं मेघ के समान उत्तम जलरूप उत्पादक सामर्थ्य से युक्त, (नर्यापसम्) लोकोपकारी (त्वष्टारम्) एन्जीनीयर और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को और (अश्विनौ) दो मुख्य अधिकारियों को (भिषजम्) सब दोषों को दूर करने वाले वैद्य के समान (सरस्वतीम्) उत्तम ज्ञान और ज्ञानी पुरुषों से युक्त विद्वत्सभा को (यक्षत्) राष्ट्र में नियुक्त करे। वे सब लोग क्रम से (ओजः) पराक्रम (न) और (जूतिः) वेग से, चुस्ती से कार्य सञ्चालन, (इन्द्रियम्) राजा के उचित ऐश्वर्य और इन्द्रियों के तीव्र सामर्थ्य को उत्पन्न करते हैं। (वृकः न) जिस प्रकार-भेड़िया छुपकर अपने से निर्बल जीव को पर वेग से जा पड़ता है उसी प्रकार वह राजा अपने ओज और शीघ्रकारिता से निर्बल शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ हो और (रभसः भिषग्) अति कार्यकुशल वैद्य जैसे (सुरया) उचित ओषधि से या सुरा 'लिकर' के योग से (भिषजम्) रोगहारी ओषधि को बनाता और प्रयोग करता है और (यशः) धन और यश प्राप्त करता है और मरणासन्न रोगी को भी बचा लेता है उसी प्रकार (सुरया) उत्तम राज्यलक्ष्मी या उत्तम सुव्यवस्था से राजा राष्ट्र शरीर में उठी अव्यवस्था का उपाय करता है और (यशः) ऐश्वर्य और ख्याति प्राप्त करता है और (श्रियात्) अपने ऐश्वर्य से ही (मासरम्) अपने राष्ट्र और परराष्ट्र

को परिपक्व भात के समान भोग करता है, अथवा लक्ष्मी के बल से सब को प्रति मास वेतन भी देता है। (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳशतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳसरस्वती भिषगिन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३९ ॥

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(होता) योग्य पदाधिकारियों का नियोक्ता 'होता' विद्वान् (वनस्पतिम्) वट आदि महावृक्ष के समान समस्त प्रजाओं को निःस्वार्थ भाव से आश्रय देने वाले, (शमितारम्) वन में लगी आग को जल-धाराओं से शमन करने वाले, मेघ के समान संतप्त प्रजाओं को शान्ति देने वाले, (शतक्रतुम्) सैकड़ों प्रकार के कर्म करने में समर्थ विद्युत् के समान सैकड़ों सामर्थ्यों से युक्त और (मन्युं न भीमम्) मन्यु, क्रोध के समान अति भयकारी (व्याघ्रं राजानम्) पशुओं पर व्याघ्र के समान, अन्य बड़े राजाओं पर भी आक्रमण करने में निर्भय राजा को (नमसा) सबको नमाने वाले, दण्डाधिकार से युक्त करके और (अश्विनौ) दो मुख्य पदाधिकारियों को भी (यक्षत्) नियुक्त करे। (सरस्वती) उत्तम ज्ञान-पूर्ण विदुषी, विद्वत्-सभा और वेदवाणी (इन्द्राय) इन्द्र को (भामम्) असह्य क्रोध रूप तेज और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (दुहे) प्रदान करती है। (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षदग्निꣳस्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳस्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳसरस्वत्यै स्वाहऽऋषभ-मिन्द्राय सिꣳहाय सहसऽइन्द्रियꣳस्वाहाग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳसवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳस्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳस्वाहा देवाऽआ-ज्यपा जुषाणोऽअग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ४० ॥

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त उचित पुरुषों को नियुक्त करने वाला होता विद्वान् (अग्निम्) अग्रणी सेनापति को (स्वाहा) उत्तम रीति, सुख्याति और उत्तम वृत्ति से (यक्षत्) पद पर नियुक्त करे। (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य, विजयकारी सेनाबल साधन के लिये (स्तोकानाम्) छोटी वृत्ति वालों को भी (सु-आहा) उत्तम शिक्षा द्वारा (यक्षत्) नियुक्त करे। (मेदसाम्) सिंह आदि के तुल्य एक स्थान पर मिलकर न रहने वाले हिंसक पुरुषों को (पृथक्) पृथक् (स्वाहा) उत्तम शिक्षा और व्यवस्था से युक्त करे। (अश्विभ्याम्) अश्वि, राष्ट्र में व्यापक, बड़े दो पदों के लिये (छागम्) प्रजाओं के दुःखों और दुष्टों के गर्वों के काटने में समर्थ पुरुष को (स्वाहा) उत्तम वृत्ति देकर (यक्षत्) नियुक्त करे। (सरस्वत्यै मेषम्) सरस्वती, प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री के लिये जिस प्रकार वीर्यवान् समर्थ पुरुष को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की विद्वत्सभा के लिये (मेषम्) प्रतिस्पर्द्धी से टक्कर लेने वाले, ज्ञान जलों के वर्षक और विद्वान् पुरुषों को नियुक्त करे। (इन्द्राय) इन्द्र, राजा पद के लिये (ऋषभम्) मेघ के समान प्रजाओं पर सुखवर्षक, सौम्य पुरुष को (यक्षत्) नियुक्त करे। इसी प्रकार (सिंहाय) सिंह के समान बलशाली पुरुष के योग्य (सहसे) शत्रु को पराभव करने वाले बल कार्य के लिये (इन्द्रियम्) इन्द्र महाराज पद योग्य, ऐश्वर्यवान्, शत्रु के पराजेता बली पुरुष को (स्वाहा) उत्तम वृत्ति, भूमि एवं मान द्वारा (यक्षत्) नियुक्त करे। (अग्निं न) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष को (भेषजम्) दोष को दूर करने वाले औषध के समान (स्वाहा) उत्तम आदर से (यक्षत्) नियुक्त करे। (सोमम् इन्द्रियम्) सोम, राजा पद को भी इन्द्र, शत्रुनाशक बलधारी पुरुष के समान ही (स्वाहा) उत्तम मान आदर से (यक्षत्) युक्त करे। (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता, (सुत्रामाणम्) उत्तम प्रजा के रक्षक, (सवितारम्) सब के प्रेरक (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ

सबके वरण योग्य पुरुष को (भिषजां पतिम्) सर्व दोषों के चिकित्सकों ज्ञानवान् पुरुषों के भी पालक बनाकर उनको (स्वाहा) उत्तम रीति से (यक्षत्) नियुक्त करे। (प्रियम् पाथः न) प्रिय, मनोहारी अन्न के समान, (वनस्पति) महावृक्ष के समान सर्वाश्रय दाता ऐश्वर्यवान् पुरुष को (भेषजम्) उपद्रवों को शान्त करने वाले औषध के समान जानकर (स्वाहा) आदर से (यक्षत्) रक्खे। (देवाः) देव, विजिगीषु लोग सभी (आज्यपाः) संग्राम के विजयकारी पदों के पालक हों। (जुषाणः) आदरपूर्वक नियुक्त (अग्निः) ज्ञानी विद्वान् नेता ही (भेषजम्) औषध के समान राष्ट्र शरीर के सब अंगों को शान्त स्वस्थ रखता है। (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताᳬहविर्होतर्यज।
होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताᳬहविर्होतर्यज।
होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताᳬ हविर्होतर्यज ।४१

त्रयो वपानां प्रैषाः ॥ सप्तलिंगोक्ता देवताः अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता) पदों पर योग्य अधिकारियों का नियोजक 'होता' (अश्विनौ यक्षत्) अश्वी दो अधिकारी पुरुषों को नियुक्त करे। वे दोनों (छागस्य) शत्रु और प्रजा के पीड़कों के उच्छेदन करने में समर्थ पुरुष की (वपायाः) उच्छेदन करने वाली शक्ति और (मेदसः) हिंसन या दण्ड देने के सामर्थ्य को (जुषेताम्) प्राप्त करें। हे (होताः) होतः ! तू उन दोनों को (हविः) उचित अन्न, वीर्य और अधिकार (यज्ञ) प्रदान कर। इसी प्रकार (होता) होता नामक विद्वान् (सरस्वतीम्) ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा को (यक्षत्) नियुक्त करे। वह (मेषस्य) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान्गण के (वपायाः) परस्पर खण्डन मण्डन की शक्ति और (मेदसः) परस्पर स्नेह या परपक्ष के खण्डन की शक्ति का (जुषेताम्) सेवा या अभ्यास करें। (होता इन्द्रं यक्षत्) होता 'इन्द्र' नामक शत्रुनाशक सेनापति को नियुक्त करे। वह (ऋषभस्य) सर्वश्रेष्ठ, पुरुष के (वपायाः) दूसरे की कीर्त्ति के उच्छेदन करने की शक्ति और (मेदसः) स्पर्धा में दूसरे

के नाशक वीर्य को (जुषताम्) प्राप्त करे। हे (होतः) होतः ! तू इस अधिकारी को (हविः यज) मान, वेतन, अधिकार प्रदान कर।

[1] होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः [2] सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

१ त्रिपाद् गायत्री । षड्जः । २ विराट् प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—(होता) योग्य पुरुषों को योग्य अधिकारों का प्रदाता विद्वान् पुरुष (अश्विनौ सरस्वतीम्) विद्या और राज्य-कार्यों में अच्छी प्रकार कुशल दो पुरुषों और सरस्वती नामक विद्वत्सभा को और (इन्द्रं सुत्रामाणम्) उत्तम रीति से राज्य के पालन करने हारे इन्द्र, राजा को (यक्षत्) योग्य अधिकार (इमे सोमाः) ये परम ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वान्, राज पदाधिकारी जन (सुरामाणः) उत्तम राज्यलक्ष्मी पाकर (छागैः) शत्रुनाशक, (मेषैः) विद्या और बल में प्रतिस्पर्द्धा वाले (ऋषभैः) और प्रजा में प्रतिष्ठित, उत्तम पुरुषों द्वारा (सुताः) अभिषिक्त होकर, (शष्पैः) शत्रुओं को हिंसाकारी शस्त्रों, (तोक्मभिः) शत्रु के व्यथादायी महास्त्रों और (लाजैः) विशेष दीप्तिजनक ऐश्वर्यों से (महस्वन्तः) बड़े भाग्यशाली, आदर और अधिकार को प्राप्त, (मदा) तृप्तिकर उनके चित्तों को संतोष-जनक (मासरेण) प्रतिमास दिये जाने वाले वेतन, पुरस्कार या अन्न आदि भोग्य सामग्री से (परिष्कृताः) सस्कृत, (शुक्राः) शुद्ध आचारवान्, (पयस्वतः) पुष्टिकारक, अन्न, दुग्ध एवं पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न अथवा वीर्यवान्, (अमृताः) अमर, आत्मज्ञानी, दीर्घायु, (प्रस्थिताः) उत्तम पद पर स्थित हैं। हे ऐश्वर्यवन्, विद्वान्, सौम्य पुरुषो ! (तान्) उन (मधुश्चुतः) ज्ञान को प्रदान करने वाले (वः) आप लोगों को (अश्विनौ) दोनों प्रधान पुरुष,

(सरस्वती) विद्वत्-सभा और (सुत्रामा वृत्रहा) उत्तम पालक, शत्रुनाशक (इन्द्रः) इन्द्र राजा, ये सब (जुषन्ताम्) प्रेम और आदर से प्राप्त करें और (सोम्यं मधु) सोम्य = राष्ट्र के हितकारी ऐश्वर्य या ज्ञान का (पिबन्तु) पान करें और (मदन्तु) तृप्त और सन्तुष्ट हों और (व्यन्तु) उसको ग्रहण करें। हे (होतः) विद्वन् होतः ! तू उनको (यज) अधिकार प्रदान कर।

[1]होता यक्षदश्विनौ छागस्य [2]हविष आत्तामद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं
पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां
यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवो
पवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत ऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गा-
दवत्तानां करतऽएवाश्विना जुषेताꣳ हविर्होतर्यज ॥ ४२ ॥

(१) याजुषी पंक्तिः । पंचमः । (२) उत्कृतिः षड्जः ॥

भा०—(होता) पदाधिकारों का प्रदाता (अश्विनौ) व्यापक अधिकारों वाले दो मुख्य अधिकारियों को (यक्षत्) नियुक्त करे और वे दोनों (छागस्य) शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले राष्ट्र के (हविषः) उपादान योग्य अन्न आदि कर को (आ अत्ताम्) प्राप्त करें। (अद्य) अब, नित्य (मध्यतः) राष्ट्र के बीच में से (मेदः) शत्रु के बल को नाश करने वाला सेना बल (उद्भृतम्) प्राप्त किया जाय। उक्त दोनों अधिकारी (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के हाथ में आने से पूर्व और (पौरुषेय्याः गृभः) लोगों के पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त कर लेने के पूर्व ही (नूनम्) निश्चय से (घस्ताम्) वे उसको ले लें। कैसे अन्नों को लें सो बतलाते हैं ? दोनों अधिकारी (घासे अज्राणां) खाने में जिनका रस नष्ट न हुआ हो; जिनको भोजन के निमित्त प्राप्त किया जा सके, ऐसे (यवसप्रथमानाम्) यव, गेहूँ आदि जाति के अन्नों में भी सब से उत्तम कोटि के (सुमत्क्षराणाम्) उत्तम रीति से रस, तृप्ति और आनन्द देने वाले, (शतरुद्रियाणाम्) सैकड़ों रुद्र नाम पदाधिकारियों द्वारा प्राप्त करने योग्य अथवा उनके निमित्त लेने योग्य, (अग्निष्वात्तानाम्) सूर्य रूप अग्नि से उत्तम रीति से परिपक्व, अथवा अग्नि और

ज्ञानी पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से परीक्षा करके लिये गये, (पीवोपवसनानाम्) आहार व्यवहार द्वारा पुष्टि करने वाले, (पार्श्वतः) राष्ट्र के पासों पर बसे देशों से (श्रोणितः) बीच के देशों से, (शितामतः) अति वीर्यवान् या विस्तृत या विशेष रूप से व्यवहित देशों से और (उत्सादतः) जो देश राजा के विपरीत सिर उठाते हैं उन देशों से भी अर्थात् (अङ्गाद्-अङ्गाद्) राष्ट्र के प्रत्येक अंग से (अवत्तानाम्) प्राप्त किये करों को (अश्विनौ) उक्त दोनों 'अश्विनामक' अधिकारीगण (नूनम्) अवश्य संग्रह कर लें और (जुषेताम्) उनको सेवन करें। अथवा (करतः एव जुषेताम्) कर रूप से ही सेवन करें। हे (होतः) होतः ! तू (हविः) अन्न आदि ग्राह्य पद को (यज) प्रदान कर।

इसी प्रकार, अश्वी नामक अधिकारीगण (छागस्य) शत्रुओं को छेदन करने वाले (हविषः) राष्ट्र से संग्रह करने योग्य सेना बल को (आ अत्ताम्) प्राप्त करें। यह सेना बल कहां से प्राप्त करें ? (मेदः) यह शत्रुनाशक बलवान् अंश भी (मध्यतः उद्भृतम्) राष्ट्र के बीच में उठाया जाय। कब ? (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के वश में चले जाने के पहले ही अर्थात्, जब प्रजा में राजा के शत्रुपक्ष प्रजा के बलवान् अंश को राजा के विपरीत संगठित करें। इसके पहले ही प्रजा के बीच में से बलवान् प्रजा के बीच में से बलवान् प्रजा के अंश को अश्वी नामक अधिकारी अपनी सेना और अन्यान्य कार्यों में लगावें। और कब ? (पुरा पौरुषेय्याः गृभः) वे स्वयं अपने विशेष पुरुषार्थ, धनार्जन धर्मार्थ, काम मोक्ष मार्ग के निमित्त, विशेष व्यवसाय को पकड़ें स्वयं पुरुषार्थ से कोई अधिकार पकड़ लें इससे भी पूर्व उनको राजकार्य में लगा लिया जाय और वे दोनों अधिकारी (नूनं घस्ताम्) अवश्य ही इस अंश को ले ही लें, उपेक्षा न करें। राष्ट्र-बल के और सेना के निमित्त जिन प्रजाजनों को लिया जाय वे किस प्रकार के हों ? (घासे) अन्न या राज्य से वृत्ति प्राप्त कर लेने पर (अज्राणाम्) शत्रु से कभी पराजित न होने वाले, के हृष्ट पुष्ट, (यवस-प्रथमानाम्)

शत्रुओं को नाश करने में सबसे श्रेष्ठ, अथवा उत्तम यव आदि सेवन करने वाले, (सुमत्-क्षराणाम्) हर्ष आनन्द सेचन करने वाले, सदा प्रसन्न (शतरुद्रियाणाम्) सैकड़ों दुष्टों को रुलानेवाले, अथवा रुद्र, वीर सेनापतियों के अधीन, अथवा सेनापति पद के योग्य, (पीवोपवसनानाम्) स्थूल, मजबूत, पक्की पोशाक, कबच आदि पहनने वाले, (पार्श्वतः) पासों से, (श्रोणितः) कमर से, (शितामतः) गुह्यांग से और (उत्सादतः) उखड़नेवाले, निर्बल (अङ्गाद् अङ्गाद् अवत्तानाम्) प्रत्येक अंग अंग पर सुबद्ध, अर्थात् छाती पर कसी पोषाक, कमर में पेटी और गुह्यांगों में लंगोट बांधने वाले, उत्साद अर्थात् विनाश योग्य या ढीले प्रत्येक अंग को भी पेटी कवच आदि से बांधनेवाले, कसे कसाये वीर पुरुषों को (करतः एव) अवश्य प्राप्त करें और (अश्विनौ) विद्या और अधिकार वाले जन उनको (जुषेताम्) प्रेम से स्वीकार करें। हे (होतः) होतः ! अधिकारदातः ! तू (हविः यज) उनको अन्न और अधिकार, वृत्ति और पद प्रदान कर।

अध्यात्म में—होता, प्राणपाण का साधक, (अश्विनौ) प्राण और अपान दोनों को वश करे। वे दोनों (छागस्य) अज सर्वच्छेत्ता, आत्मा के (हविषः) बल को (आत्ताम्) प्राप्त करें। (मेदः) बलपूर्वक प्राण को (मध्यतः) अपने शरीर के बीच में से (उद्भृतम्) उठाया जाय। वे प्राण और अपान, अपने ग्राह्य सूक्ष्म अंगों को (द्वेषोभ्यः पुरा, पौरुषेय्याः गृभः पुरा) अप्रीति जनक, बाधक व्यसनों, रोगों और पुरुष-देह पर आने वाली विपत्तियां के द्वारा उन अंशों को नष्ट होने के पहले ही, (नूनं घस्ताम्) देह के उन अंशों को अवश्य ग्रहण करे, वश करे। वे सूक्ष्म अंश कैसे हों ? (घासे अज्राणाम्) अन्नरस खाने में कभी नष्ट न होने वाले, सदा बलवान्, (यवसं-प्रथमानाम्) मिश्रण अमिश्रण, उचित अंश के ग्रहण और हानिकारक अंश को त्यागने में श्रेष्ठ, (सुमत्क्षराणाम्) उत्तम हर्षजनक, (शतरुद्रियाणां) सैकड़ों प्राणों के स्वरूप में प्रकट, (अग्निष्वात्तानाम्) जठराग्नि द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित, (पीवोपवसनानाम्)

पुष्टिकारी आवरण में सुरक्षित, (पार्श्वतः) कोखों से, (श्रोणितः) कटि भाग से, (शितामतः) गुह्यांग से और (उत्सादतः अङ्गाद् अवत्तानाम्) हानि प्राप्त करने वाले प्रत्येक मर्म अंग से उन प्राणों के सूक्ष्म अंशों को (करतः एव) वे प्राण और अपान क्रिया शक्ति से ही (जुषताम्) संचालित करे । (होतः हविः यज) हे साधक ! तू प्राण की अपान में और अपान की प्राण में हवि को प्रदान कर । अर्थात् इसी विधि से प्राणायाम का अभ्यास कर । इस मन्त्र का उवट और महीधर ने बकरे के कोख, कमर, लिंग, गुदा आदि भागों से मांस काट-काट कर अश्वि देवताओं के निमित्त आहुति करने परक अर्थ किया है । सो असंगत है । वस्तुतः इसमें नाम व्यापक अधिकार वाले लोगों को नियुक्त करने और सेनाबल के निमित्त सैनिक लेने एवं अध्यात्म में, प्राणापान द्वारा शरीर को पुष्ट करने के नियमों का उपदेश किया है । 'छागस्य'—छयतेश्छेदनार्थाद् धातोरौणादिको गन् प्रत्ययः । छयति छिनत्ति इति छागः । इति दया० उणादि० । छापखडिभ्यः कित् । उणादिसूत्रम् । १ । १२४ ॥ छो छेदने । दिवादिः । छो गुग् ह्रस्वश्च इति कलप्रत्यये गुगागमो ह्रस्वश्च । उणादि० । १ । ११३ ॥ छयति छिनत्तीति छगलः छागः बर्करो वा इति दया० उणादि० । 'अजः'—न जायते इत्यजः । अजति गच्छति व्याप्नोति इत्यजः । अथ यः सः कपाले रसो लिप्त आसीदेष सोऽअजः । श० ६ । ३ । १ । २८ ॥ ब्रह्म वा अजः । श० ७ । ५ । २ । २१ ॥ प्रजापतिर्वा एष यदजर्षभः । श० ५ । १ । २४ ॥ 'मेदः'—मिद मेद मेधाहिंसनयोः । भ्वादिः । मेदो वा मेधः । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥ मेधाय अन्नायेत्येतत् । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥ ते मेधं (देवाः) खनन्त इवान्वीयुस्तमन्वविन्दन् ताविमौ व्रीहियवौ । मेधो वा आज्यम् । तै० ३।१।१२।१ ॥ 'अज्राणां'—यैरजितं स्वेच्छया, न्यायजराणि वा इत्युवटः ।

[1]होता॑ यक्षत् सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ [2]ह॒विष॒ऽआव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ऽउद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस॑न्नू॒नं घा॒सेऽअ॑ज्राणां

यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवᳬ सरस्वती जुषताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४४ ॥

(१) याजुषी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ (२) स्वराड् उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता) अधिकार प्रदाता अधिकारी (सरस्वतीम्) पूर्वोक्त विद्वत्सभा को (यक्षत्) संयोजित करे । वह (मेपस्य) ज्ञान और बल में प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान् के (हविः) ग्रहण करने योग्य ज्ञान बल को (आवयत्) प्राप्त करें । (मध्यतः मेदः उद्भृतम्) विद्वानों के बीच में से मेधा, ज्ञानवती वाणी का बल उत्पन्न होता है । वह भी पूर्वोक्त रीति से ही (पुरा द्वेषोभ्यः, पुरा पौरुषेय्याः गृभः) शत्रुओं के हाथ में जाने और उनके अपने उद्यमों में लगने से पहिले ही (घसत् नूनं) उनको अवश्य प्राप्त कर ले । (घासे अज्राणां) अन्नादि वृत्ति पाने पर कभी जीर्ण न होने वाले, सदा विजयी, (यवसप्रथमानम्) सब से प्रथम उत्तम अन्न प्राप्त करने वाले, (सुमत्क्षराणां) उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले, (शतरुद्रियाणां) सैकड़ों ज्ञान स्तुतियों को देने वाले (अग्नि-स्वात्तानाम्) ज्ञानवान् आचार्य द्वारा सुशिक्षित, (पीवोपवसनानाम्) दृढ़ता से निवास करने वाले, (पार्श्वतः श्रोणितः शितामतः उत्सादतः अङ्गाद् अङ्गाद् अवत्तानाम्) देश के समस्त भागों से प्राप्त, अथवा पार्श्व, कमर, लिंग और मर्म के अंगों में दृढ़, अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुषों को (करत्) नियुक्त करे । (सरस्वती एवं जुषताम्) विद्वत् सभा इस प्रकार राष्ट्र के कार्य को स्वीकार करे । (होतः हविः यज) विद्वन् ! तू अधिकार और वेतन अन्न प्रदान कर ।

[१] होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष[२] आवयदद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां

पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषतांᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४५ ॥

(१) भुरिक् प्राजापत्या उष्णिक् । (२) भुरिगभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(होता इन्द्रं यक्षत्) पूर्वोक्त अधिकारप्रदाता पुरुष इन्द्र नाम पदाधिकारी सेनानायक या राजा को नियुक्त करे। वह इन्द्र नाम पदाधिकारी (ऋषभस्य) ज्ञानवान्, सर्वश्रेष्ठ पुरुष के (हविषः) ग्रहण योग्य अधिकार और अन्नादि भृति को (आवयत्) प्राप्त करे। (अद्य मध्यतः० यज० । इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित। यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽऋषभस्य हविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांᳬसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयसऽइव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषतांᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

(१, २) भुरिगभिकृतिद्वयम । ऋषभः ॥

भा०—(होता) योग्य पदाधिकारों का दाता 'होता' नामक विद्वान्, (वनस्पतिम्) वनस्पति, महावृक्ष के समान अपने आश्रितों के पालक, उच्च पदाधिकारी को (यक्षत्) नियुक्त करे और जिस प्रकार (पिष्टतमया) अत्यन्त कूट कूट कर बनाये सूतों से बनी और (रभिष्ठया और खूब दृढ़ता से बांधने वाली, मजबूत, (रशनया) रस्सी से पशु को बांधते हैं, उसी प्रकार उस मुख्य प्रजापालक सर्वाश्रय राजा को भी खूब (पिष्टतमया) अधिक कुटी पिसी, अति सुविचार और विवेक, तर्कद्वारा निर्धारित और

(रभिष्ठया) अति दृढ़ता से बांधने वाली (रशनया) अतिव्यापक राजनियम-व्यवस्था से राजा और अधीन पदाधिकारियों को (हि अभि-अधित) निश्चय से बांधे। उनको कहां नियुक्त करे? (यत्र) जिस स्थान पर (अश्विनोः छागस्य) पूर्वोक्त व्यापक, राष्ट्र के अधिकारी मुख्य दो पुरुषों के अधीन दुष्टों के छेदन करने वाले शूर पुरुष को (हविषः) देने योग्य पदाधिकार (प्रियाणि) अति प्रिय, मन के अनुकूल, हितकर (धामनि) स्थान, या पद हों उनपर और (यत्र सरस्वत्याः) जहां सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ऊपर (मेषस्य) नियुक्त अतिविद्वान्, ज्ञानी पुरुष के (प्रिया धामानि) मनोनुकूल पद हों, और (यत्र इन्द्रस्य ऋषभस्य) जहां ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष सभापति के (प्रिया धामानि) मनोनुकूल पद हों और (यत्र अग्नेः प्रिया धामानि) जहां अग्रणी नायक, विद्वान् आचार्य आदि के अधीन अनुकूल पद हों, इसी प्रकार (यत्र सोमस्य) सोम, सर्व प्रेरक राजा के (सुत्राम्णः इन्द्रस्य) उत्तम पालक, शत्रुनाशक इन्द्र के (सवितुः) सर्वप्रेरक एवं उत्पादक सविता के (वरुणस्य) सर्व कष्टों के वारक, दुष्टों के नाशक, सबके वरणीय पुरुष के, (वनस्पतेः) वट आदि के समान प्रजा के आश्रयरूप पुरुष के और (यत्र) जहां (आज्यपानाम्) विजय साधन शस्त्रास्त्रों के पालक, (देवानाम्) विजयशील पुरुषों के और (यत्र अग्नेः होतुः) जहां सब विज्ञानों के प्रकाशक, सबके अधिकार दाता होता के (प्रिया धामानि) उन-उन अधिकारियों के मनोनुकूल पद और (प्रिया पाथांसि) प्रिय, अन्नादि द्रव्य या पालन करने योग्य सेवा हों (तत्र) उन २ स्थानों पर (एतान्) इन २ नाना पदाधिकार योग्य २ पुरुषों को (प्रस्तुत इव) स्वयं सबके समक्ष आदरपूर्वक उनको प्रस्तुत कर २ के, या प्रस्ताव करके और (उपस्तुत्य च) उनके सम्बन्ध में उत्तम परिचय कराकर (उप अव अस्रक्षत्) उन २ मुख्य पदाधिकारियों के अधीन स्थापित करे और उनको भी (रभीयसः इव) खूब नियम में प्रबद्ध, एवं कार्यकुशल (कृत्वी) बना कर स्वयं (वनस्पतिः) आश्रय वृक्ष के समान

सर्वाश्रयदाता, वनस्पति नामक पद पर स्थित मुख्य पुरुष (करद्) अपने राष्ट्र में नियुक्त करे। (एवं) इस प्रकार (देवः वनस्पतिः) विजीगीषु राजा, या सबको अधिकार देनेवाला, (वनस्पतिः) सर्वाश्रय, मुख्य पदाधिकारी (हविः जुषताम्) ग्रहण करने योग्य पद और राष्ट्र को स्वीकार कर। हे (होतः यज) होतः! तू उसको यह पद प्रदान कर। किसी व्यक्ति को पदाधिकार देने के पूर्व उसका परिचय और गुण स्तुति आवश्यक है। उसी को वेद 'प्रस्तुत्य, उपस्तुत्य' कहता है। प्रथम 'प्रस्ताव' हो, उसके पश्चात् 'उपस्ताव' या समर्थन हो।

[1]होता यक्षदग्निꣳस्वि॑ष्टकृतमया॑डग्निर॒श्विनो॒श्छाग॑स्य ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सर॑स्वत्या मे॒षस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्य ऽऋषभस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॑डग्नेः प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सोम॑स्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्य सु॒त्राम्णः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॑ट् सवि॒तुः प्रि॒या धामा॒न्यया॑ड् वरु॑णस्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒ड् वन॒स्पतेः॑ प्रि॒या पाथाꣳ॑स्यया॑ड् दे॒वाना॑माज्य॒पाना॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यक्ष॑द॒ग्नेर्होतुः॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यक्ष॒त् स्वं म॑हि॒मान॒माय॑जता॒भेज्या॒ऽइषः॑ कृ॒णोतु॒ सोऽ अ॑ध्व॒रा जा॒तवे॑दा जु॒षता॑ꣳह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ॥ ४७ ॥

भुरिगाकृतिः। २ आकृतिः। पंचमः॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त अधिकारप्रदाता विद्वान् पुरुष (स्विष्टकृतम्) स्विष्टकृत्, राज्यरूप सुव्यवस्थित राष्ट्र के सञ्चालन की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाले, (अग्निम्) अग्रणी तेजस्वी, विद्वान् पुरुष को (यक्षत्) आदर से नियुक्त करे। वह (अग्निः) नेता, पुरुष (अश्विनोः) उक्त अश्विनाम पदाधिकारी जनों के (छागस्य हविषः) शत्रुनाशक साधन के (प्रिया धामानि) अनुकूल पदों को (अयाट्) सुव्यवस्थित करे। वह (सरस्वत्याः मेषस्य हविषः) सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ज्ञानप्रतिस्पर्द्धी नायक के (प्रिया धामानि) प्रिय पदों को सुसंगत करे। वह (इन्द्रस्य ऋषभस्य

हविषः) इन्द्र पद पर बैठे सर्वश्रेष्ठ पुरुष के प्रिय पद को (अयाट्) सुसंगत करे। इसी प्रकार (अग्नेः, सोमस्य, सुत्राम्णः इन्द्रस्य, सवितुः) अग्नि, सोम, उत्तम रक्षक सेनापति इन्द्र और सविता नाम मुख्य पदाधिकारियों के (प्रिया धामानि अयाट्) मनोनुकूल प्रिय पदों तेजों और वीर्यों को प्राप्त करे, करावे। वह (वनस्पतेः प्रिया पथांसि अयाट्) वनस्पति नामक अधिकारी के प्रिय, अधिकारियों को प्राप्त करावे। (आज्यपानां देवानाम्) युद्धोपयोगी सामग्री के रक्षक देव, विजयी पुरुषों के या ज्ञान के रक्षक विद्वानों के (प्रिया धामानि यक्षत्) प्रिय मनोनुकूल अधिकारों को प्राप्त करावे। (होतुः अग्नेः) सबके अधिकारों को प्रदान करने वाले नेता पुरुष के भी (प्रिया धामानि यक्षत्) मनोनुकूल प्रिय, अधिकारों को प्राप्त करावे। इस प्रकार वह 'स्विष्ट-कृत्' अग्रणी नेता 'अग्नि' (स्वम्) अपने (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को ही (आयजताम्) सबको प्रदान करे और वही (आ इज्याः) प्रदान करने योग्य (इषः) अभिलषित वेतन और अन्नादि सामग्री (कृणोतु) उत्पन्न करता है। (सः) वह ही (जातवेदाः) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी होकर (अध्वरा) प्रजा का पालन करने वाले राज्यों को (जुषताम्) सेवन करे, प्राप्त करे। (होतः हविः यज) होतः! तू उसको (हविः) उचित अधिकार वेतन (यज) प्रदान कर।

'स्विष्टकृतम्'—क्षत्रं वै स्विष्टकृतम्। श० १२।८।३।१९॥ तपः स्विष्टकृत्। श० ११।२।७।१९॥ अयमेवावाङ् प्राणः स्विष्टकृत् श० ११।१।६।३०॥ वास्तु स्विष्टकृत्। श० १।७।३।१८॥ प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत्। ऐ० २।१०॥ स्विष्टम्—यद्वै यज्ञस्य न्यूनातिरिक्तं तत्स्विष्टम्। श० ११।२।३।१९॥ क्षत्रं वै स्विष्टकृत् क्षत्रेणैवैनमेतदभिषिञ्चति। सोमो वै वनस्पतिरग्निः स्विष्टकृत्। अग्नीषोमाभ्यामेवैनमेतत् परिगृह्याभिषिञ्चति। तस्माद्येचैते विदुर्ये च न, त आहुः क्षत्रियो वाव क्षत्रियस्याभिषेक्ता इति॥ श० १२।८।३।१९॥

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे ऽअश्विना । तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४८ ॥

(४८–५१) सरस्वत्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम बल वीर्य और ज्ञानवती स्त्री जिस प्रकार (देवम्) अपने कामना योग्य पति को (बर्हिः) आसन, प्रदान करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्-सभा (सुदेवम्) उत्तम राजा को (बर्हिः) बृहत् राष्ट्र, प्रजा पर शासन पद प्रदान करे । (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार (अक्ष्योः चक्षुः न) दोनों आंखों को दर्शन शक्ति प्रदान करते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) उक्त मुख्य विद्वान् 'अश्वि' अधिकारी दोनों (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (तेजः इन्द्रियं दधतुः) तेज और ऐश्वर्य प्रदान करें । और दो अश्वी और सरस्वती तीनों मिलकर (इन्द्रे) राजा और राष्ट्र में (बर्हिषा) इस प्रजामय राष्ट्र पद या प्रजागण द्वारा ही (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य धन समृद्धि के कोष के योग्य धन को (वसुवने) धन समृद्धि प्राप्त करने वाले राजा के लिये स्वयं (व्यन्तु) प्राप्त करें । हे (होतः) अधिकारप्रदातः ! तू (यज) उनको वह अधिकार प्रदान कर ।

देवीर्द्वारो ऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४९ ॥

ऋब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(सरस्वती) सुशिक्षिता स्त्री जिस प्रकार (इन्द्रे) अपने सौभाग्यवती पति के लिये (देवीः) प्रकाश वाले, उत्तम सजे हुए (द्वारः) द्वारों को खोल देती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (इन्द्रे) राजा के लिये (देवीः द्वारः) उत्तम द्वारों और विजयशील शत्रुवारक शक्तियों को प्रकट कर । और (अश्विना) प्राण और अपान जिस प्रकार (नसि प्राणं न दधतुः) नासिका में प्राण का स्थापन करते हैं उसी प्रकार (भिषजा अश्विना) रोग-चिकित्सक, विद्यापारंगत अश्वी नामक वैद्य या

पूर्वोक्त राष्ट्र शरीर उपद्रवों को शान्त करने वाले अधिकारी (नसि प्राणं न) नाक में प्राण के समान ही मुख्य पुरुष में (वीर्यं दधुः) वीर्य, इन्द्रिय, राजा के ऐश्वर्यों और बल को धारण कराते हैं। और वे तीनों मिलकर (वसुधेयस्य वसुवने) कोश के निमित्त धन को धनाभिलाषी राजा के लिये (व्यन्तु) प्राप्त करावें। और हे होतः! तू उनको (यज) अधिकार प्रदान कर।

देवीऽउषासा॑वश्विना॑ सुत्रामेन्द्रे॒ सर॑स्वती। बलं॒ न वाच॑मास्य॒ऽउषाभ्यां॑ दधुरिन्द्रियं व॑सुवने॑ वसुधेय॑स्य व्यन्तु यज॑ ॥ ५० ॥

त्रिष्टुप। धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती देवी उषासा) स्त्री जिस प्रकार प्रकाशमान प्रातः और सायं दोनों कालों को (इन्द्रे) उत्तम परिपालक पति के निमित्त अर्पण करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (उषासा देवी) दिव्य गुण वाली दिन रात्रि प्रातः सायं दोनों कालों को (इन्द्रे) इन्द्र, राजा के निमित्त व्यय करे। और (सुत्रामा) उत्तम रक्षक स्वरूप (अश्विना) प्राण और उदान जिस प्रकार शरीर में (आस्ये वाचम्) मुख में वाणी को धारण कराते हैं उसी प्रकार उक्त अश्वी, पदाधिकारी (उषाभ्याम्) दोनों कालों, दिन और रात (बलं दधतुः) बल को धारण करावें। और (इन्द्रियं वसुवने०) पूर्ववत्।

देवी जोष्ट्री॒ सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्र॑मवर्धयन्। श्रोत्रं॒ न कर्ण॑योर्यशो॒जोष्ट्री॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सुवने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु यज॑ ॥ ५१ ॥

भा०—(सरस्वती) पूर्वोक्त सरस्वती (देवी जोष्ट्री) गृहदेवी पति के प्रति वैसे प्रेमवती होकर जैसे उसको बढ़ाती है विद्वत्सभा और (अश्विनौ) प्राण और अपान जैसे (इन्द्रम्) आत्मा को बढ़ाते हैं और (कर्णयोः) कानों में (श्रोत्रं न) श्रवणेन्द्रिय के समान (यशः) उत्तम ख्याति को उक्त तीनों (जोष्ट्रीभ्यां दधुः) प्रेम और सेवा करने वाली प्रजा और राजवर्ग

दोनों से धारण कराते हैं इस प्रकार वे (इन्द्रियं दधुः) ऐश्वर्य को भी प्रदान करते हैं। वे तीनों (वसुवने) धनवान् राजा के लिये (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त करें। हे होतः! तू उनको (यज) पदाधिकार दे।

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः। शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५२ ॥

अतिजगती। निषादः ॥

भा०—(सरस्वती) स्त्री जिस प्रकार सायं प्रातः दोनों समय (इन्द्रे) अपने पति के लिये (देवी) उत्तम गुण वाली, मन को लुभाने वाली (ऊर्जाहुती) अन्न की थाली प्रदान करती है। उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (इन्द्रे) राजा के निमित्त (देवी) उत्तम गुणों वाली होकर (दुघे) बलकारक (ऊर्जाहुती) अन्न और वीर्य की आहुतियों को प्रदान करती है। और (सुदुघा) उत्तम रीति से समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले (अश्विना) दोनों अश्वी नामक अधिकारी (भिषजा) दो वैद्यों के समान (अवतः) इन्द्र, अर्थात् राजा और राज्य की रक्षा करते हैं। स्त्री जिस प्रकार (स्तनयोः शुक्रं न) स्तनों में दूध धारण करती है और प्राण और अपान जिस प्रकार शरीर में (ज्योतिः) कान्ति को या दिन रात्रि जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी के बीच में कान्तिमान् (ज्योति) सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार वे तीनों (ज्योतिः) तेज और पराक्रम को और (आहुती) अन्नाहुति और बीर्याहुति दोनों प्रकार की आहुतियों द्वारा (इन्द्रे इन्द्रियम्) राजा और राष्ट्र में ऐश्वर्य और राजोचित्त बल (धत्त) धारण करावें। वे (वसुबने) राष्ट्र-सम्पत्ति के भोक्ता राष्ट्रपति के लिये (वसुधेयस्य) धन कोश को व्यन्तु प्राप्त करें। हे होतः! उनको (यज) तू अधिकार प्रदान कर।

दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑। व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳहोतृ॑भ्यां द॒धुरि॑न्द्रि॒यं॑ व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य-व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५३ ॥

भुरिग अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(सरस्वती देवानां होतारौ देवौ) स्त्री जिस प्रकार विद्या-प्रेमियों को विद्या प्रदान करने वाले गुरु और उपदेशक दोनों को अपने पति के बढ़ाने के लिये (वषट्कारैः) सत्कारपूर्वक अन्नादि प्रदान करके सत्कार करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (वषट्कारैः) राष्ट्र के निमित्त सन्धि आदि छहों कार्यों द्वारा (दैव्यौ होतारौ) उत्तम विद्वान् कर्म-शिक्षा और ज्ञान देने वाले दो विद्वानों को नियत करे (इन्द्रम् अवर्धयत्) इन्द्र राजा की वृद्धि करे । और जिस प्रकार (भिषजा अश्विना) वैद्यों के समान प्राण और उदान शरीर में (होतृभ्याम्) आदान और प्रति-दान करने वाले बलों से (हृदये मतिम्) मस्तक में मनन शक्ति की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) वे दोनों अश्वि नामक अधिकारी और सरस्वती नाम विद्वत्सभा राष्ट्र में (त्विषिम्) उग्र तेज (होतृभ्याम्) उक्त प्रकार के दोनों विद्वानों द्वारा और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (दधुः) स्थापन करें और (वसुवने०) इत्यादि ।

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर॒श्विनेडा॒ सर॑स्वती । शूष॒ं न मध्ये॒ नाभ्या॒-मिन्द्रा॑य द॒धुरि॑न्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५४ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती इन्द्राय यथा तिस्रः देवीः) स्त्री जिस प्रकार पति के लिये अन्न, कान्ति और उत्तम वाणी तीनों शक्तियों का प्रयोग करती है, उसी प्रकार (इन्द्राय सरस्वती तिस्रः देवीः) राजा के लिये विद्वत्सभा भी तीनों प्रकार की सभाओं की स्थापना करे । और (अश्विनौ) अश्वि नामक अधिकारी, और (इडा) इडा नाम भूमि की प्रबन्ध-कारिणी सभा

तीनों (नाभ्यां मध्ये शूषं न) नाभि के बीच में बल के समान (इन्द्रियं दधुः) वीर्य को धारण करें। (वसुवने०) इत्यादि।

देवऽ इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः। रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

स्वराट् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(देवः) विजिगीषु विद्वान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (नराशंसः) समस्त जनों से स्तुति योग्य, राजा (त्रिवरूथः) तीनों तरफ तीन शत्रुवाहक सेनाओं सहित होकर (सरस्वत्या अश्विभ्याम्) सरस्वती और दोनों अश्वी अधिकारी इन तीनों से (त्रिवरूथः रथ इव) तीन तरफों से सुसज्जित रथ के समान (इयते) प्रतीत होता है। (त्वष्टा) शिल्पी, बढ़ई जिस प्रकार (इन्द्राय रूपम् इन्द्रियाणि दधत्) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये रुचिकर सुन्दर, पदार्थ और नाना ऐश्वर्य के बहुमूल्य पदार्थ बनाता है और जिस प्रकार (त्वष्टा) जगत् का कर्त्ता परमेश्वर (इन्द्राय) जीव के भोग के लिये (अमृतम्) अमृत स्वरूप, (जनित्रम्) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ (रेतः न) वीर्य को और (इन्द्रियाणि) चक्षु, नाक, कान आदि इन्द्रियों को (दधत्) शरीर में रचता है (न) उसी प्रकार (त्वष्टा) नाना शिल्पों का विज्ञ, विश्वकर्मा, अधिकारी (इन्द्राय) राजा के भोग के लिये (रूपम्) सुन्दर-सुन्दर भवन, आभूषणयुक्त पोषाक और (इन्द्रियाणि) नाना राजोचित ऐश्वर्य, यन्त्र, कौशल आदि प्रदान करता है। (वसुवने०) पूर्ववत्।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णोऽअश्विभ्याꣳसरस्वत्या सुपिप्पलऽइन्द्राय पच्यते मधु। ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधादिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५६ ॥

निचृदत्यष्टिः। गान्धारः।

भा०—(वनस्पतिः) वट, गूलर आदि महावृक्ष जैसे बहुतों को आश्रय देता है वैसे प्रजाजन को आश्रय देने वाला पुरुष, (देवः) विजय-

शील सेनापति स्वयं (देवैः) विजयेच्छु सैनिकों से (हिरण्यपर्णः) सुन्दर वर्ण के हरे भरे पत्रों से सजे वृक्ष के समान हित रमणीय पालन करने के साधनों और ऐश्वर्यों से सम्पन्न और (सुपिप्पलः) उत्तम पालन सामर्थ्यों और भोग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न (अश्विभ्यां सरस्वत्या च) अश्विगण और सरस्वती, विद्वत्सभा द्वारा (इन्द्राय) सम्राट् के लिये (मधु पच्यते) मधुर रस के समान उत्तम बल का परिपाक होता है। वह (ऋषभः वनस्पतिः) सर्वश्रेष्ठ बलवान् वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट 'वनस्पति', सेनापति (ओजः न, भामं न) देह में स्थित ओज और क्रोध के समान राष्ट्र में भी (ओजः भामं) पराक्रम और तेजस्विता को और (इन्द्रियाणि) नाना ऐश्वर्यों को (दधत्) धारण करावे। (वसुवने०) पूर्ववत्। अग्निर्वै वनस्पतिः। कौ० १०। ६ प्राणो वै वनस्पतिः। कौ० १२। ७॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः। ईशायै मन्युꣳराजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥ ५७॥

भा०—कन्या के माता पिताओं द्वारा (उर्णम्रदाः स्तीर्णबर्हिः) ऊन के समान कोमल बिछाया आसन जिस प्रकार (सदः) वीरों के बैठने का आसन होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! (वारितीनाम्) संकटों और शत्रु के आक्रमणों को निवारण करने वाली सेनाओं के (अध्वरे) राज्य पालन के कार्य में (सरस्वत्याः अश्विभ्याम्) सरस्वती और अश्वि नामक प्रधान पदाधिकारियों द्वारा (स्तीर्णम्) विस्तृत (अध्वरे) यज्ञ में या गृह में (सरस्वत्या अश्विभ्याम्) विदुषी कन्या और उसके द्वारा किया गया (देवम्) ज्ञान और उत्तम गुणों से युक्त, भव्य (बर्हिः) प्रजारूप राष्ट्र या जनपद (ते) तेरे लिये (ऊर्णम्रदाः) ऊन के समान कोमल एवं आच्छादक या राजा के गुणों के आच्छादन करने वाले लोगों को मर्दन कर देने वाले (स्योनं सदः) सुखकारी आसन के समान आश्रय हो। सरस्वती और दोनों अश्विगण (मन्युम्) शत्रुओं का स्तम्भन करने वाले (राजानम्)

राजा को (ईशायै) राष्ट्र के शासन करने के लिये (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (दधुः) धारण कराते हैं। (वसुवने०) पूर्ववत्। क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरे बर्हिः। श० १।३।४।१०॥ अयं वै लोको बर्हिः। श० १।४।१।२४॥ प्रजा वै बर्हिः। कौ० ५।७॥ गृहस्थपक्ष में—पशवो वै बर्हिः। ऐ० २। ४॥

[1]देवोऽअग्निः स्विष्टकृद् देवान्यक्षद्यथायथꣳ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाचꣳ सरस्वतीमग्निꣳसोमꣳ स्विष्टकृत् स्विष्टऽ इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपाः [2]स्विष्टोऽअग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिꣳ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५८ ॥

भा०—(स्विष्टकृत्) उत्तम रीति से अधिकार प्रदान करने वाला (देवः अग्निः) विद्वान् अग्रणी पुरुष (देवान् यक्षत्) अन्य विद्वान्, विजयशील, पुरुषों को नियुक्त करे। (होतारौ) अधिकार प्रदान करने वाले (अश्विना) अश्वी नामक व्यापक अधिकार वाले पुरुष (वाचा) अपनी आज्ञा वाणी से (इन्द्रम्) इन्द्र ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को नियुक्त करते हैं। वे ही (वाचम्) व्यवस्था, वाणी का विधान करते हैं। वे ही (सरस्वतीम्) विद्वत्-सभा को, (अग्निम्) अग्रणी सेनापति को और (सोमम्) ऐश्वर्यवान् राजा को, नियुक्त करते हैं। (स्विष्टकृत् स्विष्टः) उत्तम शासक पुरुष भी उत्तम आदर के पद को प्राप्त हो। (सुत्रामा इन्द्रः) उत्तम रक्षक इन्द्र नामक पदाधिकारी, (सविता, वरुणः भिषग्) सविता, वरुण और चिकित्सक, (देवः वनस्पतिः) वनस्पति नामक विजेता सेनापति ये सब (इष्टः) उचित आदर प्राप्त करें। (आज्यपाः देवाः) बल वीर्य के रक्षक विद्वान् पुरुष (स्विष्टाः) उत्तम आदर प्राप्त करें। (अग्निना) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष द्वारा ही (अग्निः) उसी प्रकार का तेजस्वी पुरुष (स्विष्टः) उत्तम आदर पद प्राप्त करे। और (होता) अधिकार दाता पुरुष

(होत्रे) अन्य अधिकार दाता पुरुष को (स्विष्टकृत्) उत्तम आदर मान दे। और वह (यशः) यश, (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (ऊर्जम्) बल, पराक्रम, (अपचितिम्) आदर पूजा, (स्वधाम्) अन्न वेतनादि (दधत्) प्रदान करे। ये सभी (वसुवने) ऐश्वर्य के अधिकारी बड़े राजा के कार्य के लिये (वसुधेयस्य व्यन्तु) उचित धनैश्वर्य प्राप्त करें। हे होतः ! (यज) उन सबको अधिकार और वेतनादि प्रदान कर।

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मान॒ः पच॒न् पक्तीः पच॑न् पुरो॒डा शा॑न् ब॒ध्नन्न॒श्विभ्या॒ञ्छाग॒ꣳसर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑य ऋ॒ष॒भꣳस- न्वन्न॒श्विभ्या॒ꣳसर॑स्वत्या॒ऽइन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरासो॒मान् ॥५९॥

अष्टिः। मध्यमः॥

भा०—(अद्य) आज, अब, नित्य (अयं यजमानः) यह यजमान, सब राज्यव्यवस्था को सुसंगत करने और सबको पदाधिकार देने वाला राजा (अग्निम्) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को (होतारम्) 'होता' पद के लिये (अवृणीत) वरण करता है। और वह यमराज, (पक्तीः) नाना कर्मों के बदले में देने योग्य प्राप्त फलों को और (पुरोडाशान्) काम करने के पूर्व ही पेशगी देने योग्य पदार्थों को (पचन् २) पकाता या नियत करता हुआ और (अश्विभ्याम्) पूर्वोक्त अश्वि नामक अधिकारियों के कार्य के लिये (छागम्) छेदन भेदन में कुशल पुरुष को और (सरस्वत्यै) सरस्वती, विद्वत्सभा के लिये (मेषम्) स्पर्द्धा में माथे की टक्कर लेने वाले, युक्ति-युक्ति उत्तर-प्रत्युत्तर देने वाले पुरुष को और (इन्द्राय) इन्द्र, सेनापति पद के लिये, या राष्ट्र के सञ्चालक पद के लिये (ऋषभम्) सर्वश्रेष्ठ शत्रु-नाशक बलवान् पुरुष को (बध्नन्) बड़े वेतन पर बांधता हुआ और (अश्विभ्याम्) अश्वियों, (सरस्वत्यै) सरस्वती, विद्वत्सभा और (सुत्राम्णे इन्द्राय) उत्तम त्राणकारी, सुरक्षक इन्द्र पद के लिये (सुरासोमान्) राज्य-लक्ष्मी और राष्ट्र के अंशों को या (सुरासोमान्) स्त्री पुरुष को,

या अभिषेक क्रिया से अभिषिक्त पुरुषों को (सुन्वन्) नाना पदों पर अभिषिक्त करता हुआ 'होता' का वरण करता हूँ ।

सूपस्थाऽ अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचताग्रभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥६०॥

धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(अद्य) आज, अब, अभिषेक हो चुकने और पदाधिकारियों के नियुक्त हो जाने पर, (वनस्पतिः) वट आदि महावृक्ष के समान समस्त प्राणियों को अपनी सुख देने वाली छाया में रखने हारा (देवः) राजा (अश्विभ्याम्) मुख्य अधिकारियों के निमित्त स्थापित (छागेन) संशय छेदन करने वाले विद्वान् द्वारा और (सरस्वत्यै) सरस्वती, वेदवाणी या विद्वत्सभा के कार्य के लिये नियुक्त (मेषेण) प्रतिपक्षियों से स्पर्द्धाशील, विद्वान् से और (इन्द्राय ऋषभेण) इन्द्र के निमित्त नियुक्त सर्वश्रेष्ठ पुरुष से (सूपस्थाः) उत्तम रीति से राष्ट्र में व्यवस्थित (अभवत्) हो जाता है। (मेदस्तः) उनके स्नेह से या उनके प्रिय पदार्थ या उनके शत्रुनाशक बल से ही वे अश्वी आदि पदाधिकारी उक्त पुरुषों को (अक्षन्) प्राप्त करते हैं। और (पचता) परिपक्व, सुअभ्यस्त, दृढ़ करने योग्य पुरुषों को दृढ़ करने के लिये (प्रति अग्रभीषत) प्राप्त करते हैं, उनको भर्ती करते हैं। और बहुतों को (पुरोडाशैः) पद पर नियुक्त होने के पूर्व ही वृत्तियां देकर उन पूर्व प्रदत्त वृत्तियों से (अवीवृधन्त) उनके उत्साहों को बढ़ाते हैं, और इस प्रकार (अश्विनौ) दोनों उच्च पदाधिकारी अश्विजन और (सरस्वती) विद्वत्सभा और (सुत्रामा इन्द्रः) उत्तम प्रजारक्षक राजा, (सुरासोमान्) अभिषिक्त योग्य पुरुषों को (अपुः) पालन करते हैं ।

त्वामद्यऽ ऋषऽ आर्षेयऽ ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्यऽआ सङ्गतेभ्यऽएष मे देवेषु वसु वार्या यक्ष्यतऽइति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्माऽ आ च शास्स्वा च गुर-

स्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ॥ ६१ ॥

भुरिग् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे (ऋषे) विद्वन् ! मन्त्रार्थों को देने वाले ! (आर्षेय) ऋषि मन्त्रार्थ द्रष्टाओं में उत्तम विद्वन्, ! हे (ऋषीणां नपात्) मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों के पुत्र ! उनके सिद्धान्तों को न गिरने देने हारे ! (अयं यजमानः) यह यजमान, वेतन, पुरस्कार आदि देने वाला राजा, गृहपति, (बहुभ्यः) बहुत से (संगतेभ्यः) एकत्र हुए विद्वानों में से (अद्य) आज (त्वाम् आ अवृणीत) तुझे वरण करता है । क्योंकि यह जानता है (एषः) यह आप (मे) मुझ यजमान को (देवेषु) विद्वानों और राजाओं के बीच (वसु) धनैश्वर्य, (वारि) और वरण करने योग्य सकल पदार्थ (आयक्ष्यते) प्राप्त करा देंगे (इति) इसलिये वह आप को वरता है । हे (देव) विद्वन् ! (देवाः) विद्वान् पुरुष या दानशील राजागण, धनाढ्य पुरुष (या) जो-जो (ता) वे नाना प्रकार के (दानानि) दान करने योग्य पदार्थों को (अदुः) प्रदान करते हैं (तानि) वे सब प्रकार के पदार्थ (अस्मै) इसके लिये भी (आशास्व च) आशा कर । (इषितः च) इस प्रकार प्रार्थना किया गया तू (आगुरस्व च) उद्यम कर । हे (होतः) होतः ! विद्वन् ! उपदेष्टः ! ज्ञान प्रदान करने हारे ! तू (भद्रवाच्याय) सुख और कल्याण करने वाले हितकारी कार्यों के उपदेश के लिये (प्रेरितः असि) प्रार्थना किया जाता है । हे विद्वन् ! तू (मानुषः) विचारवान् पुरुष होकर (सूक्तवाकाय) उत्तम सुवचनों के उपदेश के करने के लिये (सूक्ता ब्रूहि) उत्तम-उत्तम वचनों और वेद के सूक्तों का उपदेश कर ।

इत्येकविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकविंशोऽध्यायः ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॒मृत॑मायु॒ष्पाऽआयु॑र्मे पाहि दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑म्पू॒ष्णो हस्ता॑भ्यामाद॑दे ॥१॥

[अ० २२—२५] प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृत् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (तेजः) तेज है । तू (शुक्रम्) शरीर में शुक्र धातु के समान राष्ट्र में बलकारी है । (अमृतम्) शरीर में वीर्य, पृथ्वी में जल और अग्नि के समान राष्ट्र में भी अमृत, जीवन का रक्षक है । तू (आयुष्पाः) सबके आयुओं का पालक (असि) है । तू (मे आयुः पाहि) मेरे में दीर्घजीवन का पालन कर । (देवस्य त्वा सवितुः०) इत्यादि व्याख्या देखो अ० १ । मं० १० ॥

इ॒माम॑गृभ्णन् रश॒नामृ॒तस्य॒ पूर्व॒ऽआयु॑षि वि॒दथे॑षु क॒व्या ।
सा नो॑ऽअ॒स्मिन्त्सु॒त आ ब॑भूव॒ऽऋ॒तस्य॒ साम॑न्त्स॒रमा॒रप॑न्ती ॥२॥

यज्ञपुरुष ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथातश्चतुर्भिरध्यायैरश्वमेधः ॥

भा०—(अस्मिन् सुते) इस उत्पन्न जगत् में (नः) हमें (सा) वह व्यापक शक्ति (आबभूव) ज्ञात होती है जो (ऋतस्य) मूल, परम सत्य कारणरूप परमेश्वर और प्रकृति के सत्य तत्व के (सरम्) व्यापार या चेष्टा को (सामन्) आदि से अन्त तक, समान रूप से (आ रपन्ती) स्पष्ट बतलाती है । (इमाम्) उस (रसनाम्) व्यापक शक्ति की ज्ञान शृंखला को ही (ऋतस्य पूर्वे आयुषि) संसार के प्रारम्भ काल में (कवयः) क्रान्तदर्शी ऋषि लोग (विदथेषु) यज्ञों और ज्ञान के अवसरों में या ज्ञान-रूप वेदों में (अगृभ्णन्) ग्रहण करते हैं, जानते हैं ।

राष्ट्र के पक्ष में—'ऋत' व्यक्त जगत् के आदि काल में क्रान्तदर्शी ऋषि लोग रस्सी के समान नियामक शक्ति या व्यवस्था को (विदथेषु) ज्ञानमय वेदों में प्राप्त करते हैं । वह व्यवस्था राजा के अभिषेक के अवसर

पर भी हमें प्राप्त हो। वह 'ऋत' सत्य व्यवहार से पूर्ण राष्ट्र के (सामन्) आदि से अन्त तक समान रूप से हमें ज्ञान का स्पष्ट उपदेश करने वाली है। शत० १३ । १ । २ । १ ॥

अभिधाऽ असि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता ।

स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसङ्गच्छ स्वाहाकृतः ॥ ३ ॥

अग्निर्देवता । भुरिग् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (अभिधाः असि) समस्त पदार्थों को बतलाने, उनको नियम में बांधने वाला है। तू (भुवनम् असि) जल के समान समस्त चराचर लोकों को प्राण देने वाला है। तू (यन्ता असि) संसार का नियन्ता, तू (धर्त्ता) सबका धारण करने वाला है। (सः) वह तू (सप्रथसम्) अति विस्तृत शक्ति से युक्त (वैश्वानरम्) समस्त ब्रह्माण्ड को चलाने वाली प्रवर्त्तक शक्तियों के सञ्चालक (अग्निम्) ज्ञानरूप, तेजोमय, स्वतः प्रकाश, सर्वप्रकाश सूर्य आदि को भी (स्वाहाकृतः) उत्तम गुणकीर्त्तनों और सत्य वाणियों द्वारा स्तुति किया जाकर (गच्छ) व्याप्त है।

राजा के पक्ष में—राजा (अभिधाः) ज्ञानों को उपदेश करने वाला या राष्ट्र को सब प्रकार से बांधने या प्रबन्ध करने में समर्थ है (भुवनम्) सबका आश्रय, (यन्ता) नियामक और (धर्त्ता) कर्त्ता, धर्त्ता, धारण करने हारा है। (सः त्वम्) वह (स्वाहाकृतः) उत्तम स्तुति यश से सम्पन्न होकर, (सप्रथसम्) अति विस्तृत यश से युक्त, (वैश्वानरम्) समस्त जनों के हितकारी (अग्निम्) अग्रणी, नेता, पद को (गच्छ) प्राप्त हो। शत० १३ । १ । २ । ३ ॥

स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतयेब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्यःप्रजापतये तेन राध्यासम् । तं बधान देवेभ्यः प्रजापतये तेन राध्नुहि ॥४

अश्वो विश्वेदेवाश्च देवताः । जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! मैं अभिषेककर्त्ता (त्वा) तुझको

(स्वगा) यथेच्छापूर्वक जाने का अधिकार देता हूँ। (देवेभ्यः) समस्त विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के लिये और (प्रजापतये) प्रजा के पालक राजा के पद के लिये, हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मन्! ज्ञानवृद्ध पुरुष! (देवेभ्यः) विद्वानों, विजिगीषु पुरुषों के हित के लिये और (प्रजापतये) प्रजा के पालन करने वाले राजा के कर्त्तव्य पालन के लिये (अश्वम्) मैं अति शीघ्रगामी अश्व के समान व्यापक शक्ति वाले, शूरवीर एवं राष्ट्र के भोक्ता पुरुष को (भन्त्स्यामि) बांधूंगा, राजपद पर नियुक्त करूंगा। (तेन) उनसे मैं (राध्यासम्) समृद्ध होऊं, बढूं, हे विद्वन्! तू (देवेभ्यः प्रजापतये) विद्वानों, विजयेच्छु पुरुषों और प्रजापति पद के लिये (तं बधान) नियुक्त कर। उसको भोग्य सामग्री देकर उसे वेतनादि पर रख। तू (तेन राध्नुहि) उससे तू समृद्ध हो।

अश्वमेध में इस मन्त्र से अश्व को खुला विचरने देते हैं। अश्व राष्ट्र और राष्ट्रपति का प्रतिनिधि है। राजाओं में परस्पर बल परीक्षा के लिये अश्वरत्न छोड़ा जाता था, जो इसको ले सके वही सर्वोपरि शासक माना जाता था। शत०१३।१।२।३।४॥ वीर्यं वा अश्वः। श० २।१।४।२३॥ क्षत्रं वा अनु अश्वः। श० ६।४।४।१२॥ क्षत्रं वा अश्वो विडितरे पशवः। श० १३।२।२।१५॥ वज्रो वा अश्वः। श० १३।१।२।९॥ इन्द्रो वा अश्वः। कौ० १५।४॥ वज्रो वा अश्वः प्राजापत्यः। तै० ३।८।४।२॥ अध्यात्म में—अश्व = आत्मा, ब्रह्म = परमात्मा। ब्रह्मचर्य पक्ष में—ब्रह्म = आचार्य। अश्व = वीर्य।

प्रजाप॑तये त्वा जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मीन्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि वा॒यवे॑ त्वा॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यो॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि॒ सर्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यो॒ जुष्टं॒ प्रोक्षा॑मि। योऽअर्व॑न्तं जिघा॑ꣳसति॒ तम॒भ्यमीति॒ वरु॑णः। प॒रो मर्त्तः॑ प॒रः श्वा॥ ५॥

इन्द्रादयो देवताः। अतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—हे विद्वन्! श्रेष्ठ पुरुष! (जुष्टम्) सबके प्रेमपात्र (त्वा) तुझको मैं (प्रजापतये) प्रजा पालक पद के लिये, (इन्द्राग्निभ्यां त्वा) इन्द्र

और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति, अग्रणीपद के लिये, (वायवे) वायु के समान शत्रुरूप वृक्षों के डाले तोड़ डालने वाले शूरवीर के पद पर और (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त प्रजा के लिये; (जुष्टम्) सब लोगों से चाहे गये (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूँ। (यः) जो पुरुष (अर्वन्तम्) अश्व के समान तीव्र वीर, विद्वान् और सब पदों के प्राप्त राजा को (जिघांसति) मारना चाहता है (वरुणः) दुष्टों का वारक पदाधिकारी (तम्) उसको (अभि अमीति) विनष्ट करे। (मर्त्तः) राजद्रोही, पुरुष (परः) शत्रु है, और (परः श्वा) पर, शत्रु पुरुष कुत्ते के समान दुत्कारा जाय। अथवा (श्वा) कुत्ते के स्वभाव का टुकड़े पर पूंछ हिलाने वाला भी (परः) पर अर्थात् शत्रु है उसे भी राष्ट्र से बाहर कर दिया जाय। शत० १३।१।२।५-९॥

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒पां मोदा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॑ वा॒यवे॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहा॑ मि॒त्राय॒ स्वाहा॒ वरु॑णाय॒ स्वाहा॑॥ ६॥

भुरिगति जगती। निषादः॥ अग्न्यादयो देवताः॥

भा०—राजा के समस्त स्वरूपों के लिये आदर (अग्नये स्वाहा) अग्नि के समना ज्ञानदाता आचार्य, उसके समान तेजस्वी राजा आदि पुरुष का सत्कार करो। 'अग्नि' तत्व का सदुपयोग लो। (सोमाय स्वाहा) सबके आज्ञापक, ऐश्वर्यवान्, ज्ञानी पुरुष का आदर करो। ओषधियों के रस रूप सोम का सेवन करो। (अपां मोदाय) जलों के समान स्वच्छ शान्ति-दायक एवं प्रवाह से चलने वाले आप्त जनों के आनन्द देने वाले और प्रजाओं के हर्षकारी गुरुजन का आदर करो और जलों से प्राप्त सुख का सेवन करो। (सवित्रे स्वाहा) सविता, सूर्य, सर्वोत्पादक, परमेश्वर, आज्ञापक राजा, नेता, सूर्य के समान तेजस्वी का आदर करो, सूर्य के

६—दशाश्वस्तोमीयाः।

प्रकाश और ताप का ज्ञान व प्रयोग करो। (वायवे स्वाहा) वायु के समान तीव्र, गतिमान् शत्रु रूप वृक्षों को उखाड़ने में समर्थ सेनापति, राजा, वायु के समान जीवनाधार पुरुष का आदर करो और वायु और प्राण का उपयोग करो। (विष्णवे स्वाहा) सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना, स्तुति, प्रार्थना करो और व्यापक शक्तिशाली राजा, शास्त्र से पारंगत विद्वान् का आदर करो। विष्णु अर्थात् यज्ञ का अनुष्ठान करो और विद्युत् का प्रयोग करो। (बृहस्पते स्वाहा) बड़े से भी बड़े, ब्रह्माण्डों के पालक परमेश्वर की उपासना करो। बृहती, वेदवाणी के पालक विद्वान् का, राजा के विद्वान् मन्त्री का, बड़े राष्ट्र के पालक सम्राट् का आदर करो। (मित्राय स्वाहा) सबके स्नेही, मृत्यु से बचाने वाले परमेश्वर की उपासना करो। मित्र, स्नेही पुरुष, सूर्य के समान तेजस्वी राजा, स्नेही न्यायाधीश और मित्र राजा का आदर करो। (वरुणाय स्वाहा) दुष्टों के वारक, रक्षक, सबसे श्रेष्ठ, वरण योग्य पुरुष का आदर करो, परमेश्वर की स्तुति करो। शत० १३।१।३।३॥

[१]हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

[१]यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा

७—प्रक्रमहोमाय एकोनपञ्चाशत्।

विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

७ (१, २) अत्यष्टिः । गान्धारः । ८ (१, २) अतिधृतिः . षड्जः ॥

भा०—(हिंकाराय स्वाहा) 'हिं' ऐसा शब्द करने वाले साम गायक विद्वान् का, राजा का, (हिंकृताय) 'हिं' कर चुकने वाले विद्वान् का (स्वाहा) आदर करो। और अश्व प्राणी का उपयोग करो। वज्रो हिङ्कारः। कौ० ३।२॥ हिङ्कारेण वज्रेण अस्माल्लोकादसुराननुदत्। जै० उ० २। ८।३॥ अर्थात् वज्र को धारण करने वाले राजा शासक का आदर करो। शुक्रमेव हिंकारः। जै० उ० १।३।४।१॥ उत्तम धर्म कार्य करने वाले धर्मात्मा का आदर करो। प्राणो वै हिंकारः। श० ४।२। २।११॥ प्राण साधक और प्राण विद्या जानने वाले का आदर करो। प्रजापतिर्वै हिंकारः। तां० ६।८।५॥ प्रजा के पालक पुरुष का आदर करो। प्रजा के भूतपूर्व पालक की भी प्रतिष्ठा करो। (क्रन्दते स्वाहा अवक्रन्दाय स्वाहा) शत्रु को ललकारने वाले, विद्वानों को बुलाने वाले और ललकारने वाले को दबाने वाले राजा का, आदर करो। (प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा) पदार्थों को स्वतः प्राप्त करने वाले, उत्कृष्ट कोटि के धनैश्वर्यादि प्राप्त करने वाले का आदर करो। (गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा) गन्ध लेने वाले और गन्धादि के अनुभवी, पुरुष का भी आदर करो। (निविष्टाय स्वाहा) छावनी या बस्ती बसाकर बैठे हुए और (उपविष्टाय) 'आसन वृत्ति' से नीतिपूर्वक विराजने वाले राजा का आदर करो। पूज्य पुरुष लेटा हो या बैठा हो उसका भी आदर करो। (संदिताय स्वाहा) शत्रुओं को काटने वाले या न्यायपूर्वक विभाग करने वाले का आदर करो। (वल्गते स्वाहा) गमन करते हुए या आतिथ्य सत्कार

करते हुए, उत्तम उपदेश करने वाले पुरुष का आदर करो। (आसीनाय स्वाहा) बैठे हुए का आदर करो। (शयानाय स्वाहा) सोते हुए का आदर करो। (स्वपते जाग्रते, कूजते स्वाहा) सोते हुए, जागते हुए, तन्द्रा में कुछ कहते हुए का भी आदर करो। (प्रबुद्धाय, विजृम्भमाणाय, विचृताय स्वाहा) अच्छी तरह से जागे हुए, जम्भाई लेते हुए, व्रत नियम आदि के बन्धन से युक्त होते हुए का भी आदर करो। (संहानाय स्वाहा) बिस्तर त्यागते हुए का आदर करो। (उपस्थिताय स्वाहा) सभाभवन में उपस्थित हुए का, (अपानाय) मार्ग से जाते हुए का (प्रायणाय) विशेष रूप से जाते हुए का भी (स्वाहा) आदर करो ॥ ७ ॥

(यते) गमन करते हुए, (धावते) वेग से जाते हुए, (उद्द्रावाय) बहुत तीव्र गति से जाते हुए (उद्द्रुताय स्वाहा) और उछल-उछल कर द्रुत गति से जाने वाले शूरवीर का भी आदर करो। (शूकाराय, शूकृताय) शीघ्र काम करने वाले और शीघ्रता करने वाले, (निपण्णाय, उत्थिताय,) बैठे और उठे का भी आदर करो। (जवाय, बलाय, विवर्त्तमानाय, विवृत्ताय) वेग और बल वाले, लोटते पोटते और पासे पलटते हुए का भी आदर करो। (विधून्वानाय, विधूताय) विविध शत्रुओं, अथवा विविध मानस वासनाओं को धुनते हुए और शत्रुओं को परास्त कर चुके हुए या पापमल से रहित का भी आदर करो। (शुश्रूषमाणाय, शृण्वते,) विद्वानों से ज्ञान श्रवणार्थ उनकी शुश्रूषा करने वाले और ज्ञान श्रवण करते हुए का भी आदर करो। (ईक्षमाणाय, ईक्षिताय, वीक्षिताय) साक्षात् करते हुए, साक्षात् किये, और विशेष रूप से साक्षात् हुए का भी आदर करो। (निमेषाय) पलक चलाते हुए, इशारा करते हुए (यदत्ति तस्मै) जब खावे तब उसका, (यत् पिबति तस्मै) जब कुछ पान करता हो तब उसका, (यत् मूत्रं करोति) जब मूत्र करता हो तब उसका, (कुर्वते, कृताय स्वाहा) काम करते हुए और काम कर चुकने पर भी उसका आदर करो ॥ ८ ॥ शत० १३ । १ । ३ । ५ ॥

इस प्रकार ४९ दशाओं में आदरणीय पुरुष का आदर करना चाहिये और इन ४९ दशाओं की उत्तम रीति से आदर सत्कार और रक्षा, सुविधा और सुव्यवस्था करनी चाहिये ।

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ९ ॥ ऋ० ३ । ६२ । १० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३ । ३५ ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ ह्वये ।
स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥ १० ॥ ऋ० १ । २२ । ५ ॥

१०—१४ सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(हिरण्यपाणिम्) सुवर्ण को कंकण रूप में हाथों में रखने वाले, अथवा हिरण्य अर्थात् लोहे की बनी तलवार हाथ में रखने वाले, ऐश्वर्य के स्वामी, बलवान्, (सवितारम्) सबके आज्ञापक, वीर राजा को मैं (ऊतये) रक्षा के लिये (उपह्वये) बुलाता हूँ । (सः) वह (चेत्ता) समस्त बातों का ज्ञाता सत्यासत्य का बतलाने वाला (देवता) साक्षात् देव, दाता और सर्वोच्च है । अथवा वह (देवता पदम्) समस्त विद्वानों का आश्रय है । परमेश्वर पक्ष में—सूर्यादि पदार्थों को वश करने 'हिरण्य-पाणि' उस सविता सर्वोत्पादक, (चेत्ता) सर्वज्ञ, सत्यासत्य का ज्ञापक और (पदम्) परम प्राप्य (देवता) देव, प्रकाशक, सर्वप्रद है ।

दे॒वस्य॒ चेत॑तो म॒हीं प्र स॑वि॒तुर्ह॑वामहे ।
सु॒म॒तिꣳ स॒त्यरा॑धसम् ॥ ११ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सवितुः) सबके शासक, (चेततः) सबको चैतन्य अर्थात् सावधान करने वाले ज्ञानी, (देवस्य) दानशील राजा की (महीम्) बड़ी भारी (सत्यराधसम्) सत्य, धर्मानुकूल ऐश्वर्य देने वाली (सुमतिम्) उत्तम मति, शासन शक्ति की (प्र हवामहे) हम स्तुति करते हैं ।

ईश्वर पक्ष में—चित्स्वरूप, सर्वोत्पादक परमेश्वर देव के सत्य ज्ञान, ऐश्वर्ययुक्त उत्तम ज्ञानमयी वेदवाणी की याचना करते हैं।

सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳ सवितुरमीहे।
प्र देवाय मतीविदे ॥ १२ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सुमतीवृधः) उत्तम स्तुति और मति, ज्ञान की वृद्धि करने वाले (सवितुः) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक राजा का (देवाय) धन विद्यादि की कामना करने वाले (मतीविदे) विद्वान् के प्रति योग्य (रातिम्) दान की (ईमहे) याचना करते हैं।

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये।
आसवं देववीतये ॥ १३ ॥

गायत्रीः । षड्जः ॥

भा०—(रतीम्) दानशील, (सत्पतिम्) सत् जनों, सत् पदार्थों और जीवों के पालक (सवितारम्) सबके शासक, उत्पादक (आसवम्) सबको अनुज्ञा देने हारे, सर्वप्रेरक परमेश्वर और राजा की (देववीतये) दिव्य गुणों और विद्वान् पुरुषों को प्राप्त करने के लिये (उपह्वये) स्तुति करता हूँ।

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्।
धिया भर्गं मनामहे ॥ १४ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(देवस्य) सुखों के दाता, (सवितुः) शासक, राजा उत्पादक, परमेश्वर की (मतिम्) मति, ज्ञान का और (विश्वदेव्यम्) समस्त विद्वानों के हितकारी, (आसवम्) समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक (भर्गम्) ऐश्वर्य का (धिया) धारणावती बुद्धि से हम (मनामहे) मनन करते हैं।

अग्निᳬ स्तोमेन बोधय समिधानोऽअमर्त्यम् ।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

[१५—१७] अग्निर्देवता । सुतम्भरविश्वामित्रविश्वरूपा ऋषयः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे पुरुष ! (अमर्त्यम्) अविनाशी, कारणरूप से नित्य (अग्निम्) अग्नि को जैसे (स्तोमेन) काष्ठ समूह से जलाया जाता है उसमें (हव्या) हव्य, चरु, पदार्थ दिये जाते हैं उसी प्रकार तू (सम् इधानः) ज्ञान से प्रदीप्त भी (स्तोमेन) स्तुतियों द्वारा (अमर्त्यम्) मरण-धर्म से रहित, (अग्निम्) अग्नि, स्वतःप्रकाश तेजोमय आत्मा को (बोधय) ज्ञान से प्रदीप्त कर । और (नः देवेषु) हमारे देव, प्राणों, विद्वानों में भी (हव्या) ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों व गुणों को (दधत्) धारण करा।

स हव्यवाडमर्त्यऽउशिग्दूतश्चनोहितः ।
अग्निर्धिया समृण्वति ॥ १६ ॥ ऋ० ३ । ११ । २ ॥

भा०—(सः) वह (हव्यवाड्) स्वीकार करने योग्य आज्ञाओं को दूसरों तक पहुँचाने वाले, (अमर्त्यः) न मारने योग्य (उशिग्) स्वयं कान्तिमान्, अन्यों को प्रिय, विद्वान् (दूतः) दूत (चनोहितः) वचनों को धारण करने में समर्थ है वह (अग्निः) तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (धिया) अपनी बुद्धि से (सम् ऋण्वति) समस्त कर्म संपादन करता है ।

अग्नि के पक्ष में—हव्य चरु को वायु आदि तक पहुँचाने वाला कारण, नित्य, (उशिक्) कान्तिमान्, (दूतः) तापवान्, (चनोहितः) अन्न परिपाक करने में उपयोगी, (अग्निः) अग्नि (धिया) धारण सामर्थ्य या दाहक्रिया से ही (सम्-ऋण्वति) अन्य दिव्य पदार्थों से संगत होता है ।

अध्यात्म में—वह ज्ञानी, कान्तिमान्, (दूतः) उपासक (चनो-हितः) सञ्चित ज्ञान या उत्तम वचन को धारण करने वाला (अग्निः) ज्ञानी आत्मा (धिया) धारण के बल से परमेश्वर को (समृण्वति) प्राप्त करता है।

'चनः'—वचनशब्दस्य वकारलोपेनान्ते सकारोपजनेन 'चनः' । यद्वा

वचेरसुनि बाहुलकात् नोन्तादेशः इति दे० य० ॥ चनः इत्यन्न नाम । तथैव पचनस्य पकारलोपे सकारोपजनेन च । पचेर्वासुनि नोन्तादेशः । चीयतेर्वा ॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे ।

देवाँ२ऽ आ सादयादिह ॥ १७ ॥ ऋ० ८ । ४४ । ३ ॥

भा०—मैं राजा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य संदेह को लाने वाले (दूतम्) दूत बनकर आये, (अग्निम्) ज्ञानी पुरुष को (पुरः) सबके समक्ष, आगे (दधे) स्थापित करता हूँ और (उपब्रुवे) उससे प्रार्थना करता हूँ कि वह (इह) इस पद पर रहकर (देवान् आसादयात्) अन्य राजाओं तक पहुँचे । अग्नि के पक्ष में—हव्य, चरु को वहन करने वाले (दूतम्) तापयुक्त अग्नि को मैं आगे स्थापित करता हूँ । वह (देवान् आसादयात्) वायु आदि पदार्थों तक पहुँचावे ।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।

गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥ ऋ० ९ । ११० । ३ ॥

अरुणत्रसदस्यू ऋषी । पवमानो देवता । पिपीलिकमध्याकृतिः अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (पवमान) सबको पवित्र करने हारे विद्वन् ! अग्नि तत्व (सूर्यम्) सूर्य को उत्पन्न करता है उसी प्रकार तू (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, राजा को (अजीजनः) उत्पन्न करता है और सूर्य (गोजीरया) समस्त पृथ्वी लोक को जीवन देने और (पुरन्ध्या) पुर, देह, ब्रह्माण्ड को धारण पोषण करने वाली शक्ति से (रंहमाणः) गति करता है (शक्मना) शक्ति से (पयः) जल को (विधारे) विशेष रूप से धारण करता है और उसी प्रकार (गोजीरया) गौ आदि पशुओं के जीवन देने वाली और (पुरंध्या) पुर को धारण करने वाली राजनीति से (रंहमाणः) चलता हुआ (शक्मना) शक्ति से (पयः) पोषक राष्ट्र को धारण करता है ।

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽअसि । ययुर्नामासि शिशु-

र्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवा॑ऽआशापालाऽएतं देवेभ्यो-ऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षत । इह रन्तिरिह रमतामिह धृति-रिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

अग्निर्देवता । भुरिग् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (मात्रा विभूः) माता के प्रभाव से विविध गुणों से युक्त है । और (पित्रा प्रभूः) पिता के द्वारा प्रभु शक्ति, ऐश्वर्य से युक्त है अर्थात् तू मातृमान् और पितृमान् भी है । तू (अश्वः असि) राष्ट्र का भोक्ता है । तू (हयः असि) वेगवान्, पराक्रमी है । तू (अत्यः असि) निरन्तर गतिशील, आगे बढ़ने वाला, सबको अतिक्रमण करता है । तू (मयः असि) प्रजा का सुखकारी, नियन्ता है । तू (अर्वा असि) ऐश्वर्यों को प्राप्त करने हारा, विद्याओं का ज्ञाता है । तू (सप्तिः असि) शत्रु का पीछा करने हारा, राष्ट्र के सातों अंगों का स्वामी, राष्ट्र में समवाय बनाकर रहता है । तू (वाजी असि) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् और बलवान्, आक्रमण में वेगवान् है । तू (नृमणाः असि) मनुष्यों के मान और आदर योग्य, तू (ययुः नाम असि) शत्रुओं पर प्रयाण करने से 'ययु' है । तू (शिशुः नाम असि) क्षत्रियों को कृश, या नाश करने, स्वयं राष्ट्र में व्यापक रहने से या पृथ्वी का पुत्र, या शासक होने से 'शिशु' है । (आदित्यानाम्) सूर्य जैसे द्वादश राशियों में गमन करता है उसी प्रकार तू आदित्य के समान तेजस्वी होकर द्वादश राज-मण्डल के बीच में (पत्वा) राजमार्ग से (अनु इहि) गमन कर । अथवा—(आदित्यानाम्) आदित्यों के समान विद्वान् पुरुषों के (पत्वा) गमनयोग्य मार्ग का (अनु इहि) अनुसरण कर । हे (देव) विजय की कामना करने वाले ! (आशापालाः) दिशाओं में प्रजा पालक राजगण ! आप लोग (देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों, विजयी और दानशील पुरुषों की उन्नति और (मेधाय) राष्ट्र की बलवृद्धि या शत्रुओं के नाश के लिये (एतम्) इस (प्रोक्षितम्) अभिषिक्त हुए राजा की (रक्षत) रक्षा करो । (इह) इस राष्ट्र में (रन्तिः) चित्त की प्रसन्नता हो । (इह

रमताम्) यहां रमण करें। (इह धृतिः) इस राष्ट्र में धारण करने की सामर्थ्य है (इह) इसमें ही (स्वधृतिः) अपनी पूर्ण धृति अर्थात् धारण शक्ति हो। (स्वाहा) इससे तेरा उत्तम यश और आदर हो। यही विशेषण अश्व, विद्वान्, परमेश्वर और आत्मा पक्ष में भी लगते हैं।

[1]कार्य स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा [2]सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥

कादयो देवताः। (१) निचृद् अतिधृतिः। (२) अतिधृतिः। षड्जः ॥

भा०—(काय, कस्मै, कतमस्मै) साधनों के करने वाले, सुखस्वरूप प्रजापालक प्रजापति का (स्वाहा) उत्तम मान करो। (आधिम्) आधीन, अग्निस्थापन या पदार्थसंग्रह करने वाले का और (आधीताय) समस्त विद्याओं को पढ़ने वाले का (स्वाहा) सत्कार करो। (मनः = मनसे) मननशील और (प्रजापतये) प्रजा के पालक का (स्वाहा) आदर करो। (चित्तं-चित्ताय) चित्तवत् चिन्तन करने वाले का और (विज्ञाताय) विज्ञान और उसके विशेष ज्ञाता का आदर करो। (आदित्यै स्वाहा) पृथिवी और माता का आदर करो (अदित्यै मह्यै) अखण्ड पृथ्वी, पूजनीय माता और विशाल अखण्ड शासन की व्यवस्था और पूज्य गोमाता का (स्वाहा) आदर करो। (सुमृडीकायै आदित्यै स्वाहा) समस्त सुखों के देने वाली, माता, वेदवाणी, वर्गों का उत्तम उपयोग करो। (सरस्वत्यै स्वाहा) सरस्वती, वेदवाणी, स्त्री और विद्वत्सभा का आदर करो। (पावकायै सरस्वत्यै) पवित्र करने वाली ज्ञानमयी ब्रह्म शक्ति की (स्वाहा) पूजा करो। (बृहत्यै

२०—औदग्रभणानि।

सरस्वत्यै) बृहती, बड़ी भारी, विद्वानों की सभा या प्रभुवाणी का (स्वाहा) अभ्यास, मनन, श्रवण और अध्यापन, वाचन, दान करो। (पूष्णे स्वाहा) पोषक पुरुष का आदर करो। (प्रपथ्याय) उत्तम पथ्य, आहारयोग्य पोषक अन्न का (स्वाहा) सदुपयोग करो। और (नरन्धिषाय पूष्णे) मनुष्यों के धारक पोषक प्रजापालक राजा का (स्वाहा) आदर करो। (त्वष्ट्रे स्वाहा) त्वष्टा, शिल्पी का आदर करो, (तुरीपाय त्वष्ट्रे स्वाहा) तुरी, अर्थात् नौकाओं वा बुनने के यन्त्रों के वा वेगवान् रथों के पालक, निर्माता का आदर करो। और (पुरुरूपाय त्वष्ट्रे) नाना रूपों के पदार्थों के बनाने वाले, त्वष्टा, परमात्मा की (स्वाहा) उपासना करो। (विष्णवे स्वाहा) व्यापक परमेश्वर की उपासना करो। (निभूयपाय विष्णवे स्वाहा) सबका आश्रय होकर, सबकी रक्षा करे उस व्यापक शक्तिमान्, राजा का आदर करो और (शिपिविष्टाय विष्णवे स्वाहा) समस्त पशुओं और दुःखी जनों में कृपालु, व्यापक अथवा शक्ति रूप या किरणों में तेज रूप से विद्यमान तेजस्वी, सर्वोत्पादक प्रभु शक्ति का आदर करो।

यही सब नाम ईश्वर, परमेश्वर, आत्मा और राजा के समान होने से उनमें उन गुणों का ग्रहण होता है।

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्।
विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ २१ ॥

अग्निर्ऋषिः। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(विश्वः) समस्त (मर्त्तः) मनुष्य, प्राणी (नेतुः देवस्य) नायक राजा के (सख्यम्) मित्रभाव को (वुरीत) प्राप्त करे। (विश्वः मर्त्तः) समस्त मनुष्य (रायः) धनों को (इषुध्यति) चाहते हैं। और सभी (पुष्यते) पुष्टि के लिये (द्युम्नम्) धनैश्वर्य को (वृणीत) प्राप्त करें। वे (स्वाहा) उत्तम व्यवहार से रहें। विशेष व्याख्या देखो (अ० ४। ८)।

आ ब्रह्म॑न् ब्राह्म॒णो ब्र॑ह्मवर्च॒सी जा॑यता॒मा रा॒ष्ट्रे रा॑ज॒न्यः॒ शूर॑

ऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२ ॥

लिंगोक्ता देवता । स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) ! महान् शक्ति वाले ब्रह्मन् ! परमेश्वर ! (राष्ट्रे) राष्ट्र में (ब्राह्मणः) ब्रह्म, वेद का विद्वान्, (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मवर्चस्वी, वीर्यवान् (आ जायताम्) हो। और राष्ट्र में (राजन्तः) राजा, क्षत्रिय-गण (शूरः) शूर, (इषव्यः) धनुर्धर, (अतिव्याधी) अति वेग और बल से शत्रु को परास्त करने वाला, (महारथः) महारथी, बड़े-बड़े रथारोही वीरों का स्वामी, (आ जायताम्) हो। (धेनुः दोग्ध्री) गाय बहुत दूध देने वाली, (अनड्वान् वोढा) बैल खूब बोझा उठाने में समर्थ (आशुः सप्तिः) घोड़ा अति वेगवान् और (योषा पुरन्धिः) स्त्री कुटुम्ब को धारण करने में समर्थ हो। (जिष्णुः रथेष्ठाः) रथ पर स्थित वीर, विजयशील हो। (अस्य यजमानस्य) सबको वेतन, वृत्ति देने हारे राजा के राष्ट्र में (सभेयः युवा) सभा में साधु, उत्तम वक्ता और युवा, (वीरः) वीर्यवान् पुरुष (आ जायताम्) हो। (नः) हमारे राष्ट्र में (निकामे निकामे) प्रत्येक प्रार्थना के अवसर पर जब-जब भी हमें आवश्यकता हो, तब-तब (पर्जन्यः वर्षतु) मेघ बरसे। (नः) हमारी (ओषधयः) ओषधि, अन्न आदि (फलवत्यः) फल वाली होकर (पच्यन्ताम्) पकें। (नः) हमारे राष्ट्र में (योगक्षेमः) जो धन पहले प्राप्त न हो वह प्राप्त हो, जो प्राप्त है वह सुरक्षित (कल्पताम्) रहे।

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

२२—०'वोळ्हा०' इति काण्व० ।

प्राणादयो देवताः । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(प्राणाय) भीतर से बाहर आने वाला, निःश्वास 'प्राण' है । (अपानाय) बाहर से भीतर जाने वाला उच्छ्वास अपान है । अथवा, नाभि तक संचरण करने वाला श्वासोच्छ्वास 'प्राण' है । नाभि से गुदा तक व्याप्त, एवं नीचे की तरफ के मलों को बाहर करने वाला 'अपान' है । इन दोनों को (स्वाहा) योगक्रिया से वश करना चाहिये । (व्यानाय स्वाहा) इसी प्रकार शरीर के शिर, बाहु, जंघा आदि अन्य अंगों में व्यापक प्राण 'व्यान' है । उसका उत्तम रीति से ज्ञान और अभ्यास करना करना चाहिये । (चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा) चक्षु एवं दर्शन शक्ति को उत्तम रीति से प्राप्त करो । श्रोत्र और स्रवण शक्ति का सदुपयोग व वृद्धि करो । (वाचे स्वाहा, मनसे स्वाहा) वाणी और मन को उत्तम रीति से एकाग्र करो । शरीर में प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, वाग् और मन को हृष्ट पुष्ट करो । इसी प्रकार राष्ट्र जीवित जागृत शक्तियों का सम्पादन और उपयोग होना चाहिये ।

प्राच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒ दक्षि॑णायै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ प्र॒तीच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहोदी॑च्यै दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहो॒र्ध्वायै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ ॥ २४ ॥

दिशो देवताः । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(प्राच्यै दिशे) सूर्य प्रातः जिस दिशा को प्रथम स्पर्श करता है वह सूर्योदय की दिशा 'प्राची' है । (अर्वाच्यै दिशे) उसके समीप की कोण दिशा 'अर्वाची' है । (दक्षिणायै दिशे) पूर्वाभिमुख के दाहिने हाथ की दिशा 'दक्षिणा', उसके समीप की (अर्वाच्यै दिशे) एक कोण दिशा 'अर्वाची' (प्रतीच्यै दिशे) पूर्वाभिमुख खड़े पुरुष की पीठ पीछे की दिशा 'प्रतीची' या पश्चिम दिशा उसके पास की दिशा (अर्वाच्यै दिशे) 'अर्वाची' है । (उदीच्यै दिशे) पूर्वाभिमुख पुरुष के बायें हाथ की दिशा 'उदीची',

उसके समीप की दिशा (अर्वाच्यै दिशे) 'अर्वाची' है। इसी प्रकार (ऊर्ध्वायै दिशे, अर्वाच्यै दिशे) शिर के ऊपर की दिशा ऊर्ध्वा उसके पास की कोण-दिशा 'अर्वाची', उसकी कोण दिशा 'अर्वाची' है। इस प्रकार ६ दिशा १२ उपदिशाओं का उत्तम रीति से ज्ञान और उपयोग करो। इसी प्रकार राष्ट्र की सभी दिशाओं की उत्तम रीति से रक्षा और विजय करनी चाहिये। इसी प्रकार विजिगीषु और प्रजापति की भी दिशाएं हैं। देखो व्रात्यसूक्त, अथर्ववेद।

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥ २५ ॥

अबादयो देवताः। अष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—(अद्भ्यः) सामान्य जल, (वार्भ्यः) रोगनिवारक जल, (उदकाय) गहरे प्रदेशों से ऊपर निकाले गये (तिष्ठन्तीभ्यः) एक स्थान पर खड़े रहने वाले, (स्रवन्तीभ्यः) झरने वाले, (स्यन्दमानाभ्यः) प्रवाह से, नदी रूप से बहने वाले, (कूप्याभ्यः) कूप के जल, (सूद्याभ्यः) झरनों के जल, (धार्याभ्यः) पात्रादि में धरे, (अर्णवाय) समुद्र के और (समुद्राय) आकाशस्थ जल (सरिराय) वायुस्थ अथवा मध्यस्थ जल। इन सबको (स्वाहा) उत्तम रीति से शुद्ध करो, प्रयोग करो, संग्रह करो, जिससे सुख हो। जलों के समान प्रजाओं और सेनाओं के भी इतने भेद हैं राजा उनको वश करे। जैसे आप्त प्रजाजन 'आपः' हैं, शत्रुवारक वीर प्रजाएं 'वार' हैं। सदा खड़ी, सावधान वीर सेनाएं 'तिष्ठन्ती' हैं। वेग से जाने वाली 'स्रवन्ती' हैं। रथ-वेग से दौड़ने वाली 'स्यन्दमाना' हैं। गहरी खाइयों की आड़ में बैठी 'कूप्या' हैं। शत्रु पर प्रहार करने वाली 'सूद्या' हैं। विशेष अवसर के लिये सुरक्षित सेनाएं 'धार्या' हैं। संग्रहीत समस्त सेना

समूह 'अर्णव' है, और उमड़ती सेना 'समुद्र' है और शत्रु पर आक्रमण करती सेना 'सरिर' हैं।

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहो मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

विराड अभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(वाताय, स्वाहा) बहने वाली, तीव्र वायु का उत्तम उपयोग करो, उसके समान प्रबलता से शत्रु पर आक्रमण करने और शत्रुरूप वृक्ष को उखाड़ने वाले सेनापति का आदर करो। अथवा (स्वाहा) उसको उत्तम बल प्राप्त हो। (धूमाय स्वाहा) धूम और धूम के समान नीले मेघ, उत्तम रीति से उत्पन्न हों। 'धूम' शत्रु को कंपाने वाले को मान प्राप्त हो। (अभ्राय स्वाहा) वर्णकारी मेघ की पूर्व दशा का मेघ अच्छे प्रकार बने। अभ्र अर्थात् बदली के समान राष्ट्र या शत्रु सेना पर छा जाने वाले का उत्तम आदर हो। (मेघाय स्वाहा) जल वर्षाने वाला 'मेघ' है, वैसे ही प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला पुरुष 'मेघ' है, (विद्योतमानाय स्वाहा) विविध विद्युतों की पैदा करने वाला मेघ 'विद्योतमान' है और विविध विद्याओं, गुणों से स्वयं प्रकाशमान, अन्यों को भी प्रकाश देने वाला पुरुष 'विद्योतमान' है, उसको आदर प्राप्त हो। (स्तनयते स्वाहा) गर्जते हुए मेघ की, सिंहनाद करते पुरुष की भी वृद्धि हो। (अवस्फूर्जते स्वाहा) विद्युतें फेंकते हुए मेघ बढ़ें। और वैसे ही आग्नेयास्त्रों का शत्रु पर प्रयोग करने वाले वीर सेनापति की विजय हो। (वर्षते स्वाहा, उग्रं वर्षते स्वाहा) बरसते हुए, प्रचण्ड वेग से बरसते हुए मेघ

२६—'प्रश्नते' इति काण्व०।

बढ़ें उनके समान प्रजाओं पर सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रवर्षा करते व भयंकरता से अस्त्र बरसाते हुए वीर सेनापति की वृद्धि और विजय हो। (उद्गृह्णते स्वाहा, उद्गृहीताय स्वाहा) जलों को ऊपर उठाते हुए, और खूब जल से भरे मेघ अच्छी प्रकार उठें उनके समान शत्रु और मित्र राष्ट्र और अपने राष्ट्र से बल, धन, ऐश्वर्य संग्रह करते हुए और कर चुके हुए वीर पुरुष की वृद्धि और विजय हो। (प्रुष्णते स्वाहा) स्थूल बूंदों से सींचते या नदी ताल आदि भरते हुए मेघ की वृद्धि हो। और प्रजा पर स्नेह से देखते उसे धनधान्य से पूर्ण करते हुए की वृद्धि और यश हो। (शीकायते स्वाहा) सेचन करते हुए, फुहार छोड़ते हुए मेघ की उत्पत्ति हो। और सुखकारी धनधान्य, उपकारों, सद्वचनों से प्रजा पर सुख सेचन करते हुए राजा की वृद्धि हो। (प्रुष्वाभ्यः स्वाहा) मेघ के स्थूल बिन्दु सेचन करने वाली धाराओं की वृद्धि हो, प्रजा को समृद्धि करने वाली राज-शक्तियों की वृद्धि हो। (ह्रादुनीभ्यः स्वाहा) शब्द करने वाली विद्युतें बढ़ें। राजा की गरजती तोपें बढ़ें। (नीहाराय स्वाहा) कुहरे की वृद्धि हो शत्रु लक्ष्मी को निःशेष हर लेने वाले सेनापति की वृद्धि हो।

इस मन्त्र में मेघ की सब दशाओं और उसके समान आचरण करने वाले वीर सेनापति आदि की वृद्धि की प्रार्थना है।

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ पृथि॒व्यै स्वाहा॒न्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ दि॒वे स्वाहा॑ दि॒ग्भ्यः स्वाहा॒शाभ्य॒ः स्वाहो॒र्व्यै॑ दि॒शे स्वाहा॒र्वाच्यै॑ दि॒शे स्वाहा॑ ॥ २७ ॥

अग्न्यादयो देवताः। जगती। निषादः॥

भा०—(अग्नये स्वाहा) अग्नि का सदुपयोग हो, जठराग्नि की वृद्धि और स्वस्थता हो तथा अग्रणी नेता का अभ्युदय हो। (सोमाय स्वाहा) सोम आदि ओषधि रस प्राप्त हों, सर्वप्रेरक राजा की उन्नति हो। (इन्द्राय स्वाहा) जीव की उन्नति हो, परमेश्वर प्रसन्न हो, विद्युत् गुणकारी हो, वह ऐश्वर्य सुख प्रदान करे (पृथिव्यै स्वाहा अन्तरिक्षाय स्वाहा, दिवे

स्वाहा) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों लोक सुखकारी हों, (आशाभ्यः स्वाहा) आशाएं, दिशाएं सुखकारी हों, प्रजाएं बढ़ें, (ऊर्ध्वै दिशे स्वाहा अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) ऊपर की दिशा और नीचे की दिशा फलें, फूलें और सुखकारी हों।

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहाऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा सँवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳस्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

नक्षत्रादयो देवताः भुरिगष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—(नक्षत्रेभ्यः, नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा) नक्षत्र; कभी अपने स्थान से च्युत नहीं होते और 'नक्षत्रिय', नक्षत्रों में उपग्रह भी हमें सुखकारी हों। (अहोरात्रेभ्यः, धर्ममासेभ्यः, ऋतुभ्यः, आर्त्तवेभ्यः, संवत्सराय स्वाहा ५) दिन-रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु और ऋतुओं में होने वाले विशेष परिवर्त्तन और संवत्सर ये हमें सुखकारी हों। (द्यावापृथिवीभ्यां, चन्द्राय, सूर्याय, रश्मिभ्यः स्वाहा ४) द्यौ, पृथिवी, चन्द्र; सूर्य और रश्मियां सुखकारी हों। इनके शुभ लक्षण प्रकट हों। (वसुभ्यः, रुद्रेभ्यः, आदित्येभ्यः स्वाहा ३) आठ वसु, पृथिवी आदि ११ रुद्र = प्राण आदित्य १२ मास या अविनाशी काल के अवयव और (मरुद्भ्यः स्वाहा) नाना वायुएं ये हमें सुखकारी हों। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) समस्त अन्य दिव्य शक्तियां सुखकारी हों। (मूलेभ्यः शाखाभ्यः, वनस्पतिभ्यः पुष्पेभ्यः, फलेभ्यः, स्वाहा ६) मूल, शाखा, वनस्पतियां, फूल, फल और औषधिगण वे सब हमारे लिये सुखकारी हों और हम उन सब उक्त पदार्थों को सुखकारी बनाने के उत्तम साधन उपस्थित करें।

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्य स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २६ ॥

पृथिव्यादयो देवताः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(पृथिव्यै, अन्तरिक्षाय, दिवे, सूर्याय, चन्द्राय, नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ये सब सुख दें, हम इन्हें सुखकारी बनाने के उपाय करें। अद्भ्यः, ओषधीभ्यः, वनस्पतिभ्यः स्वाहा) जल, ओषधि और वनस्पति उनको हम उत्तम बनावें जिससे सुख हो। परिप्लवेभ्यः, चराचरेभ्यः सरीसृपेभ्यः स्वाहा) तारे, आकाश में स्वच्छन्दता से विहार करने, उपद्रव करने वाले धूमकेतु, उल्का आदि, चराचर प्राणी और सर्प आदि रेंगने वाले जन्तु ये सभी सुखकारी हों, हम इन्हें सुखकारी बनावें।

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥ ३० ॥

असवादयो देवताः कृतिः । निषादः ॥

भा०—(असवे स्वाहा) शरीर के रोगों को बाहर फेंकने वाले 'प्राण' की हम उत्तम साधना करें। (वसवे स्वाहा) शरीर में बसने वाले जीव की उत्तम साधना करें। (विभुवे स्वाहा) व्यापक वायु की साधना और परमेश्वर की हम उपासना करें। (विवस्वते स्वाहा) विविध वसु, वास योग्य लोकों को धारण करने वाले उनके स्वामी सूर्य को हम सुखकारी बनावें। इसी प्रकार शत्रु को बाहर निकालने के लिये अस्त्रों को फेंकने वाला 'असु' प्रजा को बसाने वाला 'वसु', विशेष सामर्थ्यवान् 'विभु', विविध ऐश्वर्यों से युक्त 'विवस्वान्', इन सब प्रकार के उत्तम पुरुषों का

आदर करें। (गणश्रिये) गण, संघ, सैनिक संघ से सुशोभित, संघों में सुशोभित सैनिकों को उत्तम अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हों। (गणपतये स्वाहा) उन गणों के पालक का उत्तम आदर हो। (अभिभुवे स्वाहा) सम्मुख जाने वाले का और (अधिपतये) अधिपति का उत्तम मान हो। (शूषाय स्वाहा) सैन्य बल की उत्तम वृद्धि और विजय लाभ हो। (संसर्पाय स्वाहा) शत्रुगण में गुप्त रूप से फैल कर उनके भेद लेने वालों को उत्तम जीविका प्राप्त हो। (चन्द्राय स्वाहा) आह्लादकारी पुरुष को (ज्योतिषे) दीप्ति प्रकाश के उत्पादक को उत्तम पद प्राप्त हो। (मलिम्लुचाय स्वाहा) मारामारी करके दूसरे के धन हरण करने वाले दुष्ट पुरुष का अच्छा दमन हो। और (दिवापतये स्वाहा) दिन के पालक अथवा दिन के समय दूर तक चलने वाले पथिक की उत्तम रक्षा हो।

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

मध्वादयो देवताः। भुरिगत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(मधवे स्वाहा) मधुरादि गुणों के उत्पादक 'मधु' नाम चैत्र को हम सुखकारी बनावें। इसी प्रकार (माधवाय, शुक्राय, शुचये, नभसे, नभस्याय, इषाय, ऊर्जाय, सहसे, सहस्याय, तपसे, तपस्याय, स्वाहा) वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन इन समस्त मासों को हम सुखकारी बनायें और (अंहसः पतये स्वाहा) सब मासों में अवशिष्ट तिथियों के रूप में सटे हुए काल के पालक १३ वें मल मास को भी हम सुखदायी बनावें। इसके अतिरिक्त संवत्सर के समान प्रजापति के ये द्वादश मासों के समान द्वादश अधिकारी और तदनुसार प्रजापति राजा के १३ स्वरूपों के भी क्रम से ये नाम हैं।

मधुर स्वभाव होने से 'मधु', अन्न आदि मधु या उनका उत्पादक प्रबन्धक 'माधव' शुद्धि करने एवं तेजस्वी होने से 'शुक्र', ज्योतिष्मान्, सत्य व्यवहारवान् होने से 'शुचि', जलवर्षक होने या सबको बांधने वाला प्रबन्धक होने से 'नभस्', उस कार्य में उत्तम सहायक 'नभस्य' अन्नोत्पादक होने से 'इष्', बलोत्पादक या पराक्रमी होने से 'ऊर्ज', शत्रुदमनकारी बलवान् 'सहस्', उसका उत्तम सहयोगी 'सहस्य' शत्रुतापक 'तपस्', उसका उत्तम सहयोगी 'तपस्य' और पापी पुरुषों का अध्यक्ष जेलर 'अंहसस्पति' ये राजपदाधिकारी समझने चाहियें। उनका उत्तम आदर हो।

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ स्वः॒ स्वाहा॑ मू॒र्ध्ने स्वाहा॑ व्यश्नु॒विने॒ स्वाहान्त्या॑य॒ भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑ ॥ ३२ ॥

आयु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑पा॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ व्या॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहो॑दा॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ स॒मा॒नो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ चक्षु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ वाग्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ मनो॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒त्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ ब्र॒ह्मा य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ ज्योति॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ स्व॒र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॒ य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ᳪ स्वाहा॑ ॥ ३३ ॥

आयुरादयो स्वाहा देवताः । प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—(३२।३३) की व्याख्या देखो क्रम से, अ० १८ मन्त्र २८। २९ ॥ (स्वः स्वाहा), सुख और प्रकाश हमें उत्तम रीति से प्राप्त हों, (मूर्ध्ने स्वाहा) शिर उत्तम सुख प्राप्त करे, उसको हम शुद्ध, पवित्र, बलवान् करें। (व्यश्नुविने स्वाहा) विविध अंगों में व्यापक, वीर्य और उसके

३३—'आन्त्यायाय स्वाहा आन्त्यायनाय स्वाहा भौ०' इति काण्व० ।

समान बलकारी पुरुष की वृद्धि हो। (प्राणः, अपानः, व्यानः, उदानः, समानः, यज्ञेन कल्पताम्, स्वाहा) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान समान पांचों शरीरस्थ वायुएं शक्तियें हमारे यज्ञ, परस्पर संगति, योगाभ्यास और साधना से अधिक बलशाली हों।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳬस्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥ ३४ ॥

एकादयो यज्ञो वा देवताः। भुरिगुष्णिक्। धैवतः॥

भा०—(एकस्मै, द्वाभ्यां, स्वाहा) एक परमेश्वर, दो कार्य और कारण, इनको उत्तम साधना से साधो। ईश्वर की उपासना करो और कार्य और कारण का ज्ञान करो। इसी प्रकार (एकस्मै, द्वाभ्यां, त्रिभ्यः, चतुर्भ्यः, इत्यादि) एक, दो, तीन, चार, पांच आदि सभी संख्या से परिमित पदार्थों को सुख से प्राप्त करो, उनका सदुपयोग करो और इन संख्या से परिमित आयु के वर्ष भी सुखकारी हों। उनको हम सुखकारी बनावें और अन्त में सौ वर्ष तक जीवें। तब (शताय स्वाहा) सौ वर्ष का जीवन भी सुखकारी हो और अधिक जीवन हो तो (एकशताय स्वाहा) एक सौ एक वां वर्ष भी सुखकारी हो। इतनी-उतनी आयु वाले व्यक्तियों को उचित मान, जीवन साधन प्राप्त हों। इससे अधिक की गणना दो, तीन आदि पहले कह चुके (व्युष्ट्यै) विशेष पाप भावों को दहन करने वाली शक्ति की (स्वाहा) उन्नति हो, वह हमें प्राप्त हो और (स्वर्गाय स्वाहा) स्वर्ग, अर्थात् सुख देनेवाले पदार्थ और उसके निमित्त पुरुषार्थ हमें उत्तम रीति से प्राप्त हों, उस आनन्दमय मोक्ष की हम साधना करें।

इति द्वाविंशोऽध्यायः॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकविंशोऽध्यायः॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३ । ४ ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा । यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

प्रजापतिः परमेश्वरो देवता । निचृदाकृतिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (उपयाम-गृहीतः असि) राज्यव्यवस्था या निर्धारित राजनियमों द्वारा, स्वीकृत बद्ध है (जुष्टम्) सबके प्रेमपात्र (त्वा) तुझको (प्रजापतये) प्रजापति के पद के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूँ और नियुक्त करता हूँ। (ते एषः योनिः) तेरा यह स्थान, पद, अधिकार है। (सूर्यः ते महिमा) सूर्य तेरा महान् सामर्थ्य है। अर्थात् सूर्य तेरे अधिकार सामर्थ्य का आदर्श है। अर्थात् सूर्य दिन को प्रकट करता, अन्धकार को नाश करता है उसी प्रकार शत्रुरूप अन्धकार और अज्ञान को नाश करके प्रजा में सुख, शान्ति और ज्ञानप्रकाश फैला कर सब प्रजाजन को सत् कार्यों में प्रवृत्त कराने रूप (यः) जो (ते) तेरा (अहनि) दिन में दिनवत् उज्ज्वल राज्य में (महिमा) महान् सामर्थ्य (संबभूव) अच्छी प्रकार प्रकट हो रहा है। (संवत्सरे) सूर्य वर्ष में १२ मासों को उत्पन्न कर उनमें भूलोक से जल ग्रहण करता, पुनः वर्षा कर अन्न आदि उत्पन्न करता है, एवं समस्त प्राणियों को पालन करता है

२—वाया अन्तरिक्षे० इति काण्व० ।

उसी प्रकार प्रजा से कर लेकर दुष्टों का दमन कर, सबको वर्षा के समान शान्ति देकर, ऐश्वर्य को प्रजा के हित लगाकर (संवत्सरे) पुनः समस्त प्रजाओं को एकत्र बसा देने रूप कार्य में हे राजन् ! (यः ते महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य है। (वायौ) वायु सब प्राणों का आधार है उसी प्रकार सबके जीवनों का आधार होने से (यः) जो तेरा महान् सामर्थ्य (वायौ) 'वायु' में है। (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष सबको आच्छादित करता है उसी प्रकार सब पर छत्र-छाया रखने वाले तेरा (यः) जो (महिमा) महान् सामर्थ्य (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (सं बभूव) प्रकट होता है। अथवा—(अन्तरिक्ष वायौ) अन्तरिक्ष में वायु बेरोक टोक वेग से गति करता है उसी प्रकार स्व और शत्रु राष्ट्र के बीच में स्थित मध्यम राष्ट्र में बेरोक गति करने का तेरा महान् सामर्थ्य है। (दिवि सूर्ये) महान् आकाश में सूर्य तेज से चमकता है, कभी अस्त नहीं होता, उसी प्रकार (दिवि) तेजोमय राजसभा में तेरा (यः महिमा संबभूव) जो महान् सामर्थ्य प्रकट है (तस्मै) उस (ते) तुझ (प्रजापतये) प्रजापालक राजा के (महिम्ने) महान् सामर्थ्य के लिये और (देवेभ्यः) तेरे अन्य देव, दानशील, विजयी, विद्वान् तेजस्वी पुरुषों के लिये भी (स्वाहा) हम उत्तम सत्कार करते हैं। परमेश्वर योग के यम नियमों से साक्षात् किया जाता है। (जुष्टम्) अति सेवनीय प्रिय उसे (प्रजापतये गृह्णामि) प्रजापालक परमेश्वर करके मानता हूँ (एषः) यह समस्त विश्व उसका निवासस्थान है। सूर्य उसकी महिमा है, प्रतिदिन और प्रतिवर्ष में उसकी महिमा प्रकट होती है, उसकी महिमा वायु और अन्तरिक्ष में है। उसकी महिमा तेजोमय सूर्य में प्रकट है। उस परमेश्वर की, उसके प्रकट दिव्य गुणों की मैं (सु-आहा) सदा स्तुति करूं।

यः प्राण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ ऽइद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑।
य ऽईशे॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥३॥

कः प्रजापतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—परमेश्वर पक्ष में—(यः) जो परमेश्वर (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (प्राणतः) प्राण लेने वाले और (निमिषतः) नेत्रादि की चेष्टा करने वाले सजीव, चर (जगतः) जगत् का (एक इत्) एकमात्र (राजा बभूव) राजा है। और (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये मनुष्य, पक्षी और (चतुष्पदः) चौपाये पशु संसार का भी (ईशे) स्वामी है, (कस्मै देवाय) उस 'क' प्रजा के विधाता, परमेश्वर, प्रजापति, देव, सर्वद्रष्टा, सर्वसुखदाता सर्वस्रष्टा की (हविषा) भक्ति से (विधेम) स्तुति, सेवा, प्रार्थना करें। राजा भी अपने बड़े सामर्थ्य से समस्त प्राणधारी जगत् का राजा है, दुपाये चौपायों का स्वामी है, राज्यकर्त्ता, विधाता, उस प्रजापति का हम (हविषा) उसकी आज्ञानुसार चल कर अथवा अन्नादि भेंट योग्य पदार्थों से (विधेम) सत्कार करें।

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—(उपयामगृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत्। हे राजन्! (ते महिमा चन्द्रमाः) तेरे महान् सामर्थ्य का एक रूप चन्द्र है अर्थात् चन्द्र के समान सबको सुखी करता, रात्रि में भी प्रकाश और पहरेदारी करता है। (यः ते रात्रौ संवत्सरे महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य रात्रि और संवत्सर में (सं बभूव) प्रकट होता है और (यः ते महिमा पृथिव्याम् सं बभूव) जो तेरा महान् सामर्थ्य पृथिवी पर, अग्नि, शत्रुसाधक, नायक अग्रणी के रूप में प्रकट होता है, (यः ते महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य (नक्षत्रेषु चन्द्रमसि) नक्षत्रों और उसके बीच में उपस्थित चन्द्रमा में (सं बभूव) प्रकट है, उस (ते प्रजापतये महिम्नः) तुझ प्रजापति के महान् सामर्थ्य और (देवेभ्यः) तेरे दिव्य गुणों के लिये (स्वाहा) हम तेरा आदर

सत्कार करते हैं। अर्थात् रात्रि में चन्द्र प्रकट हो उसको प्रकाशित करता है और रात्रि चन्द्र को अधिक उज्ज्वल करती है इसी प्रकार ऐश्वर्यों को देने वाली, समस्त प्राणियों को रमण सुख कराने वाली, राजसभा, राष्ट्र-शक्ति में राजा की महत्ता है। उत्तम राष्ट्रव्यवस्था राजा की महिमा है। चन्द्रमा संवत्सर में नाना रूप प्रकट करता है। वह मासों, पक्षों का प्रवर्त्तक है। उसी प्रकार जो संवत्सर, राष्ट्र है। उसमें सब प्राणी एकत्र सुख से रहते हैं, उसमें चन्द्र रूप राजा की महत्ता प्रकट है। पृथिवी पर अग्नि की महती सत्ता है, वह सबको भस्म करती है राजा पृथिवी पर प्रतिद्वन्द्वी शत्रुओं को भस्म करता है। नक्षत्रों के बीच में जैसे चन्द्र की शोभा है वैसे ही 'नक्षत्र' अर्थात् क्षत्रबल से रहित प्रजा के बीच क्षत्रिय राजा की शोभा है।

परमेश्वर का महान् सामर्थ्य चन्द्रवत् है। उसका महान् सामर्थ्य रात्रि में, संवत्सर में, पृथिवी में, अग्नि में, नक्षत्रों में, चन्द्रमा में, सभी दिव्य पदार्थों में विद्यमान है। उन्हीं दिव्य गुणों के लिये हम परमेश्वर स्तुति करें।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। सूर्यराजाश्चात्मपरमेश्वराः स्तुतिविषया देवताः। गायत्री। षड्जः।

भा०—परमेश्वर पक्ष में—जो विद्वान्, योगाभ्यासी जन (ब्रध्नम्) महान्, सूर्य के समान सबके मध्य में स्थित होकर, सबको अपनी आकर्षण शक्ति से बांधने वाले, (परि तस्थुषः) अपने चारों ओर स्थिर चेतनारहित, महान्, पांच भूत आदि प्रकृति के भीतर और बाहर सब प्रकार से (चरन्तम्) व्यापक (अरुषम्) शरीर के सब मर्मों में विराजमान आत्मा को (युञ्जन्ति) योग द्वारा साक्षात् करते हैं। वे (दिवि) ज्ञानमय मोक्ष में (रोचनाः) स्वतः दीप्तिमान् एवं यथाकाम, यथारुचि होकर (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं। (२) योगी (परितस्थुषः) चारों ओर

स्थित इन्द्रियों में व्यास, (ब्रध्नम्) सबको अपने साथ बांधने वाले आत्मा को, अथवा (तस्थुषः) स्थावर या स्थूल स्थिर देहों के (परि) आधार पर (चरन्तम्) भोग करने हारे (अरुषम्) मर्मों में व्यापक आत्मा को योग द्वारा प्राप्त करते हैं वे (दिवि) ज्ञान प्रकाश में (रोचनाः) यथेष्ट प्रज्वलित होकर (रोचन्ते) सबके प्रीतिपात्र होते वा प्रकाशित होते हैं। (३) सूर्य पक्ष में—आकाश में (रोचनाः) तेजस्वी नाना सूर्य चमकते हैं। (परि तस्थुषः) चारों ओर स्थित ग्रहों तक प्रकाश से व्यापने वाले, (ब्रध्नम्) उनको आकषर्ण सामर्थ्य से बांधने वाले (अरुषम्) अति दीप्त सूर्य को (युञ्जन्ति) नियुक्त करते हैं। (४) राजा विद्वान् लोग (परितस्थुषः) चारों ओर खड़े रहने वाले, अनुयायी लोगों और देशों को पराक्रम द्वारा प्राप्त करने वाले (अरुषम्) रोषरहित, सौम्य स्वभाव के, (ब्रध्नम्) सूर्य के समान तेजस्वी, उत्तम प्रबन्धक महापुरुष को राष्ट्रपति के पद पर नियुक्त करें, और (रोचनाः) तेजस्वी पुरुष (दिवि) राजसभा में विराजें।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥

सूर्यो देवता । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(काम्या) कान्तिमान्, सुन्दर (विपक्षसा) विविधि बन्धनों से बंधे (हरी) दो घोड़ों को (रथे) रथ में (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं उसी प्रकार (रथे) रमण योग्य इस शरीर में (काम्या) कान्तियुक्त, (विपक्षसा) विविध उपायों से वश में आये (हरी) वेगवान् प्राण और अपान को (युंजन्ति) योग द्वारा वश करते हैं। योगी जन (अस्य रथे) इस परमेश्वर के परम रथ में अपने (काम्या हरी) सुन्दर ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को भी लगा देते हैं। (अस्य रथे) इस राष्ट्रपति के राष्ट्र में भी (काम्या) सबकी अभिलाषा के पात्र, (विपक्षसा) विविध पक्ष अर्थात् अनुयायियों वाले, (हरी) समर्थ पुरुषों को (युञ्जन्ति) नियुक्त करते हैं। अश्व कैसे ? (शोणौ) लाल रंग के

वेगवाले (धृष्णू) बलवान् दृढ़, (नृवाहसौ) मनुष्यों को ढो ले जाने वाले हैं। प्राणापान कैसे हैं ? (शोणौ) गतिशील (धृष्णू) अन्य समस्त प्राणों को दमन करने वाले, (नृवाहसौ) शरीर के नेता प्राणों को अपने में धारण करनेवाले। दो विद्वान् नेता कैसे हों ? (शोणौ) ज्ञानी, अथवा भव्य पोशाक वाले, तेजस्वी, (धृष्णू) धर्षणशील, विपक्ष के पराभव करने वाले, (नृवाहसा) नेता पुरुषों को सन्मार्ग पर ले जाने वाले हों।

यद्वातो॑ऽअपो अग॑नीग॒न्प्रि॒यामिन्द्र॑स्य त॒न्व॒म्।
ए॒त२ँ स्तो॑तर॒नेन॑ प॒था पुन॒रश्व॒माव॑र्त्तयासि नः ॥ ७ ॥

इन्द्रो देवता । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(यद्) जब (वातः) वायु के समान तीव्रगति या प्रचण्ड यह राजा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (प्रियाम्) प्रिय (तन्वम्) स्वरूप और (अपः) जल के समान शीतल स्वभाव वाले आप्त प्रजाओं को (अगनीगन्) प्राप्त हो, तब हे (स्तोतः) विद्वन् ! (नः) हमारे (एतम्) इस (अश्वम्) राष्ट्र के भोक्ता स्वामी को अश्ववत् (अनेन पथा) इस सन्मार्ग से (आवर्त्तयासि) ले आ। राजा वायुवत् प्रचण्ड होकर चले तब विद्वान् पुरुष उसको सौम्य मार्ग में प्रवृत्त करें।

वस॑वस्त्वाञ्जन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑सा रु॒द्रास्त्वा॑ञ्जन्तु त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑सादि॒त्यास्त्वा॑ञ्जन्तु जाग॑तेन॒ छन्द॑सा। भूर्भुव॒ः स्व॒र्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये॒ गव्य॑ऽ ए॒तद॒न्नम॑त्त देवा ए॒तद॒न्नम॑द्धि प्रजापते ॥ ८ ॥ वाय्वादयो देवताः । निचृद अत्यष्टिः । गांधारः ॥

भा०—हे राजन् ! (वसवः) वसुनामक विद्वान् जन (त्वा) तुझको (गायत्रेण छन्दसा) गायत्री मन्त्र से, अथवा पृथिवी पालन के मार्ग अथवा ब्राह्मबल से (अञ्जन्तु) ज्ञानवान् एवं युक्त करें। (रुद्राः) रुद्र नैष्ठिक पुरुष (त्वा) तुझको (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुभ मन्त्र से (त्वा अञ्जन्तु) तुझको ज्ञानवान् करें, अथवा (रुद्राः) क्षत्रियगण तुझको क्षात्रबल से युक्त करें। (आदित्याः) आदित्य ब्रह्मचारी लोग (त्वा) तुझको (जागतेन छन्दसा)

जगती छन्द के मन्त्रों से शिक्षित करें और (आदित्याः) वैश्यगण व्यापारों द्वारा तुझे समृद्ध करें।

इसी प्रकार परमेश्वर के स्वरूप को (वसवः) बसने वाले जीव जीवों के बसाने वाले पृथिवी आदि लोक (गायत्रेण छन्दसा) पृथ्वी लोक के ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। (रुद्राः) अन्तरिक्षस्थ वायु प्राण आदि पदार्थ (त्रैष्टुभेन छन्दसा) अन्तरिक्षस्थ जल वायु विद्युत् पदार्थों से परमेश्वर के स्वरूप को प्रकट करते हैं। सूर्य आदि लोक जागत छन्द से अर्थात् नाना जगतों के स्वरूप से ईश्वर के महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। हे विद्वान् पुरुष ! (भूःर्भुवः स्वः) पूर्व कहे उक्त तीनों लोक हैं भूः, भुवः, स्वः; पृथ्वी, अन्तरिक्ष और प्रकाशस्थ लोक। इन तीनों को तू वश कर। हे (लाजिन्) प्रकाशों से प्रकाशवान् और हे (शाचिन्) शक्ति से शक्तिमान् ! तू उक्त लोकों को अपने वश कर। हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (यव्ये) जौ आदि से बने और (गव्ये) गो दुग्ध घृत आदि के बने पदार्थ के स्वरूप में विद्यमान (एतत्) इस (अन्नम्) भोजन करने योग्य अन्न को (अत्त) खाओ। हे (प्रजापते) प्रजापालक राजन् ! तू भी (एतत् अन्नम्) इस अन्न को (अद्धि) भोजन कर। लाजिन् शाचिन् इत्येतत् संबोधनपदद्वयम्। दूरादाह्वाने प्लुतिः लाजाः दीप्तयोऽस्य सन्तीति लाजी दीप्तिमान्। शाचाः शक्तयोऽस्य सन्तीति स शाची शक्तिमान् इत्यर्थः।

कः स्वि॑दे॒का॒की च॑रति॒ क॒ऽ उ॑ स्विज्जा॒यते॒ पुन॑ः।
कि॒ꣳ स्वि॑द्धि॒मस्य॑ भेष॒जं किम्वा॒वप॑नं म॒हत्॥ ९॥

[९–१२] ब्रह्मोद्यम्। जिज्ञासुर्देवता। निचृद् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—बतलाओ (कः स्वित्) कौन (एकाकी चरति) अकेला विचरता है ? (कः उ स्वित्) बतलाओ कौन (पुनः) बार २ पैदा होता है ? (किं स्वित्) बतलाओ क्या पदार्थ (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) उपाय है ? (किम्) और कौन सा पदार्थ (महत्) बड़ा भारी (आवपनम्) बोने का खेत है ?

सूर्य॑ऽ एका॒की च॑रति च॒न्द्रमा॑ जायते॒ पुनः॑ ।
अ॒ग्निर्हि॒मस्य॑ भेष॒जं भूमि॑रा॒वप॑नं म॒हत् ॥ १० ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य, सूर्यवत् सबका प्रेरक परमेश्वर और विद्वान् परिव्राट् और राजा (एकाकी चरति) अकेला, अद्वितीय, सर्वोपरि विचरता है। (चन्द्रमाः पुनः जायते) चन्द्र बार २ पैदा होता है कला घटते २ नामशेष होकर पुनः बढ़ता है उसी प्रकार जीव बालक रूप से बढ़कर युवा होता, पुनः क्षीण होकर मृत्यु द्वारा अदृष्ट हो जाता है, अथवा योग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होकर पुनः संसार में आता है। इसी प्रकार प्रजा का आह्लादक राजा युद्धादि में क्षीण होकर पुनः समृद्ध हो जाता है। (अग्निः) अग्नि, (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) उपाय है। (हिमस्य) हनन करने वाले शत्रु या दुष्ट के वश करने का उपाय भी (अग्निः) अग्नि के समान प्रतापी राजा ही है। (भूमिः) यह भूमि ही (महत् आवपनम्) बड़ा भारी बीज बोने के योग्य खेत है। समस्त स्थूल विकारों को उत्पन्न करने वाली प्रकृति ही परमेश्वर के बीज बपन का स्थान है। वही 'क्षेत्र' है। परमात्मा 'क्षेत्री' है।

का स्वि॑दासीत्पू॒र्वचि॑त्तिः॒ कि॒ꣳ स्वि॑दासीद् बृ॒हद्वयः॑ ।
का स्वि॑दासीत्पिलिप्पि॒ला का स्वि॑दासीत्पिशङ्गि॒ला ॥११॥

जिज्ञासुः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(पूर्वचित्तिः) सबसे पूर्व स्मरण योग्य (का आसीत्) कौन सी स्थिति है और (किं स्वित्) बताओ ! कौन सा (बृहद् वयः) सबसे बड़ा बल है। (पिलिप्पिला) 'पिलिप्पिला' सुन्दर शोभावती (का स्वित्) क्या है ? (पिशंगिला) 'पिशंगिला' अर्थात् समस्त रूपों को निगल जाने वाली (का स्वित्) क्या है।

द्यौरा॑सीत्पू॒र्वचि॑त्ति॒रश्व॑ आसीद् बृ॒हद्वयः॑ ।
अवि॑रासीत्पिलिप्पि॒ला रात्रि॑रासीत्पिशङ्गि॒ला ॥ १२ ॥

भा०—(द्यौः) द्यौ, वृष्टि ही (पूर्वचित्तिः) 'पूर्वचित्ति' है अर्थात् सबसे प्रथम स्मरण योग्य पदार्थ है। (अश्वः) समस्त पदार्थों को भस्म कर खा जाने वाला, सर्वव्यापक अग्नि ही (बृहत् वयः) सबसे बड़ा बल है और (अविः) सबकी रक्षिका भूमि (पिलिप्पिला) 'पिलिप्पिला' सबसे अधिक शोभा वाली है। (पिशंगिला) और 'पिशंगिला', समस्त पदार्थों के रूपों को निगल जाने वाली (रात्रिः आसीत्) रात्रि है।

राष्ट्र पक्ष में—सबसे पूर्व चयन का निर्माण करने योग्य, (द्यौः) ज्ञान प्रकाश वाली राजसभा है। (अश्वः) सर्व राष्ट्र का भोक्ता राजा या वेग से जानने वाले रथ, वाहन आदि तुरंग बल ही (बृहद् वयः) बड़ा भारी बल है। (अविः) सबकी रक्षा करने वाली राजशक्ति (पिलिप्पिला) पालन करने वाली 'राष्ट्र की श्री शोभा' है। (रात्रिः) समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली, सबको रमानेवाली 'रात्रि' राजशक्ति ही (पिशंगिला) समस्त पदार्थों को अपने भीतर निगल जाती है अपने वश करती है।

श्रीर्वै पिलिप्पिला। अहोरात्रे वै पिशंगिले। शत० १३। २। ६। १६॥ या वृष्टिकारणभूता द्यौः सैव प्रथमतश्चेतयमाना। प्रथमतो वृष्टौ सत्यां पश्चादोषधिद्वारा सर्वे प्राणिनो जीवन्ति। युद्धद्वारा वीरजीवनहेतुत्वादश्वो बृहद्वयः॥ अतिशयेन रूपवती पिशङ्गिला रात्रिश्च तादृशी चन्द्रिकया नक्षत्रैश्च रूपत्वप्रतिभासात् प्रजासमूहनिमित्तस्य ध्वनिविशेषस्य पिलिप्पिलेत्यनुकरणं श्रीश्च तथाविधध्वनियुक्ता यस्मिन् गृहे धनं समृद्धिस्तत्र जनबहुलतया निरन्तरं तथाविधः शब्दो भवति। इति सायणः।

वा॒युष्ट्वा॑ पच॒तैर॑वत्व॒सित॑ग्रीव॒श्छागै॒र्न्य॒ग्रोध॑श्च॒म॒सैः श॑ल्म॒लि-र्वृ॒द्ध्या। ए॒ष स्य रा॒थ्यो॒ वृषा॑ प॒ड्भिश्च॒तुर्भि॒रेद॑गन्ब्र॒ह्मा कृ॒ष्णश्च॑ नोऽवतु न॒मो॒ऽग्नये॑॥ १३॥

ब्रह्मादयो देवताः। भुरिगतिजगती। निषादः॥

भा०—हे राजन्! (त्वा) तुझको (वायुः) वायु के समान वेगवान्, शत्रुओं को प्रबल आक्रमण से उखाड़ने वाला वीर पुरुष (पचतैः) शत्रुओं

को परिपाक, पीड़न करने के साधनों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे। (असितग्रीवः) नीले गर्दन वाला, नीले मणि, विशेष चिह्न को कण्ठ में पहिनने वाला वीर पुरुष तुझे (छागैः) शत्रुओं को छेदन करने वाले अस्त्रों या वीरों से (अवतु) तेरी रक्षा करे। (न्यग्-रोधः) वट जिस प्रकार फैलता २ अपने मूल छोड़ता है उसी प्रकार जिस २ देश को विजय करे वहां २ राजा के शासन-सूत्रों को छोड़नेहारा 'वनस्पति' नाम अधिकारी (चमसैः) पर राष्ट्र को वश करने या हड़प जाने वाले सैनिकों या पिण्डभोजी, वेतनबद्ध भृत्यों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे। (शल्मलिः वृद्ध्या) और सैमर वृक्ष के समान विशाल प्रकाण्ड फैला २ कर बढ़ने और परिणाम में रुई उड़ा २ कर मानो राजा की कीर्त्ति फैलाने वाला अधिकारी या प्रधान माण्डलिक अपनी वृद्धि से तुझे बढ़ावे। (एषः) यह (अस्य) इस राजा को (राथ्यः) रथ समूहों का स्वामी (वृषा) बलवान् सेनापति (चतुर्भिः पड्भिः) चार पदों या अधिकारों से युक्त होकर (आ अगन् इत्) आवे और (अकृष्णः च) अकृष्ण अर्थात् शुक्ल, निष्पाप या शुद्ध श्वेतवस्त्र धारण करने हारा (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता (नः) हमें (अवतु) रक्षा करे। (नमः अग्नये) उस अग्निवत् तेजस्वी, वेदज्ञ, विद्वान्, अग्नि के समान तेजस्वी राजा और सेनापति का हम आदर करें।

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः॥ १४॥

ब्रह्मा । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(रश्मिना) रस्सी से (संशितः) अच्छी प्रकार बंधा (रथः) रथ अच्छा सुखकारी होता है और (हयः) घोड़ा भी (रश्मिना) रासों से बंधा हुआ वश में रहता है उसी प्रकार (अप्सुजाः) प्रजा में उत्पन्न विद्वान् (अप्सु संशितः) प्रजाओं द्वारा ही भली प्रकार नियम व्यवस्थाओं और कर्म, कर्त्तव्यों से बद्ध हो और (ब्रह्मा) ब्रह्म, वेद का जानने हारा विद्वान् ही (सोमपुरोगवः) राजा के आगे २ चलने हारा, उसका मार्गदर्शक हो।

अथवा—(अप्सुजाः) प्रजाओं में तेज से स्वामी बनने वाला राजा (अप्सु संशितः) प्रजाओं द्वारा ही खूब तीक्ष्ण, एवं कर्त्तव्यपरायण, व्यवस्थाबद्ध किया जाकर (ब्रह्मा) महान् शक्तिमान् प्रभु और विद्वान् के समान (सोम-पुरोगवः) ऐश्वर्य या राष्ट्र का नेता हो।

अध्यात्म में—(रथः) देह, (रश्मिना) सूर्यकिरणवत् तप से (संशितः) तीक्ष्ण हो। (हयः) इन्द्रियां भी तप से तीक्ष्ण हों। (अप्सुजाः) प्राण भी तप से तप्त हों और तब (ब्रह्मा) विद्वान् योगी (सोम-पुरोगवः) सोमनाम ब्रह्म रस प्राप्ति में अग्रसर होता है।

स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥

विद्वान्। विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन्! बलवन्! तू (तन्वम्) अपने शरीर या विस्तृत राष्ट्र को (स्वयम्) स्वयं, अपनी इच्छानुसार (कल्पयस्व) समर्थ, बलवान् बना। (स्वयं यजस्व) स्वयं यथेच्छ दान कर, स्वयं संगति लाभ कर। (स्वयं जुषस्व) स्वयं राष्ट्र का सेवन कर। (अन्येन) तेरे से भिन्न कोई, तेरा शत्रु (ते) तेरे (महिमा) महान् सामर्थ्य को (न संवशे) प्राप्त न कर सके वा तेरी महिमा को कोई नष्ट नहीं करे।

न वाऽउऽएतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽइदेषि पथिभिः सुगेभिः।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥१६॥

सविता देवता। विराड्जगती। निषादः ॥

भा०—(न वा) और न ही (एतत्) इस प्रकार शक्तिशाली हो जाने पर तू (म्रियसे) मार सकता है। (न देवान्) और न देवों, अन्य विद्वान् एवं शासक और विजयशील, या तुझे चाहने, या तुझसे धन चाहने वाले लोगों को (इत्) ही (रिष्यसि) विनष्ट करे। तू (सुगेभिः) सुख से गमन करने योग्य, सुगम (पथिभिः) प्रजापालन के मार्गों से (एषि) गमन कर। (यत्र) जिस मार्ग में (सुकृतः) उत्तम सदाचारी पुरुष (आसते) स्थित रहते

हैं और (यत्र) जिस पर उच्च यशस्वी पद को (ते ययुः) वे प्राप्त होते हैं। (देवः सविता) सबका द्रष्टा और दाता, सर्वोत्पादक परमेश्वर या मार्गदर्शक प्रेरक विद्वान् (तत्र) वहां ही तुझे (दधातु) स्थापित करे। अध्यात्म में—इसी प्रकार देह में आत्मा अमर है वह सुख से इन्द्रियों का शासक है, ईश्वर उसे पुण्य मार्गों लोकों में स्थापित करे।

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैताऽअपः। वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अपः। सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अपः ॥ १७ ॥

अग्न्यादयो देवताः। अतिशक्वर्यौ। पंचमः ॥

भा०—(अग्निः) 'अग्नि', ज्ञानी (पशुः) सर्वद्रष्टा, मार्गदर्शक, (आसीत्) है। (तेन) उससे विद्वान् लोगों के समान दिव्य पांच भूत (अजयन्त) यज्ञ करते हैं। (सः) वह (एतं लोकम्) इस लोक को (अजयत्) विजय करता है, (यस्मिन् अग्निः) जिसमें अग्नि तत्व ही मुख्य बल है। तू भी हे राजन्! अग्नि के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र का निरीक्षक, साक्षी होकर रह। और इससे (सः) वह यह भूलोक (ते लोकः) तेरा अपना आश्रयस्थान (भविष्यति) हो जाएगा। तू (तं जेष्यसि) उस लोक को विजय कर लेगा। इसके लिये (एताः अपः) इन आप्त पुरुषों का ज्ञान रस और इन प्रजाओं के ऐश्वर्य रस का (पिब) पान और पालन कर। (वायुः पशुः आसीत्) 'वायु' सर्वद्रष्टा है, (तेन अयजन्त) देवगण उससे यज्ञ करते हैं। (सः) वह वायु (एतम् लोकम् अजयत) इस अन्तरिक्ष लोक का विजय करता है (यस्मिन् वायुः) जिसमें वायु प्रधान बल है। (ते सः लोकः भविष्यति) तेरा वही लोक हो जायगा (तं जेष्यसि) तू उसका विजय करेगा। (एताः अपः पिब) तू इन आप्त-

जनों और प्रजागणों के ज्ञान और ऐश्वर्य का पान, पालन कर। (सूर्यः पशुः आसीत्) सूर्य सर्वद्रष्टा है। देवगण (तेन अजयन्त) उससे ही यज्ञ करते हैं। (सः एतं लोकम् अजयत्) सूर्य उस लोक का विजय करता है (यस्मिन् सूर्यः) जिसमें सूर्य स्वयं विराजता है। (तं जेष्यसि, ते सः लोकः भविष्यति) तू उसका विजय करेगा तेरा भी वही लोक हो जायगा। (एताः अपः पिब) इन आप्तजनों के ज्ञानों और प्रजाओं का ऐश्वर्य पान और पालन कर।

अर्थात् राजा वायुवत् प्रचण्ड हो तो उसको मुख्य बनाकर 'देव' विजिगीषु जन युद्ध-यज्ञ करते हैं। उससे वे अन्तरिक्ष लोक अर्थात् मध्यम राजाओं पर विजय करते हैं। इससे वह अन्तरिक्ष में वायु के समान और प्रजा का प्राण होकर विराजता है। यही राजा का अन्तरिक्ष विजय है। इसी प्रकार सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी को मुख्य बनाकर विजिगीषु युद्ध-यज्ञ करते हैं। इससे वह स्वयं राजा सूर्य के समान 'द्युलोक' अर्थात् समस्त राजाओं और विद्वानों पर वश पाता है। वह समस्त राजाओं के बीच, सूर्य के समान विराजता है। इन तीनों दशाओं में उसको प्रजा का ऐश्वर्य और विद्वानों का साहाय्य प्राप्त करना और उनका पालन करना आवश्यक है। इस मन्त्र की योजना अ० ६। १० के साथ लगाकर देखो॥

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥ १८॥

प्राणादयो देवताः। विराड् जगती। निषादः॥

भा०—(प्राणाय, अपानाय, व्यानाय स्वाहा) प्राण, अपान और व्यान इन तीनों मुख्य शरीर के प्राणों को उत्तम रीति से प्रयोग करो और उनको उत्तम सामर्थ्य प्राप्त हो।

सामर्थ्यवान् पुरुष के न होने से राजा से रहित राज्यलक्ष्मी कहती है हे (अम्बे) मातः पृथिवि ! हे (अम्बिके) मातः पृथिवि ! हे (अम्बालिके)

मातः पृथिवि ! (अश्वकः) कुत्सित राजा को (ससस्ति) आलस्य और अज्ञान में पड़ा सोता है। (सुभद्रिकाम्) उत्तम सुखसम्पदा से युक्त (काम्पीलवासिनीम्) सुन्दर सुखप्रद, शोभाजनक वस्त्रों से ढकी सुन्दरी स्त्री के समान (काम्पीलवासिनीम्) सुखों के बांधने हारे पति, राष्ट्रपति को अपने ऊपर बसाने में समर्थ (मा) मुझको (कः चन) कोई भी वीर-जन (न नयति) प्राप्त करता। कुत्सित आचरण वाला राजा मुझ राज्यलक्ष्मी को क्या भोग कर सकता है ? वीरभोग्या वसुन्धरा।

'काम्पीलवासिनीम्'—काम्पीलनगरे हि सुभगा सुरूपा विदग्धा स्त्रियो भवन्तीत्युवटः। तथैव च महीधरः। काम्पीलशब्देन वस्त्रविशेष उच्यते तं वस्ते आच्छादयति इति काम्पीलवासिनी इति सायणस्तैत्तिरीयसंहिता-भाष्ये। का० ७। ४। १९॥ शृङ्गारार्थं विचित्रदुकूलवस्त्रोपेते इति सायणः। तै० ब्रा० भाष्ये का० ३। ९। ६॥ कं सुखं पीलयति बध्नाति गृह्णाति इति कंपीलः। स्वार्थे अण्। तं वासयितुं शीलमस्यास्ताम् लक्ष्मीम्। इति दयानन्दः स्वभाष्ये। कं सुखं पीलयति बध्नाति इति कम्पीलः, अथवा कं प्रजापतिं पीड़यति। डो लत्वं छान्दसम्। सुखेन बध्नाति आश्लिष्यति यः सः पतिः प्रियतमः। तं वासयितुं शीलमस्याः स्त्रियाः राजलक्ष्म्याः वा। सा काम्पीलवासिनी। अथवा कामेन प्रेम्णा यथाकामं वा पीडयति आश्लि-ष्यति यः स काम्पीलः। अलोपो लत्वं च छान्दसम्। पृषोदरादित्वात् साधुः। तं वासयति तदधीनं वा बसति या सा काम्पीलवासिनी स्त्री। तत्सादृश्याच्च राजलक्ष्मीः। वेदे नगरविशेषाप्रसिद्धेरुवटमहीधरौ न समीचीनौ।

स्वयंवरा कन्या का माता आदि बूढ़ी स्त्रियों से ऐसा कहना कि—हे माता ! क्षुद्र पुरुष तो आलस्य में सोते असावधान रहते हैं। मुझ कल्याणी को कोई वैसा पुरुष न प्राप्त करे, बहुत उपयुक्त है। उस पक्ष में योजना नीचे लिखे प्रकार से है।

हे (अम्बे अम्बालिके अम्बिके) माता ! हे दादी ! हे परदादी ! (अश्वकः ससस्ति) क्षुद्र पुरुष प्रायः आलस्य किया करता है। वह

(सुभद्रिकाम्) उत्तम कल्याण लक्षणों से युक्त (काम्पीलवासिनीम्) शुभ, सुखप्रद पति के पास रहने योग्य (माम्) मुझको (कः चन) कैसा कोई भी (न नयति) न ले जावे ।

इससे अगले १९–३१ तक १२ मन्त्र राष्ट्र की प्रजा और राजा के प्रबल, दुर्बल और समबल के परस्पर भोग्य-भोक्तृरूप बर्त्ताव का वर्णन करते हैं और श्लेष से गृहपति और गृहपत्नी के परस्पर रहस्य का भी वर्णन करते हैं । यहां विशेषतः प्रथम पक्ष मुख्य है क्योंकि शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण दोनों में उस पक्ष को लेकर ही व्याख्यान है और अश्वमेध का प्रकरण भी उसी अर्थ को पुष्ट करता है ।

अध्यात्म में—हे (अम्बे) जगत् के माता स्वरूप परमात्मन् ! सबको परमोपदेश देने वाली शक्ते ! (अश्वकः ससस्ति) कुत्सित विषयों का भोक्ता मनुष्य प्रमाद में पड़ा सोता है । और (माम्) मुझ पुरुष या आत्मा को (शुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्) अति कल्याणकारिणी एवं परम सुखमय ब्रह्म में रहने वाली ब्रह्मविद्या के पास (मा कश्चन न नयति) कोई नहीं ले जाता ।

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १९ ॥

गणपतिर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—हे (वसो) जगत्, राष्ट्र को बसाने हारे ! राजन् ! हे विद्वन् ! प्रभो ! हम (त्वा) तुझको (गणानाम्) समस्त गणों का (गणपतिम्) गणपति, गणनायक, (हवामहे) स्वीकार करते हैं । (प्रियाणाम्) सब प्रिय पदार्थों का तुझको (प्रियपतिम्) प्रियपति, पालक (हवामहे) स्वीकार करते हैं । और (निधीनाम्) समस्त खजानों का तुझको (निधिपतिम्) निधिपति, कोशपाल, (हवामहे) स्वीकार करते हैं । हे (वसो) राष्ट्र को बसाने हारे राजन् ! तू (मम) मुझ राष्ट्र-प्रजा का पति है

(अहम्) मैं प्रजा (गर्भधम्) 'गर्भ' = ग्रहण या वश करने के सामर्थ्य को धारने वाले तुझ स्वामी को (आ अजानि) प्राप्त होती हूँ। तू (गर्भधम्) ऐश्वर्यों को धारने वाली मुझे (अजासि) प्राप्त हो। (२) पति पत्नी के पक्ष में—हे पते ! मैं समस्त गणों में गणपति, प्रियजनों में प्रियपति, ऐश्वर्यों का 'निधिपति' तुझको ही कहती हूँ। मैं गर्भ धारण कराने में समर्थ तुझको (आ अजानि) प्राप्त होती हूँ। गर्भ धारण में समर्थ, उर्वरा मुझ पत्नी को तू प्राप्त हो। (३) परमेश्वर सबका गणपति, प्रियपति और निधिपति है। प्रकृति हिरण्यगर्भ को धारण करने वाले मैं (आ अजानि) प्राप्त होती हूँ और (गर्भधम्) संसार को अपने में अव्यक्त रूप में धारण करने वाली प्रकृति को (त्वम् अजासि) तू प्राप्त होता, स्पन्दित करता और सृष्टि को उत्पन्न करता है। अथवा (अहम्) मैं जीव (गर्भधम्) हिरण्यगर्भ के धारक, संसार को अपने बीच धारने वाली प्रकृति का भी धर्त्ता तुझको प्राप्त होऊं।

'गर्भधं'—गर्भधारकं कलत्ररूपं इति सायणः। तै० ब्रा० भा०। 'गर्भधात्री' इति सायणः। तै० सं० भा० ॥

ताऽ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

लिंगोक्ते राजप्रजे, पतिपत्नी च देवते। स्वराड् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(तौ उभौ) वे हम दोनों राजा और प्रजा (चतुरः पदः) चारों पद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों को (सम्प्रसारयाव) भली प्रकार विस्तृत करें, और (स्वर्गे लोके) सुखमय लोक में (प्र ऊर्णुवाथाम्) एक दूसरे को अच्छी प्रकार ढांपें, रक्षा करें, अच्छा खावें, अच्छा पहनें। (वृषा) राष्ट्र का प्रबन्ध करने वाला राजा और (रेतोधाः) वीर्य, बल,

२०—तौ सह चतुरः पदः। संप्रसारयावहै। सुवर्गे लोके सं प्रोर्णवाम्। वृषांग रेतोधा रेतो दधातु। इति तै० सं०। काण्व० च।

पराक्रम धारने हारा (रेतः) राष्ट्र में भी पराक्रम (दधातु) धारण करावे। (२) पतिपत्नी पक्ष में—(तौ उभौ) वे दोनों पति पत्नी (चतुरः पदः) चारों पद, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को विस्तृत करें। सुखमय लोक, गृहस्थ-आश्रय में उत्तम रीति से एक दूसरे की कवचवत् रक्षा करें। वृषा, वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष (वाजी) बल वीर्यवान् (रेतोधा) स्वयं वीर्य धारण करने और स्थापन करने में समर्थ होकर (रेतः) वीर्य धारण करे, करावे।

महीधर और उवट ने इस मन्त्र का भ्रष्ट और असंगत अर्थ किया है, वह अमान्य है। 'सम्प्रोर्णुवाथाम्' क्षौमं वस्त्रं सम्यगाच्छादयतम्। इति सायणः। तै० सं० भा० का० ७। ४। १९॥

उत्स॑क्थ्या॒ऽअव॑ गु॒दं धे॑हि॒ सम॒ञ्जिं चा॑रया वृषन्।
य स्त्री॒णां जी॑व॒भोज॑नः॥ २१॥

लिंगोक्ता वृषा देवता। भुरिग्गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (वृषन्) दुष्टों को दमन करने वाले! तू (उत्सक्थ्याः) सत्संग से वर्तमान प्रजा के बीच में (गुदम्) केवल क्रीडाशील, व्यसनी पुरुष को (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के ऊपर (जीवभोजनः) अपनी अजीविका करता है (अव धेहि) नीचे गिरा और (अञ्जिम्) विद्या और न्याय के प्रकाश को (सं चारय) अच्छी प्रकार फैला। पतिपत्नी पक्ष में स्पष्ट है। अञ्जिः शुक्लवर्णः। इति सायणः। तै०। सं ७। ३। १७॥

य॒का॒स॒कौ श॑कुन्ति॒का ह॒लगिति॒ वञ्च॑ति।
आह॑न्ति ग॒भे प॒सो निग॑ल्गलीति॒ धार॑का॥ २२॥

राजप्रजे देवते। विराड अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(यका असकौ = या असौ) यह जो (शकुन्तिका) शक्तिसम्पन्न प्रजा (आहलक्) भूपति सर्वत्र कृषि के नियम हलादि चलाने के कार्य में कुशल है (इति) इस कारण (वञ्चति) भूपति को प्राप्त करती है। वह

भूमिपति (गभे = भगे) भाग्यवान् समृद्ध राजा में (पसः = सपः) संघ बने सुप्रबद्ध राष्ट्र प्रबन्ध को (आ हन्ति) प्राप्त होता है और वह (धारका) ऐश्वर्यधारक प्रजा उसकी आज्ञा को (नि गल्गलीति) अच्छी प्रकार श्रवण करती है ॥ 'निगल्गलीति'—गल श्रवणे । भ्वादिः ॥ गभः, पसः, वर्णव्यत्ययेन भगः । सपः+षप समवाये । भ्वादिः ॥ 'शकुन्तिका'—शकेरुनोन्तोन्त्युनयः । उणा० । पू० २ । ४९ ॥ शक्नोतीति शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः ॥ इति दया० उणा० । 'यका', 'असकौ', अकच् प्राक् टेः ॥

(२) दम्पति पक्ष में—(यका) जो (शकुन्तिका) शक्तिमती प्रजोत्पत्ति में समर्थ स्त्री (असकौ आहलक्) यह पुरुष मेरे हृदय का विलेखन, प्रेम से अंकन या आकर्षण करता है (इति) इस कारण से (वञ्चति) उसको प्राप्त हो वह पुरुष, (गभे पसः आहन्ति) उसके सौभाग्य के निमित्त उससे संगत होता है । वह (धारिका) गर्भ धारण में समर्थ स्त्री (निगल्गलीति) उसके वचन आदर से श्रवण करती है । अर्थात् शक्तिमती स्त्री समर्थ पति को प्राप्त हो । वे सुसंगत होकर रहें । प्रेम से एक दूसरे के वचन श्रवण करें ।

यक्ोऽसकौ शकुन्तक ऽआहलगिति वञ्चति ।
विवक्षतऽइव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥२३॥

राजप्रजे देवते । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(यकः = यः) जो पुरुष (शकुन्तः) शक्तिशाली है, (असकौ = असौ) वह (आलहक्) मैं सब प्रकार से भूमि को विलेखन करने में समर्थ हूँ (इति) इस हेतु से (वञ्चति) भूमि को प्राप्त होता है । राज्य प्राप्त हो जाने पर हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! हिंसारहित ! प्रजापालन कार्य को सञ्चालन करने हारे राजन् ! (विवक्षतः ते) विशेषरूप से राष्ट्र भार को उठाना चाहने वाले तेरा पद (मुखम् इव) शरीर में मुख के समान मुख्य है । अतः तू (नः) हम लोगों से (मा अभिभाषथाः) व्यर्थ बातें मत

क्रिया कर। (२) दम्पति पक्ष में—जो पुरुष शक्तिमान् है वह (आहलक) मैं अमुक स्त्री के हृदय को खींचने में समर्थ हूँ (इति वञ्चति) इसलिये उसे प्राप्त हो। हे अध्वर्यो! गृहस्थ यज्ञ में युक्त होना चाहने वाले पुरुष! (ते विवक्षतः इव मुखम्) तेरा मुख अब विवाहेच्छु पुरुष के समान है। तू (नः मा अभिभाषथाः) अब हम सामान्य स्त्रीपुरुषों से अधिक व्यर्थालाप मत कर। महीधर ने इसमें भ्रष्ट अर्थों की पराकाष्ठा करदी है। जिसकी यहां गन्ध भी नहीं।

माता च॑ ते पि॒ता च॒ तेऽग्रं॑ वृ॒क्षस्य॑ रोहतः।
प्रति॑ला॒मीति॑ ते पि॒ता ग॒भे मु॒ष्टिम॑त॑ꣳसयत् ॥ २४ ॥

भूमिसूर्यौ देवते। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे राष्ट्र! (ते माता च) तेरा माता, निर्माता, ज्ञानवान् पुरुष, (ते पिता च) और तेरा पिता, पालक, राजा, दोनों (वृक्षस्य) भूमि को आच्छादन करने वाले शासन के (अग्रम्) मुख्य पद पर (रोहतः) आरूढ़ होते हैं। और (ते पिता) तेरा पालक राजा भी (प्रतिलामि इति) स्नेह करता हूँ इस भाव से ही (गभे = भगे) प्रजा के ऐश्वर्य के आधार पर (मुष्टिम्) दुःखों से छुड़ाने वाले सुसंगठित राष्ट्र, अथवा शत्रुनाशक शस्त्र बल को (अतंसयत्) सुशोभित करता है। 'अग्रं'—श्रीर्वै राष्ट्रस्य अग्रम्। श्रियमेवेनं गमयति। विड्वै गभो राष्ट्रं मुष्टिः। राष्ट्रम् एव विशि आहन्ति। तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः। श्री राष्ट्र का अग्र भाव है। 'गभ' प्रजा है। राष्ट्र राज्यप्रबन्ध या शासन 'मुष्टि' है। जैसे ढीले हाथ में कुछ शक्ति नहीं, उसकी मुट्ठी बांध लेने पर वह बलवान् हो जाता है वैसे प्रजा को शासन में बांध लेने पर वह दृढ़ मुट्ठी के समान हो जाती है। वह राष्ट्र ही प्रजा के आधार पर चलता है राष्ट्रपति इस प्रकार प्रजा को ही प्राप्त होता है। राजा का यह स्नेह है कि वह बिखरी प्रजा को मुट्ठी का रूप देता है, यही प्रजा की शोभा है कि स्नेह से पांचों अंगुलियों के समान

पांचों जन मिलकर एक हो जाते हैं, 'वृक्षस्य'—वृत्वा क्षां तिष्ठतीति। निरुक्तम्। 'मुष्टिम्'—मोचनाद् मोषणाद्, मोहनाद्वा। निरु० ६।१।१॥

(२) गृहस्थ पक्ष में—हे पुरुष ! (ते माता च पिता च वृक्षस्य अग्रं रोहतः) तेरे माता पिता ही गृहस्थाश्रमरूप आश्रय वृक्ष के मुख्य पद पर स्थित हैं। (ते पिता) तेरा पिता स्नेह करता हूँ इस भाव से ही (गभे = भगे) ऐश्वर्य के बल पर अथवा स्त्री के आधार पर ही अपने (मुष्टिम्) मुट्ठी के समान एक कर देने वाली पारिवारिक स्नेह की व्यवस्था को सुशोभित करता है।

माता च॑ ते पि॒ता च॒ तेऽग्रे॑ वृ॒क्षस्य॑ क्रीडतः।

विव॑क्षतऽइव ते॒ मुख॒ं ब्रह्म॒न्मा त्वं व॑दो ब॒हु॥ २५॥

अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे प्रजाजन ! हे पुरुष ! (ते माता च) तेरी माता, निर्मात्री जननीवत् राजसभा और (पिता च) पालक राजा दोनों (वृक्षस्य) पृथ्वी पर फैले राज्य के (अग्रे) मुख्य पद पर (रोहतः) विराजमान हैं। हे (ब्रह्मन्) महान् राष्ट्रपते ! और हे ब्रह्मज्ञानी विद्वन् ! (विवक्षतः इव) भार वहन करने वाले के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख्य कार्य है इसलिये हे शक्तिशालिन् ! (त्वम्) तू (बहु) बहुत सा व्यर्थ (मा वदः) मत बोला कर। उत्तरदायी जिम्मेवार पुरुष को व्यर्थ नहीं बोलना चाहिये। वह बहुत सम्भल कर बोले नहीं बहुत अनर्थ होने सम्भव होते हैं।

ऊ॒र्ध्वामे॑ना॒मुच्छ्रा॑पय गि॒रौ भा॒रꣳ हर॑न्निव।

अथा॑स्यै॒ मध्य॑मेधताꣳ शी॒ते वाते॑ पु॒नन्नि॑व॥ २६॥

श्रीर्देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार को, (हरन् इव) उठा ले जाने वाला पुरुष जिस प्रकार उसे ऊपर ले जाता है (एनाम्) इस प्रजा,

---

२५—०क्रीळतः० इति काण्व०।

पृथ्वी के शासन भार को (ऊर्ध्वाम्) उन्नत पद पर (उत श्रापय) उठा, उन्नत कर। (अथ) और (अस्यै) इस राष्ट्र प्रजा का (मध्यम्) मध्य भाग, बीच का, राजधानी का भाग (एधताम्) बढ़े, समृद्ध हो। (शीते वाते) शीतल वायु में जैसे किसान अन्न को छाज से गिरा-गिरा कर साफ करता है और वायु के बल से तुषों को दूर करता है और स्वच्छ अन्न की ढेरी को बढ़ाता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (शीते वाते) शीत अर्थात् बढ़े हुए रक्षाकारी वायु के समान प्रचण्ड बल पर राष्ट्र को पवित्र कर, उसे दुष्ट पुरुषों से रहित कर। (२) दम्पति के पक्ष में—(एनाम् ऊर्ध्वम् उत् श्रापय) इस स्त्री को तू उच्च पद पर स्थापित कर, हे पुरुष ! तू (गिरौ भारं हरन् इव) पर्वत पर बोझा उठाकर लेजाने हारे के समान विशेष उत्तरदायित्व का भार उठा रहा है। इसका मध्य भाग, गर्भाशय, पुत्र, सन्तान आदि वृद्धि को प्राप्त हो तब तू अन्न को साफ करने वाले के समान (शीते) वृद्धिकारी और (वाते) पवित्र पदार्थों के आधार पर अपने आचार व्यवहार को पवित्र रख और बालक पर उत्तम संस्कार डाल। स्त्री के गर्भिणी होने के काल में पुरुष को भी संयम से रहना चाहिये। उसको 'शीत' अर्थात् वृद्धिकर, पुष्टिप्रद और पवित्र पदार्थों से पुष्ट करे 'शीतम्'—श्यैङ् वृद्धौ। भ्वादिः। श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः। श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम्। क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतम्। श० ३।३।१-४ ॥

ऊर्ध्वमे॑नमुच्छ्र॑यताद्गिरौ भारꣳ हर॑न्निव।
अथा॑स्य मध्य॑मेजतु शीते वाते॑ पुनन्नि॑व ॥ २७ ॥

श्रीर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(गिरौ भारं हरन् इव) पर्वत पर बोझा ले जाने वाले के समान हे प्रजे ! (ऊर्ध्वम्) ऊंचे पद पर स्थित (एनम्) इस राजा को (उच्छ्रयतात्) तू उन्नत कर (अथ) और जब (अस्य मध्यम्) इसका मध्य भाग बीच का शासन का केन्द्र-बल (शीते वाते) परिपुष्ट ऐश्वर्य के आधार पर ऐसे (एजतु) कम्पन करे, ऐसे प्रदीप्त हो जैसे (वाते) वायु में

(पुनन् इव) तुष, अन्न को साफ करता हुआ पुरुष चेष्टा करता है। अर्थात् सदा ऐसा प्रयत्न होता रहे कि राज्य का मुख्य बल देश के लुच्चे लोगों को दूर करता रहे। (२) दम्पति के पक्ष में—स्त्री पुरुष को उन्नत करे। पुरुष का मध्यभाग, धनसम्पत्ति अथवा शरीर का मध्य भाग बल से युक्त हो। और वह अपने आचार को ब्रह्मचर्य से पवित्र करे आरोग्य रहे।

यद॑स्या अं॑हुभेद्याः॑ कृधु स्थू॒लमु॒पात॑सत्।
मुष्का॒विद॑स्याऽएजतो गोश॒फे श॑कु॒लावि॑व ॥ २८ ॥

प्रजापतिर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(यद्) जब (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) पाप को भेदन करने वाली, स्वच्छ, दुष्टों से रहित प्रजा को (कृधु) दुष्टों का नाशक (स्थूलम्) स्थूल, स्थिर दृढ़ राज्य (उपातसत्) पृथ्वी पर जम जाता है। तब (अस्याः) इसके (मुष्कौ) शत्रुओं और अज्ञान का विनाश करने वाले, अथवा बन्धन से छुड़ाने वाले, अथवा सृष्टि करने वाले क्षात्र और ब्राह्मबल दोनों (गोशफे) गौ के चरण में लगे (शकलौ) खुर के दो खण्डों के समान आश्रय रूप में (राजतः) शोभा देते हैं। गौ के चरण में खुर के दो भाग शरीर को थामते हैं वैसे प्रजा में से दुष्टों के नाशक क्षात्रबल और अज्ञान, अविद्या का नाशक ब्राह्मबल, विद्वान् गण, दोनों पृथिवी के शासनरूप चरण में विराजते और पृथिवी रूप गौ का भार उठाये रहते हैं। 'मुष्कः', मुषेः कः। औणा० ३। ४१॥ अथवा 'मुखे खण्डने, इत्यस्मात् कः। षत्वं छान्दसम्। पुष्टिवद् मोचनाद्वेति निरुक्तम्। पुषेर्वा। पस्य मश्छान्दसः। 'कृधु' कृणोतेर्हिंसार्थस्य, करोतेर्वा। 'स्थूलं' तिष्ठतेः।

यद्दे॒वासो॑ ल॒लाम॑गुं॒ प्र वि॑ष्टी॒मिन॒माविषुः।
स॒क्थ्ना दे॑दिश्यते॒ नारी॑ स॒त्यस्या॑क्षि॒भुवो॒ यथा ॥ २९ ॥

देवाः विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

२८—मुष्काइद० इति काण्व०।

भा०—(यत्) जब (देवासः) विद्वान् पुरुष (ललामगुम्) उत्तम वाणी वाले, (विष्टीमिनिम्) विशेष दया के भावों से युक्त, अथवा प्रजा के विविध कर्मों के विवेचक, न्यायाधीष पुरुष को (प्र आविपुः) प्राप्त होते हैं तब जैसे (सक्थ्ना) शरीर के जंघा भाग से (नारी देदिश्यते) स्त्री या मादीन का पता लग जाता है, उसी प्रकार (अक्षिभुवः) आंख से देखे प्रत्यक्ष (सत्यस्य) सत्य और उसके आश्रय पर हुए अनुमान ज्ञान का भी (देदिश्यते) वर्णन किया जाता है ।

'ललामगुः' ललामं सुखं कर्तुं गच्छति इति ललामगुः । इति उवटः । (विष्टीमिनम्) विविधाः स्तीमाः आर्द्रीभूताः पदार्था यस्मिन् अथवा 'विष्टीमिनम्' विष्टीः कर्माणि वेतनानि वा मिनोति, माति, मन्यते, विवेचयति वा, शब्दयति वा स 'विष्टीमी' तम् । माङ् माने शब्दे च अयादिः माङ् माने । दिवादिः । ललामः ललाटे श्वैत्ययुक्तः इति सायणः । राष्ट्रपक्ष में— नारी पुरुषों की सभा । (सक्थ्ना) समवाय शक्ति से देखी जाती है । पच समवाये । नारी नराणाम् इयम् ॥

यद्ध॑रि॒णो यव॒मत्ति॒ न पु॒ष्टं प॒शुं मन्य॑ते ।
शू॒द्रा यदर्य॑जारा॒ न पोषा॑य धनायति ॥ ३० ॥

राजा देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जब (हरिणः) हरिण (यवम्) जौ को (अत्ति) खाता है तब क्षेत्रपति (पशुम्) पशु को (पुष्टम्) पुष्ट हुआ (न मन्यते) नहीं मानता । प्रत्युत वह अपने खेत का विनाश हुआ जानता है । इसी प्रकार यदि सत्ताधारी लोग यवरूप प्रजा को खा जायं तो प्रजास्वामी राजा (पशुम्) सत्ताधिकारी को पुष्ट हुआ नहीं मानता, प्रत्युत प्रजा का विनाश होता देख दुःखी होता है । इसलिये राजा प्रजा को हानि पहुँचा कर राजशक्ति को पुष्ट न करे । (यद्) जब (शूद्रा) शूद्र वर्ण की स्त्री दासी (अर्यजारा) स्वामी को जार रूप से प्राप्त करती है तब वह (पोषाय) अपने कुटुम्ब पोषण के लिये धन नहीं प्राप्त कर पाती । इस प्रकार जो प्रजा

(शूद्रा) केवल श्रमशील होकर (अर्य-जारा) अपने स्वामी की बल वृद्धि के लिये ही स्वयं निर्बल होती रहती है और वह (पोषाय) अपने को समृद्ध वा पुष्ट करने के लिये (न धनायति) धन की आकांक्षा नहीं कर पाती तब वह नष्ट हो जाती है। इसलिये प्रजा को चाहिये कि वह राजा के भोग ऐश्वर्य के बढ़ाने के लिये अपना नाश न करे। इसी कारण विद्वान्-जन वैशीपुत्र या वैश्यवृत्ति के राजा का अभिषेक नहीं करते, वह प्रजा का समस्त ऐश्वर्य स्वयं हर लेता है, और प्रजा को समृद्ध नहीं होने देता।

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते।
शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते॥ ३१॥

राजप्रजे देवते। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(यत्) जो (हरिणः) हरिण के समान राजा (यवम्) यव के समान प्रजाजन को खा लेता है वह राजा (पुष्टम्) पुष्ट प्रजाजन को (बहु) अधिक आवश्यक (न मन्यते) नहीं जानता। इसी प्रकार (शूद्रः) शूद्र वर्ण का पुरुष, नौकर (यत्) जो (अर्यायै जारः) श्रेष्ठ गृहस्वामिनी का भोग करता है वह भी (पोषम) अपने भरण पोषण की आजीविका पर (न अनुमन्यते) विचार नहीं करता। अर्थात् जो राजा अपनी प्रजा को लूट कर पीड़ित करके खाता है वह उस हरिण के समान है जो खेत में लगे जौ को खा जाता है और खेत के जौ को बढ़ने नहीं देता। इसी प्रकार वह राजा उस शूद्र, नौकर के समान है जो व्यभिचार से घर की मालकिन का भोग करके उसका, उसके यश का नाश कर देता है और उसकी कीर्ति और लक्ष्मी की परवाह नहीं करता। व्यसनी राजा दुराचारी भृत्य के समान समृद्ध प्रजा को लूट खसोट के दरिद्र कर देता है, उसकी समृद्धि को बढ़ने नहीं देता और प्रजा के आचार, व्यवहार, मान, धन सबका नाश करता है।

दधिक्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण ऽआयूंषि तारिषत्॥ ३२॥

दधिक्रावा । ऋषिः जिष्णुर्वाजी, राजा देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(दधिक्राव्णः) धारक पोषक पुरुषों को प्राप्त होने वाले, (जिष्णोः) विजयशील, (वाजिनः) ऐश्वर्यवान्, (अश्वस्य) राष्ट्र के भोक्ता पुरुष को (अकारिषम्) मैं नियत करता हूँ । वह (नः) हमारे (मुखा) मुख्य पदों को (सुरभि) उत्तम, बलवान्, यशस्वी (करत्) बनावे । (नः आयूंषि) हमारे जीवनों को (प्र तारिषत्) चिरकाल तक स्थिर करे ।

गायत्री त्रिष्टुब् जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

वाचः विद्वांसो देवताः । उष्णिक् । ऋषभः ।

भा०—हे पुरुष ! (गायत्री) गायत्री, (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप्, (जगती) जगती, (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् ये छन्द (पंक्त्या सह) पंक्ति छन्द के साथ और (बृहती) बृहती (ककुप्) ककुप् ये दोनों (उष्णिहा) उष्णिक् छन्द के साथ मिलकर (सूचीभिः) ज्ञान को सूचित करने वाली ऋचाओं से तेरे हृदय को शान्त करती हैं । (गायत्री) गान और उपदेश करने वालों को त्राण, पालन करने वाली, (त्रिष्टुप्) तीनों प्रकार के सुखों को वर्णन करने वाली, (जगती) जगत् में विस्तृत शक्ति, (अनुष्टुप्) सबको अनुकूल उपदेश करनेहारी, (पंक्त्या सह) परिपाक या पुनः २ अभ्यास क्रिया के सहित (बृहती) बड़े प्रयोजन वाली, (ककुप्) सुन्दर पदलालित्य वाली वाणी, (उष्णिहा) उत्तम स्नेहमयी वाणी के साथ मिलकर (सूचीभिः) ज्ञान और साधनों की सूचना देनेवाली अथवा वस्त्रखण्डों के समान नाना देश के भागों को सन्धियों द्वारा मिलाकर, सींकर एक कर देने वाली सन्धिकारिणी, वाणियों से विद्वान् लोग, हे राजन् ! (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति प्रदान करें ।

३३—'वाचः', इति पदं ३५ मन्त्रादाकृष्यते ।

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

वाचः, प्रजाः देवताः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे पुरुष (द्विपदाः) दो चरणवाली मानव प्रजा (याः च चतुष्पदाः) और जो चार चरणवाली पशु प्रजा (याः त्रिपदाः च षट्पदाः) और जो तीन व छः चरणवाली क्षुद्रजन्तु प्रजा (विच्छन्दाः) बिना छन्द की स्थावर और (सरच्छन्दाः) जो छन्द गति और क्रियाओं वाली हैं वे सब प्रकार की वाणियों के समान भी (सूचीभिः) विशेष २ अभिप्राय बोधक शैलियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें ।

(२) (द्विपदाः) ब्रह्मचारी वर्ग वा मानव प्रजा (चतुष्पदाः) गृहस्थ वर्ग वा पशुगण (त्रिपदा) वानप्रस्थ, (षट्पदा) षट्-साधनी, मुमुक्षु, पक्षी व क्षुद्रजन्तु (विच्छन्दाः) त्यागी (सच्छन्दाः) विशेष साधननिष्ठ ये सब भी तुझे ज्ञानप्रद वाणियों से सुखी करें ।

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

वाचः प्रजाः देवताः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(महानाम्न्यः) 'महानाम्नी' नामक वेदवाणियां, (रेवत्यः) रेवती नामक ऋचाएं और (विश्वाः आशाः) समस्त 'आशा' शब्दवाली ऋचाएं, (प्रभुवरीः) 'प्रभु' शब्दवाली, (मैघीः) मेघ सम्बन्धी ऋचाएं, ये सब (वाचः) वाणियां (सूचीभिः) अपनी ज्ञानसूचक शैलियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें । ऊपर की तीनों ऋचाएं वाणियों के साथ २ प्रजाओं का भी वर्णन करती हैं । जैसे—(गायत्री) ब्राह्मण वर्ग, (त्रिष्टुप्) क्षत्रिय वर्ग, (जगती) वैश्य वर्ग, (अनुष्टुप्) भृत्य वर्ग, (पंक्ति) पञ्चजन, (बृहती) बड़े राष्ट्र की जनपदवासिनी या बड़ी शक्तिवाली, (उष्णिहा) सबके प्रेमी, (ककुप्) सर्वश्रेष्ठ पुरुष ये अपनी ज्ञानसूचक वाणियों से हृदय को शान्त करें ।

(२) (महानाम्न्यः) बड़ी यशस्विनी, (रेवत्याः) धन धान्य सम्पन्न, (विश्वाः आशाः) समस्त दिशाओं में बसी, (प्रभूवरीः) प्रभूत, बल और धन सामर्थ्य वाली, (मैघीः) मेघ के समान सब पर सुख वर्षण करनेवाले ज्ञानोपदेशक वर्ग, (विद्युतः) विद्युत के समान प्रकाश देने वाले शिल्पिवर्ग, (वाचः) वेद वाणियों के वक्ताजन ज्ञानसाधनों से तुझे (शम्यन्तु) शान्ति दें।

नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया ।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

स्त्रियो देवताः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे राजन् ! (ते) तेरे राष्ट्र को (पत्न्यः) पालन करने वाली (नार्यः) नेता पुरुषों की बनी राजसभाएं और (नार्यः) पुरुषों के हित के लिये बनी सेनाएं, (मनीषया) बुद्धि से (ते) तेरे (लोम) काटने योग्य, उच्छेद्य शत्रु को, नाई जिस प्रकार केशों को पकड़ कर काटता है उसी प्रकार (विचिन्वन्तु) विशेषरूप से पकड़ें, उनका चुन २ कर नाश करें और (देवानां पत्न्यः) विद्वानों की पालक (दिशः) दिशाओं में रहनेवाली प्रजाएं और सेनापति की आज्ञा में मार्ग देखनेहारी सेनाएं (सूचीभिः) अपनी ज्ञानसूचक नीतियों से और सेनाएं शस्त्रों से (त्वा शम्यन्तु) तुझको शान्ति प्रदान करें ।

रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः ।
अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

रजतादयः स्त्रियो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(रजताः) राग से युक्त, (हरिणीः) मन को हरने वाली, (सीसाः) प्रेम से बांधने वाली, (युजः) गृहकार्य में चतुर, समस्त कार्यों में सहयोग देने और सावधान रहने वाली स्त्रियाँ (कर्मभिः) धर्मानुकूल क्रियाओं द्वारा (अश्वस्य) हृदय में व्यापक, (वाजिनः) बलवान् श्रेष्ठ पुरुष की (त्वचि) रक्षा में, उसके साथ (युज्यन्ते) जोड़ दी जाती हैं, वे (सिमाः) बद्ध होकर (शम्यन्तीः) स्वयं शान्ति सुख प्राप्त करती हुईं उस

को भी (शम्यन्तु) सुख प्रदान करें। (२) राजाप्रजा पक्ष में—(रजताः) अनुरक्त या सुवर्णादि धनैश्वर्य से सम्पन्न, (हरिणीः) हरणशील, बलवती, (सीसाः) और सन्धियों से या वेतनों से बंधी (युजः) राज्य कार्यों में सहयोग देने वाली, प्रजाएं (अश्वस्य वाजिनः) राष्ट्र के भोक्ता, बलवान् पुरुष के (त्वचि) रक्षा में (कर्मभिः युज्यन्ते) कर्मों में नियुक्त की जांय। वे (सिमाः) बद्ध होकर (शम्यन्तीः) स्वयं शान्त रहकर (शम्यन्तु) राजा को सुखी करें।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं।
इहेहैषाङ् कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥३८॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १०। ३२॥

कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति।
क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

भा०—हे प्रजाजन! (त्वा कः आछ्यति) तुझको कौन विद्वान् पुरुष सब तरफ से काटता, या दण्डित करता है? (त्वा कः विशास्ति) तुझको कौन नाना प्रकारों से विविध शास्त्रों का उपदेश करता है (ते गात्राणि) तेरे अंगों को (कः शम्यति) कौन सुख पहुँचाता है। (कः उ) कौन विद्वान् पुरुष (ते शमिता) तुझे शान्ति प्राप्त करता है। उत्तर (कः) सुखकारक, प्रजापालक राजा ही प्रजा को दण्ड देता है। वही उस पर शासन करता है, वही राज्य के समस्त अंगों को सुखी करता है, वही उसका (शमिता) शान्तिप्रद है।

ऋतवस्त ऽऋतुथा पर्वं शमितारो वि शासतु।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

प्रजाः, ऋतवो देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(ऋतवः) सत्यज्ञानवान्, राजसभा के सदस्यगण, (ऋतुथा) अपने ज्ञान के अनुसार (शमितारः) शान्तिदायक होकर (पर्व) प्रजा-

पालन करने के कार्य का (वि शासतु) विविध रूपों से उपदेश या शासन करें। और (संवत्सरस्य) समस्त प्राणियों और लोकों को बसाने वाले सर्वाश्रय राजा के (तेजसा) तेज, बल पराक्रम से (शमीभिः) शान्तिदायक उपायों से हे राष्ट्र (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति प्रदान करें, सुख पहुँचावें। सदस्या ऋतवोऽभवन्। तै० ३।१२।९।४॥ ऋतवो वै विश्वेदेवाः। यजु० १२।६१॥ ऋतवो वै वाजिनः। कौ० ५।२॥ ऋतवौ वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य। ऐ० १।१३॥ जिस प्रकार कलात्मक संवत्सर में ऋतुएं हैं उसी प्रकार राजा के अधीन विद्वान्, कार्यकुशल मुख्य राज-सभासद्, शासक पुरुष 'ऋतु' हैं। वे सदा प्रजापालन के नये-नये उपाय सोचें।

अर्द्धमासाः परूंथंषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टथंसूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

प्रजाः राष्ट्रं वा देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—संवत्सर के पर्वों को धर्ममासों और मासो में विभक्त करते हैं वैसे ही हे राष्ट्र! (ते) तेरे (परूंषि) पालन कार्य, राज्यव्यवस्था के अंगों को (अर्धमासाः) विशेष समृद्ध विद्वान् पुरुष और (मासाः) विद्वान् पुरुष (शम्यन्तः) शान्ति प्राप्त करने हारे (आ च्छ्यन्तु) सर्वत्र विभक्त करें। मापने में कुशल जन भूमिरूप राष्ट्र को माप-माप कर विभक्त करें (अहोरात्राणि) वर्ष में दिन और रात्रि के समान विद्यमान (मरुतः) विद्वान् दण्डव्यवस्था में नियुक्त राजपुरुष (ते) तेरे व्यवस्था कार्य में (विलिष्टम्) होने वाली त्रुटि को (सूदयन्तु) विनष्ट करें। सामान्य मनुष्य भी पर्वों को मास, पक्ष और दिन, रात्रि में विभक्त करें। और तुझे शान्ति दें विद्वान् पुरुष त्रुटि को दूर करें।

दैव्याऽअध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः॥ ४२॥

राष्ट्रं देवता। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे राष्ट्र ! (देवाः) विद्वानों में भी कुशल, श्रेष्ठ कोटि के (अध्वर्यवः) यज्ञ के समान नष्ट न होने वाले राष्ट्र के पालनकर्त्ता पुरुष (त्वा) तुझे (छ्यन्तु) विभक्त करें और (वि शासतु च) विविध उपायों से शासन करें। और वे (ते) तेरे (गात्राणि) अंगों को (पर्वशः) प्रति पर्व या पोरु-पोरु पर (शम्यन्तीः) शक्तिकारक (सिमाः) बांधने वाली मर्यादाएं, व्यवस्थाएं (कृण्वन्तु) करें।

द्यौस्ते॑ पृथि॒व्य॒न्तरि॑क्षं वा॒युश्छि॒द्रं पृ॑णातु ते।
सूर्य॑स्ते॒ नक्ष॑त्रैः स॒ह लो॒कं कृ॑णोतु सा॒धु॒या ॥ ४३ ॥

राजा देवता। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! (ते) तेरे (छिद्रम्) छिद्र को (द्यौः) आकाश और उसके समान ज्ञानमय विद्वान्‌रूप सूर्यों से प्रकाशित राजसभा (पृथिवी) पृथिवी और सर्वाश्रय राजा, (वायुः) वायु और तीव्र बलवान् सेनापति (पृणातु) पूर्ण करे। (सूर्यः) सूर्य और तेजस्वी विद्वान् राजा (नक्षत्रैः) नक्षत्रों और सामान्य प्रजाओं अथवा युद्ध में क्षत, विचलित न होने वाले वीरों के (सह) साथ (ते) तेरे में बसे (लोकम्) जनसमूह को (साधुया) साधु, सच्चरित्र (कृणोतु) बनावे।

शं ते॒ परे॑भ्यो॒ गात्रे॑भ्य॒ शम॒स्त्ववरे॑भ्यः।
शम॒स्थभ्यो॑ म॒ज्जभ्य॒ शम्व॑स्तु त॒न्वै तव॑ ॥ ४४ ॥

राजा देवता। उष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! और हे राजन् ! (ते) तेरे (परेभ्यः) पर, उत्कृष्ट अंगों को (शम् अस्तु) कल्याण और शान्ति प्राप्त हो। (अवरेभ्यः) गौण अंगों को (शम्) शान्ति प्राप्त हो। (अस्थभ्यः) शरीर में विद्यमान हड्डियों, उनके समान राष्ट्र के दृढ़ पुरुषों शत्रुओं पर शस्त्र फेंक कर परे हटाने वालों और (तव मज्जभ्यः) तेरी मज्जाओं और राष्ट्र के कण्टक शोधन करने हारे, दमनकारी, नगरों ग्रामों और वसतिस्थानों में सफाई करने वाले अधिकारी लोगों को और (तव तन्वै) तेरे शरीर और सम्पूर्ण

राष्ट्र को (शम् अस्तु) शान्ति प्राप्त हो। राजा के राष्ट्रमय शरीर, देखो अ० २०। ५ से १०, १३, ॥ 'अस्थि'—असेः क्थिन् उणादिः। ३। १५४ ॥ अस्यति प्रक्षिपति येन तद् अस्थि। 'मज्जा'—मज्जतेः मज्जति शुन्धतीति मज्जा। उणादि निपातनम्। १। १५७ ॥

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः।
किँ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ४५ ॥
सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ ४६ ॥

भा०—(४५-४६) इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो इसी अध्याय के मन्त्र ९, १० में।

किँ स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किँ समुद्रसमँ सरः।
किँ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥

जिज्ञासु देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(सूर्यं समं ज्योतिः किम्) सूर्य के समान प्रकाश कौन सा है ? (समुद्रसमं सरः किम्) समुद्र के समान तलाब कौन सा है ? (पृथिव्यै वर्षीयः) पृथिवी से भी अधिक वर्षों का, पुराना दृढ़ (किं स्वित्) कौन पदार्थ है ? (कस्य मात्रा न विद्यते) जिसका परिणाम नहीं है ?

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमँ सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

ब्रह्मादयो देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(सूर्यसमं ज्योतिः) सूर्य के समान प्रकाश (ब्रह्म) ब्रह्म, वेद, वेदज्ञ और महान् परमेश्वर का है। (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) जलों को बहाने वाला महान् जलाशय (द्यौः) आकाश या सूर्य है। (पृथिव्यै वर्षीयान्) पृथिवी से भी अधिक चिरकाल पुराना (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्, सूर्य है। अथवा पृथिवी पर (वर्षीयान्) प्रभूत जल

वर्षाने वाला, इन्द्र, वायु या मेघ है और पृथिवी से भी अधिक (वर्षीयान्) वृद्धतर, पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा समस्त पृथिवी का पूज्य है। (गौः तु) गौ, वाणी और सूर्य की किरणों की (मात्रा न विद्यते) मात्रा या परिणाम, मूल्य की अवधि कोई नहीं है।

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमा विवेशाँ३ऽ ॥४९॥

प्रष्टृसमाधातारौ देवते। ब्रह्मविषयकः प्रश्नः। निचृत त्रिष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन्! ब्रह्मन्! प्रभो! हे (देवसख) देवों, विद्वानों के परम मित्र! मैं (चितये) ज्ञान प्राप्ति के लिये (त्वा पृच्छामि) तुझ से प्रश्न करता हूँ। (यदि) क्या (त्वम्) तू (अत्र) इस देवसभा में (मनसा) ज्ञान के साथ दत्तचित्त होकर (जगन्ध) उपस्थित है। ईश्वर ज्ञानरूप से व्याप्त है ? (येषु त्रिषु पदेषु) जिन ज्ञान कराने वाले तीन साधनों या ज्ञान करने योग्य पदों और लोकों; चरणों, सृष्टि, स्थिति, संहार इन विविध सामर्थ्यों में (विष्णुः) तू व्यापक परमेश्वर ही (इष्टः) उपासना किया गया है (तेषु) उनमें ही क्या (विश्वं भुवनम्) यह समस्त जगत् (आ विवेशा) समा जाता है।

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश।
सद्यः पर्य्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवोऽअस्य पृष्ठम् ॥५०॥

परमेश्वरो देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—[उत्तर]-(तेषु) उन (त्रिषु पदेषु) सृष्टि, स्थिति और संहार, द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों जानने योग्य स्वरूपों वा लोकों में (अपि) भी (अस्मि) मैं ही हूँ (येषु) जिनमें (विश्वम् भुवनम्) समस्त उत्पन्न जगत् (आविवेश) आविष्ट है। मैं (पृथिवीम्) पृथिवी को (सद्यः) शीघ्र, सदा (परि एमि) व्याप्त हूँ। (उत द्याम्) और द्यौ, सूर्य आदि से व्याप्त आकाश में भी व्याप्त हूँ। और (एकेन अंगेन) एक अंग या एक

अंश से (अस्य दिवः) इस तेजोमय सूर्य के भी (पृष्ठम्) ऊपर के भाग या सेचन करने वाले सामर्थ्य को भी व्याप्त हूँ ।

केष्वन्तः पुरुषऽ आ विवेश कान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किꣳस्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

पुरुषः, परमेश्वरो देवता । प्रश्नः । पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(पुरुषः) पुरुष परमेश्वर (केषु) किन पदार्थों के (अन्तः) बीच (आ विवेश) प्रविष्ट है । और (कानि) कौन-कौन से और कितने तत्व (पुरुषे अर्पितानि) पुरुष के आश्रय पर विद्यमान हैं । हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मन् ! विद्वन् ! (एतत्) यह बात हम (त्वा उपवल्हामसि) तुझसे पूछते हैं ? तू (अत्र) इस विषय में (नः) हमें (किंस्वित्) क्या (प्रतिवोचासि) प्रत्युत्तर कहता है ? पुरुष, चेतन आत्मा उसमें किन तत्वों पर आश्रित है । क्या-क्या तत्व हैं ? यह प्रश्न है ।

पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पुरुषः परमेश्वरो देवता । प्रतिवचनम् । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—उत्तर—(पञ्चसु अन्तः) पांच प्राणों के भीतर (पुरुषः) पुरुष, आत्मा, चेतन, (आविवेश) प्रविष्ट है और (तानि) वे पांचों (पुरुषे अर्पितानि) पुरुष में आश्रित हैं। पांचों भूत और उन पांचों सूक्ष्म रूप पञ्चतन्मात्राओं के भीतर पुरुष, परमेश्वर आविष्ट है और वे पांचों भूत और तन्मात्राएं पूर्ण परमेश्वर में ओतप्रोत हैं । (एतत्) यह (त्वा) तुझे मैं (प्रतिमन्वानः) बतला रहा (अस्मि) हूँ । हे प्रश्न करने वाले ! (मायया) बुद्धि या ज्ञान से तू (मत्) मुझसे (उत्तरः) बढ़कर उत्कृष्ट समाधान करने वाला (न भवसि) नहीं है । पुरुष का विवेचन चरक संहिता में देखो ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ५३ ॥

द्यौरा॑सीत्पूर्वचि॑त्तिरश्व॑ऽआसीद् बृहद्वयः॑।
अवि॑रासीत्पिलिप्पिला रात्रि॑रासीत्पिशङ्गिला ॥ ५४ ॥

भा०—(५३,५४) दोनों की व्याख्या देखो अ० २३।११।१२॥

काऽ ईमरे पिशङ्गिला काऽ ई॑ कुरुपिशङ्गिला।
कऽ ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पति ॥ ५५ ॥

प्रष्टा देवता। प्रश्नः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(अरे) हे विद्वन्! बतला (का ईम् पिशङ्गिला) 'पिशङ्गिला' क्या है? (कुरुपिशङ्गिला का ईम्) 'कुरुपिशङ्गिला' क्या है? (आस्कन्दम्) उछल-उछल के (कः ईम् अर्षति) कौन चलता है। (पन्थाम्) मार्ग में (कः ईम्) कौन (विसर्पति) सरकता है।

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला।
शशऽ आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

समाधाता देवता। प्रतिवचनानि। स्वराड् उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(अरे) हे प्रश्नकर्त्तः! सुन, (पिशङ्गिला) समस्त रूपों को अपने भीतर निगल जाने वाली (अजा) 'अजा', प्रकृति है। वह स्वतः-कारण समस्त कार्य पदार्थों को विलीन कर लेती है। (श्वावित्) सेही धान्यादि अन्न को खा जाती है उसी प्रकार 'श्वा' कुत्ते के समान विषय रस भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला जीव, (कुरुपिशङ्गिला) अपने कर्मों से उत्पादित रूपों को धारण करता है इसलिये वह 'कुरुपिशंगिला' है। (शशः) शासक के तुल्य कूद-कूद कर चलने वाला, सबको क्षीण करने वाला काल 'शश' है वह (आस्कदम्) सब पदार्थों पर आक्रमण करता हुआ (अर्षति) जाता है। (अहिः) सर्प जैसे सरकता जाता है उसी प्रकार मेघ (पन्थाम्) आकाश मार्ग में (विसर्पति) जाता है। अथवा (अहिः) अविनाशी जीवात्मा (पन्थाम् विसर्पति) अपने मार्ग में जाता है।

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षरा॑णि कति होमा॑सः कतिधा समिद्धः।
यज्ञस्य त्वा विदथा॑ पृच्छमत्र कति होता॑रऽऋतुशो यजन्ति ॥५७॥

देवता । प्रश्नः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्य) इस जगत् के (कति विष्ठाः) कितने विशेष आश्रय हैं जिन पर यह स्थित है ? (कति अक्षराणि) कितने अक्षर, अविनाशी पदार्थ हैं जो कभी नष्ट नहीं होते ? (कति होमासः) कितने 'होम' अर्थात् कारण पदार्थों के संयोग-विभाग हैं ? (कतिधा समिद्धः) यह कितने प्रकारों से प्रकाशित एवं प्रेरित है, अथवा इसमें कितने प्रकाशक, प्रेरक तत्व हैं ? हे विद्वन् ! (यज्ञस्य विदथा) इन 'यज्ञ' विषयक विज्ञानों को मैं (त्वा) तुझसे (पृच्छम्) पूछता हूँ और यह भी बतला कि (कति होतारः) कितने होता (ऋतुशः) ऋतुओं के अनुकूल (यजन्ति) यज्ञ कर रहे हैं।

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः ।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति ॥५८॥

समिधो देवताः । प्रतिप्रश्नः । यज्ञो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—उत्तर—(अस्य) इस अध्यात्म यज्ञ के (विष्ठाः षट्) छः आश्रय हैं। ५ प्राण, छठा मन या आत्मा । (शतम् अक्षराणि) जीवन के सौ वर्ष, सौ अक्षर हैं। (अशीतिः होमाः) इस पुरुष यज्ञ में (अशीतिः) अन्न का अशन अर्थात् भोजन करना ही 'होम' है। (तिस्रः समिधः) तीन समिधा हैं बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य । (यज्ञस्य विदथा) यज्ञविषयक ज्ञानों को (प्र ब्रवीमि) मैं बतलाता हूँ कि (सप्त होतारः) सात होता, शिर में स्थित सात प्राण (ऋतुशः) ऋतु वा प्राणों के बल पर (यजन्ति) यज्ञ करते हैं, वे ग्राह्य विषयों से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

संवत्सररूप यज्ञ में—६ विष्ठा, आश्रय, ६ ऋतुएं हैं, (शतं अक्षराणि) सौ अक्षर हैं। अर्थात् सैकड़ों दिन रात वा जीवन के १०० वर्ष अक्षर हैं। (अशीतिर्होमाः) अन्न का भोजन ही होम योग्य पदार्थ है। तीन समिधाएं तीन मुख्य ऋतु हैं, गर्मी सर्दी और वर्षा और सात रश्मियां जल ग्रहण करने से 'होता' हैं।

को ऽअस्य वे॑द भुव॑नस्य नाभिं॒ को द्यावा॑पृथि॒वी ऽअ॒न्तरि॑क्षम् ।
कः सूर्य॑स्य वेद बृह॒तो ज॒नित्रं॒ को वे॑द च॒न्द्रम॑सं यतो॒जाः ॥५९॥

प्रष्टा देवता । प्रश्नः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्य भुवनस्य) इस उत्पन्न जगत् की (नाभिम्) नाभि, बन्धनस्थान, आश्रय को (कः वेद) कौन जानता है ? (कः द्यावापृथिवी) आकाश, भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को कौन जानता है कि वे कहां से पैदा हुए हैं ? (बृहतः सूर्यस्य) महान् सूर्य के (जनित्रम्) मूल कारण को (कः वेद) कौन जानता है ? (चन्द्रमसं कः वेद) चन्द्रमा के विषय में कौन जानता है कि वह (यतः-जाः) कहां से पैदा हुआ है ?

वेदा॒हम॒स्य भुव॑नस्य नाभिं॒ वेद॒ द्यावा॑पृथि॒वी ऽअ॒न्तरि॑क्षम् ।
वेद॒ सूर्य॑स्य बृह॒तो ज॒नित्र॒मथो॑ वेद च॒न्द्रम॑सं यतो॒जाः ॥ ६० ॥

प्रतिवचनम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—उत्तर—(अहम्) मैं (अस्य भुवनस्य) इस जगत् के (नाभिम्) परम आश्रय को (वेद) जानता हूँ । और मैं (द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्) आकाश पृथिवी और वायु स्थान, अन्तरिक्ष के विषय में जानता हूँ कि ये कहां से उत्पन्न हैं । (सूर्यस्य बृहतः) महान् सूर्य के (जनित्रम्) उत्पत्ति-स्थान को भी (वेद) जानता हूँ । (अथो) और (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा के विषय में भी जानता हूँ कि वह (यतः-जाः) जहां से उत्पन्न होता है । वह सब परमात्मा से उत्पन्न होते हैं । वह सबका कर्त्ता है और 'प्रकृति' जगत् का उपादान कारण है ।

पृ॒च्छामि॑ त्वा॒ पर॒मन्तं॑ पृथि॒व्याः पृ॒च्छामि॒ यत्र॒ भुव॑नस्य॒ नाभिः॑ ।
पृ॒च्छामि॑ त्वा॒ वृष्णो॒ऽअश्व॑स्य॒ रेतः॑ पृ॒च्छामि॑ वा॒चः प॑र॒मं व्यो॑म ६१

प्रष्टो देवता । प्रश्नः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वन् ! (त्वा) तुझसे मैं (पृथिव्याः) पृथिवी का (परम् अन्तम्) परला अन्त, सीमा (पृच्छामि) पूछता हूँ । और (पृच्छामि) पूछता हूँ कि आश्रय (यत्र) जहां (भुवनस्य) इस जगत् का (नाभिः)

केन्द्र, है ? और (पृच्छामि) पूछता हूँ कि (वृष्णः) उस महान्, सब सुखों के वर्षक (अश्वस्य) सर्वव्यापक परमेश्वर का (रेतः) उत्पादक वीर्य क्या पदार्थ है ? और (पृच्छामि) पूछता हूँ कि (वाचः) वाणी का (परमम्) परम, सर्वोत्कृष्ट (व्योम) विशेष रक्षास्थान कौन सा है।

इयं वेदिः परोऽ अन्तः पृथिव्याऽअयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयꣳ सोमो वृष्णो ऽअश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥६२

समाधाता देवता। प्रतिवचनम्। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—उत्तर—(इयं वेदिः) यह 'वेदि' (पृथिव्याः परः अन्तः) पृथिवी का परम अन्त है, सर्व श्रेष्ठ अंश है, (अयं यज्ञः) यह यज्ञ सर्व पूजनीय परमेश्वर (भुवनस्य नाभिः) समस्त संसार का परम आश्रय है। (अयं सोमः) यह 'सोम' सबका प्रेरक सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थ समूह ही (वृष्णः) महान् (अश्वस्य) व्यापक परमेश्वर का (रेतः) परम वीर्य, सर्वोत्पादक सामर्थ्य है। (अयं ब्रह्मा) यह ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् ब्रह्मा ही (वाचः) वाणी का (परमम् व्योम) परम रक्षास्थान है।

ये सब प्रश्नोत्तर राष्ट्र के पक्ष में भी नीचे लिखे प्रकार से हैं। जैसे—

मं [४७-४८] ब्रह्म, बृहत् राष्ट्रपति, ब्रह्मवेत्ता सूर्य के समान प्रकाशक है। 'द्यौः' राजसभा समुद्र के समान अगाध ज्ञान भण्डार है। 'इन्द्र', राजा पृथिवी से महान् है। 'गौ', पृथिवी या वाणी (लॉ), का कोई परिमाण नहीं। मं० [४९-५०] राजा तीनों पदों में विद्यमान है, राजा, शासकजन और प्रजा उनमें सब राष्ट्र स्थित हैं। पृथिवी और (द्यौः) राजसभा को प्राप्त करके राजा एक अङ्ग से सिंहासन पर विराजता है। मं० [५१-५२] पुरुष, सबका पालक राजा पांचों जनों में स्थित है और पांचों जन उसमें आश्रित हैं। [५६-५७] राष्ट्रवासी पुरुष चार प्रकार के स्वभाव वाले हैं एक 'अजा' स्वभाव के हैं जो सब स्थानों से धन प्राप्त करते हैं दूसरे 'श्वावित्' जो कर्म करके धन प्राप्त करते हैं। तीसरे 'शश' हैं जो उन्नति की उछाल भरते हैं, चौथे 'अहि' जो पथिक या चर हैं।

(५७–५८) ६ अमात्य राष्ट्र के ६ आधार हैं। सैकड़ों अक्षर, अक्षय कोष हैं। अन्नप्राप्ति होम है। प्रज्ञा, उत्साह, सेना ये तीन समिधाएं हैं। ६ अमात्य और सातवां राजा या राज्य के सात अंग होता हैं। [५९–६०. समस्त राष्ट्र का प्रबन्धक, राजा, राजसभा और शासक, सबका मूल, महान् सूर्य राजा है। आह्लादक राजा का उत्पत्ति स्थान यह राष्ट्र है। [६१–६२] राज्याभिषेक की वेदी सर्वोत्कृष्ट स्थान है, राज्य प्रबन्ध राष्ट्र का प्रबन्ध है। सोम, ऐश्वर्य या राष्ट्र स्वतः राजा का बल है। ब्रह्मा, वेदज्ञ विद्वान्, वाणी अर्थात् समस्त आज्ञाओं का उत्कृष्ट स्थान है।

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः॥ ६३॥

प्रजापतिर्देवता। विराड् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(सुभूः) सबसे श्रेष्ठ, सर्वपूज्य, सर्वोत्पादक, (स्वयंभूः) स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान, (प्रथमः) सबसे पूर्व विद्यमान, जगदीश्वर (महति अर्णवे) बड़े अर्णव, प्रकृति के परमाणु रूप सागर के (अन्तः) बीच में, (ऋत्वियम्) स्त्री के देह में ऋतुकाल के अवसर पर पुरुष जैसे संतति उत्पादक गर्भ को स्थापित करता है उसी प्रकार नियत काल में (गर्भम्) हिरण्यगर्भ को (दधे) स्थापन करता है। (यतः) जहां से (प्रजापतिः) प्रजा का पालक, सूर्य या संवत्सर (जातः) उत्पन्न होता है। इसी प्रकार राजा—(सुभूः) उत्तम सामर्थ्यवान्, (स्वयंभूः) स्वयं सत्तावान्, (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ, विद्वान् (महति अर्णवे अन्तः) बड़े भारी जन-सागर के बीच (ऋत्वियम्) राजसभा के सदस्यों के अनुकूल (गर्भम्) राष्ट्र को वश करने वाले प्रबन्ध को (दधे) धारण करता है (यतः) जिसमें से (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा और राष्ट्र (जातः) उत्पन्न होता है।

होता यक्षत्प्रजापतिᳬं सोमस्य महिम्नः।
जुषतां पिबतु सोमᳬं होतर्यज॥६४॥

भा०—(होता) सब को अधिकार देनेहारा होता नामक विद्वान् (प्रजापतिम्) प्रजापति, प्रजापालक पुरुष को (सोमस्य) समग्र राष्ट्र के ऐश्वर्य के (महिम्नः) बड़े भारी अधिकारी को (यक्षत्) प्रदान करे। वह (सोमम्) राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को (सोमम्) राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को (जुषताम्) स्वीकार करे। और (पिबतु) उसका उपभोग करे। हे (होतः) होतः ! तू (यज) अधिकार प्रदान कर।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयᳪ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६५॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १०। २०॥

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

॥ओ३म्॥ अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीवऽआग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधोरामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याᳬ सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छऽइन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥ १ ॥

प्रजापतिर्देवता। भुरिक् संकृतिः। गान्धारः॥

भा०—राष्ट्र के अन्य अंग प्रत्यङ्गों का वर्णन—(१) 'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्रजापत्याः॥' (अश्वः) घोड़ा, (तूपरः) सींगों वाला मेढ़ा, (गोमृयगः) गोमृग, नील गाय, ये तीन (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के रूप हैं, वे राजा के ही स्वभाव के हैं। घोड़ा जैसे विजयशील है, अपने

ऊपर दूसरों को उठाता है, गाड़ी में लगा कर उसे खींचता है, इसी प्रकार राजा संग्राम में विजयी, अपने पर प्रजाओं का भार उठाता, राष्ट्र के रथ में जुड़कर राष्ट्र का संचालन करता है। मेढ़ा जोश में दूसरों से सिर लड़ाता है, प्राणान्त तक लड़ना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार प्रजापालक राजा अपने प्रतिस्पर्धी शत्रु से लड़े और प्राण रहते तक प्रतिपक्ष से से टक्कर ले। 'गोमृग' बारहसींगा या नीलगाय नीली मादा गाय के लिये प्राणपण से लड़ता है इसी प्रकार राजा भूमि के लिये प्राण दे। अथवा जैसे नीलगाय अपने चंवर बालों के लिये जान देती है राजा भी अपनी शोभा और मान के लिये प्राण दे। इस प्रकार ये तीन पशु प्रजापति राजा के प्रतिनिधि हैं। इसी से ये तीनों प्रजापति देवता के हैं। अर्थात् घोड़े समान वेगवान्, युद्धशील, मेढ़े के समान प्रतिपक्षी से प्राण रहते टक्कर लेने वाला और गवय के समान योग्य लक्ष्मी के लिये प्राणपण से लड़ने वाला, ये तीनों प्रकार के पुरुष प्रजापति के गुण वाले होने से प्रजापति, राजा के पद के योग्य हैं।

'प्राजापत्याः'—प्रजापतिदेवताका इत्यर्थः। देवो गुणदर्शनात् गुणद्योतनात् वा। तथा चाह दयानन्दः। अत्र सर्वत्र देवता शब्देन तत्तद्-गुणयोगात्पशवो वेदितव्याः ॥

(२) 'कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरस्तात्' (कृष्णगीवः) काली गर्दन वाला (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला है। वह राष्ट्र के (रराटे) ललाट में, शिर भाग या मुख्य भाग में (पुरस्तात्) आगे स्थापित करने योग्य है। अर्थात् जैसे अग्नि नीचे उज्ज्वल और धूम से नील होता है उसी प्रकार श्वेत पशु जिसके गर्दन में काला है वह अग्नि के समान है। उसी प्रकार वह पुरुष जो उज्ज्वज पोशाक और गर्दन में काला या नीला वस्त्र, या नीले मणि आदि चिन्ह धारण करे वह 'अग्नि' पद अग्रणी नेता होने योग्य है वह (रराटे) ललाट या शिरवत् प्रमुख पद पर या मस्तक से विचार-शील हो। (३) 'सरस्वती मेषी अधस्तात् हन्वोः' (सरस्वती) सरस्वती

देवता की (मेषी) भेड़ (हन्वोः अधस्तात्) दोनों जबाड़े नीचे। अर्थात् भेड़ का स्वभाव है कि दो लड़ाऊ मेढ़ों में जो प्रबल है वह उसको प्राप्त होती है। अर्थात् (हन्वोः) परस्पर आघात प्रतिघात करने वालों के (अधस्तात्) मूल में, जैसे दोनों की स्पर्द्धा का विषय वह मेढ़ी है और जैसे (सरस्वती) सरस्वती, वाणी वाक् शक्ति (हन्वोः अधस्तात्) दोनों जबाड़ों के नीचे है इसी प्रकार (सारस्वती मेषी) सरस्वती नामक विद्वान् की प्रतिस्पर्द्धा में प्रवृत्त सभा भी (हन्वोः) पक्ष प्रतिपक्ष से एक दूसरे का खंडन करने वाले दोनों दलों के (अधस्तात्) नीचे, उनके किये निर्णय के अधीन रहे। (४) 'अश्विनौ अधोरामौ बाह्वोः' शरीर में (बाह्वोः) जिस प्रकार बाहु हैं उसी प्रकार राष्ट्र शरीर में दो बाहुओं के स्थानों पर (आश्विनौ) 'अश्वि' देवता वाले (अधोरामौ) नीचे से श्वेत वर्ण के दो बकरों के समान स्वभाव के दो पुरुष नियुक्त हों। अर्थात् बकरे जैसे सदा चरते हैं उस प्रकार वे दोनों भी राष्ट्र को चर सकें, उसका शासन कर सकें, वे (अश्विनौ) अश्वि देवता के हैं वे राष्ट्र में व्याप्त होकर शासन करें। उनके पोशाक ऊपर से काले नीचे से श्वेत हों ऊपर से भयंकर और नीचे से उज्ज्वल हों। भीतर में हितैषी और प्रकट में कठोर पुरुषों को राष्ट्र के (बाह्वोः) बाहुओं के समान रक्षा के निमित्त नियुक्त करें। (५) 'सौमापौष्णः श्यामः नाभ्याम्' सोम और पूषा देवता वाला नाभिस्थान में श्याम वर्ण का हो। (श्यामः) श्याम, हरे वर्ण का खेतों में लगा हुआ अन्न (नाभ्याम्) राष्ट्र के नाभि या केन्द्रस्थान या मध्यभाग में हो। वे (सौमापौष्णाः) सोम, राष्ट्र के ऐश्वर्य और 'पौष्ण' प्रजा के पोषणकारी हैं। इस श्यामल वनस्पति वर्ग के दो देव, विद्वान् अधिकारी हैं, सोम, ओषधि रस का वेत्ता, वैद्य और पोषक अन्न का उत्पादक कृषि-विभागाध्यक्ष। (६) 'सौर्ययामौ श्वेतः च कृष्णाः च पार्श्वयोः' सूर्य और यम अर्थात् वायु और आकाश इन दो के गुण दिखाने वाली काली और सफेद पोशाक को पहनने वाले दो मुख्य अधिकारी (पार्श्वयोः) राष्ट्र शरीर

में दो पार्श्व या बगल हैं अर्थात् राष्ट्र का एक पार्श्व श्वेत सूर्य के समान तेजस्वी प्रखर राजा और दूसरा पार्श्व यम अर्थात् दिन के विपरीत रात्रि के समान समस्त राष्ट्र में शन्तिस्थापन नियन्ता पुरुष हो। 'सूर्य' नामक पदाध्यक्ष श्वेत हो, दूसरा नियन्ता 'यम' कृष्ण हो, वह रात्रि के समान सुख में प्रजा को प्रेम से खेंचने वाला और पीड़ाओं से शत्रुओं को 'कर्षण' अर्थात् बन्धनागार में खेंचने वाला हो। राष्ट्र-व्यवस्था की ये ही दो पहलू हैं, एक प्रजा की वृद्धि और दूसरा दुष्टों का दमन। (७) 'त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योः' (लोमशसक्थौ) सक्थि अर्थात् समवाय, अर्थात् एका करके शत्रुओं का छेदन करने वाले दो नायक (त्वाष्ट्रौ) शत्रु सेनाओं को शस्त्रों से विनष्ट करने वाले हों। वे (सक्थ्योः) राष्ट्र-शरीर के 'सक्थि' अर्थात् जंघा भाग में स्थित हैं। (८) (वायव्यः श्वेतः पुच्छे' पुच्छ भाग, आधार स्थान पर (वायव्यः) वायु के समान तीव्र प्रचण्ड बलवान् (श्वेतः) अति वृद्धिशील, तेजस्वी पुरुष नियुक्त हो। (९) 'स्वपस्याय इन्द्राय वेहत्' (स्वपस्याय) उत्तम कर्म और प्रज्ञावान् (इन्द्राय) इन्द्र, सेनापति पद के लिये (वेहत्) विशेष साधनों से शत्रुओं का नाश करने वाला पुरुष नियुक्त हो। (१०) 'वैष्णवो वामनः' व्यापक सामर्थ्यवान् पद के लिये (वामनः) अति सुन्दर, हृदयग्राही पुरुष नियुक्त हो।

रोहि॑तो धू॒म्ररो॑हितः क॒र्कन्धु॑रोहित॒स्ते सौ॒म्या ब॒भ्रुर॑रु॒णब॑भ्रुः शु॒कब॑भ्रु॒स्ते वा॑रु॒णाः। शि॒ति॒र॒न्ध्रो॒ऽन्यत॑ः शिति॒र॒न्ध्रः स॒मन्त॑शिति॒रन्ध्र॒स्ते सा॑वि॒त्राः। शि॒ति॒बा॒हुर॒न्यत॑ः शिति॒बा॒हुः स॒मन्त॑शिति॒बा॒हु॒स्ते बा॑र्हस्प॒त्याः पृष॑ती क्षु॒द्रपृ॑षती स्थू॒लपृ॑षती॒ ता मै॑त्राव॒रु॒ण्यः॑ ॥ २ ॥

सोमादयो देवताः। निचृत् संकृतिः। गांधारः ॥

भा०—(११) 'रोहितः धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितः ते सौम्याः' (रोहितः) लाल रंग, (धूम्ररोहितः) धूआं मिला लाल रंग, लाल नीला और (कर्कन्धू रोहितः) बेर के फल का सा लाल रंग ये तीन रंग की

पोशाक वाले अधीन अधिकारी (सौम्याः) सोम अर्थात् राजा के पद के साथ सम्बद्ध हैं। (१२) (बभ्रुः) भूरा, (अरुणबभ्रुः) लाल भूरा, (शुकबभ्रुः) हरा भूरा ये तीन प्रकार के रंग की पोशाकों वाले (वारुणाः) वरुण नाम पदाधिकारी के सम्बन्धी पुरुष हों। (१३) (शितिरन्ध्रः) श्वेत चिटकनों वाला, (अन्यतः शितिरन्ध्रः) एक तरह से श्वेत चिटकन वाला, (समन्तशितिरन्ध्रः) सारे शरीर पर श्वेत चिटकन वाला ये तीन प्रकार के वस्त्रों के पुरुष (सावित्राः) सविता पद सम्बन्ध के पुरुष हों। (१४) 'शितिबाहुः अन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुः ते बार्हस्पत्याः' (शितिबाहुः) बाहु भागों पर श्वेत, (अन्यतः शितिबाहुः) किसी एक ओर की बाहु भाग पर श्वेत, (समन्तशितिबाहुः) समस्त बाहुओं पर श्वेत (ते) ऐसी पोशाक वाले सब (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति अर्थात् महामात्य पद के अधीन हों। (१५) 'पृषती, क्षुद्रपृषती, स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्याः' (पृषती) विचित्र वर्ण के बिन्दु या छींटवाली, (क्षुद्रपृषती) छोटी-छोटी छींट वाली, (स्थूलपृषती) बड़ी-बड़ी छींट वाली पोशाकों वाली स्त्रियां (मैत्रावरुण्यः) मित्र, न्यायाधीश और वरुण, दुष्टों के वारक पोलीस विभाग की समझनी चाहियें। ये १५ विभाग या अङ्ग राष्ट्र के 'पर्यङ्ग' कहाते हैं।

शुद्धवा॑लः स॒र्वशु॑द्धवालो म॒णिवा॑ल॒स्तऽआ॑श्वि॒नाः श्येतः॑ श्येता॒क्षोऽरु॒णस्ते रु॒द्राय॑ पशु॒पत॑ये क॒र्णा या॒माऽअ॑वलि॒प्ता रौ॒द्रा नभो॑रूपाः पार्ज॒न्याः ॥ ३ ॥

अश्व्यादयो देवताः। निचृदतिसंकृतिः। निषादः ॥

भा०—(१) (शुद्धवालः) शुद्ध श्वेत बालों बाले, (सर्वशुद्धवालः) समस्त श्वेत बालों वाले, (मणिबालः) मणि के समान नीले बाल वाले (ते आश्विनाः) वे अश्विन पद के अधिकारियों के अधीन हों। (२) 'श्येतः श्येताक्षः अरुणः ते रुद्राय पशुपतये' (श्येतः) श्वेत वर्ण का (श्येताक्षः) आंख पर श्वेत वर्ण वाला और (अरुणः) लाल, ये (रुद्राय) सब दुष्टों के रुलाने वाले (पशुपतये) पशुपालक जन के अधीन जानो। (३) (कर्णाः

यामाः) कानों वाले अर्थात् बहुश्रुत लोग 'यम' नामक अधिकारी हों। (४) (अवलिप्ताः रौद्राः) शरीर पर चन्दन आदि के विशेष रंग का लेप करने वाले 'रुद्र' पद से सम्बद्ध जानो। (नभोरूपाः पार्जन्याः) आकाश के समान वर्षा वाले हलके नीले रंग के 'पर्जन्य' अर्थात् मेघ के समान पुरुष जल-धाराओं से अग्नि बुझाने वाले विभाग के हों।

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः ॥ ४ ॥

मरुदादयो देवताः। विराडतिधृतिः षड्जः ॥

भा०—(५) (पृश्निः) चित्रविचित्र वर्ण, (तिरश्चीनपृश्निः) तिरछे या आड़े शरीर पर चिटकले वाला, (ऊर्ध्वपृश्निः) ऊपर की ओर चित्र बिन्दु वाले, (मारुताः) 'मरुत' विभाग के हैं। (६) 'फल्गूः, लोहितोर्णी, पलक्षी ताः सारस्वत्यः' (फल्गूः) स्वल्पबल वाली, (लोहितोर्णी) लाल ऊन पहनने वाली और (पलक्षी) श्वेत ऊन वाली अथवा अतिचञ्चल आंखों वाली स्त्रियां तीव्र दृष्टि शीघ्र भांपने वाली (ताः) वे (सारस्वत्यः) सरस्वती, वाणी या आज्ञाएं पहुँचाने के कार्य में लगाई जायं। (७) 'प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णः अध्यालोहकर्णः ते त्वाष्ट्राः' (प्लीहाकर्णः) तीव्र गति से भीतर प्रवेश करने वाले साधन, (शुण्ठाकर्णः) शुष्क काष्ठ के बने अथवा उपकरण और (अध्यालोहकर्णः) समस्त लोह के बने साधनों वाला (ते) ये सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा अर्थात् शिल्पी वर्ग के पुरुष हैं। (८) कृष्णग्रीवः शितिकक्षः अञ्जिसक्थः ते ऐन्द्राग्नाः) काली ग्रीवा वाला या ग्रीवा पर काले चिन्ह वाला, कक्ष अर्थात् बगल में श्वेत चिन्ह वाला और जांघ पर श्वेत चिह्न वाला ये सब भी इन्द्र, अग्नि, सेनापति और अग्रणी नेता पुरुष के वर्ग के हैं। (९) 'कृष्णाञ्जिः, अल्पाञ्जिः महाञ्जिः ते उषस्याः' काले लंगोट

के, छोटे लंगोट के और बड़े लंगोट के ये पुरुष, 'उषा' शत्रुदाहक या प्रकाशकारी बिभाग के पुरुष हों।

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

विश्वेदेवा देवताः। निचृद् बृहती। मध्यमः ॥

भा०—(वैश्वदेव्यः शिल्पाः) सब प्रकारों के शिल्पों को दर्शाने वाले सभी कोटि के विद्वान् गण हैं। (रोहिण्यः) पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली लताएं या उनके समान बढ़ती उमर की कुमारी कन्याएं (त्र्यवयः) माता, पिता और गुरु इन तीन की रक्षा में तत्पर होकर (वाचे) ज्ञान वाणी की शिक्षा के लिये जावें। (अविज्ञाताः) ज्ञानरहित प्रजाएं (अदित्यै) पृथ्वी के ऊपर कृषि और खोदने आदि श्रम के कार्य पर लगें। अथवा (अविज्ञाताः) अज्ञात कुल की कन्याएं (अदित्यै) अखण्ड, स्थिर गृहस्थों को पालनार्थ दे दी जायं। (सरूपाः) समान रूप, गुण, कीर्ति वाली स्त्रियां (धात्रे) पोषण करने उत्तम सन्तानार्थ बीज वपन करने में समर्थ पतियों को प्राप्त हों। (वत्सतर्यः) बहुत छोटी उमर की कन्याएं (देवानां पत्नीभ्यः) विद्वान् गुरुओं की स्त्रियों के अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें।

कृष्णग्रीवाऽआग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳬरोहिता रुद्राणाᳬश्वेताऽअवरोकिणऽआदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

अग्न्यादयो देवताः। विराड् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) गर्दन पर काले चिह्न वाले पुरुष 'अग्नि' अर्थात् अग्रणी सम्बन्धी हों। (शितिभ्रवः वसूनाम्) भ्रुवों पर श्वेत चिह्न के पुरुष 'वसु' नाम के प्रजा बसाने वाले अधिकारियों के हों। (रोहिताः रुद्राणाम्) लाल वर्ण के पोशाक वाले 'रुद्र' नाम अधिकारियों के हों। (श्वेताः) श्वेत वस्त्र वाले दूसरों को बुरे काम करने और कुमार्ग से जाने में रोकने वाले पुरुष (आदित्यानाम्) आदित्य नाम अधिकारियों

के हैं। (नभोरूपाः पार्जन्याः) नील मेघ के वर्ण की पोशाक वाले पुरुष पर्जन्य, मेघ के समान जलदाता विभाग के हों।

उन्नतऽऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवाऽउन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽ-आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥

इन्द्रादयो देवताः। अतिजगती। निषादः॥

भा०—(उन्नतः) ऊंचा, (ऋषभः) हृष्ट पुष्ट और (वामनः) बौना, या अतिसुन्दर रूप वाले ये तीनों प्रकार के पुरुष (ऐन्द्रावैष्णवाः) इन्द्र और विष्णु नाम अधिकारी के अधीन हों। (उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठः ते) ऊंचे, बाहु पर श्वेत वस्त्र वाले और पीठ पर श्वेत वस्त्र वाले ये तीनों (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) 'इन्द्र बृहस्पति' राजा, राजमन्त्री के विभाग के हों। (शुकरूपाः वाजिनाः) तोते के समान हरे पोशाक के पुरुष वेगवान् अश्वों के ऊपर नियत हों। (कल्माषाः आग्निमारुताः) श्वेत काले, खाखी रङ्ग की पोशाक वाले 'अग्नि और मरुत्' विभाग के हों। (श्यामाः पौष्णाः) नीले रंग के पूषा अर्थात् कर-संग्राहक विभाग के हों।

एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामना अनड्वाहऽआग्ना-वैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतऽएन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

इद्राग्न्यादयो देवताः। स्वराड् बृहती। मध्यमः॥

भा०—(एताः) कर्बुर रंग के (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि-विभाग के हैं। (द्विरूपाः अग्निषोमीयाः) दो-दो रंग की पोशाक वाले अग्नि और सोम विभाग के हैं। (वामनाः) छोटे अंग के पुरुष या पशु (अनड्वाहः) जो गाड़ी खींच कर ले जावें (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और विष्णु विभाग के हैं। (वशाः) वशकारिणी संस्थाएं और पुरुष (मैत्रावरुण्यः) 'मित्र और वरुण' विभाग के हैं। एक तरफ से चित्रित वर्ण के वस्त्र पहनने वाली स्त्रियां (मैत्र्यः) मित्र विभाग के अधीन हों।

कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्याऽअविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

अग्न्यादयः निचृत्पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) गर्दन पर काले चिह्न वाले 'अग्नि' विभाग के हैं। (बभ्रवः सौम्याः) बभ्रु, नेवले के रंग के, या भूरे रंग के 'सोम' विभाग के हैं। (श्वेता वायव्याः) श्वेत वर्ण के वायु विभाग के हैं। (अविज्ञाताः) इत्यादि म० ५ के समान।

कृष्णा भौमा धूम्राऽआन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥ १० ॥

अन्तरिक्षादयः। विराड् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(कृष्णाः भौमाः) कृषि के उपयोगी, कर्षक पुरुष और पशु (भौमाः) भूमि के उपयोगी हों। (धूम्रा आन्तरिक्षाः) धूम जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जाता है ऐसे धूम अर्थात् हलकी गैसों के द्वारा गमन करने में कुशल पुरुष अन्तरिक्ष में जाने में कुशल हों। (बृहन्तः) बड़े शक्तिशाली पुरुष (दिव्याः) सूर्य के समान तेजस्वी एवं ज्ञान, विजय और तेज को प्राप्त करते हैं। (शबलाः) बल को प्राप्त करने वाले तीव्र गतिमान् यन्त्र (वैद्युताः) विद्युत् से उत्पन्न करने के योग्य हैं। (सिध्माः) तीव्र वेग से जाने हारे साधन (तारकाः) दूर देशों तक ले जाने के लिये हों।

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

अग्न्यादयो देवताः। विराड् बृहती। मध्यमः ॥

भा०—(वसन्ताय) वसन्त ऋतु के लिये (धूम्रान्) धुमेले रंग के वस्त्रादि को (आलभते) प्राप्त करे। (ग्रीष्माय श्वेतान्) ग्रीष्म काल के लिये श्वेत वस्त्रों का उपयोग करे। (वर्षाभ्यः कृष्णान्) वर्षा काल के लिये काले या नीले रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। (अरुणान् शरदे) शरद्

काल के लिये लाल रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। (पृषतः हेमन्ताय) नाना वर्ण के चिकनेदार अथवा मोटे वस्त्रों को हेमन्त काल में उपयोग करे (पिशङ्गान् शिशिराय) पीले वसन्ती रंग के वस्त्रों का उपयोग शिशिर ऋतु के लिये करे। विशेष ऋतु में विशेष रंग के वस्त्रों तथा अन्य पदार्थों के उपयोग से प्राकृतिक लाभ और चित्तप्रसाद और स्वास्थ्य उत्पन्न होता है। ऋतुभेद से जिस प्रकार मेघों का वर्णभेद है उसी प्रकार सदस्यों के भेद से राजा के कर्त्तव्यों का भेद है। जैसे वसन्त के निमित्त धूमाकार मेघों को प्राप्त करता है। ग्रीष्म में श्वेत मेघों को, वर्षा में काले, शरद् में सायं समय में लाल, हेमन्त में कई रंग के और शिशिर के लिये पीले मेघों को प्राप्त करते हैं।

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा ऽअनुष्टुभे तुर्यवाहऽउष्णिहे ॥ १२ ॥

पष्ठवाहो विराजऽउक्षाणो बृहत्याऽऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पङ्क्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ॥ १३ ॥

अग्न्यादयः। (१२) विराडनुष्टुप्। (१३) निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—अवस्थाभेद से गौओं में भेद होता है, उसी प्रकार गौ रूप वाणी में भी छन्दोभेद से भेद है। गौ की अवस्थाओं की वाणी के छन्दों से तुलना। (त्र्यवयो गायत्र्यै) १॥ वर्ष की गौएं गायत्री के स्थान पर हैं। (पंचावयः त्रिष्टुभे) २॥। वर्ष की गौएं त्रिष्टुप् की तुलना के लिये हैं। (दित्यावाहः जगत्यै) कटे धानों को पीठ पर लेकर चलने वाली ३ वर्ष की गौएं जगती के समान हैं। (त्रिवत्सा अनुष्टुभे) तीन-तीन वर्ष की अनुष्टुप् के समान हैं। (तुर्यवाहः उष्णिहे) चतुर्थ वर्ष की गो-जाति उष्णिग् के छन्द के समान है। (पष्ठवाहः विराजे) पृष्ठ से बोझ उठाने वाली गो-जाति विराट् छन्द के समान है। (उक्षाणः बृहत्याः) वीर्यसेचन में समर्थ बैल बृहती के समान हैं (ऋषभाः ककुभे) ऋषभ, बड़े बैल, ककुप् छन्द के

समसान हैं। (अनड्वाहः पंक्त्यै) शकट या बोझ उठाने वाले बैल, पंक्ति छन्द के समान हैं और (धेनवः) दुधार गौवें (अतिछन्दसे) अति शब्दयुक्त छन्द के समान हैं।

कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

अग्न्यादयः। भुरिगतिजगती। निषादः॥

भा०—(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) गर्दन पर काले चिह्न वाले सेवकजन 'अग्नि' पद के सम्बन्ध के हैं। (बभ्रवः सौम्याः) भूरे पोशाक वाले 'सोम' पद के सम्बन्ध के हैं। (उपध्वस्ता सावित्राः) अन्य वर्ण से मिले-मिले वर्ण के 'सवितृ' पद के सम्बन्धी हैं। (वात्सतर्यः सारस्वत्यः) अत्यन्त छोटे वर्ष की बाल प्रजाएं (सरस्वती) अर्थात् शिक्षाविभाग वा गृहस्थ स्त्री द्वारा पोषण योग्य हैं। (श्यामाः पौष्णाः) श्याम, हरे धान, 'पूषा' अर्थात् भागधुक् नामक अधिकारी के हैं, अथवा (श्यामाः पौष्णाः) नीले मेघ पृथ्वी के और अन्न के निमित्त हों। (पृश्नयः) रसों से पूर्ण गौएं (मारुताः) वैश्यगण की हैं। (बहुरूपाः वैश्वदेवाः) नाना प्रकार की प्रजाएं सामान्य समस्त विद्वान् पुरुषों की हैं। (वशाः) वशकारिणी शक्तियां (द्यावा-पृथिवीयाः) द्यौ पृथिवी के समान माता पिता और राजा प्रजा के बीच में प्रयुक्त हैं।

उक्ताः सञ्चराऽएताऽऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥

इन्द्रादयः। विराड् उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(सञ्चराः) भिन्न-भिन्न विभागों के योग्य उनके भृत्य और अनुचरों का (उक्ताः) वर्णन कर दिया गया है। और (एताः ऐन्द्राग्नाः) कर्बुर रंग के इन्द्र और अग्नि के, (कृष्णाः वारुणाः) काले रंग के वरुण के,

(पृश्नयः मारुताः) चित्र वर्ण के मरुतों के, (तूपराः कायाः) हिंसक स्वभाव के प्रजापति के हों।

अ॒ग्नये॑ऽनीक॑वते प्रथम॒जाना॒लभ॑ते म॒रुद्भ्यः॑ सा॒न्त॒प॒नेभ्यः॑ सवा॒त्यान् म॒रुद्भ्यो॑ गृ॒हमे॒धिभ्यो॒ बष्कि॑हान् म॒रुद्भ्यः॑ क्री॒डिभ्यः॑ सꣳसृष्टान् म॒रुद्भ्यः॒ स्वत॑वद्भ्यो॒ऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

अग्न्यादयः। शक्वरी। धैवतः॥

भा०—(अनीकवते) मुख्य सेना के स्वामी (अग्नये) अग्रणी सेनानायक के कार्य के लिये, (प्रथमजान्) प्रथम श्रेणी के, एवं श्रेष्ठ गुणों और विद्याओं में कुशल पुरुषों को (आ लभते) प्राप्त करे। (सांतपनेभ्यः) अच्छी प्रकार स्वयं तपस्या करने और शत्रुओं के तपानेहारे (मरुद्भ्यः) विद्वान् पुरुषों या वायु के समान तीव्र वेग से आक्रमण करने वाले पुरुषों के लिये (सवात्यान्) प्राणों को या तीव्र वायु के समान तेज़ी से भगाने वाले, हवा से वात करने वाले पुरुषों और जीवों को (आलभते) प्राप्त करे। (गृहमेधिभ्यः मरुद्भ्यः) गृहस्थ विद्वान् की रक्षा के लिये (बष्किहान्) हिंसकों के भी मारने वाले रक्षकों को (आलभते) प्राप्त करे। (क्रीडिभ्यः) क्रीड़ा, आनन्द विनोद या युद्धक्रीड़ा करने वाले (मरुद्भ्यः) प्रजाओं या वीर पुरुषों के लिये (संसृष्टान्) उनके साथ मिलकर काम करने में समर्थ, खूब सधे हुए साथियों को प्राप्त करे। (स्वतवद्भ्यः) अपने ही बल पर कार्य करने वाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (अनुसृष्टान्) उनके अनुकूल चलने वाले पुरुषों को प्राप्त करे।

उ॒क्ताः स॑ञ्च॒रा ए॒ता ऐ॑न्द्रा॒ग्नाः प्रा॑शृ॒ङ्गा मा॑हे॒न्द्रा ब॑हुरू॒पा वै॑श्वक॒र्म॒णाः ॥ १७ ॥

भा०—(सञ्चराः उक्ताः) इनके साथ के अनुचर सूर्य कहे जा चुके हैं। ये विशेष समझो कि (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि के (एताः) चित-

१६—साकमेधाः।

कबरे वर्ण के (प्राश्ङ्गाः माहेन्द्राः) महान् राजा के अनुचर खुले हिंसा साधन, हथियारों को आगे थामे हुए हों। (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्मा एञ्जीनियर के अधीन (बहुरूपाः) नाना प्रकार के कर्मचारी हों।

इस प्रकार राष्ट्र के भिन्न-भिन्न पदाधिकारियों के अधीन उनके भृत्य, साथी सङ्गियों के नाना वर्ण के पोशाकों, स्वभावों और प्रकारों का वर्णन कर दिया। तदनुसार ही उनके विभागों में काम करने वाले पशुओं और यानों आदि के भी भिन्न-भिन्न रूप के संकेत कर लेने चाहियें।

अश्वमेध यज्ञ में प्रतिनिधिवाद से इन वर्णों के बकरों को ही लेकर २१ यूपों में बांधने को लिखा है। पर जब अश्व राष्ट्र का प्रतिनिधि है तो ये बकरे भी राष्ट्र के कार्यों में नियुक्त पुरुषों के उपदर्शक मात्र हैं।

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाᳬं सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः। पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः॥ १८॥

पितरः। भुरिगतिजगती। निषादः॥

भा०—(सोमवतां पितृणाम्) राज्य के विशेष पालन करने वाले रक्षक पुरुषों के अधीन पुरुष (धूम्राः) धुमैले रंग के और (बभ्रुनीकाशाः) भूरी से पोशाक के हों। (बर्हिषदां प्रितृणाम्) प्रजा पर अधिष्ठित पालक पुरुषों के अधीन, चाकर (बभ्रवः) भूरे रंग के (धूम्रनीकाशाः) धुमैले छाप वाले हों। अर्थात् उनके वस्त्रों पर धुमैले रंग पर भूजे रङ्ग की धारियां हों। (अग्निष्वात्तानां पितृणाम्) विद्वान् अग्नि, स्वभाव के अग्रणी नेता पुरुषों के अधीन पालक पुरुषों के (कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः) काले वस्त्रों पर भूरे चिह्न हों। (त्रैयम्बकाः) 'त्रियम्बक' अर्थात् तीन-तीन अधिकारों में लगे पुरुष (कृष्णाः पृषन्तः) काले रंग पर चितकबरे, नाना वर्णों के चिह्न के वस्त्र वाले हों।

उन्नाः सञ्चराऽएताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः॥ १९॥

भा०—(सञ्चराः उक्ताः) उनके साथ के अनुचर भी कहे जानने चाहियें। और (शुनासीरीयाः) शुनासीर कृषि विभाग के लोग (एताः) कर्बुर रङ्ग के हों। (वायव्याः) वायु विभाग के श्वेत और (सौर्याः श्वेताः) सूर्य अर्थात् प्रकाशकारी विभाग के श्वेत वस्त्र के पुरुष हों।

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥२०॥

वसन्तादयः। विराड्जगती। निषादः॥

भा०—ऋतुओं के अनुसार पक्षियों का वर्णन करते हैं। (वसन्ताय) वसन्त में (कपिञ्जलान्) कपिञ्जल नामक पक्षियों को (आलभते) देखता है। (ग्रीष्माय कलविङ्कान्) ग्रीष्म में 'कलविङ्क' नाम पक्षि को पाते हैं। (वर्षाभ्यः तित्तिरीन्) वर्षा ऋतु में 'तित्तिरि' तीतर नाम के पक्षियों को (शरदे वर्त्तिकाः) शरत् काल में बटेर नामक पक्षियों को, (हेमन्ताय ककरान्) हेमन्त में ककर नाम के पक्षियों को प्राप्त करे। (शिशिराय विककरान्) शिशिर के लिये, 'विककर' नाम के पक्षियों को पाता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न पक्षी प्रकट होते हैं। उसी-उसी ऋतु में उन-उन पक्षियों को पक्षिशास्त्रज्ञ प्राप्त करें, और उनका अध्ययन करें, विपरीत कालों में विपरीत पक्षियों का प्राप्त होना राष्ट्र के लिये विपत्तियों का सूचक है। इसलिये राष्ट्र प्रकरण में इसका उल्लेख है।

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

वरुणः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—(समुद्राय शिशुमारान् आलभते) समुद्र में शिशुमार घड़ियालों का ज्ञान प्राप्त करे। (पर्जन्याय मण्डूकान्) मेघ काल में मेंढकों का (अद्भ्यः मत्स्यान्) जलों में विचरण के लिये मच्छियों का अध्ययन करे (मित्राय कुलीपयान्) मित्र अर्थात् मित्रता के लिये अथवा सूर्य सेवन या जलविहार के लिये 'कुलीपय' मुर्गाबी नाम के जन्तु,

(वरुणाय नाक्रान्) वरुण अर्थात् भारी जलों में, या परस्पर वरण के निमित्त बड़े नाकों को प्राप्त करे, उनका स्वाध्याय करे।

सोमा॑य हꣳसाना॒ल॑भते वा॒यवे॑ ब॒लाका॑ऽइन्द्रा॒ग्निभ्यां॒ क्रुञ्चा॑न् मि॒त्राय॑ म॒द्गून् वरु॑णाय चक्रवा॒कान् ॥ २२ ॥

सामादयः । विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(सोमाय हंसान्) राजा के विनोद या चांदनी में या जल की शोभा के लिये, हंस को प्राप्त करे। (वायवे बलाकान्) वायु में बलाका या बकपंक्तियां देखे। (इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्) इन्द्र, सूर्य और अग्नि के अवसरों पर क्रुञ्च नाम पक्षी देखे। (मित्राय मद्गून्) सूर्य या सुखद जलाशय के निमित्त या मित्रता के लिये मद्गु नामक छोटे हंस को देखे। और (वरुणाय चक्रवाकान्) परस्पर प्रेमपूर्वक वरण के निमित्त चकवों को देखे। हंस, बलाका, क्रुञ्च आदि पक्षी उन स्थानों पर जिस-जिस विशेषता को रखते हैं उन-उन विशेषताओं का ज्ञान और अध्ययन करे।

अ॒ग्नये॑ कु॒टरू॑ना॒ल॑भते॒ वन॒स्पति॑भ्य॒ऽउलू॑काना॒ग्नीषोमा॑भ्यां॒ चाषा॑न॒श्विभ्यां॑ म॒यूरा॑न् मि॒त्रावरु॑णाभ्यां क॒पोता॑न् ॥ २३ ॥

पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(अग्नये) अग्नि के प्रयोग के लिये (कुटरून्) कुटरु नामक मुर्गा, पक्षियों को (आलभते) प्राप्त करे। (वनस्पतिभ्यः उलूकान्) वनस्पतियों के ज्ञान के लिये उल्लू जाति के पक्षियों को प्राप्त करे, उनके जीवन का अनुशीलन करे। (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और जल की परीक्षा के लिये (चाषान्) चाष नामक पक्षियों को देखे। (अश्विभ्यां मयूरान्) स्त्री पुरुषों के संयमी और प्रेमी और सुन्दर सुखप्रद आलाप के लिये (मयूरान्) मयूरों को देखे। (मित्रावरुणाभ्यां कपोतान्) मित्र और वरुण अर्थात् मित्रता, स्नेह और परस्पर वरण के लिये (कपोतान्) कपोत नाम पक्षियों को देखे।

सोमाय लवानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादीर्देवानां पत्नीभ्यः
कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ॥ २४ ॥

भा०—(सोमाय लवान् आलभते) सोम, सौम्य भाव के लिये 'लवा' नामक पक्षी को देखे, (त्वष्ट्रे कौलीकान्) त्वष्टा, अर्थात् कारीगरी के काम देखने के लिये 'कौलिक' वया नाम पक्षी को देखे । (देवानां पत्नीभ्यः) विद्वान् पुरुषों या राजाओं की पत्नी या पालक शक्तियों के अच्छे दृष्टान्त के लिये (गोषादीभ्यः) गौओं पर बैठने वाली 'गुरुसल' नामक पक्षियों को देखे । वे गौ पर बैठती हैं, उनके नाशकारी कीड़ों को खा जाती हैं और गौ को हानि नहीं पहुँचातीं । इसी प्रकार पृथ्वी के पास की शक्तियों को, राष्ट्रवासी प्रजाओं को हानि न पहुँचा कर उनके बीच में दुष्ट पुरुषों को पकड़-पकड़ कर नष्ट करें । (कुलीकाः देवजामिभ्यः १) देव, विद्वानों या राजाओं या विजयी पुरुषों के 'जामि' भगनियों या स्त्रियों के लिये दृष्टान्त रूप से 'कुलीक' नामक पक्षी को देखना चाहिये । (अग्नये गृहपतये पारुष्णान्) गृहपति के उत्तम धर्मों के दृष्टान्त के लिये पारुष्ण नामक पक्षियों को देखना चाहिये । वे प्रत्येक अंग में उष्ण होते हैं और अपने बच्चों को अपने अंगों से लगाकर पालते हैं ।

अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्धिभ्यो
जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥

विराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—दिन के प्रारम्भ के लिये (पारावतान्) कबूतरों को देखे, वे भोर में ही उठते हैं, घूत्कार करते हैं । वैसे मनुष्य भी शीघ्र उठे और मन्त्रपाठ करे । अथवा दिन के कार्य के लिये कबूतरों को प्रयोग करे, वे दिन में दूर तक देखते हैं । (रात्र्यैः सीचापूः) रात्रि के कार्य के लिये 'सीचापूः' नाम पक्षी को लाभ करे । (अहोरात्रयोः संधिभ्यः जतूः) दिन

१—जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः ।

और रात की संधिकाल, संध्या समय में 'जतू', चमगीदड़ों का ज्ञान करे। वे उस समय अच्छा देखतीं और अति कौशल से आहार पाती हैं। (मासेभ्यः दात्यौहान्) मासों की उत्तमता के ज्ञान के लिये काले कौओं का ज्ञान करे। (संवत्सराय महतः सुपर्णान्) संवत्सर की उत्तमता को जानने के लिये बड़ी जाति के पक्षियों का अध्ययन करे।

भूम्याऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

भा०—(भूम्यै आखून् आलभते) भूमि की उत्तमता के लिये मूषकों का स्वाध्याय करे। (अन्तरिक्षाय पांक्तान्) अन्तरिक्ष विज्ञान के लिये पंक्ति बनाकर चलने वाले पक्षियों को देखे। (दिवे कशान्) प्रकाश के लिये 'कश' नाम के पक्षियों को प्राप्त करे (दिग्भ्यः नकुलान्) दिशाओं के ज्ञान के लिये नेवलों का स्वाध्याय करे। (अवान्तरदिग्भ्यः) उपदिशाओं के ज्ञान के लिये (बभ्रुकान्) बभ्रु नामक जन्तुओं को देखे इनको दिशा उपदिशा का अच्छा ज्ञान रहता है।

वसुभ्यऽऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥

वस्वादयः । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—प्रजा में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव और साध्य ये पांच श्रेणियां उसी प्रकार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जानो जैसे वन के मृगों में ऋश्य, रुद्र, न्यङ्कु, पृषत और कुलुङ्ग ये पांच हरिण जातियां हैं। इनमें क्रम से एक के लिये एक को दृष्टान्तरूप से ले ले। (वसुभ्यः ऋश्यान् आलभते) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचारियों के लिये मृग जाति में 'ऋश्य' नामक मृगों को लें। (रुद्रेभ्यः रुरून्) रुद्रों के लिये रुरु मृगों को और (आदित्येभ्यः) आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (न्यंकून्) न्यङ्कु जाति के मृगों को और (साध्येभ्यः कुलुङ्गान्) साध्य अर्थात् योग, साधनशील पुरुषों के लिये

कुरङ्ग जाति के मृगों को ग्रहण करें अथवा उक्त वसु आदि के लिये अमुक-अमुक मृगों को चर्म वस्त्र, आसनादि के लिये प्राप्त करे।

ई॒शाना॑य प॒र॑स्व॒त॒ऽआल॑भते मि॒त्राय॑ गौ॒रान् वरु॑णाय महि॒षान् बृह॒स्पत॑ये गव॒याँस्त्वष्ट्र॒ उष्ट्रा॑न् ॥ २८ ॥

ईशानादयः । भुरिग् बृहती: मध्यमः ॥

भा०—(ईशानाय) ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् जन के लिये (परिस्वतः) परस्वान् नामक मृगों का निरीक्षण करे। (मित्राय गौरान्) मित्र, स्नेही व्यक्ति के लिये गौर मृगों को दृष्टान्त देखे। ये परस्पर बहुत ही स्नेह करते हैं। (वरुणाय महिषान्) वरुण, प्रतिद्वन्द्वी को वारण करने वाले के लिये महिष अर्थात् भैंसा को देखे। (बृहस्पतये गवयान्) बृहस्पति, बड़े राष्ट्र की रक्षा के लिये नील गायों को देखना चाहिये वे रेवड़ की बड़ी वीरता से रक्षा करते हैं, नर गवय मादीनों को बीच में घेर के रक्षा करते हैं। (त्वष्ट्र उष्ट्रान्) त्वष्टा, शिल्पियों के लिये उष्ट्र जाति के बोझा उठाने वाले जन्तुओं का निरीक्षण और उपयोग करे। जिस प्रकार लम्बी टांगों पर भारी शरीर किस कारीगरी से लगा है उसका अनुकरण करे।

प्र॒जाप॑तये॒ पुरु॑षान् ह॒स्तिन॒ऽआल॑भते वा॒चे प्लु॒षीँश्चक्षु॑षे म॒शका॒ञ्छ्रोत्रा॑य भृ॒ङ्गाः ॥ २९ ॥

प्रजापत्यादयः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(प्रजापतये) प्रजापालक राजा की सेवा के लिये (पुरुषान्) वीर पुरुषों को और (हस्तिनः) हाथियों को (आलभते) प्राप्त करे। (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषी नामक जन्तुओं को प्राप्त करे। (चक्षुषे मषकान्) आंख के लिये छोटे-छोटे मच्छरों को देखे। जिस प्रकार चक्षु के रूप को देखकर वे मुग्ध होते हैं ऐसे उत्तम रूपों पर चक्षु को लगावे। (श्रोत्राय भृङ्गाः) श्रवणेन्द्रिय के सुख के लिये (भृङ्गाः) भृङ्गों को प्राप्त करे, उनके सुन्दर झंकार श्रवण करे।

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

प्रजापत्यादयः । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(प्रजापतये वायवे च) प्रजा के पालक और वायु के समान वेग से जाने के लिये (गोमृगः) गवय अनुकरण करने योग्य है। (वरुणाय) शत्रु के वारण करने के लिये (आरण्यः मेषः) जंगली मेढ़ा अनुकरणी है। अर्थात् शत्रु रणार्थ वीर मेढ़े के समान शत्रु से टक्कर ले। और (यमाय कृष्णः) यम, नियमपालक ब्रह्मचारी के लिये (कृष्णः) कृष्ण-मेष अनुकरणी है, वह उसके समान हृष्ट पुष्ट हो। (मनुष्यराजाय मर्कटः) मनुष्य स्वभाव के राजा के लिये बानर का दृष्टान्त समझे। अर्थात् मनुष्य स्वभाव के राजा बानर के समान चपल, क्रोधी अथवा वे उनके समान दिखावटी क्रोध के हों। भीतर से वे क्रोध न करें। (शार्दूलाय रोहित्) जिस प्रकार सिंह के लिये एक मृग पर्याप्त होता है उसी प्रकार शार्दूल के समान वीर पराक्रमी के लिये (रोहित्) वृद्धिशील प्रजा प्राप्त हो (ऋषभाय गवयी) जिस प्रकार बैल को भोग के लिये गौ प्राप्त होती है उसी प्रकार नरश्रेष्ठ को यह पृथिवी भोग के लिये प्राप्त हो। (क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका) जिस प्रकार वेग से झपटने वाले बाज को (वर्त्तिका) बटेरी शिकार में प्राप्त होती है। उसी प्रकार वेग से परराष्ट्र पर आक्रमण करने में समर्थ वीर पुरुष को भी (वर्त्तिका) राज्य से वृत्ति प्राप्त हो (नीलंगोः कृमिः) नीड़ में बैठने वाले विशेष छोटी जाति के पक्षी को जिस प्रकार भोजन के लिये (कृमिः) कृमि प्राप्त होता है उसी प्रकार 'नीड़' अर्थात् आश्रय रक्षास्थान में बैठे पुरुष को उसके कर्म का फल प्राप्त हो। (समुद्राय शिशुमारः) समुद्र में जिस प्रकार 'शिशुमार' नाम घड़ियाल रहते हैं। उसी प्रकार ऐश्वर्य के समुद्र राजा के पास घ

परशत्रु की लक्ष्मी को बल से खींच लाने वाले विजयी पुरुष हों। (हिमवते हस्ती) जिस प्रकार विशालकाय हाथी हिमवान् पर्वत का आश्रय लेता है उसी प्रकार हिमालय के समान उन्नत पुरुष के अधीन नर-कुंजर प्राप्त हो।

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥

प्रजापत्यादयः । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(मयुः) उत्तम आज्ञा देने वाला पुरुष (प्राजापत्यः) प्रजापति, प्रजापालक राजपद के योग्य है। अथवा (मयुः) उत्तम गान करने हारा (प्राजापत्याः) प्रजापति, राजा के सुख के लिये हो। (उलः) ऊन के वस्त्र देने वाला, (हलिक्ष्णः) सिंह के समान निर्भय चक्षु वाला और (वृषदंशः) तीक्ष्ण प्रकृति वाला विडाल या वृषभ के समान हृष्ट-पुष्ट दिखाई देने वाला (ते) ये तीनों प्रकार के पुरुष (धात्रे) राष्ट्र में धाता, प्रजा के पोषणकारी पद के योग्य हैं। (धुङ्क्षा) शत्रुओं को धुन डालने या कंपा देने वाली और उसको क्षीण करने वाली पक्षिणी के तुल्य सेना (आग्नेयी) 'अग्नि' नामक अग्रणी नायक के अधीन रहे। (कवविङ्कः) मधुरध्वनियों, या कला-यन्त्रों को प्रकट करने वाला, (लोहिताहिः) लोहित अर्थात् लोहादि के बने पदार्थों को आघात करने वाला लोहकार और (पुष्करसादः) तालाब बनाने वाला, अथवा पुष्ट करने वाले वा दृढ़ दुर्गों को बनाने वाला (ते) ये सब (त्वाष्ट्राः) शिल्पकार विभाग के अधीन हों। कलविंक नामक पक्षी, लालसर्प और पुष्करसाद (बीवर) नाम का जन्तु स्वभावतः अपने गृहादि निर्माण में चतुर हैं। वे त्वष्टा देवता के हैं, (वाचे क्रुञ्चः) मधुर उत्तम वाणी के लिये ज्ञानवान् मधुरभाषी पुरुष प्राप्त हों।

सोमाय कुलुङ्ग आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ॥ ३२ ॥

सोमादयः । भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा०—(सोमाय कुलुङ्गः) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्यवान् पद के लिये (कुलुङ्गः) मृग के समान उछाल भर कर शत्रु पर धावा करने वाला पुरुष हो । (आरण्यः अजः) जंगली 'अज' 'अजाशृंगी नामक ओषध' या शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला पुरुष, (नकुलः) नेवला और उस स्वभाव का बिषवैद्य, और (शकाः) मधु-मक्खियां और उनसे तैयार मधु अथवा समवाय बनाकर शक्तिशाली हुए पुरुष (ते पौष्णाः) ये सब पुष्टि करने के लिये प्राप्त किये जायं । (मायोः) दीर्घ शब्द करने के निमित्त पद के लिये (क्रोष्टा) दूर तक बुलाने वाला पुरुष लिया जाय । (इन्द्राय गौरमृगः) ऐश्वर्यवान् या इन्द्र आचार्य पद के लिये वाणियों में रमण करने और अन्तःकरणों को शुद्ध करने में समर्थ पुरुष चाहिये अथवा ऐश्वर्यवान् होने के लिये (गौरमृगः) गौओं और भूमियों में रमण करने और धनादि के खोजने वाला पुरुष चाहिये । (पिद्वः) ज्ञानवान् पुरुष, (न्यङ्कुः) नीचे, शनैः शनैः भाषणशील और (कक्कटः) निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करने करने वाला (ते) वे (अनुमत्यै) अनुमति, सलाह करने के लिये प्राप्त करने चाहियें । (चक्रवाकः) चक्र, राजचक्र में भाषण करने में समर्थ, वाग्मी पुरुष (प्रति-श्रुत्काय) सभा में राजा की घोषणा सुनाने के लिये हो । कुलुंग, अज, नकुल, मधुमक्षी, क्रोष्टा (सियार), गवय, मृग, न्यंकु, कक्कट, चकवा आदि पशु पक्षी भी अपने विशेष स्वभावों से गुणवान् हैं, वे गुण उनसे सीखने चाहियें । 'पिद्वः'—पी गतौ । भ्वादिः । दुगागमः । न्यक्कवति । इति न्यङ्कुः । कटी गतौ । भ्वादिः । गतेर्ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति त्रयोऽर्थाः । चक्रे वर्त्तीति चक्रवाकः । प्रति प्रति श्राव्यते यया क्रियया सा प्रतिश्रुत्का तस्यै । गोषु, वाणीषु, भूमिषु, गोषु धनेषु वा रमते इति गौरः । मृज शुद्धौ । मृगयतेर्वा । कुलंगः कुलं गच्छति इति कुलंगः उत्वं छान्दसम् । अथवा कुत्सितं लुनाति इति कुलुः शत्रुकुलं आकुलयति वा । अजति क्षिपति रोगान् बहिरिति अजः । अरण्ये भवः आरण्यः । न

कुत्सितं मलं लाति इति नकुलः शुद्धान्नौषधप्रापकः । शकाः शचन्ते समवायेन वर्त्तन्ते, शक्नुवन्तीति वा शकाः ।

सौरी बलाका शार्गः सृंजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

मित्रादयः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(बलाका) बल से जाने वाली सेना को (सौरी) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के लिये प्राप्त है । (शार्गः = सारगः) सार पदार्थों तक पहुँचने वाला अथवा 'शार-ग' शरसमूहों सहित जाने वाला, अथवा (शार्ङ्गः) शृंग के बने या उनके समान हिंसाकारी धनुष आदि शस्त्र का धारण करने वाला, शस्त्रधर (सृजयः) वेग से विजय करने वाला, और (शयाण्डकः) शयन से सुख करने वाला, (ते) ये तीनों (मैत्राः) स्नेही एवं प्रजा को मरण से बचाने वाले राजा के लिये प्राप्त करो । (सरस्वत्यै) विद्या के अभ्यास के लिये (पुरुषवाक् शारिः) पुरुष वाणी बोलने वाणी मैना के समान पढ़े पाठ को पुनः अभ्यास करने वाला पुरुष हो । (भौमी श्वावित्) भूमि के भीतरी तत्वों को प्राप्त करने वाला सेहे के समान खोदने वाला हो । (शार्दूलः) शार्दूल के समान पराक्रमी, (वृकः) भेड़िये के समान साहसी और (पृदाकुः) अजगर के समान तपस्वी ये तीनों प्रकार के पुरुष (मन्यवे) 'मन्यु' क्रोध के लिये राजा को अनुकरणीय हैं (सरस्वते) प्रशस्त ज्ञान का अगाध सागर होने के लिये (पुरुषवाक् शुकः) पुरुष की वाणी बोलने वाले शुक के समान पुनः पुनः पाठशील पुरुष को प्राप्त करो। इसी प्रकार बलाका, शारी, सेही, वृक, शयांडक, पृदाकु, शुक आदि जन्तुओं का अध्ययन कर उनके गुणों की परीक्षा करनी चाहिये ।

सुपर्णः पार्जन्य ऽआतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

अग्न्यादयः। स्वराट् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(सुपर्णः) उत्तम पालनशक्ति से सम्पन्न सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पार्जन्यः) मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों का प्रदाता हो। गरुड़ के समान उत्तम पक्षों से सम्पन्न वैमानिक पुरुष मेघों में विचरण करने में समर्थ है। (आतिः) निरन्तर सर्वत्र भ्रमण करने में समर्थ, (वाहसः) वाहनों को साथ रखने वाला और (दर्विदा) दारु, अर्थात् काष्ठों के विद्वान् (ते) वे तीनों पुरुष (वायवे) वायु के समान तीव्र वेग से गति करने में उपकारी हों, वे शीघ्रगामी रथ व विमान बनावें। आतिः वाहस, दर्विदा, इन पक्षियों के वायु में जाने का अनुशीलन करे।

(वाचस्पतये पैङ्गराजः) वाणी के पालकस्वरूप वाचस्पति पद, उत्तम उपदेश और अध्यापन कार्य, एवं उत्तम सूक्त पद्यादि कहने वालों में सर्वश्रेष्ठ पुरुष को प्राप्त करो। मधुरस्वर के लिये पिङ्ग राजपक्षी अनुकरणीय है। (अलजः) जो पुरुष अपने कामों से दूसरे को संताप न दे ऐसा व्यक्ति (अन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष के समान सबका रक्षक होने योग्य है। अलज-पक्षी अन्तरिक्षगति में विशेष है। (प्लवः) बतक व जहाज़, (मद्गुः) जलकाक के समान जल और स्थल दोनों स्थानों पर विहार करने में समर्थ यान और (मत्स्यः) मछली के समान रचना वाला यान (ते नदी-पतये) वे नदीपति समुद्र के संतरण के लिये चाहियें। ये तीन जीव जल-स्थल सन्तरणार्थ अनुकरण करने योग्य हैं।

(द्यावापृथिवीयः कूर्मः) क्रिया उत्पन्न करने में समर्थ सूर्य जैसे द्यौ और पृथिवी को प्रकाश करता है। इसी प्रकार (कूर्मः) क्रियाशील, तेजस्वी पुरुष राजा और प्रजा दोनों का हितकार हो। नीचे की पृथिवी और ऊपर का आकाश दोनों मिलकर महान् 'कूर्म' कच्छप आकार का 'विराट कूर्म' है, उसी प्रकार पृथिवी और उसका रक्षक राजा दोनों राज्य रूप एक कूर्म है। वह उत्तम राज्य, राजा प्रजा दोनों का ही होने से

'द्यावापृथिवी' दोनों का है। 'पैङ्गराजः'—पिजिभाषार्थः। 'अलजः'—अज लजी भर्जने भ्वादिः।

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्ते-ऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः॥ ३५॥

चन्द्रादयः। निचृत् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—(चन्द्रमसः पुरुषमृगः) पुरुषों को उपदेश, आचार व्यवस्था से पवित्र करने वाला पुरुष 'चन्द्रमा' पद के योग्य है। वह चन्द्रवत् आह्लादक है। (गोधा) गौओं का पालक (कालका) यथाकाल, ऋतु अनुसार फल प्राप्त करने वाला और (दार्वाघाटः) काष्ठों को चीरने फाड़ने वाला (ते) ये तीन पुरुष (वनस्पतीनाम्) वन के वनस्पतियों के पालने और प्रयोग के लिये हों। (कृकवाकुः) कण्ठ से शुद्ध वाणी बोलने वाला विद्वान् (सावित्रः) सविता, सर्वप्रेरक, आज्ञापक और सविता के समान ज्ञानी आचार्य पद के योग्य है। इसी प्रकार पुरुषाकार वानर, कालका और दार्वाघाट नाम के जन्तु, पक्षी, वनस्पति, वृक्षादि के प्रयोग में अनुकरण योग्य हैं। (हंसः वातस्य) हंस के समान जल में निर्लेप रह कर विहार करने वाला योगी (वातस्य) प्राण के संयमन में कुशल है। (नाक्रः) नक्र के शरीर के समान बनी नाव, (मकरः) मगरमच्छ के शरीर के समान बनी नाव और (कुलीपयः) कुलीपय नामक जलजन्तु के समान रचना वाला जलयान (अकूपारस्य) समुद्र के विहार के लिये चाहिये। (ह्रियै शल्यकः) लज्जा के लिये सेहा या जंगली कांटेदार चूहा अनुकरण करने योग्य है वह आहट और स्पर्श पाते ही मुंह छिपाकर पड़ जाता है।

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश ऽआश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त ऽइतरजनानां जहका वैष्णवी॥ ३६॥

अश्वादयः निचृज्जगती। निषादः॥

भा०—(एणी) नित्य आने वाली उषा (अह्नः) दिन को प्रकाश करती है। कृष्णमृगी काले श्वेत दो रंगों के मेल से उषा के समान प्रकाश अन्धकार युक्त है। (मूषिका तित्तिरः मण्डूकः) मेंढक, मूसा और तीतर ये तीनों (सर्पाणाम्) सांपों के आहार होते हैं सर्प के विषों को सहते हैं। (लोपाशः आश्विनः) स्त्री और पुरुष दोनों का परस्पर सम्बन्ध 'लो' [पाश = लोहपाश] अर्थात् लोह से बने पाश के समान दृढ़ हो। लोपाशा नामक पशु लोमड़ी आजन्म जोड़ा होकर रहती है, वह अनुकरणीय है। (कृष्णः) काला अंधकार (रात्र्याः) रात्रि का स्वरूप है। (ऋक्षः, जतूः, सुपिलीका ते इतरजनानाम्) रीछ, चमगीदड़ और सुपिलीका नामक पक्षी ये तीनों श्रेष्ठ पुरुषों से भिन्न-भिन्न जनों के स्वभाव के दृष्टान्त हैं। रीछ क्रूर है, वह पशु होकर भी अपुच्छ है, चमगीदड़ न पक्षी है न पशु है। सुपिलीका पक्षी होकर बिल बनाकर रहती है। ये जिस वर्ग के हैं उसमें होकर भी उनसे भिन्न रूप और स्वभाव के हैं इसी प्रकार जो लोग श्रेष्ठ पुरुषों में होकर भी उनसे भिन्न आचार-व्यवहार के हों वे इन जन्तुओं के समान हैं। (जहका वैष्णवी) सर्वत्र फैलने वाली व्यापक शक्ति परमेश्वर की है। राष्ट्र में व्यापक शक्ति राजा की है। 'जहक' नाम चमगीदड़ व्यापक आकाश में उड़ने के लिये विशेष नैसर्गिक शक्तियों से सम्पन्न है। वह अनुकरणीय है। 'राडार' यन्त्र इस पक्षी के मस्तक में महत्व का है। 'जहका—ओहाङ् गतौ।

अ॒न्य॒वा॒पो॑ऽर्द्धमा॒साना॒मृश्यो॑ म॒यूरः॑ सुप॒र्णस्ते ग॑न्ध॒र्वाणा॑म॒पा-मु॒द्रो मा॒साङ् क॒श्यपो॑ रोहि॒त्कु॑ण्ड॒णाची॑ गोल॒त्तिका ते॑ऽप्स॒रसां॑ मृ॒त्यवे॑ऽसि॒तः ॥ ३७ ॥

अर्धमासादयः। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—(अन्यवापः अर्धमासानाम्) स्वक्षेत्र में दूसरों द्वारा बीज-वपन केवल (अर्धमासानाम्) आधे मास, ऋतुकाल-मात्र के लिये हो। उसके अतिरिक्त समय में नियुक्त पुरुष का क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं।

प्रकार 'अन्यवाप' अर्थात् दूसरे के बीज से उत्पन्न कोयल का काक से पालनमात्र का सम्बन्ध है बाद में वह पुनः कोयल का ही बच्चा कहाता है इसी प्रकार असमर्थ पुरुष की स्त्री में अन्य वीर्य द्वारा उत्पादित नियोगज पुत्रों का भी वीर्यसेक्ता के साथ केवल ऋतुकाल के १५ दिनों के संगमात्र का सम्बन्ध है। उसके अतिरिक्त वे पुत्र स्त्री के पाणिगृहीता पति के ही कहाते हैं।

(ऋष्यः मयूरः सुपर्णः ते गन्धर्वाणाम्) ऋष्य नामक मृग जो गान पर मुग्ध हो जाता है 'मयूरः' मोर जो मधुर षड्ज स्वर का आलाप करता है 'सुपर्णः' हंस ये गन्धर्व अर्थात् गान-विद्या के विशेष-विशेष पुरुषों के लिये स्वर-निर्णय में अनुकरणीय हैं। ऋष्य मृग का स्वर ऋषभ, मयूर का षड्ज और हंस का पञ्चम है।

(अपाम् उद्रः) 'उद्र' अर्थात् उदक में रमण करनेहारे कर्कट नाम जीव का अनुकरण करके (अपाम्) जलों के विहार करने के साधन तैयार करें। (कश्यपः) सर्वप्रकाशक सूर्य (मासान्) १२ मासों का उत्पादक है। (रोहित कुण्डृणाची गोलत्तिका ते अप्सरसाम्) रोहित, कुण्डृणाची और गोलत्तिका ये तीन पशुजातियां स्त्री स्वभाव वाले दृष्टान्त हैं। १. 'रोहित्' पुरुष का सङ्ग लाभ कर पुत्र सन्तानादि से फूलती फलती हैं, वह लता स्वभाव की हैं जो पुरुष का आश्रय करके रहती हैं। दूसरी (कुण्डृणाची) दाह या कामनावश पुरुष के पास आती हैं। तीसरी 'गोलत्तिका' अर्थात् गोरतिका, गौ के स्वभाव की, अन्न वस्त्र ही से संतोष करने वाली, अथवा गौ, इन्द्रियों को सुख देने वाली, रतिप्रदा। कदाचित् कामशास्त्र की दृष्टि से रोहित = मृगी। कुण्डृणाची = हस्तिनी और गोलत्तिका = चित्रिणी हों।

(असितः) बन्धनरहित जीव (मृत्यवे) मृत्यु अर्थात् शरीर त्याग के वश होता है। अर्थात् मृत्यु का स्वरूप देहबन्धन से छूटना है। अथवा

(असितः) कृष्ण, पापी बन्धनरहित, निर्मर्याद पुरुष (मृत्यवे) मृत्युदण्ड के योग्य है। कृष्ण सर्प का विष मृत्युकारक होता है।

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितॄणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

वर्षादयः । स्वराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(वर्षाहूः ऋतूनाम्) वर्षाओं को लाने वाला काल ऋतुओं में सबसे श्रेष्ठ है। (आखुः) सब ओर से भूमि को खनकर रत्न, जल, अन्न आदि प्राप्त करने वाला, (कशः) कशा के समान शासक या सर्व विद्याओं का प्रकाशक और (मान्थालः) मथन करके सार भाग प्राप्त करने वाला, ये तीनों प्रकार के पुरुष (पितॄणाम्) पालक माता पिता के समान प्रिय, हितकारी हैं। इसी प्रकार वर्षा में बोलने वाले मेंढक जाति, मूषक और मान्थाल जन्तु काल ज्ञान, दीप्ति पालना आदि गुणों के लिये अनुकरणीय हैं। (बलाय) बल के सम्पादन के लिये (अजगरः) अजगर का अनुकरण करे। जैसे अजगर के समान शरीर देखने में कोमल होकर भी इच्छानुसार कठोर और बलपूर्ण हो। (वसूनां कपिञ्जलः) उत्तम वचन कहने वाला पुरुष कपिंजल पक्षी के समान राष्ट्रवासी प्रजाओं का प्रिय हो। (कपोतः उलूकः शशः ते निर्ऋत्यै) कपोत, उलूक और शशक ये तीनों जन्तु संकट, विपत्ति की सूचना देने वाले हैं। उसके लिये इनकी प्रकृति का अध्ययन करे। (आरण्यो मेषः वरुणाय) जंगली मेढ़ा या जंगली भैंसा, 'वरुण' अर्थात् शत्रुनिवारक पुरुष को अनुकरणीय हैं। शत्रु मारने के काम में पुरुष को उसके समान प्राणपण से जुट जाना चाहिये।

श्वित्र ऽआदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्याऽअरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ॥ ३९ ॥

आदित्यादयः । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(श्वित्रः आदित्यानाम्) श्वेत प्रकाश सूर्य की किरणों का है। वैसा निष्पाप चरित्र आदित्य ब्रह्मचारियों का हो। (उष्ट्रः) उष्ट्र, अर्थात् पापों का दहन करने वाला (घृणीवान्) सूर्य के समान तेजस्वी और (वार्ध्रीनसः) नाक में नकेल लगा लेने के समान इन्द्रियों पर निग्रह करने वाला ये तीन पुरुष (ते मत्यै) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपासना करने योग्य हैं। श्वेत कुष्ठी, ऊंट, वार्ध्रीनस ये जन्तु अपनी विशेषताओं के लिये अनुकरणीय हैं। (अरण्याय सृमरः) गवय के समान जंगलों में घूमने वाला पुरुष जंगल के लिये पथदर्शक होने योग्य है। (रुरुः) निरन्तर उपदेश करने वाला (रौद्रः) उपदेशक होने योग्य है। अथवा, भयंकर शब्द करने वाला पुरुष भयजनक है। (क्वयिः कुटरुः दात्यौहः ते) वेटर कुटरु = कुक्कुट और काक ये तीनों पक्षी (वाजिनाम्) घोड़ों के हितकारी हैं। अथवा बटेरा, कुक्कुर और काक ये तीन दृष्टान्त (वाजिनाम्) युद्ध करने वालों को अनुकरणीय हैं। (कामाय पिकः) काम, मनोभिलाषा पूर्ण करने के लिये कोकिल के समान मनोहर वाणी बोलनेहारा हो।

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥

विश्वेदेवादयः। शक्करी। धैवतः॥

भा०—(खड्गः) गैंडा नामक पशु (वैश्वदेवः) समस्त योद्धा पुरुषों के लिये ढाल बनाने के काम का है। अथवा (खड्गः) खड्ग, तलवार सब सैनिकों के उपयोग की है। (कृष्णः श्वा) काला कुत्ता, (कर्णः गर्दभः) कानों वाला गधा और (तरक्षुः) चीता ये पदार्थ (रक्षसाम्) दुष्ट पुरुषों से बचने के लिये उनके स्वभाव बतलाते हैं उनके गुणों का अध्ययन करें। (इन्द्राय सूकरः) भूमि विदारण के काम में 'सूकर' सूअर लम्बी थोथन वाला पशु अनुकरणीय है। (सिंहः मारुतः) सिंह, प्रयाण करने वाले योद्धा के लिये वीरता और तीव्रता के लिये अनुकरणीय है। (कृकलासः) कृकलास नाम

गिरगिट; (पिप्पका) पिप्पका नाम का छोटा पक्षी और (शकुनिः) शक्ति-शाली बड़ा पक्षी, ये तीनों पदार्थ (शरव्यायै) बाण बनाने के उपयोग के और लक्ष्य पर पहुँचने में अनुकरणीय हैं। गिरगिट के समान बाण का मुख पिप्पका के पूंछ के समान बाण की पूंछ और बड़े पक्षियों के पंखों के खण्डों से बाण बनाता है। (पृषतः विश्वेषां देवानाम्) पृषत् नामक सामान्य मृग समस्त विद्वानों के लिये मृगछाला आदि के आसन और वस्त्र के कार्य का है, अथवा ये मृगजाति देवतुल्य, उत्तम शान्त स्वभाव के हैं।

॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

॥ओ३म्॥ [1] शादं॑ द॒द्भिरव॑कां दन्तमू॒लैर्मृदं॒ बस्वै॑स्ते॒गान्द॒ꣳष्ट्रा॑भ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ऽ अ॑ग्रजि॒ह्वं जि॒ह्वाया॑ऽ उत्सा॒दम॑व॒क्रन्दे॑न॒ तालु॒ वाज॒ꣳ हनु॑भ्याम॒प ऽआ॒स्ये॑न॒ वृष॑णमा॒ण्डाभ्या॑म्। [2] आ॒दि॒त्याँ श्मश्रु॑भिः॒ पन्था॑नं भ्रू॒भ्यां द्यावा॑पृथि॒वी वर्त्तो॑भ्यां वि॒द्युतं॑ क॒नीन॑काभ्या॒ꣳ शु॒क्लाय॒ स्वाहा॑ कृ॒ष्णाय॒ स्वाहा॒ पार्या॑णि॒ पक्ष्मा॑ण्यवा॒र्या॑ इ॒क्षवो॑ऽवा॒र्या॑णि प॒क्ष्मा॑णि॒ पार्या॑ इ॒क्षवः॑॥ १॥

सरस्वत्यादयः। (१) भुरिक् शक्वरी (२) निचृदतिशक्वरी। धैवतः॥

भा०—(शादं दद्भिः) काटने की क्रिया को दांतों से सीखो। (दन्त-मूलैः) दांतों के मूल भागों से (अवकाम्) रक्षा करने की विधि का प्रयोग सीखें। (बस्वैः मृदम्) दांतों के पृष्ठ-भागों से मर्दन करने की क्रिया

१—शादं दद्भिरित्यारभ्य पृथिवीं त्वचा [२५। ९] इत्यन्तः संहिता भागो ब्राह्मणं न मन्त्राः इति महीधरः॥

सीखें कि वे चबाये पदार्थ को कैसे मसलते हैं। (दंष्ट्राभ्यां तेगाम्) दाढ़ों से तीक्ष्णता का ज्ञान करें। (सरस्वत्यै अग्रजिह्वम्) सरस्वती, शुद्ध वाणी के उच्चारण के लिये जिह्वा के अग्रभाग का उपयोग करें। (जिह्वायाः) जीभ से (उत्सादम्) उखाड़ने के व्यापार की शिक्षा लो। वह चतुरता से दांतों में फंसे अन्नादि के अंशों को कैसे उखाड़ती है। (अवक्रन्देन तालुं) नीचे शब्द के प्रयोग से (तालु) तालु का प्रयोग सीखो। (हनूभ्याम् वाजम्) दोनों जबाड़ों से बल की शिक्षा लो, वे वस्तु को कैसी दृढ़ता से पकड़ते हैं। (आस्येन अपः) मुख से जलों के प्रकट होने का विज्ञान देखो, किस प्रकार मुख में लगी ग्रन्थियों से जल छूटता है और नित्य सदा मुख जल से गीला रहता है। (आण्डाभ्याम् वृषणम्) अण्डकोषों से वीर्य सेचन का ज्ञान प्राप्त करो। (श्मश्रुभिः) दाढ़ी मोंछ के बालों से (आदित्यान्) आदित्य ब्रह्मचारियों को पहिचानो, अथवा दाढ़ी मोंछें के बालों से सूर्य की किरणों को जानो। अर्थात् मुख पर दाढ़ी मोंछे सूर्यबिम्ब के चारों ओर उससे निकलने वाली किरणों के समान हैं, (भ्रूभ्याम् पन्थानम्) भौंहों से मार्ग को जानो, जैसे नाक पर दो भौंहें एक दूसरे के विपरीत दिशा में लगी हैं जैसे भिन्न-भिन्न दिशा में गये मार्गों को सूचित करें। अथवा (भ्रूभ्याम्) भौंहों के इशारे से ही (पन्थानम्) जाने योग्य मार्ग को समझो। बुद्धिमान् को इशारों से ही अपनी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य जानना चाहिये। (वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी) ऊपर नीचे की पलकों से आकाश और पृथिवी को जाने। जैसे दो पलकें ऊपर नीचे हैं वे चक्षु को अपने भीतर लिये हैं उसी प्रकार आकाश ऊपर और पृथिवी नीचे वे दोनों दो पलकों के समान सूर्य रूप तेज को अपने भीतर धारण करती हैं। (कनीनकाभ्याम्) आंख की पुतलियों से (विद्युतम्) या विशेष द्युतिमय सूर्य को समझो। पलकों के बीच की पुतली आकाश और भूमि के बीच विशेष तेजस्वी सूर्यवत् है। (शुक्राय स्वाहा) आंख के शुक्र भाग का भी ज्ञान करो और (कृष्णाय स्वाहा) कृष्ण भाग का भी ज्ञान करो। ये दोनों दिव

और रात्रि के प्रकाश और अन्धकार के समान चक्षु के तेज के रक्षक हैं। (पक्ष्माणि) पलकों पर के लोम (पार्याणि) नदी के परले तट पर लगे कासों के समान हैं। (इक्षवः) नीचे की पलकों के लोम (अवार्याणि) मानो इस तीर के कासों के समान हैं। अथवा (पक्ष्माणि) स्वीकार करने योग्य वस्तु (पार्याणि) पालन करने योग्य हैं। (इक्षवः) इच्छानुकूल पदार्थ (अवार्याणि) वारण नहीं करने चाहियें। और इसी प्रकार (पक्ष्माणि अवार्याणि) अपने पक्ष के, ग्रहण योग्यों को तिरस्कार न किया जाय। (इक्षवः पार्या) इष्ट सम्बन्धियों को पालन करना चाहिये। (२) इस मन्त्र में राष्ट्र की मनुष्य के मुंह से तुलना भी है। जैसे (शादं दद्भिः) 'शाद्' अर्थात् छेदन करने वाले शस्त्र बल की दांतों से तुलना करो। (अवकां) शैवाल को दन्तमूलों से तुलना करो। अथवा काटने वाले हथियारों की दांतों से। राष्ट्र की रक्षा करने वाली सेना को दांतों के मूलों के तुल्य मानो। (तेगां दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण शस्त्र की दाढ़ों से, (सरस्वत्या अग्रजिह्वम्) सरस्वती या विद्वत्समिति से मुखस्थ जीभ की और (जिह्वायाः उत्सादम्) मुख में लगी जीभ की राष्ट्र में शत्रु को उखाड़ देने की शक्ति से तुलना करो। (अवक्रन्देन) शत्रु को ललकारने वाले या दबाने वाले बल से (तालु) तालु की जैसे भोज्य पदार्थ को तालु दबा लेता है उसी प्रकार राजा भोग्य राष्ट्र को दबाकर भोग करे। (वाजं हनुभ्याम्) राष्ट्र के बल वीर्य की मुख के जबाड़ों से। (अपः आस्येन) राष्ट्र में स्थिर जलों की (आस्येन) गीले मुख से, अथवा (अपः आस्येन) प्रजाओं की समस्त खाने वाले मुख से तुलना करो। (वृषणम् आण्डाभ्याम्) शरीर में स्थित अण्डकोशों से वर्षा करने वाले मेघ की, (आदित्यान् श्मश्रुभिः) सूर्य की किरणों की मुख के मूंछ दाढ़ी से, (पन्थानं भ्रूभ्याम्) राष्ट्र में बने मार्ग की मुख पर लगी भौंहों से, (वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी) दो पलकों से आकाश और पृथिवी की और (विद्युतं कनीनकाभ्याम्) आकाश पृथिवी के बीच स्थित विशेष कान्तिवाले सूर्य या विद्युत् की आंखों की पुतलियों से, तुलना करो। (शुक्राय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा, शुक्रेन शुक्रं सुष्ठु आह। कृष्णेन कृष्णं सुष्ठु उच्यते।

अथवा, शुक्रः शुक्रं स्वम् उपमानमाह कृष्णः कृष्णं स्वम् उपमानम् आह) आंख के श्वेत भाग और कृष्ण भाग के लिये भी दिन और रात्रि के शुक्ल और कृष्ण, प्रकाश और अन्धकार दोनों की उत्तम रीति से तुलना करो। (पक्ष्माणि पार्याणि) ऊपर के पलक के लोम राष्ट्र के पालन करने वाले अथवा दूर देश वासी जन के समान हैं। और (इक्षवः) निचली पलक के रोम (अवार्याणि) समीप के प्रान्तों के वासी जनों के समान हैं। अथवा इससे विपरीत (पक्ष्माणि अवार्याणि पार्या इक्षवः) ऊपर की पलकों के लोम पास के प्रान्तों की प्रजा और नीचे के पलक के रोम दूर के प्रान्तों की प्रजा के समान हैं।

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳬं श्रोत्रᳬं श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिᳬं शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳬं स्तुपेन ॥ २ ॥

प्राणादयः । भुरिगतिशक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(प्राणेन वातम्) शरीरगत प्राण से राष्ट्रगत वायु की, (अपानेन नासिके) शरीर की नासिका की अपान वायु से, (अधरेण ओष्ठेन उपयामम्) नीचे की ओठ से राज्य व्यवस्था की, (सत् उत्तरेण) ऊपर के होंठ से राज्य के सदाचार व्यवस्था की, (प्रकाशेन अन्तरम्) राज्य में विद्या, विज्ञान और सुर्यादि के प्रकाश से शरीर के भीतर के अङ्गों की ज्ञानपूर्वक रचना की और (अनूकाशेन) उसके अनुरूप प्रकाश से (बाह्यम्) देह के बाह्य स्वरूप की तुलना करो। (मूर्ध्ना निवेष्यम्) शरीर के शिरोभाग से राष्ट्र के एक स्थान पर बसे मुख्य भाग राजधानी की (स्तनयित्नुम् निर्बाधेन) शरीर में स्थित शिर के बीच के भेजे के श्वेत भाग

की तुलना आकाश में स्थित गर्जनकारी मेघ से, (अशनिं मस्तिष्केण) मस्तक में स्थित भेजे या भूरे रंग के भाग से मेघस्थ वज्र की, (विद्युतं कनीनकाभ्याम्) चक्षुओं में स्थित पुतलियां से मेघस्थ विद्युत की, (कर्णाभ्यां श्रोत्रम्) दिशाओं के दो कोनों से शरीर के श्रोत्र की, या कानों में आकाश की, और (श्रोत्राभ्यां कर्णौ) शरीरगत श्रवण के साधन कानों से दो कोनों की तुलना करो। (तेदनीम् अधरकण्ठेन) राष्ट्र की 'तेदनी' = तेजनी, तीक्ष्ण शक्ति को शरीरगत कण्ठ के नीचे के भाग से, (शुष्ककण्ठेन अप) शरीरगत सूखे कण्ठ भाग से राष्ट्र की प्रजाओं की तुलना करो। अर्थात् वे सदा सूखे गले के समान अन्न जल की प्यासी रहती हैं। (चित्तं मन्याभिः) शरीर में स्थित चित्त को (मन्याभिः) राष्ट्र की मान करने वाली राजसभाओं से तुलना करो। (अदितिं शीर्ष्णा) शरीरस्थ शिर से प्रभु की अखण्ड आज्ञा की तुलना करो। (निर्ऋतिं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा) राष्ट्र के नाश या विपत्ति की तुलना शरीर में, मृत्युग्रस्त अथवा (निर्जर्जल्येन) अत्यन्त जर्जर, बेसुध शिर से करो जिसका बोलना बन्द हो चुका हो। (संक्रोशैः प्राणान्) राष्ट्र में एक दूसरे के प्रति बोले हुए शब्द, वार्तालाप, आह्वान आदि की तुलना शरीरस्थ प्राणों से करो। (रेष्माणं स्तुपेन) शिर में लगे आघात आदि से राष्ट्र में उत्पन्न परस्पर घात प्रतिघात उपद्रव की तुलना करो। (२) अध्यात्म में—(प्राणेन वातम् आपूरय) हे अभ्यासी पुरुष! तू प्राणवृत्ति अर्थात् बाहर से भीतर श्वास द्वारा वायु को पूर्ण कर। (अपानेन नासिके) और फिर अपान अर्थात् भीतर से बाहर आते हुए निःश्वास द्वारा दोनों नाकों को रिक्त करे। (अधरेण ओष्ठेन उत्तरेण सत् उपयानम्) ऊपर और नीचे के ओष्ठों से प्राप्त या स्वीकृत नियम, से मौन मुद्रा या वाक्संयम की साधना कर। (प्रकाशेन अन्तरम्) ज्ञान के प्रकाश से भीतर को उज्ज्वल करे और (अनुकाशेन बाह्यम्) तदनुसार स्वच्छ आचरण से अपने बाह्य शरीर को सुन्दर बना। (मूर्ध्ना निवेश्यम्) अपने शिर से ध्यान करने योग्य ध्येय पदार्थ की चिन्ता कर।

(निर्बाधेन) अच्छी प्रकार रोक लेने के उपाय से (स्तनयित्नुम्) मेघ को या गर्जनकारी विद्युत् को प्राप्त कर अथवा (निर्बाधेन) निरन्तर ताड़ना या प्रहार से (स्तनयित्नुम्) शब्द करने की क्रिया को उत्पन्न कर । (मस्तिष्केण अशनिम्) मस्तिष्क—मस्तक में स्थित मज्जा तन्तु के जाल से देह में व्यापक विद्युत् की साधना कर। (कनीनकाभ्याम् विद्युतम्) आंख की पुतलियों से विशेष दीप्ति को प्राप्त कर। (कर्णाभ्यां श्रोत्रम्) कानों से श्रवण शक्ति को प्राप्त कर। (श्रोत्राभ्यां कर्णौ) श्रवण करने वाली भीतरी इन्द्रियों से बाह्य कानों के उपयोग व उनकी रचना का ज्ञान करे। (अधरकण्ठेन तेदनीम्) कण्ठ के नीचे के भाग से 'तेदनी' भोजन के ग्रसने की क्रिया को कर। (शुष्ककण्ठेन अपः) सूखे कण्ठ से जलों का पान कर। (मन्याभिः चित्तम्) मन्या नाम की धमनियों से या मनन करने की विज्ञान क्रियाओं से (चित्तम्) चित्त को तीव्र कर। (शीर्ष्णा अदितिम्) शिर से अविनाशिनी अर्थात् न नाश होने वाली ब्रह्मविद्या या प्रज्ञा को प्राप्त कर। (निर्जर्जल्येन) सर्वथा जर्जर हुए शिर से (निर्ऋतिम्) मृत्यु को या भूमि को प्राप्त हो। अर्थात् शिर की ज्ञान चेतना के सर्वथा नाश या लोप हो जाने पर पुनः देह से मृत्यु द्वारा मिट्टी में मिल जावे। (संक्रोशैः प्राणान्) लम्बे-लम्बे आह्वान अर्थात् दीर्घ शब्दों से प्राणों की शक्ति को बढ़ा। (स्तुपेन रेष्माणम्) हिंसा के प्रयोग से अपने हिंसक को विनाश कर। योग द्वारा शरीर के अंगों में स्थित इन शक्तियों का सूक्ष्म अनुशीलन करना चाहिये।

'निर्जल्पेन' इति बम्बईनिर्णयसागरीय पाठः', 'निर्जर्जल्पेन इत्यजमेरमुद्रितः पाठः।' 'निर्जर्जल्येन' इति स्वाध्यायमण्डलप्रकाशितः शुद्धः पाठः।

मशकान् केशैरिन्द्र ँ स्वपसा वहेन बृहस्पतिँ शकुनिसादेन कूर्माञ्छफैराक्रमण ँ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावँ सांभ्याꣳरुद्र ँ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

इन्द्रादयः । भुरिक्कृतिः । निषादः ।

भा०—राष्ट्र में स्थित (मशकान्) मशक, मच्छर आदि क्षुद्र जन्तुओं की शरीर में स्थित (केशैः) केशों से तुलना करे । (वहेन स्वपसा) उत्तम कर्म करने और भार उठाने में समर्थ स्कन्ध देश से (इन्द्रम्) राष्ट्र के इन्द्र या मुख्य राजा की तुलना करो, (शकुनिसादेन) पक्षी या शक्तिशाली पुरुष के समान पैर जमाकर बैठने की शक्ति से (बृहस्पतिम्) राष्ट्र के बृहस्पति पद, महामात्य की तुलना करो। (शफैः कूर्मान्) पैर के खुरों से राष्ट्र के कूर्मों या क्रियाशील पुरुषों की लतुना करो (स्थूराभ्याम् आक्रमणम्) स्थूल चूतड़ों से राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर उसे दबा बैठने की तुलना करो । अर्थात् जैसे मनुष्य चूतड़ों से आसन पर बैठ जाता है और उस जगह को घेर लेता है उसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे पर आक्रमण करके उसे अपने वश कर लेता है। (ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्) चूतड़ के नीचे की नाड़ियों से राष्ट्र में विद्यमान कपिञ्जल अर्थात् उत्तम उपदेश देने वाले विद्वानों की तुलना करो । (जङ्घाभ्याम् जवम्) शरीर के जंघाओं से राष्ट्र के वेग के कार्यों की तुलना करो । (बाहुभ्याम् अध्वानम्) शरीर के हाथों से राष्ट्र के मार्ग की तुलना करो। (जाम्बीलेन अरण्यम्) गाड़ी के नीचे भाग से राष्ट्र के जंगल भाग की तुलना करो। (अतिरुग्भ्याम् अग्निम्) अति दीप्तिवाले सुन्दर दोनों जानु भागों से राष्ट्र के 'अग्नि' अग्रणी पद की तुलना करो। (दोर्भ्यां पूषणम्) बाहुओं से राष्ट्र के पूषा नामक अधिकारी की तुलना करो। (अंसाभ्याम् अश्विनौ) कन्धों से 'अश्वी' नामक दो मुख्य अधिकारियों की तुलना करो। (रोराभ्यां रुद्रम्) कन्धों की गांठों से रुद्र नामक अधिकारी की तुलना करो।

अथवा—(केशैः मशकान्) बालों की चौंअरियों से जिस प्रकार मच्छरों को दूर किया जाता है उसी प्रकार मच्छर के स्वभाव के दुखदायी जीवों को (केशैः = क्लेशैः) क्लेशदायी साधनों से विनष्ट करो। (स्वपसा) उत्तम कर्म और प्रजा से (इन्द्रम्) भत्मा और ऐश्वर्यवान्

परमेश्वर को प्राप्त करो। (वहेन) उत्तम प्राप्ति के साधन रथादि से (बृहस्पतिम्) बृहती वेद वाणी के पालक आचार्य, या बड़े राष्ट्र के पालक राजा को मानपूर्वक प्राप्त करो। (शकुनिसादेन) पक्षियों को पकड़ने के साधन जाल से ही कूर्म जाति के जन्तुओं को 'जल में पकड़ा जाता है उसी प्रकार प्रलोभन दिखा कर (कूर्मान्) कर्म करनेवाले योग्य पुरुषों को वश करो। (शफैः आक्रमणम्) खुरों से जिस प्रकार वेग से आक्रमण किया जाता है इसी प्रकार वेगवान् साधनों से आक्रमण करो। (स्थूराभ्यां जंघाभ्यां जवम्) हृष्ट-पुष्ट जंघाओं से वेगपूर्वक गमन करो। (ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्) 'ऋक्षरा' अर्थात् कपाटिकाओं से जिस प्रकार गौरैया जैसे छोटे-छोटे पक्षियों को पकड़ा जाता है उसी प्रकार 'ऋक्षरा' अर्थात् सत्य-प्रसारक विद्वानों की धार्मिक और ज्ञानप्रसारक वृत्तियों द्वारा उत्तम उपदेश देने वाले विद्वानों को प्राप्त करो। (जंघाभ्याम् अध्वानम्) जांघों से ही मार्ग को तय करो। (जाम्बीलेन अरण्यम्) जम्बीर जाति के कांटेदार वृक्षों से जंगल को पूर्ण करो। (अतिरुग्भ्याम् पूषणं अग्निम्) रुचि और पुष्टिकारक अन्न को और दीप्ति से अग्नि को प्राप्त करो। (दोर्भ्यां अंसाभ्याम्) बाहुओं और कन्धों से (अश्विनौ) राजा और प्रजा को प्राप्त करो। अर्थात् राजा अपने बाहुओं के बल को वश करे और प्रजाएं अपने कन्धों से राजा का वहन करें। (रोराभ्याम्) श्रवण और उपदेश द्वारा (रुद्रम्) विद्वान् उपदेशक को प्राप्त करो।

अ॒ग्नेः प॑क्ष॒तिर्वा॒योर्निप॑क्षति॒रिन्द्र॑स्य तृ॒तीया॒ सोम॑स्य चतु॒र्थ्य॒दित्यै पञ्चमी॒न्द्रा॒ण्यै ष॒ष्ठी म॒रुतां॑ सप्त॒मी बृह॒स्पते॑रष्ट॒म्य॒र्य॒म्णो न॑व॒मी धा॒तुर्द॑श॒मीन्द्र॑स्यैका॒द॒शी वरु॑णस्य द्वाद॒शी य॒मस्य॑ त्रयोद॒शी ॥ ४ ॥

अग्न्यादयः। स्वराड् धृतिः। ऋषभः॥

४—तृतीयायां चतुर्थी० इति काण्व०।

भा०—राष्ट्र के अंगों की, शरीर के छाती की पसुलियों के अंगों से तुलना। (अग्नेः पक्षतिः) अग्नि, अग्रणी पुरुष की शरीर में प्रथम पसुली से तुलना करो। (वायोर्निपक्षितिः) वायु की दूसरी पसुली से, (इन्द्रस्य तृतीया) इन्द्र विद्युत् की तीसरी पसुली से, (सोमस्य चतुर्थी) सोम, ओषधि आदि की चौथी पसुली से, (पञ्चमी आदित्यै) अदिति अर्थात् भूमि की पांचवीं पसुली से, (इन्द्राण्यै षष्ठी) इन्द्र, राजा की महाराणी से छठी पसुली की, (मरुतां सप्तमी) वायुएं और वैश्य प्रजाओं या विद्वान् पुरुषों से सातवीं पसुली की, (बृहस्पतेः अष्टमी) बृहस्पति, मन्त्री की आठवीं पसुली से, (अर्यम्णः नवमी) अर्यमा, न्यायकारी न्यायाधीश की नवीं पसुली से, (धातुर्दशमी) धाता, राष्ट्रपोषक से दशवों पसुली की, (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र सेनापति की ग्यारहवीं पसुली, (वरुणस्य द्वादशी) वरुण की बारहवीं पसुली से और (यमस्य त्रयोदशी) नियन्ता ब्रह्मचारी पुरुष 'यम' की तेरहवीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार १३ अधिकारी मानो राष्ट्र की दायीं ओर की छाती के १३ अधिकारी हैं। इसी प्रकार अगले मन्त्र में वाम पार्श्व की १३ पसुलियों से अन्य १३ अंगों का वर्णन करेंगे।

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणांᳫं सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५॥

इन्द्रादयः। स्वराड् विकृतिः। मध्यमः॥

भा०—(इन्द्राग्न्योः पक्षतिः) बायें पार्श्व की प्रथम पसुली इन्द्र और अग्नि दोनों पदों को समझो। (सरस्वत्यै निपक्षतिः) सरस्वती की दूसरी पसुली से तुलना करो। (मित्रस्य तृतीया) मित्र की तीसरी पसुली से,

५—० तृतीया सोमस्य० इति काण्व०।

(अपां चतुर्थी) प्रजाओं की चौथी पसुली से, (निर्ऋत्यै पञ्चमी) निर्ऋति अर्थात् मृत्यु दण्ड की पांचवीं पसुली से, (अग्निसोमयोः षष्ठी) अग्नि और सोम की छठी पसुली से, (सर्पाणां सप्तमी) सर्प अर्थात् चरों की सातवीं पसुली से, (विष्णोः अष्टमी) व्यापक विष्णु, राजा, आकाशचारी विभाग की आठवीं पसुली से, (पूष्णो नवमी) पूषा राष्ट्रपोषक की नवीं पसुली से, (त्वष्टुः दशमी) त्वष्टा अर्थात् शिल्पशास्त्रवेत्ता की (दशवीं) प्रसुली से, (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र की ग्यारहवीं पसुली से (वरुणस्य द्वादशी) वरुण की बारहवीं पसुली से, (यम्यै त्रयोदशी) यमी, ब्रह्मचारिणी स्त्रियों की तेरहवीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार (द्यावापृथिव्योः) द्यौ और पृथिवी के समान एवं राजा और प्रजा दोनों का (दक्षिणं पार्श्वम्) दायां पार्श्व है और (विश्वेषां देवानाम् उत्तरम्) समस्त विद्वान् पुरुषों का बायां पार्श्व है। अर्थात् राजसभा के दो भाग हो गये एक में राजा और प्रजा के अधिकारीगण और दूसरे में समस्त विद्वान् जन।

मरुतांᳬ स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ क्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पतीऽऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳬ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

मरुदादयः। निचृदतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—(मरुतां स्कन्धाः) जैसे शरीर में कन्धे हैं वैसे ही राष्ट्र में 'मरुत' अर्थात् शत्रु को वायुवेग से झपट कर मारने वाले वीर सेनाओं को (स्कन्धाः) स्कन्धावार या छावनियां हैं (विश्वेषां देवानाम्) समस्त विद्वान् पुरुषों की (प्रथमा) सबसे प्रथम, सर्वोत्तम (कीकसा) उपदेश क्रिया प्रथम 'कीकसा' अर्थात् कूल्हे की पहली मोहरी के समान आधार है। (रुद्राणां द्वितीया) रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले दमनकारी पुरुषों

६—मित्रावरुणा श्रल्गा० इति काण्व०।

की शासन व्यवस्था दूसरी मोहरी के समान है। (तृतीया आदित्यानाम्) आदित्य के समान तेजस्वी अखण्डित शासनकारी अधीशों का शासन तीसरी मोहरी के समान है। (वायोः पुच्छम्) 'वायु' न्यायाधीश का पद शरीर में पूंछ के समान राष्ट्र का आश्रय वा दुष्ट पुरुषों का नाशक है। (अग्नि-सोमयोः) अग्नि, अग्रणी सेनापति और सोम, ऐश्वर्यवान् राजा यह दोनों तेजस्वी पदाधिकारी राष्ट्र के (भासदौ) दो नितम्ब भागों के समान राष्ट्र के अधार हैं। (क्रुञ्चौ) हंसों के समान विशेष विवेकी, दो विद्वान् (श्रोणिभ्याम्) राष्ट्र के कटिप्रदेशों से तुलना करते हैं। (इन्द्र-बृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति, राजा और मंत्री दोनों (ऊरुभ्याम्) राष्ट्र के दो जांघों (अलगाभ्याम्) अति वेग से गमन करने वाले ऊरुओं के दो सन्धि भागों से (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण इन दो पदाधिकारियों की तुलना है। (आक्रमणम्) राष्ट्र का विजयार्थ आक्रमण करने की (स्थूराभ्याम्) स्थूल जांघों के भागों से तुलना है। (कुष्ठाभ्याम्) जांघ चूतड़ दोनों के बीच के गहरे स्थानों से (बलम्) राष्ट्र के सैन्य-बल की तुलना है।

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत ऽआन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिन ँ शेपेन प्रजाᳬं रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः ॥७॥

पूषादयः। निचृदष्टिः। मध्यमः॥

भा०—(वनिष्ठुना पूषणम्) स्थूल आंतों से पूषा नाम अधिकारी की तुलना करो। (स्थूलगुदया अन्धाहीन्) अन्धे सांपों की स्थूल गुदा के भाग से, (गुदाभिः सर्पान्) गुदाओं से सांपों की, (आन्त्रैः विह्रुतः) शरीर की आंतों से अन्य कुटिलगामी सर्पों की, (वस्तिना अपः) राष्ट्र के भीतर जल, जलाशयों नदियों की वस्ति भाग से, (वृषणम् आण्डाभ्याम्) वर्षणकारी मेघ की वीर्य-सेचन-समर्थ अण्डकोशों से (वाजिनम्) वीर्यवान् बलवान् पुरुष की शरीर में (शेपेन) पुं-लिङ्ग से (रेतसा प्रजाम्) राष्ट्र की प्रजा की शरीरस्थ वीर्य से (चाषान् पित्तेन) खाने योग्य पदार्थों की

शरीरस्थ पित्त पदार्थ से (पायुना प्रदरान्) शरीरस्थ पायु या गुदा मार्ग से राष्ट्र के भीतर विशेष फटे-फटे दरारभागों की (कुश्मान्) 'कुश्म' अर्थात् शासक पदाधिकारी अथवा अग्नि के बल से फेंके जाने वाले गोलों और अग्निमय पदार्थों की, और (शकपिण्डैः) शक्तिमान् पिण्डों के समान शरीर में स्थित विष्ठा के पिण्डों से तुलना करो। अथवा—(पूषणम्) पोषक पुरुष को, उससे (अनिष्ठुना) याचना द्वारा शक्ति और अन्न प्राप्त करे, (स्थूलगुदया सहितान् अन्धाहीन् गुदया सर्पान्) मोटी गुदा से युक्त अंधे सापों को और गुदा भाग से साधारण सांपों को पकड़ कर वश करो। (आन्त्रैः विह्रुतः) विशेष कुटिल सांपों को उनकी आंतों से वश करो। (वस्तिना: अपः) वस्ति क्रिया द्वारा जलों को प्राप्त करो। (अण्डाभ्याम् वृषणम्) अण्ड-कोषों से वीर्याधार स्थान को पूर्ण करो। (शेपेन वाजिना) लिङ्ग-भाग से वीर्यवान् अश्व या वीर्यवान् पुरुष की परीक्षा करो। (रेतसः) वीर्य से (प्रजाम्) प्रजा को प्राप्त करो। (पित्तेन) पित्त के बल से (चापान्) भुक्त पदार्थों को पचावो। (प्रदरान् पायुना) गुदा भाग से पेट के भीतर भागों को स्वच्छ और बलवान् करो। (शकपिण्डैः) शक्ति के संघों से (कूश्मान्) शासन बलों को प्राप्त करो।

इन्द्र॑स्य क्रो॒डोऽदि॑त्यै पाज॒स्यं॑ दि॒शां ज॒त्रवोऽदि॑त्यै भ॒सज्जी॒मूता॑न्हृदयौप॒शेना॒न्तरि॑क्षं पु॒रीत॑ता नभ॑ऽउद॒र्ये॑ण चक्रवा॒कौ मत॑स्नाभ्यां दि॒वं॑ वृ॒क्काभ्यां॑ गि॒रीन् प्ला॒शिभि॒रुप॑लान् प्ली॒ह्ना व॒ल्मीका॑न् क्लो॒मभि॑ग्लौ॒भिर्गुल्मा॑न्हि॒राभिः॒ स्रव॑न्तीर्ह्र॒दान् कु॒क्षिभ्या॑ᳪं समु॒द्रमु॒दरे॑ण वैश्वान॒रं भस्म॑ना ॥ ८ ॥

इन्द्रादयः। निचृदतिकृतिः। ऋषभः॥

भा०—(क्रोडः इन्द्रस्य) शरीर का गोद भाग इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा का है। शरीर में जिस प्रकार पेट में नाभि केन्द्र है वैसे ही राष्ट्र की नाभि में राजा है। (अदित्यै पाजस्यम्) अदिति पृथिवी का स्वरूप शरीर में पाद, खड़े होने का स्थान है। (दिशां जत्रवः) दिशाओं का स्वरूप शरीर

में जत्रु, कन्धे और कोख के बीच की हंसुली है। (आदित्यै) अदिति, द्यौ, आकाश ही राष्ट्र की (भसत्) तेजस्वरूप होने से शरीर में (भसत्) लिङ्ग वीर्यवान् अंग के समान है (जीमूतान् हृदयौपशम्) राष्ट्र के विजयशील पुरुषों की, शरीर के हृदय भाग में विद्यमान, बल या रुधिर सञ्चारक उपकरणों से तुलना करो (पुरीतता अन्तरिक्षम्) शरीर में स्थित पुरीतत् नामक हृदय की नाड़ी से अन्तरिक्ष की, (उदर्येण) उदर में स्थित यन्त्रों से (नभः) आकाश की (मतस्नाभ्याम्) हृदय के दोनों पासों पर स्थित फुफ्फुसों की, (चक्रवाकौ) राष्ट्र में स्थित चकवा चकवी के समान प्रेम से बद्ध स्त्री पुरुषों की, (दिवं वृक्काभ्याम्) शरीर में वृक्क अर्थात् गुर्दों से द्यौ या आकाश की तुलना करो। जिस प्रकार आकाश से जल गिरता है उसी प्रकार शरीर के गुर्दों से मूत्र जल स्रवित होता है। (प्लाशिभिः गिरीन्) शरीर में स्थित 'प्लाशि', पेट के भीतरी अन्न रस प्राप्त करने वाली नाड़ियों से राष्ट्र में स्थित पर्वतों की, (उपलान् प्लीहा) शरीर में स्थित प्लीहा, पिलही भाग से मेघों की (क्लोमभिः वल्मीकान्) राष्ट्र में स्थित बाल्मीक के बने ढेरों की शरीर के 'क्लोम' नाम फुफ्फुस या, यकृत के अंशों से तुलना करो। दोनों सछिद्र होने से एक जैसे हैं। (ग्लौभिः गुल्मान्) राष्ट्र में विद्यमान लता आदि से आवृत प्रदेशों को 'ग्लौ' नामक हृदय की हर्ष, क्षय या शोक, पीड़ा, आघात, संवेदना आदि अनुभव करने वाली विशेष नाड़ियों से तुलना करो। (हिराभिः स्रवन्तीः) शरीर में स्थित अन्नरस और रुधिर के वहन करने वाली नाड़ियों से राष्ट्र में स्थित नदियों की तुलना करो। (ह्रदान् कुक्षिभ्याम्) राष्ट्र में ताल, जलाशयों की शरीर में कोखों के बीच रुधिर से भरे स्थानों की तुलना करो। (समुद्रम् उदरेण) समुद्र की उदर भाग से तुलना करो। जिस प्रकार समुद्र से जल उठकर समस्त भूमि पर वर्षा होती और बलकारी अन्नरस ओषधियां उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार उदर से अन्नरस उठकर सर्वत्र पहुँचते हैं और केश, लोम, मांस, त्वचा आदि सब पुष्ट होते हैं। (वैश्वा-

नरं भस्मना) भस्म के समान निस्सार अथवा भुक्त अन्न को जीर्ण करने वाली कान्तिजनक जाठर अग्नि से वैश्वानर नामक समस्त नरों के हितकारी अग्नि की तुलना करो। इस मन्त्र की तैत्तिरीय संहिता के का० ७। प्र० ५।२५ से तथा बृहदारण्यक के १।१। से करो। उसमें अश्व के अंगों से यज्ञ पुरुष, एवं विराट् प्रजापति और राष्ट्र शरीर की तुलना की गई है।

विधृतिं नाभ्या घृतꣳ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षांꣳसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा ॥ ९ ॥

पूषादयः। भुरिगत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(विधृतिम्) विशेष रूप से लोकों को धारण पालन करने वाली शक्ति को (नाभ्या) शरीर के मध्य में स्थित नाभि से तुलना करो। (घृतं रसेन) घृत के समान तेजोवर्धक पदार्थ की शरीरस्थ बलकारी रस से, (यूष्णा आपः) शरीर में पक्वाशय में स्थित पक्वरस से राष्ट्र में स्थित जनों की या परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् आप्त पुरुषों की, (मरीचीः विप्रुड्भिः) सूर्य की किरणों की विशेष पूर्ण रूप करने वाले शरीर के वसा आदि धातुओं से और (ऊष्मणा नीहारम्) शरीर में स्थित उष्णता से राष्ट्र के 'नीहार' अर्थात् प्रभात काल में पड़े जल के ओस के फुहार से तुलना करो। अर्थात् जैसे शरीर की गर्मी से सब अंग जीवित जागृत रहते हैं उसी प्रकार ओस से वनस्पति आदि जीवित, वर्धित होते हैं। (शीनं वसया) शरीर के अंग प्रत्यंग या मांस के परमाणु २ में बसी जीवन शक्ति से शीन अर्थात् वनस्पतियों और प्राणियों की वृद्धि करने वाली शीतलता की, (प्रुष्वा अश्रुभिः) शरीर के आंसुओं से वृक्षों को सींचने वाले फुहारों की (ह्रादुनीः दूषीकाभिः) नेत्र में उत्पन्न मल, गीदों से आकाश में उत्पन्न विद्युतों की, (अस्ना रक्षांसि) शरीर के रुधिर से रक्षा करने वाले साधनों और रक्षा करने योग्य पदार्थों को, (चित्राणि अङ्गैः)

शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों से राष्ट्र के चित्र विचित्र, स्थानों, दृश्यों और देशों की और (नक्षत्राणि रूपेण) नक्षत्रों की शरीर के बाह्य रूप या रुचिकर तेज से और (पृथिवी त्वचा) पृथिवी या राष्ट्र के पृष्ठ की (त्वचा) शरीर की त्वचा से तुलना करो। अथवा—नाभि से विशेष धारण व्यवस्था जाने, आस्वाद से भोजन का तेजोंऽश जाने, रसदार अंग से आपः तत्व जाने, बिन्दु के आकार वाले पदार्थों से विकिरित सूर्य की सात किरणों का ज्ञान करे। सूर्य ताप से जल से उठाने वाले नीहार, जलीय वाष्प का ज्ञान करे, वसा से देह की पुष्टता देखे। अश्रुओं के उद्गम के सिद्धान्त से फुहार के छोड़ने वाले यन्त्र की रचना जाने। अंग से निकलने वाले मलों से देह की रोग पीड़ाएं जाने। रक्त से देह की रक्षाबल जाने, कान्ति प्रकाश से नक्षत्रों की परीक्षा करे। ऊपर की रचना से भूमि की परीक्षा करे।

जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

शुण्डिभो मुण्डिभो वा औदन्य ऋषिः। जुम्बको वरुणो देवता।
द्विपदा यजुर्गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(जुम्बकाय) सब शत्रुओं के नाश करने में समर्थ सब से अधिक वेगवान्, बलवान् पुरुष को यह राष्ट्र (स्वाहा) उत्तम सत्य प्रतिज्ञा करा कर उसी तरह से सौंप दिया जाय जिस प्रकार (जुम्बकाय) रोगनाशन में समर्थ वा वेगवान् बलकारी, अपान के अधीन यह समस्त शरीर है।

वरुणो वै जुम्बकः। श० १३। ३। ६। ५ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१०॥
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव।
यऽईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥११॥

भा०—व्याख्या (१०—११) की देखो अ० २३। १, ३ ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥

कः प्रजापतिरीश्वरौ देवता । स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(यस्य) जिसके (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (इमे) ये (हिमवन्तः) हिम वाले पर्वत बने हैं और (यस्य महित्वा) जिसके महान् सामर्थ्य से (रसया सह) स्नेहगुण या जलों से बद्ध, ठोस हुई पृथिवी के साथ (समुद्रम्) महान् समुद्र को (आहुः) बतलाते हैं। और (यस्य) जिसके महान् सामर्थ्य से बनी (इमाः) ये (प्रदिशः) दिशा, उपदिशाएं (यस्य बाहू) जिसके बाहुओं के समान हैं, उस (कस्मै) सुखस्वरूप, प्रजापालक (देवाय) तेजस्वी परमेश्वर की (हविषा) स्तुति द्वारा हम (विधेम) उपासना करें। (२) राजा भी (यस्य महित्वा) जिसके महान् सामर्थ्य के अधीन हिम वाले पर्वत और पृथ्वी सहित समुद्र कहे जायं, दिशा प्रतिदिशा के वासी जिसके अधीन रहकर (यस्य बाहू) बाहु के समान बल या सहायक हों उस महान् प्रजापालक राजा को हम (हविषा) कर और अन्न द्वारा सेवा करें।

यऽआत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥

परमात्मा । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आत्मदाः) आत्मा, चेतन जीव को प्राणियों के शरीर में प्रदान, करता है और जो (बलदाः) जीवों को जीने और बाधक कारणों को दूर करने का बल प्रदान करता है अथवा (यः) जो (आत्मदाः) समस्त विश्व को अपना ऐश्वर्य प्रदान करता है (यस्य) जिसके (प्रशिषम्) उत्कृष्ट शासन को (विश्वे देवाः) समस्त सामान्य जन और विद्वान् गण एवं छोटे बड़े सूर्य आदि लोक भी (उपासते) शरण के समान प्राप्त करते हैं और उसके शासनकारी स्वरूप की उपासना या ध्यान करते हैं। (यस्य) जिसकी (छाया) आश्रय लेना (अमृतम्) अमृत

स्वरूप, अभय और मृत्यु पर विजय है। और (यस्य) जिसके शासन का भङ्ग करना ही (मृत्युः) मृत्यु है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुख-स्वरूप प्रजापालक सब सुखों के दाता परमेश्वर की हम ज्ञान स्तुति द्वारा उपासना करें।

राजा के पक्ष में—वह (आत्मदाः) अपने आपको राष्ट्र में सौंपता और राष्ट्र शरीर में आत्मा के समान ऐश्वर्य को भोगता है, (बलदा) राष्ट्र में बल प्रदान करता है। समस्त सामान्य जन और (देवाः) विजिगीषु राजा भी उस शासन का आश्रय लेते हैं जिसकी (छाया) छत्रछाया अभय के समान है जिसकी आज्ञा भङ्ग करना, करने वालों के लिये मृत्यु है उसकी हम अन्न आदि द्वारा सेवा करें।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ १४ ॥

[१४–२३] गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। [१४–१६] जगती। निषादः ॥

भा०—(नः) हमें (विश्वतः) सब प्रकार से, (अदब्धासः) अविनाशी, नित्य, (अपरीतासः) अविज्ञात, जिनको अभी तक किसी ने न पाया हो ऐसे, (उद्भिदः) नाना फलों को उत्पन्न करने वाले, (भद्राः) सुखकारी, (क्रतवः) विज्ञान और बल (नः) हमें (विश्वतः) सब ओर से, (आ यन्तु) प्राप्त हों। (यथा) जिससे (नः रक्षितारः) मृत्युरहित हमारे, रक्षक (देवाः) देव, दिव्य पदार्थ और विद्वान् पुरुष (अप्रायुवः) दीर्घायु और अप्रमादी होकर (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि उन्नति के लिये (नः सदम्) हमारी सभा में (असत्) विद्यमान हों।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाᳬं रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानाᳬं सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ १५ ॥

विद्वांसः। जगती। निषादः ॥

भा०—(देवानाम्) विद्वान्, विद्या के दाता, ज्ञानप्रकाशक पुरुषों की (भद्रा) कल्याणकारिणी, सुखप्रद, (सुमतिः) उत्तम ज्ञानमयी, शुभ मति, (नः) हमें (नि वर्त्तताम्) सब प्रकार से प्राप्त हो। और (ऋजूयताम्) सरल, धर्म के मार्गों से जाने वाले सबकी वृद्धि की कामना करने वाले, (देवानाम्) और दानशील विद्वान् पुरुषों के (रातिः) ज्ञान और धन के दान (नः) हमें (अभि नि वर्त्तताम्) सब ओर से प्राप्त हों। (वयम्) हम (देवानां सख्यम्) विद्वानों के मित्रभाव को (उप सेदिम) प्राप्त हों। (देवाः) विद्वान् पुरुष (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (आयुः प्रतिरन्तु) आयु की वृद्धि करें।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्। अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १९ ॥

विश्वेदेवाः। जगती। निषादः॥

भा०—(वयम्) हम (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (मित्रम्) स्नेही, (अदितिम्) अखण्ड ब्रह्मचारी, अखण्ड विद्यावान्, (दक्षम्) ज्ञानवान्, बलवान्, कार्यचतुर, (अस्रिधम्) बात से न चूकने वाला, सदा सद्भावयुक्त, अहिंसक, (अर्यमणम्) न्यायकारी, स्वामी, (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ, दुःखों के वारक, (सोमम्) सन्मार्ग में प्रेरक, ऐश्वर्यवान्, (अश्विनौ) विद्या में निष्णात स्त्री और पुरुष और (सुभगा) उत्तम सौभाग्य से युक्त (सरस्वती) वेदवाणी, विद्वत्सभा या विदुषी स्त्री इन (तान्) नाना विद्वानों को हम (पूर्वया) सबसे पूर्व विद्यमान अथवा पूर्णभाव से युक्त, अथवा प्रथम जिस रूप में चित्त में आई, ऐसी अकृत्रिम सत्य (निविदा) ज्ञानयुक्त वाणी से (हूमहे) आदर सत्कार करें। वह (नः) हमें (मयः) सुख, कल्याण (करत्) करे।

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या
युवम् ॥ १७ ॥

वायुः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वातः) वायु (नः) हमें (तत्) नाना प्रकार के (भेषजम्) रोगनाशक, (मयोभु) सुखकारी ओषधि (वातु) प्राप्त करावे या औषध रूप होकर बहे। (माता) माता और उसके समान सर्वोत्पादक (पृथिवी) पृथिवी और (तत्) उसी के समान (पिता) पालक पिता और (द्यौः) सूर्य, (तत्) उसी के समान (सोमसुतः) ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले (ग्रावाणः) उपदेशक विद्वान् पुरुष, ये सब (मयोभुवः) सुख के उत्पादक हों। (तत्) और हे (अश्विना) विद्या में निष्णात उत्तम पुरुषो ! या स्त्री और सारथी के समान राजा और मन्त्री जनो ! (धिष्ण्या) प्रज्ञावान् एवं राष्ट्र की व्यवस्था के धारक और मुख्य पदाधिकार पर स्थित होकर (युवम्) तुम दोनों (नः श्रृणुतम्) हम प्रजा के हितों का श्रवण करो।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१८॥

ईश्वरः । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(तम्) उस (जगतः तस्थुषः) जंगम और स्थावर संसार के (पतिम्) पालक, (धियं जिन्वम्) अपने कर्म और ज्ञान से सबको तृप्त और प्रसन्न करने हारे (ईशानम्) परमेश्वर और स्वामी को (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिये (हूमहे) बुलाते हैं, प्रार्थना और स्तुति करते हैं। (यथा) जिससे (पूषा) सबका पोषक, (रक्षिता) रक्षक, (वायुः) सबका पालक, (अदब्धः) किसी से न पराजित होकर (नः) हमारे (वेदसाम्) धनैश्वर्यों और ज्ञानों के (वृधे) वृद्धि करने के लिये और (स्वस्तये) सुख पूर्ण जीवन कल्याण के लिये (असत्) हो।

स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१९॥

ईश्वर इन्द्रो देवता । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(वृद्धश्रवाः) बहुत अधिक ज्ञान, यश, धन से युक्त आचार्य, राजा और परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति दधातु) सुख प्रदान करे। (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञान रूप वेदों और समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी, (पूषा) सबका पोषक परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति दधातु) कल्याण, सुख प्रदान करे। (तार्क्ष्यः) रथ या अश्व जिस प्रकार (अरिष्टनेमिः) चक्र धारा के बिना टूटे, सुखपूर्वक, मार्ग से इष्ट देश को पहुँचाता है उसी प्रकार (अरिष्टनेमिः) अखण्ड, अटूट या नित्य सामर्थ्यवान् (तार्क्ष्यः) अश्व के समान बलवान् राजा और व्यापक शक्तिमान् परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमें कल्याण, सुख प्रदान करे। (बृहस्पतिः) महान् राष्ट्र का पालक राजा और बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् और महती शक्ति का स्वामी परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा ऽअवसागमन्निह २०

मरुतो देवताः । गोतम ऋषिः । जगती । निषादः ॥

भा०—(पृषदश्वाः) हृष्ट-पुष्ट अश्वों वाले, (पृश्निमातरः) पृथिवी को अपनी माता मानने वाले (शुभंयावानः) शुभ, कल्याण मार्ग पर गमन करने वाले (विदथेषु जग्मयः) संग्रामों में जाने वाले, (मरुतः) वायुओं के समान तीव्र वेगगामी (मनवः) मननशील एवं शत्रु-स्तम्भन में समर्थ, (अग्निजिह्वाः) विद्वान् को प्रमुख वक्ता रखने वाले, (सूरचक्षसः) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् को अपने आंखों के समान मार्गदर्शक बनाने वाले (देवाः) विजयी पुरुष (अवसा) अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्य से (इह) इस राष्ट्र में (नः) हमें (आ गमन्) प्राप्त हों।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२१॥

गोतमः। विद्वांसः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) कल्याणकारी सुखजनक, वचनों का (शृणुयाम) श्रवण करें। हे (यजत्राः) ईश्वरोपासक, सत्संगति योग्य पुरुषो! हम सदा (भद्रम्) सुख कल्याण-जनक पदार्थ को ही (अक्षभिः) आंखों से देखें। हम (स्थिरैः) स्थित, दृढ़ (अंगैः) अङ्गों से (तुष्टुवांसः) ईश्वर की स्तुति करते हुए, (तनूभिः) शरीरों से (देवहितम्) ईश्वर व विद्वानों द्वारा 'हित' अर्थात् निश्चित की हुई (यत्) जो (आयुः) उचित १००, १२५ वर्ष की आयु को (बि अशेमहि) विशेष रूप से प्राप्त करें। साग्रं वर्षशतं जीवेत् इति स्मृतिः। भूयश्च शरदः शतात् इति श्रुतिः॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥

गोतमः। विद्वांसः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (अन्ति) आप लोगों के समीप (यत्र) जब, जिस काल में, (शतम् शरदः) सौ वर्ष (इत् नु) का ही जीवन कम से कम (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (जरसम्) वृद्धावस्था को (चक्र) बनावे, अर्थात् विद्वानों के सत्संग से हम १०० वर्षों के वृद्ध हों और (यत्र) जब (पुत्रासः) मनुष्यों को बुढ़ापे के कष्ट से बचाने वाले पुत्र और शिष्य लोग (पितरः) बच्चों के मां, बाप और पालक (भवन्ति) हो जायं तब तक आप लोग (गन्तोः) गुजरते हुए (नः) हमारी (आयुः) को (मध्या) बीच में (मा रीरिषत) मत विनष्ट करो।

वृद्धावस्था आदि बाह्य कष्टों को देखकर भी विद्वान् लोग जीवन को बीच ही में विनष्ट न किया करें। मनुष्यों को पूर्ण जीवन भोगने दिया करें।

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः।
विश्वे॑ दे॒वाऽअदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् २३

प्रजापतिः। द्यौरित्यादयः। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—(द्यौः) आकाश और सूर्यादि कारणरूप तेज (अदितिः) कभी खंडित या टुकड़े-टुकड़े या विनष्ट नहीं होता। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष भी (अदितिः) अविनाशी, अक्षय है। (माता) जगत् की निर्माण करने वाली प्रकृति भी (अदितिः) कभी नष्ट नहीं होती। (सः पिता) वह सबका पालक परमेश्वर और (सः पुत्रः) वह पुत्र, पुरुषदेह का पालक ये भी (अदितिः) कभी नाशशील नहीं हैं। (विश्वेदेवाः अदितिः) सब दिव्य पदार्थ या मूल तत्व को अपने गुण इस नाशवान् पदार्थों को प्रदान कर रहे हैं वे भी नाश न होने वाले हैं। (पञ्चजनाः) पांच उत्पन्न होने वाले तत्व भी (अदितिः) विनष्ट होने वाले नहीं हैं। (जातम् अदितिः) उन पांचों भूतों के सूक्ष्म परमाणुओं से उत्पन्न हुआ यह जगत् भी (अदितिः) कारण रूप से या प्रवाह से नाशवान् नहीं है, नित्य है। और (जनित्वम्) जो आगे पैदा है वह भी सत् कारण रूप से विनष्ट नहीं होता।

राजा के पक्ष में—(द्यौः) राजसभा, (अन्तरिक्षम्) सर्वोपरि रक्षक राजा, (माता) राजा को बचाने वाली प्रजा, (सः पिता) वह पालक राजा और पुत्र के समान (सः) वही राजा पृथिवी का पुत्र है। समस्त विद्वान् लोग और (पञ्चजनाः) पांचों जन, चार वर्ण और पांचवां वर्ण बाह्य, (जातम्) नव उत्पन्न सन्तान और (जनित्वम्) अगली उत्पन्न होने वाली सन्तान ये सब (अदितिः) पृथिवी या अखण्ड राष्ट्र का रूप हैं और ये सब (अदितिः) अदीन, दीनतारहित या प्रवाह से नाश न होने वाली हों। पञ्चम वर्ण में उस व्यवसाय के लोग हैं जो सर्वसाधारण के स्वास्थ्य की दृष्टि से अपने व्यवसाय के पदार्थ नगर की सीमा से बाहर रखते हैं, और वे इसी कारण भी नगर से बाहर रहते हैं। वे दीन या नीच नहीं प्रत्युत वे भी आदरणीय हैं।

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुत॒: परि॑ख्यन् ।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्र व॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॑णि ॥२४॥

[२४–३६] दीर्घतमा ऋषिः । मित्रादयः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—(मित्रः) सबका स्नेही, प्राण के समान प्रिय मित्र, (वरुणः) दुष्टों का वारक, उदान के समान श्रेष्ठ, (अर्यमा) न्यायाधीश के समान नियन्ता (आयुः) दीर्घ जीवन, अन्न (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति, राजा के समान आत्मा, (ऋभुक्षाः) सत्य व्यवहार से उज्ज्वल पुरुषों में निवास करने वाले बड़े पुरुष और (मरुतः) विद्वान् पुरुष (नः) हमें (मा परिख्यन्) त्याग न करें, हमारी निन्दा और उपेक्षा न करें । (यत्) क्योंकि (देवजातस्य) विद्वान् पुरुषों द्वारा उत्पन्न और दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (वाजिनः) वेग और ऐश्वर्यवान् (सप्तेः) सर्पणशील अश्व के समान बलवान् एवं समवाय बनाकर कार्य करने वाले राजा के (वीर्याणि) बल, पराक्रम और पदाधिकारों का ही हम (प्र वक्ष्यामः) विशेष रूप से वर्णन करते हैं। (ऋ०१।१६२।१-२२)

यन्नि॒र्णिजा॒ रेक्ण॑सा॒ प्रावृ॑तस्य रा॒तिं गृ॑भी॒तां मु॑ख॒तो नय॑न्ति ।
सुप्रा॑ङ्जो॒ मेम्य॑द्वि॒श्वरू॑प इन्द्रापू॒ष्णोः प्रि॒यमप्ये॑ति॒ पाथः॑ ॥ २५ ॥

भा०—(यत्) जब (निर्णिजा) विशेष राज्य-अभिषेक और (धनेन) ऐश्वर्य से (प्रावृतस्य) घिरे हुए सुशोभित राजा के (रातिम्) प्रदान की हुई और पुनः (गृभीताम्) स्वीकार की गई वृत्ति को सब अधीनस्थ लोग (मुखतः) मुख्य रूप से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं तभी (सुप्राङ्) उत्तम रीति से आगे बढ़ाने वाला, उन्नतिशील (विश्वरूपः) सब अधिकारियों के स्वरूपों को धारण करने वाला (अजः) सबका प्रेरक राजा, (मेम्यत्) सबको आज्ञा करता हुआ (इन्द्रपूष्णोः) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा और सर्व-पोषक पूषा, दोनों पदों के (प्रियम्) मनोहर (पाथः) पालन करने हारे सामर्थ्य और भोग्य ऐश्वर्य को (अप्येति) प्राप्त करता है। अर्थात् जब राजा राज्याभिषेक और राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करले और अधीन नियुक्त

पुरुष उसकी दी वृत्ति आजीविका और पुरस्कार को मुख्य रूप से ग्रहण करें, उसी को सर्वस्व मानें, वे और सब अन्य पेशे छोड़ दें और वह सबको आज्ञा में चलावे, तभी यह राजा, प्रजा-पोषक के प्रिय ऐश्वर्य पद को प्राप्त करता है। वह दान देने से 'इन्द्र' है, वृत्ति द्वारा पोषक होने से 'पूषा' है ।

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥२६॥

यज्ञः । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(यत्) जब (विश्वदेव्यः) समस्त विजयी पुरुषों से, श्रेष्ठ, सब विद्वानों का हितकारी (एषः) यह (छागः) शत्रुओं का छेदन-भेदन करने हारा, राष्ट्र के भिन्न-भिन्न विभागों में बांटने वाला पुरुष (वाजिना) ऐश्वर्य युक्त (अश्वेन) राष्ट्र के द्वारा (पुरः) सबके आगे, सबसे प्रथम, (पूष्णः) पूषा, सर्व राष्ट्रपोषक के पद को (भागः) सेवन करने वाला (नीयते) प्राप्त किया जाता है तब (त्वष्टा इत्) त्वष्टा, शत्रुनाशक सेनापति ही (अर्वता) व्यापक राष्ट्र के सहित विद्यमान, (अभि प्रियम्) सबको प्रिय लगने वाले (पुरोडाशम्) सबसे प्रथम देने योग्य पदाधिकार को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति के लिये (जिन्वति) पूर्ण करता या राजा को प्रदान करता है ।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥२७॥

यज्ञः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जब (हविष्यम्) अन्न के समान श्रेष्ठ हवि के रूप में स्वीकार करने योग्य (देवयानम्) देवों, विद्वानों को प्राप्त करने योग्य (अश्वम्) अश्व के समान बलवान् राष्ट्र के भोक्ता राष्ट्रपति को (मानुषाः) मनुष्य लोग (ऋतुशः) ऋतु-ऋतु में भिन्न-भिन्न अवसरों में (त्रिः) वर्ष में

तीन बार (परि नयन्ति) सर्वत्र ले जाते हैं उसको भ्रमण कराते हैं तब (अत्र) इस राष्ट्र में (पूष्णः) पोषक, पृथ्वी का (प्रथमः भागः) सबसे अधिक श्रेष्ठ, सेवनीय (अजः) सबका प्रेरक विद्वान् (देवेभ्यः) समस्त विद्वानों के हित के लिये (यज्ञम्) प्रजापालक, सबके संयोजक राजा को (प्रतिवेदयन्) विज्ञापित करता हुआ (एति) प्राप्त होता है।

हितकारी राजा प्रजाहितार्थ राष्ट्र में तीन बार दौरा करे।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ २८ ॥

यज्ञः। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—यज्ञ में होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता अग्नीध्र, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता और ब्रह्मा ये ऋत्विग् हैं उसी प्रकार राष्ट्ररूप यज्ञ में (होता) अधिकारों का प्रदाता, (अध्वर्युः) मुख्य महामात्य या पुरोहित (आवयाः) आहुति प्रदान करने वाले के समान, सबको परस्पर सुसंगत या अधनों को वेतन देने वाला, (अग्निमिन्धः) अग्नि को दीप्त करने वाले अग्नीध्र के समान राजा को विशेष ज्ञान और मान से उज्ज्वल करने वाला, (ग्राव-ग्राभः) सोमयज्ञ में प्रस्तरों के ग्रहण करने वाले के समान राष्ट्र में विद्वानों का आदर सत्कार से ग्रहण करने वाला, या शस्त्रास्त्रधर, (शंस्ता) राजा का प्रशंसक वा उत्तम उपदेष्टा, (सुविप्रः) ब्रह्मा के समान उत्तम विद्वान् सभापति हो। (तेन) उस (सु-अरङ्कृतेन) उत्तम रीति से सुशोभित, (स्विष्टेन) उत्तम रीति से सुसञ्चालित (यज्ञेन) सुव्यवस्थित राष्ट्र से (वक्षणाः) जलों से नदियों के समान प्रजाओं को (आ पृणध्वम्) पूर्ण करो।

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं येऽअश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचनꣳसम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्नऽइन्वतु ॥ २९ ॥

यज्ञः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(ये) जो पुरुष (यूपव्रस्काः) यज्ञ के यूप को गढ़ने वालों के समान शत्रुओं के विनाश करने वाले राजा या उसके बल अधिकारों को बनाते हैं-(उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) उस शत्रुनाशक, सूर्य के समान तेजस्वी अधिकारी को अपने ऊपर धारण करते हैं और (ये) जो (अश्व-यूपाय) अश्व के लिये खड़े यशस्तम्भ के समान राष्ट्रसंचालक राजा के लिये (चषालम्) यूप के छल्ले या अग्र भाग के समान राजा के अग्रासन का (तक्षति) निर्माण करते हैं (ये च) और जो (अर्वते) ज्ञानवान् राजा के लिये (पचनम्) पाक योग्य नाना भोग्य ऐश्वर्य सामग्री को (संभरन्ति) संग्रह करते हैं, लाते हैं (तेषाम्) उन सबका (अभिगूर्त्तिः) उद्यम (नः) हमें (इन्वतु) प्राप्त हो, हमें समृद्ध करे।

उप॒ प्रागा॒त्सु॒मन्मे॑ऽधायि॒ मन्म॑ दे॒वाना॒माशा॒ उप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः।
अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥३०॥

विद्वांसः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—जो पुरुष (मे) मुझ प्रजाजन के हित के लिये (वीतपृष्ठः) पीठ पर उपवीत धारण किये दीक्षित से तुल्य, सुसज्ज, विशाल हृष्ट पुष्ट पीठ वाला, सबको आश्रय देने में समर्थ, अश्व के समान बलवान् (सुमत्) स्वयं (उप प्र अगात्) अनायास ही प्राप्त है और (येन) जो (देवानाम्) विद्वानों और शासकों के मन की (आशाः) कामनाओं और दिशावासी प्रजाजनों को भी (उप अधायि) धारण-पोषण करता है (एनम् अनु) उसको देखकर (विप्राः) विद्वान्, मेधावी (ऋषयः) ज्ञानी, मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं। और (पुष्टे) हृष्ट पुष्ट धन से समृद्ध प्रजाजन के बीच उसको ही हम (देवानाम्) विद्वानों और विजयशील सैनिकों के (सुबन्धुम्) उत्तम बन्धु और उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (चकृम) नियत करें।

यद्वा॒जिनो॒ दाम॑ स॒न्दान॒मर्व॑तो॒ या शी॑र्ष॒ण्या॒ रश॒ना रज्जु॑रस्य।
यद्वा॑ घास्य॒ प्रभृ॑तमा॒स्ये॒ तृण॒ꣳ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥३१॥

यज्ञः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(यत्) जैसे (वाजिनः) वेगवान् अश्व के (दाम) दमन करने वाला बन्धन, (संदानम्) और जैसा नियन्त्रण पैरों आदिक में रहता है। और (अर्वतः) शीघ्र वेग से जाने वाले अश्व के (या) जो (शीर्षण्या) शिर पर बंधी (रज्जुः) रस्सी या चर्म पट्टियां होती हैं उसी प्रकार (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् पुरुष पर भी (दाम) दमनकारी नियन्त्रण और (संदानम्) उत्तम दान करने के नियम या दण्डभय वा, (दाम संदानम्) सुन्दर प्रभावशाली शिरोवेष्टन, मुकुट आदि है (अर्वतः) ज्ञानी पुरुष को (अस्य) इसके (शीर्षण्या) शिर की या मुख्य अङ्ग या पद के लिये शोभा देने वाली (रशना) राष्ट्र में व्यापक (रज्जुः) सदा सर्जनकारिणी, व्यवस्था-निर्मात्री शक्ति या अधिकार प्राप्त हों (यत्) और जिस प्रकार (अस्य आस्ये तृणं प्रभृतम्) इस पशु के मुख में तृण, घास आदि दिया जाता है उसी प्रकार (अस्य आस्ये) इसके मुख्य अधिकार के स्थान में (तृणम्) शत्रु और संकटों के काटने वाले बल, (प्रभृतम्) भली प्रकार भृति या वेतन पर नियत किया जाय, (ता ते सर्वा) वे तेरे सब पदार्थ (देवेषु अपि) विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर (अस्तु) हों। अर्थात् ऐश्वर्य राष्ट्र और राष्ट्रपति पर भी उत्तम नियन्त्रण हो, उसकी निर्माण की शक्ति विद्वान् के हाथ हो, उसका नाशकारी मुख्य बल वेतनबद्ध हो। रशनाः—अशेरशच्। अश्नुते व्याप्नोतीति रशना। उ० २।७५॥ रज्जुः—सृजेरसुन् च। उणा० २।१५॥ सृज्यते सृजति वा इति रज्जुः। तृणम्-तृहेः क्नो हलोपश्च। उणा० ५।८॥ तृह्यते हन्यते, तृन्धि हिनस्ति वा तत् तृणम्।

यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काश॒ यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑।
यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ऽअपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥३२॥

यज्ञः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(क्रविषः) विजय करने योग्य (अश्वस्य) अश्व के समान बलवान् राष्ट्र का (यत्) जो अंग (मक्षिका) शिक्षा या उपदेश या शत्रु पर दोष का कार्य करने वाली सभा या सेना (आश) खा जाती है (यत्

वा) और जो अंश (स्वरौ) अति तापदायक, शत्रुसन्तापक (स्वधितौ) वज्र आदि शस्त्रास्त्र में (रिप्तम् अस्ति) लग जाता है और (यत्) जो भाग (शमितुः) शान्ति कराने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले के (हस्तयोः) हाथों या हनन करने के साधन शस्त्र अस्त्र और उपायों में है। और (यत् नखेषु) जो भाग राष्ट्र के प्रबन्ध कार्यों में राष्ट्र का है (ते) तेरे (सर्वा ता अपि) सब कार्य (देवेषु) विद्वानों के अधीन हों। अर्थात् सेना, शस्त्रागार, शान्ति, सन्धि, विग्रह आदि राज्य प्रबन्ध आदि पर होने वाले सब राष्ट्र के व्यय विद्वानों के अधीन हों। 'मक्षिका'—मश शब्दे रोषकरणे च। भ्वादिः। हनिमशिभ्यां सिकन्। उणा० ४।१५४॥ मशति शब्दयति रोषं करोति वा सा मक्षिका। 'क्रविषः' क्रुवि हिंसाकरणयोश्च। अत्र करणमर्थं। 'स्वरुः' स्वः शब्दोपतापयोः। अत्र उपतापार्थः। स्वधितिर्वज्रः। 'नखेषु' नहेर्हलोपश्चेति खः। उ० ५।२३॥ नह्यति बध्नाति इति नखः॥

यदूव॑ध्यमु॒दर॑स्याप॒वाति॒ यऽआ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धोऽअस्ति॑।
सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तारः॑ कृण्वन्तू॒त मेधं॑ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥३३॥

यज्ञः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(यद्) जो भी (ऊवध्यम्) उच्छेद करने योग्य या मलिन कार्य करने वाला राष्ट्र का भाग (उदरस्य) पेट से अधकचे अजीर्ण अन्न के समान उपद्रवियों के उच्छेदक विभाग से (अप वाति) निकल भागे और (यः) जो (आमस्य) रोगकारी, हिंसक जन्तुओं का (गन्धः) हिंसा का व्यापार (अस्ति) है। (शमितारः) उपद्रवों और संतापक दैवी और मानुषी विपत्तियों के शान्त करने वाले विद्वान् (सुकृता) उत्तम उपाय द्वारा (तत्) उसका (कृण्वन्तु) प्रतिकार करें। और (मेधम्) हिंसा योग्य दुष्टजन को अन्न के समान (शृतपाकम्) खूब संताप से (पचन्तु) संतप्त करें। उदि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च 'उदरम्'। उणा० ५।७९॥ अम रोगे। आमः। गन्ध चूर्णने। गन्धः। मेधृ हिंसानादरयोः। मेधः॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३४॥

यज्ञः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! (शूलम्) पीड़ाजनक शूल, हल आदि शस्त्रों से (अभिनिहितस्य) मारे या खोदे गये और (अग्निना) अग्नि के समान संतापक सूर्य या राजपुरुष द्वारा (पच्यमानात्) परिपक्व किये हुए (गात्रात्) शरीर रूप खेतों आदि से (यत्) जो भाग भी (अवधावति) अलग प्राप्त हो । (तत्) वह भाग (भूम्याम्) भूमि पर (मा) न (अशिश्रिपन्) पड़ा रहे, (मा तृणेषु) वह अंश तिनकों में न मिल जाय, प्रत्युत (तत्) वह (उशद्भ्यः) चाहने वाले (देवेभ्यः) देवों, विद्वान् पुरुषों को (रातम् अस्तु) दान कर दिया जाय । हल आदि चला कर सूर्य द्वारा पके हुए अन्न और ओषधि आदि जो पदार्थ राष्ट्र के शरीर से उत्पन्न हों वे मिट्टी में और घासफूस में न मिल जायं प्रत्युत विद्वानों को प्राप्त हों । वे उससे प्रजा का पालन और रोग नाश करें ।

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासतऽउतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ३५

विश्वेदेवाः । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् लोग (वाजिनम्) अन्न आदि समृद्धि से युक्त राष्ट्र को खूब (पक्वम्) परिपक्व पके खेतों वाला और दृढ़ (परिपश्यन्ति) देख लेते हैं और (ये) जो (ईम्) इसके प्रति (आहुः) कहा करते हैं कि वह (सुरभिः) बड़े उत्तम पक्व धान के गन्ध से युक्त है (निः हर) इसे अच्छी प्रकार काट लाओ और (ये च) जो इस (अर्वतः) भोग योग्य राष्ट्र के (मांसभिक्षाम्) मन के लुभाने वाले अन्न आदि पदार्थों की भिक्षा या याचना का (उपासते) आश्रय करते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्तिः) उद्यम (नः) हमें सफलतापूर्वक प्राप्त हो ।

पूर्ण ब्रह्मचारी के पक्ष में—जो विद्वान् (वाजिनम्) ज्ञानवान् बलवान् ब्रह्मचारी को देखते हैं और जो इसको लक्ष्य करके उसे परिपक्व कहते हैं और उत्तम वीर्यपालक होकर उत्तम आचार के सुगन्धित से युक्त पुष्ट पुरुष (निर्हर) हम से भिक्षा ले (इति) इस भाव से (ये च) जो गृहस्थ (अर्वतः) ज्ञानवान् पुरुष के (मांसभिक्षाम्) मन को प्रिय लगने वाले पदार्थों की भिक्षा की (उपासते) प्रतीक्षा करते हैं उन हितैषी पुरुषों का (अभिगूर्त्तिः) उद्यम, प्रयत्न हमें (इन्वतु) सफल होकर प्राप्त हो ।

यन्नीक्षणं मा॒ᳬस्पच॑न्या॒ऽउ॒खाया॒ या पात्रा॑णि यू॒ष्णऽआ॒सेच॑नानि । ऊ॒ष्म॒ण्या॒पि॒धाना॑ च॒रू॒णाम॒ङ्काः सू॒नाः परि॑ भूष॒न्त्यश्व॑म् ३६

यज्ञः । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(यत्) जो (मांसूपचन्याः) मन को अच्छे लगने वाले नाना फलों को परिपाक करने वाली (उखायाः) उत्तम फल देने वाली भूमि का (नीक्षणम्) निरन्तर देखभाल करना, या दर्शन करने योग्य दृश्य और (या) जो (पात्राणि) पालन करने वाले (यूष्णः) रस या जल के (आसेचनानि) सेचन करने के साधन कूप, तड़ाग आदि स्थान हैं और जो (चरूणाम्) विचरने वाले पथिकों के निमित्त (ऊष्मण्या) ग्रीष्मकाल में सुखकारी (अपिधाना) आच्छादित स्थान, विश्राम गृह हैं और जो (अङ्काः) स्थान-स्थान पर अङ्कित मार्ग और (सूनाः) स्नान करने के तीर्थ स्थान हैं वे ही सब सुखद पदार्थ (अश्वम्) अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को (परिभूषन्ति) सर्वत्र सुभूषित करते हैं ।

उवट आदि की दृष्टि में—मांस की हांडी को खोल-खोल कर झांकना, मांसरस के पात्र, उनको गरम रखने वाले ढक्कन और मांस ढाकने के छाबड़े चटाई आदि ये अश्व को सुभूषित करते हैं । अश्व को इन आभूषणों से सजाया जाय तो बस समस्त संसार के अश्व विनष्ट हो जायं ।

अध्यात्म में—मांसपचनी: उखा मांस आदि देहगत धातुओं को अन्न रस से परिपक्व या दृढ़ करने वाला देह रूप पात्र है । उनका

(नि ईक्षणम्) स्वयं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्राह्यपदार्थों का देखना, और (या) जो (पात्राणि) कोष्ठ भाग (Sells) (यूष्णः) अन्न रस से बने रुधिर रस को सर्वत्र (आसेचनानि) सेचन करते हैं और (चरूणाम्) अंगों के कोष्ठों के (ऊष्मण्या) देह के ताप की रक्षा करने वाले (अपिधाना) त्वचा के आच्छादक हैं और जो (अंकाः) बाह्य पदार्थों का भीतर ज्ञान करना और (सूनाः) भीतरी मन के विचारों को बाहर प्रकट करना है ये सब अद्भुत बातें (अश्वम् परि भूषन्ति) भोक्ता आत्मा के शोभाजनक गुण हैं।

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णान्त्यश्वम् ॥३७॥

विद्वांसः। स्वराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राष्ट्र! एवं राष्ट्रपते! (धूमगन्धिः) धूएं के गन्ध वाला (अग्निः) आग जिस प्रकार मनुष्य को छींक और आंसू ला देता है उसी प्रकार (धूमगन्धिः) परराष्ट्र को कम्पा देने वाले बल से प्रजा को पीड़ित कर देने वाला (अग्निः) अग्रणी पुरुष वा विषैले धूम से प्रजा को पीड़ित करने वाला अग्नि (त्वा) तुझको (मा ध्वनयीत्) पीड़ित कर न रुलावे। अग्निमयी हांडी, कृत्या या बॉम्ब जिस प्रकार चटख-चटख कर फूट जाता है और पास बैठने वाले के लिये भय का कारण होता है उसी प्रकार (भ्राजन्ती) तेज और क्रोध से अति प्रदीप्त होती हुई (उखा) पृथिवी, (जघ्रिः) प्रचण्ड व्याधि के समान तुझे सूंघती, तेरा पीछा करती हुई, तुझे (मा अभिविक्त) उद्विग्न न करे। (इष्टम्) सबके प्रिय, (वीतम्) कान्तिमान् तेजस्वी, (अभिगूर्त्तम्) परिश्रमी, (वषट्कृतम्) दानशील, (तं अश्वम्) उस नरश्रेष्ठ शीघ्रकारी चतुर पुरुष को (देवासः) विद्वान् पुरुष (प्रतिगृभ्णन्ति) अपना नेता स्वीकार करते हैं।

'भ्राजन्ती उखा' कदाचित् विस्फोट पदार्थों से फूटने वाली विशेष 'घातक कृत्या' है जिसका वर्णन अथर्ववेद का० ११ सू० १ में स्पष्ट है।

इसी प्रकार 'धूमगन्धी अग्नि' धूममात्र से मार देने वाली आग, विषैली गैस का अस्त्र प्रतीत होता है।

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता तेऽअपि देवेष्वस्तु ॥३८॥

यज्ञः। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(अर्वतः) अश्व का जिस प्रकार कदम बढ़ाना, बैठना, लेटना, पैरों का बांधना, जल पीना, घास खाना आदि सब विवेकपूर्वक हो उसी प्रकार (अर्वतः) व्यापक राष्ट्र का भी (निक्रमणम्) सुरक्षित रूप से निकलने के मार्ग, (निषदनम्) सुरक्षित रूप से गुप्त बैठने के स्थान, (यत् च पड्वीशम्) और जो पदाधिकारों पर योग्य पुरुषों का नियुक्त करने का कार्य, (विवर्त्तनम्) विविध प्रकार के राजकीय कारबार के स्थान और राष्ट्रवासी जन और अधिकारी राष्ट्रपति आदि के व्यवहार हैं और (यत् च पपौ) जो पदार्थ पान करते और (यत् च घासिं जघास) जो खाने योग्य पदार्थ खाते हैं (ते) तुझ राष्ट्र और राष्ट्रवासी जन और राष्ट्रपति राजा के (सर्वा ता) वे सब कार्य भी (देवेषु) देव अर्थात् विद्वानों के अधीन (अस्तु) हों।

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ ३९ ॥

विद्वांसः। विराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(यत्) जो (अश्वाय) अश्व के समान वेगवान्, तीव्र पराक्रमी राष्ट्रपति के आदर के लिये (वासः) वस्त्र बिछायत (उपस्तृणन्ति) बिछाये जाते हैं और (यत्) जो (अधिवासम्) ऊपर पहनने का लम्बा गौन दिया जाता है और (या) जो (अस्मै) उसको (हिरण्यानि) सुवर्ण के आभूषण पहनाये जाते हैं और (अर्वन्तम्) उस व्यापक, महान् अधिकारवान् पुरुष को (संदानम्) सिर का विशेष मुकुट दिया जाता है और जो (पड्वीशम्) पैर का पीढ़ा दिया जाता है वह सब (प्रिया)

प्रिय मनोहर पदार्थ उसके (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के अधीन होकर (आयामयन्ति) उसको सर्वथा नियमानुकूल रूप से सुरक्षित रखते हैं।

यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ ।
स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ अध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥४०॥

यज्ञः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! (महसा) अपने तेज से (शूकृतस्य) शीघ्रता से कार्य करने वाले, अविवेक से कुपथ पर पैर रखने वाले (ते) तेरे (सादे) अवसाद अर्थात् कार्यभ्रष्ट हो जाने पर यदि कोई पुरुष, (पार्ष्ण्या) प्रमाद-युक्त घोड़े को अश्वारोही जिस प्रकार 'शू' करके एड़ी या चाबुक से चला देता है उसी प्रकार कोई (पार्ष्ण्या) तेरे पीठ पीछे से आक्रमण करने वाली सेना द्वारा और (कशया) अपनी शासन शक्ति से तुझे (तुतोद) व्यथा या पीड़ा पहुँचावे तो (ते) तेरी (ता) उन (सर्वा) सब त्रुटियों को मैं पुरोहित (हविषः स्रुचा इव) स्रुवों से जैसे हवि, चरु दिया जाता है उसी प्रकार उनको (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान द्वारा अथवा महान् साम्राज्य शक्ति से (सूदयामि) दूर करूं, नष्ट करूं। कश गतिशासनयोः। भ्वादिः ॥

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति ।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ विश॑स्त ॥४१॥

यज्ञः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(स्वधितिः) स्वयं समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ वीर्यवान् पुरुष तथा वज्र, दण्ड, शासन-चक्र, (वाजिनः) ऐश्वर्यवान्, (देव-बन्धोः) विद्वानों के बन्धु (अश्वस्य) व्यापक राष्ट्र के (चतुस्त्रिंशत्) इन ३४ (वङ्क्रीः) अंगों को (समेति) भली प्रकार प्राप्त करता है, अपने वश कर लेता है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग राष्ट्र के (गात्रा) अंगों को (वयुना) ज्ञान द्वारा (अच्छिद्रा) त्रुटिरहित, निर्दोष (कृणोत) करो, और उसके (परुः परुः) प्रत्येक पोरु-पोरु अंग-अंग अर्थात् प्रत्येक विभाग को

(अनुघुष्य) यथाक्रम आघोषित कर-कर के प्रजाजन को (वि शस्त) विविध प्रकार से बतला दो और शासन करो।

स्पष्टीकरण देखो शतपथ में 'पारिप्लव-विधि'

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथऽऋतुः।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥४२॥

यजमानः। स्वराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—संवत्सर रूप प्रजापति की राष्ट्रमय प्रजापति से तुलना। (त्वष्टुः) सूर्य के (अश्वस्य) आशुगामी काल का (एकः ऋतुः) एक पूर्ण वत्सर (विशस्ता) उसको विभाग करता है और इसके (द्वा यन्तरा) दो अयन नियन्ता (भवतः) होते हैं। (तथा) उसी प्रकार (ऋतुः) एक-एक ऋतु संवत्सर को विभक्त करता है और उस ऋतु के भी (द्वा यन्तारा) दो-दो मास नियम से (भवतः) होते हैं। इसी प्रकार हे प्रजापते ! प्रजा-पालक राष्ट्र ! (ते) तेरे (गात्राणाम्) अङ्गों में से (या) जिन अङ्गों को मैं विद्वान् पुरुष (ऋतुथा) संवत्सर के ऋतु के समान नियामक, बली पुरुष के सामर्थ्य के अनुसार (कृणोमि) पृथक् पृथक् विभक्त करूं उन विभक्त (पिण्डानाम) अवयवों में से (ता ता) उन-उन अवयवों, या राष्ट्र के विभागों को (अग्नौ) ज्ञानवान्, नेता, अग्रणी पुरुष के अधीन (प्र जुहोमि) प्रदान करूं।

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्वऽआ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः॥ ४३॥

आत्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजन् ! हे राष्ट्र ! (प्रियः आत्मा) अपने देह और आत्मा के समान प्रिय पुरुष (अपियन्तम्) प्रयाण करते समय (त्वा) तुझको (मा तपत्) सन्तप्त न करे, तुझे शोकातुर न बनाये, तुझे पीड़ित न करे। (स्वधितिः) वज्र, तलवार या शस्त्रबल भी (ते तन्वः) तेरे शरीर के

मार्गों पर (मा आ आतिष्ठिपत्) अपना अधिकार न करे। अर्थात् शस्त्र-बल भी तुझे व्यर्थं न सतावे। (अविशस्ता) उत्तम शासक न होकर कोई (गृध्नुः) लालची महामात्य या राजा (ते छिद्राणि) तेरे भीतर विद्यमान त्रुटियों को (अतिहाय) छोड़कर (मिथू) व्यर्थ, झूठमूठ, निष्प्रयोजन (ते गात्राणि) तेरे अंगों, राज्यांगों को (असिना) शस्त्रबल से (मा कः) मत काटे।

न वाऽउँऽएतन् म्रियसे न रिष्यसि देवाँ २ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषतीऽअभूतामुपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य ॥ ४४ ॥

आत्मा देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राष्ट्रवासीजन ! (एतत्) इस प्रकार सुव्यवस्था से तू (न वा उ म्रियसे) कभी मृत्यु को प्राप्त न हो। (न रिष्यसि) तू कभी पीड़ित न हो, (सुगेभिः पथभिः) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों, राजनियम और मर्यादाओं से (देवान्) इस उत्तम-उत्तम राजा-प्रजा के परस्पर व्यवहारों, श्रेष्ठ गुणों और उन्नत प्रजाओं और विद्वानों को (एषि) प्राप्त हो। (ते) तेरे सञ्चालक (पृषती हरी) रथ में हृष्ट पुष्ट घोड़ों के समान खूब दृढ़ राज्य के सञ्चालन में कुशल पुरुष (युञ्जा) नियुक्त (अभूताम्) हों और (रासभस्य) मार्गोपदेश करने वाले महामन्त्री के (धुरि) पद पर (वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (उप अस्थात्) स्थित हो, स्थापित किया जाय।

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ२ऽ उत विश्वापुषं रयिम्। अनागास्त्वं नोऽअदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽअश्वो वनताᳩं हविष्मान् ॥ ४५ ॥

प्रजाः देवताः। स्वराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(वाजी) ज्ञान-ऐश्वर्यवान्, संग्राम में कुशल राष्ट्रपति पुरुष (नः) हमें (सुगव्यम्) उत्तम गोधन, (सु-अश्व्यम्) उत्तम अश्वधन, (पुंसः पुत्रान्) पुमान्, वीर पुरुष स्वभाव के मर्द पुत्रों को (उत) और

(विश्वापुषम् रयिम्) समस्त विश्व को पोषण करने में समर्थ ऐश्वर्य (वनताम्) प्रदान करे । हे राजन् ! तू (अदितिः) अखण्ड शासन और अदीन, स्वतन्त्र शासन वाला होकर (नः) हमें (अनागाः) अपराधों से रहित, शुद्ध आचार व्यवहार वाला (कृणोतु) बनावे । (नः) हमारा (अश्वः) राष्ट्र का भोक्ता श्रेष्ठ पुरुष (हविष्मान्) अन्नादि समृद्धि से युक्त एवं ज्ञान और उपायों से युक्त होकर (क्षत्रम्) क्षात्र बल को (वनताम्) प्राप्त करे।

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् । यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

अयास्यपुत्रो भुवन ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(नु कं इमा भुवनानि) इन समस्त भुवनों, लोकों को, हम (सीषधाम) अपने वश करें, (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् सेनापति राजा, (विश्वे च देवाः) समस्त विद्वान्, शासक जन या विजयी सैनिक लोग, (इन्द्रः आदित्यैः) १२ मासों सहित सूर्य के समान राष्ट्र को अपने वश में करने हारे शासकों से युक्त इन्द्र, राजा, (सगणः) अपने गणों या दलों सहित (मरुद्भिः) वैश्यों या तीव्र वेगवान् रथों से जाने वाले वीर पुरुषों द्वारा (अस्मभ्यम्) हमारे राष्ट्र का (भेषजं करत्) यथोचित, निर्दोष प्रबन्ध करे। दोषों को दूर कर उसे शरीर के समान हृष्ट-पुष्ट करे । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (आदित्यैः सह) १२ मासों सहित सूर्य के समान अपने आदित्य के समान तेजस्वी, विद्वान् सभासदों, या मन्त्रियों सहित (नः) हमारे (यज्ञम्) सुसंगत प्रजापालक राष्ट्र को और (नः तन्वम्) हमारे शरीरों को और (प्रजां च) हमारी प्रजा को भी (सीषधाति) हृष्ट-पुष्ट कर अपने अधीन रक्खे ।

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥ ४७ ॥

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
[स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽअघायतः समस्मात् ॥४८॥]

भा०—[४७, ४८] दोनों की व्याख्या देखो अ० ३ । ३५, ३६ ॥

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पंचविंशोऽध्यायः ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

[अ० २६–४०] विवस्वान् याज्ञवल्क्यश्च ऋषी ।

॥ ओ३म् ॥ अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे संनमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च संनते ते मे सं नमतामदऽआदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामदऽआपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सं नमतामदः । सप्त सꣳसदोऽअष्टमी भूतसाधनी । सकामाँ२ । अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

अग्न्यादयो देवताः । अभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(अग्निः च पृथिवी च) अग्नि अर्थात् सूर्य और पृथिवी दोनों (संनते) परस्पर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं। (ते) दोनों (अदः) अमुक प्रेम और अभिलाषा के पात्र को (मे सं नमताम) मेरे अनुकूल करें, उसे मेरे प्रति प्रेम से झुकावें। (वायुः च अन्तरिक्षं च) वायु और अन्तरिक्ष दोनों (संनते) परस्पर एक दूसरे के उपकार्य-उपकारक होकर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं। वे दोनों अपने दृष्टान्त से (अदः) अमुक को (मे) मेरे लिये (सं नमताम्) प्रेम से संगत करें। (आदित्यः च द्यौः

४७—बहुत्र 'सखिभ्यः' इत्यन्तो मन्त्रः । 'स नो बोधि०' इत्यादि चरणद्वयं अ० ३ । २६ । इत्यस्योत्तरार्धभागः ॥

च) सूर्य और आकाश दोनों (संनते) एक दूसरे के साथ उपकार्य-उपकारक भाव से संयुक्त हैं। वे (मे) मेरे लिये (अदः सं नमताम्) अमुक को अपने दृष्टान्त से मेरे अनुकूल प्रेम व्यवहार युक्त करें। (आपः च वरुणः च) जल और वरुण, महान् समुद्र या मेघ दोनों (संनते) एक दूसरे के अनुकूल होकर रहते हैं। (ते) वे दोनों (मे) मेरे लिये (अदः सं नमताम्) अमुक को मेरे प्रति प्रेमयुक्त, अनुकूल करें।

(सप्त संसदः) ये सात संसत् हैं, इनके आश्रय समस्त जीव स्थिर हैं इनमें (अष्टमी) आठवीं (भुत-साधनी) समस्त भूतों अर्थात् प्राणियों को अपने वश करती है। अर्थात् अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आपः और वरुण ये सात 'संसत्' हैं। इनके आश्रय समस्त लोक विराजते हैं। और आठवीं पृथ्वी सब प्राणियों को अपने वश में करती है। वह सबको उत्पन्न करती और पालती है। हे राजन्! तू (अध्वनः) समस्त मार्गों को (सकामान्) अपने कामनाकूल कर। (अमुना) अमुक-अमुक शक्ति और पदार्थ से (मे संज्ञानम् अस्तु) मुझे सम्यक् अर्थात् सत्य, यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳬं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥२॥

ईश्वरो देवता। स्वराड् अष्टिः। गान्धारः॥

भा०—मैं परमेश्वर और राजा (यथा) जिस प्रकार (इमाम्) इस (कल्याणीं वाचम्) सबको सुख देने वाली वाणी को (जनेभ्यः) समस्त उत्पन्न लोकों के हित के लिये (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय, (शूद्राय) शूद्र और (अर्याय च) वैश्य, (स्वाय च) अपने प्रिय लगने और (अरणाय) प्रिय न लगने वाले, अपने और पराये सब जनों के लिये

अथ खिलानि। अतः सप्तसप्ततिमन्त्राः॥

(आबदानि) सर्वत्र उपदेश करूं। इसी प्रकार मैं भी सब जनों की हितकारी वाणी बोलूं। जिससे मैं (देवानम्) विद्वानों का और (दक्षिणायै दातुः) दक्षिणा, वृत्ति देने हारे पुरुष का भी (इह) इस राष्ट्र में या लोक में (प्रियः भूयासम्) प्रिय होऊं। (मे अयं कामः) मेरी यह कामना, (समृध्यताम्) पूर्ण हो। (अदः) अमुक पुरुष और मेरा अमुक प्रयोजन (मा उपनमतु) मुझे प्राप्त हो, मेरे अनुकूल हो, मेरे वश या अधीन हो।

परमेश्वर जिस प्रकार सबके हितार्थ वेद-वाणी का उपदेश करता है इसी प्रकार राजा भी अपनी आज्ञा-वाणी को सर्वहितार्थ बोले, वह विद्वानों और प्रयोजनों के वृत्तिदाता धनकुबेरों का भी प्रिय होकर रहे। उसकी सब इच्छा पूर्ण हो, इस प्रकार उसके अनुकूल, प्रतिकूल समीप और दूर के सभी व्यक्ति और राष्ट्र भी इसके अधीन हों।

बृह॑स्पते॒ऽअति॒ यद॒र्यो ऽअर्हा॑द् द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु। यद्दी॒दय॒च्छव॑सऽ ऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ बृह॒स्पत॑ये त्वै॒ष ते॒ योनि॒र्बृह॒स्पत॑ये त्वा ॥ ३ ॥

गृत्समदो बृहस्पतिर्वा ऋषिः। बृहस्पतिरीश्वरो देवता। भुरिगत्यष्टिः। गान्धारः ॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े बड़ों के पालक, उनके स्वामिन्! उनमें प्रधान पुरुष! (यत्) जिस कारण से तू (अर्यः) सबका स्वामी होकर (अर्हात्) पूजने योग्य है। और (जनेषु) समस्त जनों में (द्युमत्) सूर्य के समान तेजस्वी (क्रतुमत्) प्रज्ञावान् और क्रियावान् होकर (अति विभाति) सबसे अधिक चमकता है और (यत्) जिस प्रकार से हे (ऋतप्रजात) सत्य, व्यवहार धर्म और ज्ञान द्वारा प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट पद पर स्थित! तू (शवसा) बल से ही (दीदयत्) सबकी रक्षा करता है अतः तू (अस्मासु) हम प्रजाजनों में (चित्रम्) संग्रह करने योग्य (द्रविणम्) ऐश्वर्य का (धेहि) प्रदान कर, धारण करा। हे विद्वान् पुरुष! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र के सुव्यवस्थित राजनियमों द्वारा स्वीकार

किया गया है। (त्वा) तुझको (बृहस्पतये) बृहस्पति पद के लिये चुनते हैं। (एषः ते योनिः) यह तेरे योग्य आसन, पदाधिकार है। (बृहस्पतये त्वा) तुझे बृहस्पति पद के लिये नियुक्त करता हूँ।

परमात्मा महान् लोकों और बृहती वेद वाणी और बृहती अर्थात् प्रकृति का स्वामी है। समस्त उत्पन्न उत्पन्न होने हारे पदार्थों में क्रियावान् और ज्ञानवान् है, वह सबसे पूज्य और प्रकाशमान है। हे 'ऋतप्रजात' व्यक्त जगत् के उत्पादक और स्वरूप से प्रसिद्ध है वह (उपयाम-गृहीतः) यम नियमों और तप द्वारा योग से प्राप्त होता है, वही 'बृहस्पति' है।

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

रम्याक्षी। इन्द्रः। स्वराड् जगती। निषादः॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्! राजन्! हे (गोमन्) वाणी, आज्ञा एवं गवादि पशु और गौ = पृथ्वी के स्वामिन्! तू (इह) यहां इस राष्ट्र में (आयाहि) प्राप्त हो, हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं क्रिया-सामर्थ्यों और अधिकारों से युक्त! तू (विद्यद्भिः) विशेष रूप से विद्यमान अथवा विविध खण्डन-मण्डन करने वाले (ग्रावभिः) विद्वानों द्वारा (सुतम्) सिद्धान्त रूप से प्राप्त किये (सोमम्) ज्ञानरस का (पिब) पान कर। अथवा (विद्यद्भिः) विविध शस्त्र-अस्त्रों से शत्रुओं का खण्डन करने वाले (ग्रावभिः) दृढ़ शस्त्रधारियों, वीरों, विद्वानों से (सुतम्) प्राप्त किये गये (सोमम्) अभिषेक द्वारा प्रदत्त सोम नाम राजपद या राष्ट्र और ज्ञान का (पिब) पान कर, उपभोग कर। हे वीर पुरुष! तू (उपयाम-गृहीतः असि) राष्ट्र की शासन व्यवस्था द्वारा स्वीकृत या नियुक्त है। (त्वा गोमते इन्द्राय) तुमको 'गोमत् इन्द्र' अर्थात् पृथिवी के स्वामी 'इन्द्र' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। (एषः ते) यह तेरे योग्य (योनिः) आश्रय, पदाधिकार है। (इन्द्राय त्वा गोमते) 'गोमान् इन्द्र' पद के लिये तुझे स्थापित किया

जाता है। (२) विद्वान् के पक्ष में 'गोमान्' ज्ञानवाणियों का ज्ञाता शास्त्रज्ञ, वेदज्ञ, सोम, ज्ञानरस।

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो। गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

रम्याक्षीः। सूर्यः। भुरिक् जगती। निषादः ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के विदारक! हे (वृत्रहन्) विघ्नकारियों के नाशक! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजा और अधिकारों से सम्पन्न! तू (गोमद्भिः) पृथ्वी के स्वामी, (ग्रावभिः) शस्त्रधारी भूपतियों द्वारा (सुतम्) अभिषेक द्वारा प्राप्त (सोमम्) राष्ट्र ऐश्वर्य को शिलाओं से कुटे सोमरस के समान (पिब) उपभोग कर (उपयामगृहीत०) इत्यादि पूर्ववत्।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ६ ॥

प्रत्युराक्षि ऋषिः। वैश्वानरः। जगती। निषादः ॥

भा०—(ऋतावानम्) सत्य ज्ञानवान् (ऋतस्य ज्योतिषः) सत्यज्ञान रूप ज्योति के (पतिम्) पालक (घर्मम्) अतिदैदीप्त, विद्वान्, (वैश्वानरम्) समस्त पुरुषों के हितकारी पुरुष को (अजस्रम्) निरन्तर (ईमहे) प्राप्त हों। सूर्य के पक्ष में—(ऋतावानम्) जल को रश्मियों से ग्रहण करने वाले (ऋतस्य ज्योतिषः पतिम्) जल और प्रकाश के पालक, सूर्य से (घर्मम्) अविनाशी ज्योति या दीप्ति, तेज को (ईमहे) प्राप्त करें। (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत्।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥

कुत्सः। वैश्वानरोऽग्निः। स्वराडष्टिः। गान्धारः ॥

भा०—हम लोग (वैश्वानरस्य) समस्त विश्व या समस्त राष्ट्र के नायक के (सुमतौ) शुभ बुद्धि के अधीन (स्याम) रहें। राजा वह राजा ही (भुवनानाम्) समस्त लोकों के लिये (अभिश्रीः) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य है। वह (जातः) प्रादुर्भूत होकर (इतः) इस मुख्य पद से ही (विश्वम् इदम्) इस समस्त विश्व को सूर्य के समान (वि चष्टे) देखता है और प्रकाशित करता है। इसी से (वैश्वानरः) समस्त राष्ट्र का नेता वैश्वानर नाम राजा (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (यतते) राष्ट्र के कार्यों में उद्योग करता है। (उपयाम) इत्यादि पूर्ववत्। अध्यात्म में—पांच ज्ञानेन्द्रिय मन बुद्धि और आठवीं वाणी है। हे वाणि! तू मेरे लिये सब ज्ञान-मार्गों को सफल कर और अमुक अभ्यास प्रयत्न और पदार्थ से मुझे यथा ज्ञान प्राप्त हो।

वैश्वानरो नऽऊतयऽआ प्र यातु परावतः। अग्निरुक्थेन वाहसा। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ८ ॥

कुत्सः। अग्निर्वैश्वानरः। जगती। निषादः॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त राष्ट्र का नेता, अथवा समस्त नेता पुरुषों का स्वामी, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (उक्थेन) अपने प्रशंसनीय (वाहसा) साधनों और वाहनों से (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (परावतः) दूर-दूर के देशों तक भी (आ प्रयातु) जाए और दूर देशों से भी आ जाया करे। (उपयाम०) इत्यादि पूर्ववत्।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्। उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥ ९ ॥

वसिष्ठभरद्वाजावृषी। अग्निर्वैश्वानरो देवता। जगती। निषादः॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् अग्नि के समान तेजस्वी, (ऋषिः) ज्ञानों, मन्त्रार्थों का देखने वाला, (पाञ्चजन्यः) पांचों जनों का हितकारी (पुरो-

हितः) पुरोहित, सब कर्मों का साक्षी हो। (महागयम्) अति स्तुतियोग्य, या बड़े विशालगृहों, धनैश्वर्यों और बड़ी प्रजा वाले (तम्) इससे हम अपने अभिलषित पदार्थ की (ईमहे) याचना करें। (उपयामगृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत्। (ऋ० ९। ६६। २०॥)

महाँ२ऽ इन्द्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म्म यच्छतु। हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि। उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा॥ १०॥

वसिष्ठ ऋषिः। महान् इन्द्रो देवता। निचृज्जगती। निषादः॥

भा०—(महान्) बड़ा भारी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक इन्द्र, राजा (वज्रहस्तः) खांडा हाथ में लिये हुए बलवान्, वीर्यवान्, (षोडशी) सोलहों कलाओं के समान सोलह अमात्यों पर राज्यांगों से चन्द्र के समान पूर्ण होकर हमें (शर्म) सुख (यच्छतु) प्रदान करे। (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करे उस (पाप्मानम्) पापी, दुष्टाचारी पुरुष को (हन्तु) दण्ड दे। १६ अमात्यों की राजपरिषद्, देखो शुक्रनीति। (उपयामगृहीत०) इत्यादि पूर्ववत्।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनवऽइन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥ ११॥

नोधा गोतम आदित्ययाज्ञवल्क्यौ वा ऋषी। इन्द्रो देवता। सतोबृहती। मध्यमः॥

भा०—(स्वसरेषु) दिनों के पूर्व भाग में (धेनवः वत्सं न) गौवें जिस प्रकार अति प्रेम से अपने बच्छे के प्रति हंभारती हैं उसी प्रकार हम भी (वत्सम्) अभिवादन और स्तुति करने योग्य, (दस्मम्) दर्शनीय शत्रुओं के विनाशक, प्रियवादी और कार्यसाधक (वसोः) बसने वाले राष्ट्र और (अन्धसः) अन्नादि नाना भोग्य पदार्थ से (मन्दानम्) स्वयं और अन्यों को तृप्त, आनन्दित करने वाले (ऋतिसहम्) अपने ज्ञान, प्रयाण या चालों से शत्रुओं को परास्त करनेवाले, (इन्द्रम्) इन्द्र, सेनापति और

राजा को हम (गीर्भिः) स्तुतिवाणियों द्वारा (अभि नवामहे) साक्षात् स्तुति करें, उसका आदर करें।

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजाऽउदीरते ॥ १२ ॥

सुयुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (वाहिष्ठम्) सबसे अधिक सुख प्राप्त करने वाला, बड़ी जिम्मेदारी का (बृहत्) बड़ा महान् पद है वह (अग्नये) ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष को प्रदान करो। (अर्च) उसका आदर-सत्कार करो। हे (विभावसो) तेजोरूप ऐश्वर्यवान् तेजस्विन् ! (महिषी इव) जिस प्रकार रानी अपने पति के लिये बड़ी उत्कंठा और प्रेम से उसके आदरार्थ उठती है, उसे प्राप्त होती है, इसी प्रकार (त्वत् रयिः) तेरे निमित्त ऐश्वर्य और (त्वत्) तेरे निमित्त, (वाजाः) समस्त वीर्य, पदाधिकार (उदीरते) उठते हैं और तुझे प्राप्त होते हैं। अथवा (रयिः) ऐश्वर्य और (वाजाः) समस्त बल सब तुझ से, तेरे ही आश्रय से उत्पन्न होते हैं।

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न ऽ इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास ऽ इन्दुभिः ॥ १३ ॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (एहि) आ। (ते) तुझे मैं विद्वान् पुरुष (इतराः) और नाना (गिरः) उपदेश वाणियों का (इत्था) यथार्थ रूप से (सु ब्रवाणि) उत्तम रीति से उपदेश करूं। (एभिः) इन (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों से तू (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त हो।

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ॥१४॥

संवत्सरो देवता । भुरिग् बृहती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! (ऋतवाः) जगत् रूप यज्ञ को ऋतुगण करते हैं उसी प्रकार सदस्यगण (ते यज्ञम्) तेरे राष्ट्र-पालन रूप यज्ञ को (वि तन्वन्तु) विविध उपायों से करें। (मासाः) मास जगत् अन्न आदि पदार्थों की रक्षा करते हैं उसे (मासाः) ज्ञानवान् और दुष्टों के नाशक अधिकारीगण (ते) तेरे (हविः) अन्न और राष्ट्र को (रक्षन्तु) रक्षा करें। (ते यज्ञम्) तेरे यज्ञ को (संवत्सरः) जिसमें समस्त प्राणी सुख से बसें और रमण करें ऐसे प्रजापालक विद्वान् पुरुष वर्ष के समान सर्वगुण-निधान, (दधातु) धारण करे। और वही (नः) हमारे (प्र जाम्) प्रजा का (परि पातु) परिपालन करे।

उपह्वरे गिरीणाᳯं सङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रोऽअजायत ॥ १५ ॥

वत्स ऋषिः। सोमो विद्वान् देवता। विराड् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) समीप गुप्त एकान्त स्थान में, (नदीनां च सङ्गमे) और नदियों के संगम स्थान में, रह कर (धिया) ध्यान, धारणा कर्म और विद्याभ्यास करके (विप्रः) विविध विद्याओं में संपूर्ण, निष्णात होकर विद्वान् सोम और सूर्य के समान तेजस्वी और दीप्तिमान् ज्ञानी जन (अजायत) प्रकट होता है।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।
उग्रᳯं शर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥

[१६–१६] आमहीय ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—तेरे हे (सोम) ऐश्वर्यसम्पन्न सूर्य के समान सबके प्रेरक राजन्! (अन्धसः ते) अखिल विश्व को धारण करने वाले (ते) तेरा जो (उच्चा दिवि) ऊंचे आकाश में (सत्) सत् शक्ति रूप वही (उग्रम्) बड़ा बल, (शर्म) सुखकारी शरण और (महि श्रवः) बड़ा ऐश्वर्य (जातम्) प्रकट होता है उसको (भूमि आददे) भूमि स्वयं ग्रहण करती

है, अथवा उसको मैं प्रजाजन (भूमि इव) सर्वोत्पादक सर्वाश्रय रूप से स्वीकार करता हूँ।

स नऽ इन्द्राय यज्वने वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥

इन्द्रः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! (सः) वह तू (नः) हमारे (इन्द्राय) शत्रुनाशक, (यज्यवे) दानशील, (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, आपत्तिनिवारक और (मरुद्भ्यः) विद्वान् और वीर शत्रु-संहारक मनुष्यों के लिये (वरिवोवित्) धनवान् (परि स्रव) प्राप्त हो ।

एना विश्वान्यर्य्यऽआ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

विद्वान् । विराड गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(एना) ये (विश्वा) सब प्रकार के (मानुषाणां द्युम्नानि) मनुष्यों के उपयोगी धनों का (अर्यः) स्वामी ही (आ) प्राप्त करता है। हम (सिषासन्तः) उनका सेवन करना चाहते हुए (वनामहे) उन्हीं पदार्थों की याचना करते और सेवन करते हैं।

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः ।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९॥

मुद्गल ऋषिः । आशाः विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(देवाः) देवगण (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर संगत, समाज और राष्ट्ररूप यज्ञ या प्रजापालक राजा को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार, यथाकाल, यथावसर इस प्रकार (नयन्तु) ले जावें (वयम्) हम (वीरैः) वीरों से (अनुपुष्यास्म) निरन्तर पुष्ट हों, (गोभिः अनु) गौओं से समृद्ध हों, (पुष्टैः अश्वैः अनु) हृष्ट पुष्ट अश्वों से समृद्ध हों, (सर्वेण द्विपदा चतुष्पदा) सब प्रकार के दोपाये और चौपाये, भृत्य और पशुओं से (अनु) खूब पुष्ट होते रहें।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।
त्वष्टारᳫं सोमपीतये ॥ २० ॥

मधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् ! अग्रणी पुरुष ! (इह) इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र और समाज के कार्य में (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों की उन (पत्नीः) स्त्रियों को जो (उशतीः) उत्तम कार्य करने की अभिलाषा करती हों (उप आ वह) प्राप्त करा, उनको भी इस कार्य में लगा और (सोमपीतये) सोम या राजपद के स्वीकार करने के लिये (त्वष्टारम्) शत्रुहन्ता, प्रजापालक पुरुष को भी (उप आ वह) प्राप्त करा । राष्ट्र के पालन के लिये राजा (देवानां पत्नीः) देवों विद्वानों और राजा और विजयी पुरुषों की पालन शक्तियों सेनाओं को एकत्र करे । सबके त्वष्टा, शिक्षक या भूमि आदि के मापने हारे राजप्रासाद, दुर्ग आदि के निर्माता शिल्पी को भी प्राप्त करे ।

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्रावो नेष्टः पिब ऽऋतुना ।
त्वᳫं हि रत्नधा ऽअसि ॥ २१ ॥

[२१—२२] मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् ऋतुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (नेष्टः) नेता ! नायक पुरुष ! (नः) हमारे (यज्ञम्) प्रजापालक राष्ट्र के स्वरूप को, (नः अभि गृणीहि) हमें बतला । हे (ग्रावः) पालक शक्ति से युक्त वाग्मिन् ! राष्ट्र को (ऋतुना) अपने बल, ज्ञान या अन्य अधिकारियों द्वारा (पिब) पालन कर । (त्वं हि) तू ही (रत्नधाः असि) राज्य के रत्नों और पुरुषों का धारक है ।

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत ।
नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ २२ ॥

सोमः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(द्रविणोदाः) धन और यश का देने वाला पुरुष ही (पिपीषति) सृष्टि का भोग करना चाहता है । (जुहोत) उसको पदाधिकार और

(प्र तिष्ठति च) शत्रु पर प्रस्थान करो, (नेष्ट्राद्) नेष्टा, शत्रुनाशक नायक से (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार, उसके मुख्य सदस्यों सहित (इष्यत) इष्ट फल को प्राप्त करो ।

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥

विद्वान् । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्यंयुक्त राष्ट्र (तव) तेरा है । (त्वम्) तू (सुमनाः) शुभ चित्त होकर (अस्य) इसके (शश्वत्-तमम्) सदा काल से चले आये ऐश्वर्य को (अर्वाङ्) अपने अधीन (पाहि) पालन कर । (अस्मिन् यज्ञे) इस महान् यज्ञ में, और इस (बर्हिषि) राज्यासन पर (आ निषद्य) विराज कर (इमम्) इस (इन्दुम्) ऐश्वर्य-शील राष्ट्र को, हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के इच्छुक ! (जठरे) पेट में अन्न के समान (दधिष्व) धारण कर ।

अमेव नः सुहवा ऽआ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मदस्व जुजुषाणोऽअन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः २४

गृत्समद ऋषिः । विद्वान् त्वष्टा देवपत्न्यश्च देवताः । जगती । निषादः ॥

भा०—हे (सुहवाः) सुन्दर, शुभ नाम वाली विद्वान् पुरुषों की स्त्री जनो ! और हे विद्वानो ! आप सब लोग (आ गन्तन हि) आइये । (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (नि सदतन) विराजिये । और (रणिष्टन) उत्तम उपदेश, कीजिये । हे (त्वष्टः) विद्वन् ! राजन् ! तेजस्विन् ! सूर्य अपने (देवेभिः) किरणों से जल को ग्रहण करता है वैसे तू (देवेभिः) सहयोगी विद्वान् पुरुषों और (जनिभिः) सहयोगी माता, भगिनी, पत्नी आदि और (सुमद्-गणः) उत्तम गुणों वाले सुप्रसन्न गणों अर्थात् भृत्यजनों सहित (अन्धसः) अन्न आदि का (जुजुषाणः) भोग करता हुआ (मदस्व) हृष्ट-पुष्ट हो ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ २५ ॥

मधुच्छन्दाः । सोमः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक ! तू (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद, समृद्ध राज्य के लिये । (सुतः) अभिषिक्त होकर (स्वादिष्ठया) अति स्वाद वाली, अति मधुर (मदिष्ठया) अति आनन्द देने वाली, (धारया) प्रजा को धारण पोषण करने वाली, वाणी और शक्ति से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के (पातवे) पालन और भोग करने के लिये (पवस्व) यत्न कर ।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

मधुच्छन्दाः । अग्निः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(रक्षोहा) राक्षसों, दुष्ट पुरुषों का नाशक, (विश्वचर्षणिः) समस्त प्रजाओं का द्रष्टा (अयोहते) सुवर्णादि से सम्पन्न (द्रोणे) राष्ट्र में (सधस्थम्) योग्य, प्रतिष्ठित पद और (योनिम्) अपने गृह पद पर (आसदत्) विराजे और गृह में रहे ।

इति षड्विंशोऽध्यायः ।

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

[अ० २७] प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता ॥

॥ ओ३म् ॥ समास्त्वाग्न ऽऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऽऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा ऽआ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ १ ॥

[१—६] अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! अग्रणी नायक! राजन्! (त्वा) तुझको (समाः) एक समान मान, पद और ज्ञानवाले विद्वान् पुरुष और (ऋतवः) बलवान् सभासद् गण, (संवत्सराः) अच्छी प्रकार प्रजाओं को बसाकर उनमें स्वयं रमण करने हारे प्रजापालक नरपति लोग और (ऋषयः) वेद-मन्त्रों और सत्य ज्ञानों के गूढ़ तत्वों के अध्यापक तथा अध्येता जन और (यानि सत्या) जितने होने वाले सत्य, यथार्थ विज्ञान और सत्य व्यवहार हैं वे सब (त्वा) तुझको (सं वर्धयन्तु) बढ़ावें, तेरे यश, बल और ऐश्वर्य की वृद्धि करें। तू (दिव्येन) उत्तम कान्तियुक्त (रोचनेन) सबको अच्छा लगने वाले तेज से (सं दीदिहि) सूर्य के समान प्रकाशित हो। और सूर्य के समान ही (विश्वा) समस्त (चतस्रः) चारों दिशा उपदिशाओं सबको (आभाहि) जगमगा, प्रकाशित कर।

सूर्यपक्ष में—(समाः) वर्ष, (ऋतवः) वसन्तादि, (संवत्सराः) प्रभव आदि सब सूर्य की महिमा को बढ़ाते हैं।

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय।
मा च रिषदुपसत्ता तेऽअग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥२॥

सामिधेन्यो देवताः। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! विद्वन्! नायक! राजन्! तू (सं इध्यस्व च) अग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो। (एनम्) इस राष्ट्र को भी (प्र बोधय च) खूब जगा, शिष्य को गुरु के समान अज्ञान दशा से जगा कर ज्ञानवान् कर। तू स्वयं भी (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, (उत् तिष्ठ) ऊंचे आसन पर विराज। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते उपसत्ता) तेरे समीप आने और बैठने वाला अमात्य, शिष्य, मित्र आश्रित आदि (मा रिषत् च) कभी कष्ट प्राप्त न करे। हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! (ब्राह्मणः) ब्रह्मा, वेद और ऐश्वर्य के ज्ञानी विद्वान् (ते) तेरे आश्रय रह कर (यशसः) यशस्वी (सन्तु) हों। (ते अन्ये) और तेरे शत्रु जन (मा) कभी यशस्वी न हों।

त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्म॒णाऽइ॒मे शि॒वो ऽअ॑ग्ने सं॒वर॑णे भवा नः ।
स॒प॒त्न॒हा नो॑ ऽअभिमाति॒जिच्च॒ स्वे गये॑ जागृ॒ह्यप्र॑युच्छन् ॥ ३ ॥

अग्निः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! तेजस्वी पुरुष ! (त्वाम्) तुझको (इमे ब्राह्मणाः) ये ब्रह्म के जानने हारे विद्वान् ब्राह्मण लोग (वृणते) वरण करते हैं, हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! तू (नः) हमारे (संवरणे) वरण कर लेने पर (शिवः) हमें कल्याण और सुख देने हारा (भव) हो । और (सपत्नहा) शत्रुओं का नाशक और (अभिमाति-जित् च) गर्वीले, दुष्ट पुरुषों को विजय करने हारा होकर (स्वे गये) अपने गृह और विजित राष्ट्र में (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (जागृहि) सदा सावधान हो जगता रह ।

इ॒है॒वाग्ने॒ ऽअधि॑ धारया र॒यिं मा त्वा॒ नि क्र॑न् पूर्व॒चितो॑ निका॒रिणः॑ । क्ष॒त्रम॑ग्ने सु॒यम॑मस्तु॒ तुभ्य॑मुपस॒त्ता व॑र्धतां॒ ते॒ ऽअनि॑ष्टृतः ॥ ४ ॥

अग्निः । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! तू (इह एव) यहां ही राष्ट्र में या पद पर (रयिम्) धन, ऐश्वर्य को (अधि धारय) धारण कर । और (पूर्वचितः) तेरे परिचित जन (निकारिणः) तेरा अपमान करने में समर्थ वा पूर्व प्राप्त, अधिक विज्ञानी पुरुष (त्वा मा निक्रन्) तेरा निरादर न करें और (कारिणः) निरन्त कर्मशील, उद्योगी जन भी (त्वा मा नि क्रन्) तुझे नीचे न गिरादें, (तुभ्यम्) तेरी रक्षार्थ (क्षत्रम्) वीर्य और क्षात्र-बल (सुयमम्) उत्तम प्रबन्ध में, व्यवस्थित (अस्तु) हो । (ते उपसत्ता) तेरे समीप बैठा हुआ मंत्री, आदि वा, आश्रित जन भी (अनिस्तृतः) क्षति को प्राप्त न होकर, (वर्धताम्) वृद्धि को प्राप्त हो ।

क्ष॒त्रेणा॑ग्ने॒ स्वायुः॒ सᳬर॑भस्व मि॒त्रेणा॑ग्ने मित्र॒धेये॑ यतस्व ।
स॒जा॒ता॒नां॑ मध्यम॒स्था ऽए॑धि॒ राज्ञा॑मग्ने विह॒व्यो॑ दीदिही॒ह ॥ ५ ॥

अग्निर्देवता । स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! राजन् ! तू (क्षत्रेण) क्षात्रबल, क्षत अर्थात् त्रुटि के पूर्ण करने वाले, धन और प्रजा को क्षय होने से बचाने वाले राज्य से (सु—आयुः, स्व-आयुः) अपने उत्तम आयु को (संरभस्व) प्राप्त कर, अपने जीवन को सुरक्षित रख। हे अग्ने! राजन् ! (मित्रेण) स्नेही, मित्र राजा और धार्मिक विद्वान् पुरुषों से (मित्रधेये) मित्रता रखने का (यतस्व) यत्न कर। और (सजातानाम्) कुल, शील, राज्य और ऐश्वर्य और पद में समान प्रतिष्ठा वाले पुरुषों के बीच में (मध्यमस्थाः) मध्यम राजा के रूप में सबका बल तोलने में समर्थ (एधि) होकर रह। हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! तू (राज्ञाम्) राजाओं के बीच में (विहव्यः) विशेष आदर से स्तुति योग्य और विशेष आदर से बुलाये जाने योग्य होकर (इह) इस राष्ट्र में (दीदिहि) प्रदीप्त, तेजस्वी होकर चमक।

अति॒ निहो॒ऽअति॒ स्रिधो॒ऽत्यचि॑त्ति॒मत्यरा॑तिमग्ने।
विश्वा॒ ह्य॒ग्ने दु॒रि॒ता सह॒स्वाथा॒स्मभ्य॑ꣳ स॒हवी॑रा॒ꣳ र॒यिं दाः ॥६॥

अग्निः। भुरिग् बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! विद्वन् राजन् ! तू (निहः अति) प्रजा के घातकों को दबा कर, (स्रिधः अति) निन्दित आचार व्यवहार वालों को दबाकर, (अचित्तिम् अति) अज्ञानी और मूर्ख या हृदयहीन को दबा कर और (अरातिम् अति) अदानशील शत्रु को दबा कर (विश्वा दुरिता) समस्त प्रकार के दुष्ट आचरणों को (सहस्व) विनष्ट कर। (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीराम्) वीर पुत्रों और वीर सैनिकों सहित (रयिम्) राष्ट्र और ऐश्वर्य का (दाः) प्रदान कर।

अ॒ना॒धृ॒ष्यो जा॒तवे॑दा॒ऽअनि॑ष्टृतो वि॒राड॑ग्ने क्षत्र॒भृद्दी॑दिही॒ह।
विश्वा॒ऽआशाः॑ प्रमु॒ञ्चन्मानु॑षीर्भि॒यः शि॒वेभि॑र॒द्य परि॑ पाहि नो वृ॒धे ॥ ७ ॥

अग्निः। निचृज्जगती। निषादः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! राजन्! सभापते! तू (अनाधृष्यः) दूसरे से कभी हारने वाला न हो। तू (जातवेदा) विद्यावान् ऐश्वर्यवान्, (अनिस्तृतः) अहिंसित (विराट्) विशेष रूप से तेजस्वी, (क्षत्रभृत्) क्षात्र-बल को पालन और धारण करने हारा होकर (इह) इस राष्ट्र में (दीदिह) हमें प्रकाशमान हो। और (मानुषीः भियः) समस्त मनुष्यों से होने वाले भयों को (प्र मुञ्चन्) छोड़ कर और अन्यों को भी भय से मुक्त करता हुआ (नः) हमारी (विश्वाः आशाः) सब आशाएं, मनोरथों और दिशाओं और उनमें रहने वाली प्रजाओं को (अद्य) अब, निरन्तर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (परि पाहि) पालन कर।

बृह॑स्पते सवितर्बो॒धयै॑नꣳ सꣳशि॑तं चित्सन्त॒राꣳ सꣳ शि॑शाधि।
व॒र्धयै॑नं मह॒ते सौभ॑गाय॒ विश्व॑ ऽएन॒मनु॑ मदन्तु दे॒वाः ॥ ८ ॥

विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े लोकों बड़े राज्यों, राजकार्यों के पालक, बृहस्पते! विद्वन्! हे (सवितः) सूर्य के समान तेजस्विन्! राजन्! आचार्य! तू (एनम्) इस अपने अधीन प्रजाजन और शिष्य को (संशितम्) और अच्छी प्रकार तप और विद्याभ्यास द्वारा तीक्ष्ण, बुद्धिमान् करके (संबोधय) अच्छी प्रकार ज्ञानवान् कर। (संतराम् सं शिशाधि) अच्छी प्रकार इसका शासन कर, (एनम्) उसको (महते सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य, उत्तम चरित्र और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (वर्धय) बढ़ा। (एनम् अनु) इसको देखकर (देवाः) समस्त विद्वान्, विजयेच्छु जन भी (अनु मदन्तु) आनन्द प्रसन्न हों।

अ॒मुत्र॒भूया॑द॒ध य॒द्यमस्य॒ बृह॑स्पते ऽअ॒भिश॑स्ते॒रमु॑ञ्चः।
प्रत्यौ॑हताम॒श्विना॑ मृत्युम॑स्मा॒द्दे॒वाना॑मग्ने भि॒षजा॒ शची॑भिः ॥ ९ ॥

अश्व्यादयः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (बृहस्पते) बृहत्, बड़े राष्ट्र के पालक! विद्वन्! (यत्)

जो (यमस्य) राष्ट्र के नियन्ता राजा को (अमुत्र-भूयात्) अमुक, दूसरे देश में होने वाले (अभिशस्तेः) अपराध, अपवाद, लोकनिन्दा से (अध) और (यत्) भी जो अयुक्त बात हो उससे उसको (अमुञ्चः) छुड़ा। हे (अग्ने) राजन् ! (अश्विना) विद्या में पारंगत 'अश्वी' नामक अधिकारीजन (देवानां भिषजा) विद्वान् पुरुषों में वैद्यों के समान सब राज्यगत दोषों के उपाय करने में कुशल होकर (शचीभिः) अपनी शक्तिशाली सेनाओं से (अस्मा) इस राष्ट्र में (मृत्युम्) मृत्यु या मारने वाले दुष्ट जन को (प्रति औहताम्) यत्नपूर्वक दूर करें।

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २०। २१॥

ऊर्ध्वा ऽअस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्युग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ११ ॥

[११—२२] द्वादश आप्रियः। प्रजापतिरग्निर्देवता। उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के जिस प्रकार ऊपर जलते हुए उज्ज्वल होते हैं उसी प्रकार (समिधः) प्रकाशक, उत्तम ज्ञान से उसकी बुद्धि को चमकाने वाले जन भी (ऊर्ध्वाः भवन्ति) उच्च पद पर विराजते हैं और उस अग्नि, परमेश्वर और राजा के (शुक्राः) शुद्ध करने वाले (शोचींषि) तेज भी (ऊर्ध्वाः) सर्वोपरि होते हैं। (सुप्रतीकस्य) सुन्दर उज्ज्वल मुख वाले, उत्तम ज्ञानवान् (सूनोः) पुत्र और शिष्य के समान सौम्य स्वभाव वाले, सर्वप्रेरक तेजस्वी ईश्वर, राजा के तेज (द्युमत्तमानि) अति उज्ज्वल ऐश्वर्ययुक्त हों।

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो ऽअनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥

अग्निः तनूनपात्। उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(तनूनपात्) शरीरों को न गिरने देने वाला, (असुरः) प्राणों में रमण करने वाला, (देवः) शक्ति देने और ज्ञान के देखने वाला जीव (देवेषु देवः) श्रोत्र आदि पदार्थ द्रष्टा उपकरणों में सबका अध्यक्ष है, वह (मध्वा) ज्ञान से (घृतेन) और प्रकाश से (पथः) अपने जीवन के मार्गों को (अनक्तु) प्रकाशित करे। (२) वायु शरीरों का रक्षक (असुरः) बलवान् दिव्य गुण वाला, (देवेषु देवः) अग्नि आदि पदार्थों को शक्ति देने वाला, (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल से (पथः) मार्गों को (अनक्तु) सींचे, वृष्टि करे। (३) राजा विस्तृत राष्ट्र का पालक, (विश्ववेदाः) समस्त ऐश्वर्य वाला, (असुरः) बलवान्, ऐश्वर्यवान्, (देवेषु देवः) दानशीलों में सबसे अधिक दानशील, (देवः) सबका द्रष्टा, (मध्वा घृतेन) मधुर आकर्षण और तेज से, सौम्यता और प्रखरता दोनों से प्रजा के व्यवस्थापक राजनियमों को प्रकाशित करे। (४) परमेश्वर—सब शरीरों का रक्षक होने से 'तनूनपात्' है, सर्वज्ञ होने से 'विश्ववेदाः', सब सूर्यादि का प्रकाशक होने से 'देवों का देव', सर्वानन्द होने से 'देव' और ऐश्वर्यों का ज्ञाता होने से [असु-र] 'असुर' है। वह (मध्वा) मधुर आनन्द से और (घृतेन) प्रकाशमय ज्ञान से हमारे जीवन के समस्त ऐहिक और पारलौकिक मार्गों को वेदोपदेश द्वारा प्रकाशित करे।

मध्वा युज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसो ऽअग्ने।
सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥ १३ ॥

यज्ञः। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! तू (यज्ञम्) परस्पर के आदान-प्रतिदान व्यवहार और प्रजा-पालन-रूप यज्ञ को, (मध्वा) मधुर चित्ताकर्षक वचन से (नक्षसे) व्याप्त है। यदि राजा की सर्वप्रिय व्यवस्था न हो तो प्रजा के परस्पर व्यवहार बड़े कर्कश और दुखदायी हों, व्यवस्था होने से वे सौम्य हो जाते हैं। तू (नराशंसः) विद्वानों का प्रशंसक और सर्वसाधारण से स्तुति योग्य, सबको शिक्षा देने हारा, (प्रीणानः) सबको तृप्त

और प्रसन्न करने हारा हो। तू स्वयं (सुकृत्) शुभ कार्यों का करने वाला, (सविता) सबका प्रेरक और (विश्ववार) सबको वरने, स्वीकार करने वाला, सबसे वरने योग्य, सबका रक्षक, सब बुरे पदार्थों का वारक हो।

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा ।
अग्नि ँ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥ १४ ॥
वह्निः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(अयम् वह्निः) यह राज्य-भार को वहन करने में समर्थ पुरुष, (शवसा) बल से, (घृतेन) तेज से और (नमसा) दुष्टों को दमन करने वाले बल से (ईडानः) स्तुति योग्य होकर (अच्छ एति) प्राप्त होता है। (अध्वरेषु प्रयत्सु) हिंसा रहित, प्रजा के पालन कार्यों के प्रारम्भ हो जाने पर (स्रुचः) स्रुवे जिस प्रकार अग्नि को उद्दीप्त करते हैं उसी प्रकार (स्रुचः) दानशील प्रजाएं अपने अंशों से (अग्निम्) इस नायक को प्रदीप्त, तेजस्वी करें।

स यक्षदस्य महिमानमग्नेः सऽईं मन्द्रा सुप्रयसः ।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ १५ ॥
वायुः । स्वराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—जो (वसुः) प्रजाओं को बसानेहारा, (वसिष्ठः) सबसे अधिक ज्ञानवान्, (वसुधातमः) बसी प्रजा का धारक पोषक सबको ऐश्वर्य देने वाला है, वह (अस्य अग्नेः) इस अग्नि, अग्रणी नामक पद के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को (यक्षत्) प्राप्त करे और (सः) वही (सुप्रयसः) उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थों से सम्पन्न पुरुष के (मन्द्रा) आनन्दप्रद सुखों को (ईम् यक्षत्) भी प्राप्त करे।

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ १६ ॥
द्वारो देव्यः । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(द्वारः) द्वार जिस प्रकार गृह के स्वामी को आने जाने देते हैं उसी की इच्छानुसार खुलते हैं, बंद होते हैं, (देवीः) स्त्रियां जिस प्रकार गृहस्वामी के ऐश्वर्यानुसार सजतीं और उसी के आज्ञानुसार कार्य, धर्माचरण आदि करती हैं उसी प्रकार (अस्य) इस (अग्नेः) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष के (अनु) अनुकूल उसके पीछे, (देवीः द्वारः) विजयशील शत्रुवारक सेनाएं और (विश्वे) समस्त पुरुष (व्रता) नाना सत्यभाषण आदि कर्मों को (ददन्ते) धारण करते हैं और (उरुव्यचसः) महान् व्यापक सामर्थ्य वाले इसके ही (धाम्ना) तेज, ऐश्वर्य से और पराक्रम या पद से वे स्वयं (पत्यमाना) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध हो जाते हैं।

ते ऽअस्य योषणे दिव्ये न योना ऽउषासानक्ता ।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥

यज्ञः । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(ते) वे शोभा का आश्रय स्थान स्त्री और राज्यलक्ष्मी दोनों (उषासानक्ता न) दिन और रात्रि के समान (दिव्ये योषणे) दिव्य, उत्तम गुणवती और दानशील दो स्त्रियां हैं। वे दोनों (नः इमं यज्ञम्) हमारे इस यज्ञ और राष्ट्र को (अध्वरम्) अविनष्ट रूप में (अवताम्) पालन करें।

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यावहोरात्रे' इत्यादि.....यजु०। अ० ३१।२२॥

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।
कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥

भा०—(दैव्या होतारा) आप्त प्रसिद्ध विद्या, कला कौशल की शिक्षा देने में कुशल दो विद्वान् (अध्वरम्) हमारे न विनष्ट होने वाले, (ऊर्ध्वम्) सबके ऊपर विद्यमान उन्नत 'यज्ञ', राज्यव्यवस्था का (नः अभिगृणीतम्) हमें उपदेश करें। और वे दोनों (अग्नेः) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष की (जिह्वाम्) मुख, वाणी वा वशकारिणी व्यवस्था की शिक्षा दें और (नः) हम प्रजाजनों की (सु-इष्टिम्) उत्तम फल देने वाली व्यवस्था (कृणुतम्) करें।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती ।
मही गृणाना ॥ १९ ॥

अश्विः । भुरिग् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(मही) बड़ी, उच्च गुणों वाली, (देवीः) ज्ञान की प्रकाशक, (गृणाना) उत्तम उपायों का उपदेश देती हुई (इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती और भारती, पृथ्वी, वाणी और तेज को धारण करने वाली (तिस्रः) तीनों सभाएं (इदं बर्हिः) इस महान् प्रजा या राष्ट्र पर (आ सदन्तु) आकर विराजें, ये तीनों सभाएं शासन करें ।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।
रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

त्वष्टा । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(त्वष्टा) अति दीप्तिमान्, अति शीघ्रता से सर्वत्र व्यापने वाला, शीघ्रगामी शिल्पज्ञ पुरुष (नः) हमें (तुरीपम्) वेग से पहुँचा देने और प्राप्त होने वाले (अद्भुतम्) आश्चर्यकारक (पुरुक्षु) नाना प्रकार के पदार्थों में विविध प्रकार से विद्यमान (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य या बल से युक्त (रायस्पोषम्) धनैश्वर्य के पोषण करने वाले ऐश्वर्य को (अस्मे नाभिम्) हमारे राष्ट्र के बीच में (वि ष्यतु) प्रदान करे ।

वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु ।
अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥ २१ ॥

विद्वांसः । विराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन करने योग्य राष्ट्र के पालक ! (शमिता) शान्तिदायक, राष्ट्र के उपद्रवों को शान्त करने में समर्थ, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, सेनानायक (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य राष्ट्र आदि ऐश्वर्य को (सूदयाति) तुझे प्रदान करे । और तू (त्मना) स्वयं (देवेषु) विद्वान्, विजयशील पुरुषों के हाथों उसको (रराणः) प्रदान करता हुआ (अव सृज) उसको अपने अधीन रख ।

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

इन्द्रः । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (जातवेदः) विद्याओं में कुशल पुरुष ! तू (स्वाहा) उत्तम उपदेशप्रद वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र या राष्ट्रपति के लिये (हव्यम्) स्वीकार करने योग्य स्तुति, एवं राष्ट्र पदाधिकार को (कृणुहि) कर । (इदं हविः) इस स्वीकार करने योग्य अन्नादि को (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् (जुषन्ताम्) प्राप्त करें ।

पीवोऽअन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥२३॥

[२३—२४] वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(नियुताम्) नियुक्त हुए शासकों को (अभि श्रीः) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य, मुख्य पुरुष (श्वेतः) उनकी वृद्धि करने वाला होकर (पीवः-अन्नाः) पुष्टिकर अन्नों को खाने वाले, (रयिवृधः) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले, (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुषों को (सिसक्ति) अपने साथ मिलाकर, समवाय बना कर रहे । और (ते) वे (समनसः) सब समान चित्त होकर, (वायवे) प्राण वायु के समान जीवनप्रद नेता के लिये (वि तस्थुः) विविध कार्यों पर अध्यक्ष होकर विराजें और (नरः) नेता या सर्वसाधारण मनुष्य (विश्वा) सब अपने (सु-अपत्यानि) सन्तानों को उत्तम (चक्रुः) बनावें ।

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वाऽउत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥२४॥

वायुः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(इमे रोदसी) पृथिवी और सूर्य के समान राजा और प्रजा दोनों (यम्) जिस मध्यस्थान अन्तरिक्ष में व्यापक वायु के समान, दोनों

के धारक पोषक को (राये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (जज्ञतुः) प्रकट करते हैं। और (धिषणा) समस्त कर्म और विज्ञानों और अधिकारों को धारण करने वाली (देवी) स्त्री विद्वान् को पति स्वीकार करती है उसी प्रकार यह राजसभा (देवम्) विद्वान्, मार्गदर्शी पुरुष को (धाति) धारण करती या मुख्य पद पर स्थापित करती है। (अध) और जिस प्रकार (नियुतः) अश्वगण अपने 'वायु' अर्थात् प्रेरक सारथी को धारण करते हैं उसी प्रकार (नियुतः) नियुक्त हुए पदाधिकारी लोग जिस (वायुम्,) प्राण और जीवनवृत्ति के दाता स्वामी को (स्वाः) अभीष्ट बन्धुजनों के समान (सश्चत) सेवन करते, उसका आश्रय लेते हैं (उत) और उस (श्वेतम्) परम वृद्ध, आदर योग्य पुरुष को (निरेके) निर्भय, बहुत से जनों से बसे स्थान में, या (निरेके) अक्षय कोष पर (वसुधितिम्) समस्त ऐश्वर्य की रक्षा करने वाला (सश्चत) स्थापित करते हैं और स्वयं उसकी रक्षा करते हैं।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानाꣳ समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२५॥

हिरण्यगर्भ ऋषिः। कः प्रजापतिः। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(यत्) जब (बृहतीः आपः) बड़ी शक्तिशाली प्रकृति की व्यापक तन्मात्राएं, अर्थात् सूक्ष्म कारणावयव (विश्वम्) अपने भीतर प्रविष्ट परमेश्वर के सामर्थ्य को (गर्भम्) गर्भ रूप से (दधानाः) धारण करती हुई (अग्निम्) अग्नि, सूर्य आदि तेजस्तत्व को प्रकट करती हैं (ततः) तब भी (देवानाम्) सब दिव्य शक्तियों, पृथिवी आदि पदार्थों का (एकः) एक ही (असुः) प्राणस्वरूप सबका प्रवर्त्तक होता है। (कस्मै) उस सर्वकर्त्ता (देवाय) सर्व जगत् प्रकाशक परमेश्वर का हम (हविषा) ज्ञान और स्तुति से (विधेम) प्रतिपादन करें।

(२) उसी प्रकार (बृहतीः) बड़ी भारी, बड़े सामर्थ्य वाली, वृद्धिशील, (आपः) जलों के समान राष्ट्र में व्यापक, आप्त प्रजाएं (यत्) जब,

(विश्वम्) उनमें प्रविष्ट होने वाले, व्यापक, बलवान् पुरुष को (आयन्) प्राप्त होती हैं और (गर्भम्) ग्रहण करने हारे गर्भ को स्त्री के समान, राष्ट्रैश्वर्यवान् (अग्निम्) अग्रणी नेता को अपने बीच में (जनयन्तीः) प्रकट कर रही होती हैं (ततः) तब वह (देवानाम्) समस्त विद्वान् शासकों का (एकः) एकमात्र (असुः) इन्द्रियों के प्रवर्त्तक, प्राण के समान होता है। (कस्मै) उस प्रजापालक, सर्वकर्त्ता (देवाय) राजा का हम (हविषा) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य आदि से (विधेम) सत्कार करें।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२८॥

हिरण्यगर्भ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(यः चित्) और जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दक्षं दधानाः) बल और क्रियावेग को धारण करती हुई (यज्ञं जनयन्तीः) सुसंगत, नियमबद्ध संसार को प्रकट करती हुई (आपः) प्रकृति की सूक्ष्म तन्मात्राओं को (परि अपश्यत्) साक्षात् देखता, उन पर साक्षी रूप से विद्यमान रहता है और (यः) जो (देवेषु) समस्त क्रीड़ाशील, फलाकांक्षी भोक्ता जीवों और पृथिव्यादि लोकों पर (एकः देवः) एक अद्वितीय सर्वप्रकाशक सुखदाता परमेश्वर (अधि आसीत्) अधिष्ठाता है, (कस्मै) उस विश्व के कर्त्ता सुखकारक परमेश्वर को हम (हविषा) ज्ञान और क्रियायोग से (विधेम) परिचर्या करें।

राजा—अपने महान् सामर्थ्य से बल को धारण करते हुए, (यज्ञम्) राष्ट्र को और राष्ट्रपति को प्रकट करते हुए (आपः) प्रजाओं को अध्यक्षरूप से देखता है और (यः देवेषु अधिदेवः एकः) जो एक ही सब विद्वानों और शासकों पर भी शासक है उसका हम अन्नादि से सत्कार करें।

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे।
नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

वसिष्ठः। वायुः। स्वराड् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे (वायो) सबके प्राणवत् जीवनाधार वायु ! अधिकारिन् ! तू (याभिः) जिन (नियुद्भिः) नियुक्त पुरुषों या सेवाओं के साथ (दाश्वांसम्) दानशील राष्ट्र के प्रति (दुरोणे) अपने आश्रय स्थान, गृह में (इष्टये) इष्टि अर्थात् योग्य कार्य सम्पादन करने के लिये (प्रयासि) प्रयाण करता है (अच्छ) वह ठीक ही है। (नः) हमें (सुभोजसम्) उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थों से युक्त या उत्तम रक्षा वाला (रयिम्) ऐश्वर्य (नि युवस्व) प्रदान कर। और (वीरम्) वीरों, (गव्यम्) गौओं और (अश्व्यम्) अश्वों से युक्त (राधः) धन भी प्रदान कर। 'नियुत्' शब्दः उभयलिङ्गः, इति उवटः॥

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रꣳ स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि य॒ज्ञम्। वायो॑ अ॒स्मिन्त्सव॑ने मादयस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥ २८॥

वसिष्ठः। वायुः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान प्राणरक्षक ! और प्रचण्डता से शत्रुओं को उखाड़ देने हारे वीर ! सेनापते ! तू (शतिनीभिः) सैकड़ों पुरुषों और (सहस्रिणीभिः) हजारों से बनी (नियुद्भिः) शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करने हारी सेनाओं के साथ (नः) हमारे (अध्वरम्) रक्षा करने योग्य (यज्ञम्) प्रजापति, सबके व्यवस्थापक राष्ट्रपति को (उपयाहि) प्राप्त हो। तू (अस्मिन् सवने) उस राज्याभिषेक काल में (मादयस्व) सबको प्रसन्न कर। (यूयम्) आप सब लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी उपायों से (नः) हमारी सदा (पात) रक्षा करो।

नि॒युत्वा॑न् वाय॒वाग॑ह्य॒यꣳ शु॒क्रो ऽअ॑यामि ते।
गन्ता॑सि सुन्व॒तो गृ॒हम्॥ २९॥

गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (वायो) ! ज्ञानवान् ! बलवान् ! सेनापते ! तू (नियुत्वान्) सेनाओं का नियन्ता होकर (आ गहि) प्राप्त हो। (अयम्) यह मैं (शुक्रः)

शुद्ध, तेजस्वी होकर (ते) तेरे पास (अयामि) प्राप्त होता हूँ। तू भी (सुन्वतः) अभिषेक करनेहारे (गृहम्) गृह अर्थात् ग्रहण सामर्थ्य या अधीनता को (गन्तासि) प्राप्त हो।

वायो शुक्रो ऽअयामि ते मध्वो ऽअग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥

पुरुमीढाजमीढौ ऋषी । वायुर्देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान्, सर्व प्राणाधार ! मैं (शुक्रः) शुद्ध, तेजस्वी होकर (दिविष्टिषु) ज्ञान प्राप्त करानेवाला विद्वत्सभाओं में (ते) तेरे (मध्वः) मधु, मधुर ज्ञान के (अग्रम्) उत्तम, सार भाग को (अयामि) प्राप्त होऊं। हे (देव) राजन् ! तू (सोमपीतये) 'सोम' ऐश्वर्य, राष्ट्र को प्राप्त करने के लिये (स्पार्हः) अति स्पृहा वाला होकर (नियुत्वता) नियुक्त, उच्छेदन में समर्थ सेना के नियामक सेनापति सहित (आ याहि) आ।

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥

अजमीढः । वायुः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—तू (अग्रेगाः) सबके आगे चलनेहारा, अग्रणी और (शिवः) कल्याणकारी होकर (यज्ञप्रीः) राष्ट्र को प्रसन्न अनुरञ्जित करके स्वयं (वायुः) वायु के समान बलवान् होकर (मनसा) अपने चित्त से (शिवाभिः नियुद्भिः साकम्) कल्याणकारिणी, नियुक्त सेनाओं या शक्तियों और नियुक्त पुरुषों सहित (यज्ञम् आ गहि) तू यज्ञ अर्थात् व्यवस्थित राष्ट्र या राष्ट्रपति के माननीय पद को प्राप्त हो।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२ ॥

वायुः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् सेनापते ! (ये) जो (ते) तेरे (सहस्त्रिणः) सहस्रों पुरुषों से अधिष्ठित (रथासः) रथ, या रमणकारी साधन हैं (तेभिः) उनसे (नियुत्वान्) तू विशेष शक्तिशाली और सेना-सम्पन्न होकर (सोमपीतये) सोम अर्थात् राष्ट्रैश्वर्य के पालन और भोग के लिये (आ, गहि) आ, प्राप्त हो ।

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विꣳशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिꣳशता च नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ॥३३॥

वायुः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (वायो) वायो ! ऐश्वर्यवन् ! हे (स्वभूते) स्वयं ऐश्वर्यवन् ! तु (एकया दशभिः च) दस दस की एक (द्वाभ्याम् विंशती = विंशत्या च) या बीस बीस की दो और (तिसृभिः त्रिंशता च) तीस तीस की तीन (नियुद्भिः) सभाओं और सेनाओं से (इष्टये) इष्ट लाभ के लिये (ता) उन नाना अधिकारियों या अंगों को (वहसे) धारण करता है तू (वि मुञ्च) उनको विविध कार्यों में नियुक्त कर। (२) परमेश्वर के पक्ष में—हे (स्वभूते) जगत् रूप अपनी ही विभूति से युक्त ! तू ११ से, २२ से और ३३ से राष्ट्र एवं जगत् के नाना कार्यों को धारण करता है। उनको विविध कार्यों में लगाता है ।

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवाꣳस्या वृणीमहे ॥३४॥

आंगिरस ऋषिः । वायुः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (ऋतस्पते) सत्य, जगत् ज्ञान और सत्य राष्ट्र का पालक ! (वायो) बलवान् ! हे (त्वष्टुः) तेजस्वी राजा के (जामातः) जवाई के समान उसको स्वयं उत्पादित सेना वा राज्य लक्ष्मी के पालक ! हे (अद्भुत) आश्चर्य कर्मकारक ! अभूतपूर्व बलशालिन् ! हम तेरे (अवांसि) रक्षा-साधनों को (आवृणीमहे) सब प्रकार से वरण करते हैं ।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाऽ इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ ३५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्र देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे शूरवीर पुरुष ! हे परमेश्वर ! हे स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तुझे हम साक्षात् स्तुति करते हैं और (अदुग्धाः धेनवः इव) बछड़ों को दूध पिलाने के लिये विना दुही गायें सदा नमती हैं उसी प्रकार तेरे आगे (नोनुमः) नमते हैं । तू हमारा ऐश्वर्य प्राप्त कर । और (अस्य जगतः) इस चराचर जगत् के (ईशानम्) ईश्वर, स्वामी और इस (तस्थुषः ईशानम्) स्थावर संसार के स्वामी (स्वर्दृशम्) आदित्य के समान दर्शनीय, तेजस्वी एवं सुखस्वरूप (त्वा नोनुमः) तेरी हम स्तुति करते हैं ।

न त्वावाँ२ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । सतोबृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावान्) तेरे जैसा (अन्यः) और कोई (दिव्यः न) द्यौलोक में सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ नहीं है । और (न पार्थिवः त्वावान् अन्यः) पृथिवी के पदार्थों में भी तेरे जैसा कोई और नहीं है । (न जातः) न अभी तक पैदा हुआ है और (न जनिष्यते) न पैदा होगा । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (इन्द्र) साक्षात् दर्शनीय ! परमेश्वर ! हम (वाजिनः) ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य वाले होकर (अश्वायन्तः) अश्व और (गव्यन्तः) गौओं, व कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों की कामना या वश करते हुए (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति करते हैं । (२) राजा के पक्ष में—तेरे जैसा उत्तम गुणवान्, तेजस्वी कोई न राजसभा में, न पृथिवीवासी प्रजा में कोई पैदा हुआ है, न आगे पैदा होगा । हम (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् होकर भी (गव्यन्तः अश्वायन्तः त्वा हवामहे) गौओं और घोड़ों की इच्छा करते हुए तेरी शरण आते, तुझे राजा स्वीकार करते हैं ।

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ३७ ॥
ऋ० ६ । ४६ । १ ॥

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन्, राजन् ! (कारवः) उत्तम कर्मों और शिल्पों को करने वाले विद्वान् पुरुष (वाजस्य सातौ) ऐश्वर्य और अन्न की प्राप्ति के लिये (वृत्रेषु) विघ्नकारियों के उपस्थित हो जाने पर मेघों में सूर्य के समान (सत्पतिम्) सज्जनों के प्रतिपालक (त्वाम् इत् हि) तुझको ही हम उसी प्रकार (हवामहे) स्मरण करते हैं, बुलाते हैं जिस प्रकार (नरः) लोग (काष्ठासु) दूर की सीमाओं और दिशाओं को पार करने के लिये (अर्वतः) अश्वों को याद करते हैं ।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो ऽअद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ३८ ॥
ऋ० ६ । ४६ । २ ॥

इन्द्रः । स्वराड् बृहती । निषादः ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) खड्गहस्त ! शत्रुवारक शस्त्रास्त्र युक्त सेनाओं के वशकारिन् ! (अद्रिवः) प्रस्तर सेवने वा पर्वतों से प्राप्त विविध धातुओं के बने दृढ शस्त्रों वाले, वा अभेद्य दुर्ग वाले ! हे (चित्र) आश्चर्य कर्म करनेहारे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (सः त्वं) वह तू (धृष्णुया) शत्रुओं को धर्षण करने वाले सामर्थ्य से (महः) महान् बलवान् (स्तवानः) स्तुति किया जाकर (गाम्) गौ, बैल और (रथ्यम्, अश्वम्) रथ में लगाने योग्य अश्व (जिग्युषे) विजयशील पुरुष को (सत्रा) रक्षाकारी और (वाजम्) विज्ञान ऐश्वर्य को (न) भी (संकिर) प्रदान कर ।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥ ऋ० ४ । ३१ । १ ॥

(३९—४१) वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (चित्र) अद्भुत कर्म करनेहारे वीर ! तू (सदावृधः सखा) सदा बढ़ाने वा बढ़ने हारे पुरुष का मित्र है । तू (कया ऊती) किस रक्षण सामर्थ्य से और (कया) किस (वृता) सदा विद्यमान (शचिष्ठया वृता) अतिशक्ति शाली रक्षा या क्रिया से (नः) हमारा (सखा) मित्र (आ भुवत्) बना रह सकता है । अथवा—(कया) सुख देनेहारी, (वृता) व्यवहार शैली और (ऊती) रक्षा द्वारा तू हमारा मित्र बना रहता है ।

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः ।

दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ४० ॥ ऋ० ४ । ३१ । २ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! (मदानाम्) हर्षजनक पदार्थों में से (मंहिष्ठः) सब से उत्तम (अन्धसः) भोग्य योग्य राष्ट्र का (कः) कौनसा अंश या स्वरूप (त्वा मत्सत्) तुझे सब से अधिक सुखी करता है । जिससे (दृढा चित्) दृढ (वसु) वास योग्य पुरों को भी (आरुजे) तोड़ने को समर्थ करता है, वही अंश मुझे भी प्राप्त हो ।

अ॒भी षु णः॒ सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम् ।

श॒तं भ॑वास्यू॒तये॑ ॥ ४१ ॥ ऋ० ४ । ३१ । २ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पादनिचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे इन्द्र राजन् ! तू (अभि) साक्षात् (नः) हम (सखीनाम्) मित्रों और (जरितृणाम्) स्तुति और उपदेश करनेहारे विद्वान् पुरुषों का (सु-अविता) उत्तम रक्षक है । और (ऊतये) रक्षा करने के लिये भी तू (शतम्) सैकड़ों प्रकार से समर्थ (भवासि) हो जाता है ।

य॒ज्ञाय॑ज्ञा वो अ॒ग्नये॑ गि॒रागि॑रा च॒ दक्ष॑से ।

प्रप्र॑ व॒यम॒मृतं॑ जा॒तवे॑दसं प्रि॒यं मि॒त्रं न शꣳसिषम् ॥ ४२ ॥

ऋ० ६ । ४८ । १ ॥

शंयुर्ऋषिः । यज्ञः । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यज्ञा-यज्ञा) प्रत्येक यज्ञ, संग्राम और सभा में और (गिरा-गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे) बलवान्, बुद्धिमान्, (अग्नये) ज्ञानी, परमेश्वर और विद्वान् अग्रणी नायक राजा को (वयम्) हम लोग (अमृतम्) अविनाशी, नित्य (जातवेदसम्) ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान्, (प्रियम् मित्रं न) प्रिय मित्र के समान (प्र प्र शंसिषम्) खूब प्रशंसा स्तुति करें।

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ४३ ॥

ऋ० ८ । ४६ । ९ ॥

गर्ग ऋषिः । अग्निर्देवता स्वराड अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक, ज्ञानी विद्वान् ! (नः) हमें (एकया) एक शिक्षा से (पाहि) पालन कर। (उत) और (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से भी (पाहि) पालन कर (तिसृभिः गीर्भिः) तीन वाणियों से भी (पाहि) पालन कर। हे (ऊर्जां पते) सब अन्नों, बलों और पराक्रमों के पालक ! (वसो) सबको बसाने हारे ! तू (चतसृभिः) हमें चारों वाणियों से (पाहि) रक्षा कर। (एकया) ऋग्वेदरूप प्रथम वाणी (द्वितीयया) दो ऋक् और यजुर्वेद स्वरूप, (तिसृभिः) तीन ऋग्, यजुः, साम और (चतसृभिः) चारों ऋग्, यजुः साम और अथर्व से हमारी रक्षा कर। अथवा—साम, दाम, भेद और दण्ड, इन चारों उपायों से, चारों प्रकार की आज्ञाओं से हमारा पालन कर। मित्रों में साम, लोभियों में दाम, शत्रुओं में भेद, दुष्टों पर दण्ड वाणी का प्रयोग करके राष्ट्र की रक्षा करे।

ऊर्जो नपातꣳ सहिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्ववि॒ता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ ४४ ॥

ऋ० ६ । ४८ । २ ॥

शंयुः । अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे विद्वान्! पुरुष! (सः) वह तू (ऊर्जः नपातम्) बल पराक्रम को कभी नष्ट न होने देने वाले, सदा बलवान् सुसज्ज पुरुष को सदा (हि न) बढ़ा, उन्नत पद पर स्थापित कर। (अयम्) वह (अस्मयुः) हमारी उन्नति चाहने वाला हो। और हम (हव्यदातये) ग्राह्य पदार्थों के देने वाले, या स्तुति योग्य दानशील या उपदेश करने वाले को (दाशेम) अन्नादि पदार्थ प्रदान करें। वह (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक हो और वही (वृधे) वृद्धि के लिये हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (त्राता) रक्षक (भुवत्) हो।

संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताᳬसंवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्या ऽएत्यै सं चाञ्च प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥ ४५ ॥

अग्निर्देवता। निचृदभिकृतिः। ऋषभः ॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान तेजस्विन्! सूर्य जिस प्रकार पांच वर्ष वाले युग में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर इद्वत्सर और वत्सर इन पंचरूपों में परिवर्तित होता है इसी प्रकार तू भी (संवत्सरः असि) तेरे संग समस्त प्राणी आकर बसते हैं, तुझे अभिवादन व स्तुति करते हैं इसलिये तू 'संवत्सर' है। (परिवत्सरः असि) तेरे चारों ओर तेरी शरण में लोग आ बसते हैं, चारों ओर तू स्तुति, अभिवादन किया जाता है, इसलिये तू 'परिवत्सर' है। (इदावत्सरः असि) अन्न के द्वारा तू सबको बसाता है, इससे तू 'इदावत्सर' है। (इद्वत्सरः असि) तू इस लोक को बसाता है अथवा जल आदि से तू लोकों का पालन करता है इससे तू 'इद्वत्सर' है। (वत्सरः असि) तू पुत्रों के समान सब को आनन्द प्रसन्न रखता उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है इससे तू 'वत्सर' है। इस प्रकार

राजा संवत्सर प्रजापति के समान है। (ते उषसः कल्पन्ताम्) वर्ष की ३६५ उषाएं होती हैं इसी प्रकार तेरी उषाएं, दुष्टों के दमन और राष्ट्र के व्यवहार प्रकाशक कार्य को समृद्ध करने वाली शक्तियां नित्य बढ़ें। (अहोरात्राः ते कल्पन्ताम्) वर्ष के दिनों और रातों के समान तेरे राज्य में स्त्री पुरुषों की वृद्धि हो। (अर्धमासाः ते कल्पन्ताम्) अर्ध मासों के समान तेरे राज्य में आह्लादकारी, समृद्ध विद्वानों की वृद्धि हो। (मासाः ते कल्पन्ताम्) वर्ष के मासों के समान तेरे राज्य में आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् बढ़ें। (ऋतवः ते कल्पन्ताम्) ऋतुओं के समान तेरे राष्ट्र में राजसभा के सदस्यों की वृद्धि हो। (संवत्सरः ते कल्पन्ताम्) संवत्सर स्वरूप प्रजापति पद उन्नति को प्राप्त हो। (प्र-इत्य) आगे बढ़कर और (आ-इत्य च) पुनः लौट-लौट कर तू (सम् अञ्च) अपनी शक्तियों को एकत्र कर और (प्रसारय च) आगे भी बढ़ा। तू (सुपर्णचित् असि) आदित्य के समान उत्तम पालन करने वाले साधनों, एव उत्तम पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह करने वाला है। अथवा—सुपर्ण, उत्तम बलवान् पक्षी जिस प्रकार आकाशमार्ग को भली प्रकार तय करने के लिये अपने पंखों को संकोच करता और फैलाता है और सुन्दर, सुखदायी किरणों वाला सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों को नित्य नियम से फैलाता और संकुचित करता है उसी प्रकार हे अग्ने ! राजन् ! सेनापते ! तू भी अपनी सेनाओं को (सम् अञ्च) संयुक्त कर, संकुचित कर और फिर (प्र सारय च) फैला। इस प्रकार तू (सुपर्णचित्) गरुड़ पक्षी और सूर्य के समान है। अथवा प्राण जिस प्रकार (प्र इत्य आ इत्य च) एक बार बाहर जाता फिर लौट कर आता है (सम् अञ्च, प्र सारय च) इसी प्रकार तू भी राष्ट्र से एक बार विदेश प्रयाण कर एक बार पुनः अपने देश में आकर (सम् अञ्च) धन को संग्रह कर और उसको राष्ट्र में विस्तारित कर। इस प्रकार शरीर में प्राण के समान राष्ट्र के बीच में तू राष्ट्र का प्राण, जीवन होकर उसको चैतन्य किये रह। (तया देवतया) उस चित्स्वरूप देवता, आत्मा के समान रूप से तू

(अंगिरस्वत्) अंग-अंग में रस रूप होकर राष्ट्र के प्रत्येक भाग में, बलरूप होकर (ध्रुवः) निश्चित, स्थिर होकर (सीद) विराज, सिंहासन पर बैठ।

॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

प्रजापत्यश्विसरस्वत्य ऋषयः।

॥ ओ३म् ॥ होता॑ यक्षत्स॒मिधेन्द्र॑मि॒डस्प॒दे नाभा॑ पृथि॒व्या अधि॑। दि॒वो वर्ष्म॒न्त्समि॑ध्यत॒ ऽओजि॑ष्ठश्चर्षणी॒सहां॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ १ ॥ ऋग्वेद-परिशिष्ट ॥

बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(होता) आहुति प्रदान करने वाला पुरुष 'होता' जिस प्रकार (समिधा) समिधा, काष्ठ से यज्ञ करता है उसी प्रकार (इडस्पदे) पृथिवी के सर्वोच्च मान, आदर प्रतिष्ठा के पद पर (समिधा) अच्छी प्रकार चमकने वाले तेज से (इन्द्रम्) शत्रुओं के नाशक और ऐश्वर्य के वर्धक वीर पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। (पृथिव्याः नाभौ) पृथिवी की नाभि, राष्ट्र में (अधि) अधिष्ठाता होकर (दिवः वर्ष्मन्) आकाश से वर्षा करने वाले मेघ के समान प्रजा पर सुखों को वर्षाने वाले पद पर (चर्षणी-सहाम्) मनुष्यों को पराक्रम से वश करने वालों में (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, तेजस्वी पुरुष ही (समीध्यते) सब से अधिक प्रकाशित होता है। वही (आज्यस्य) विजयलक्ष्मी, ऐश्वर्य का (वेतु) भोग करे। हे (होतः) अधिकार प्रदान करने में समर्थ विद्वन्! तू (यज) ऐसे पुरुष को ही अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१। २९ ॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् । इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २ ॥

तनूनपादिन्द्रो देवता । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकारों को प्रदान करने हारा विद्वान् 'होता' (तनूनपातम्) समस्त राष्ट्रवासियों के शरीरों की रक्षा करने हारे, उनको क्षति न पहुँचाने वाले (अपराजितम्) कभी भी न हारे हुए, (जेतारम्) विजेता, (स्वर्विदम्) सुख समृद्धि का लाभ करने और कराने वाले, (देवम्) विद्वान्, दानशील, राष्ट्र के द्रष्टा पुरुष को (इन्द्रम्) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् पद पर (यक्षत्) स्थापित करे, वह (मधुमत्तमैः) अत्यन्त मधु, ज्ञान और मनोहर (पथिभिः) उपायों, मार्गों और व्यवस्था-मर्यादाओं से (नराशंसेन तेजसा) समस्त नेता पुरुषों को आदेश करने में समर्थ, एवं सर्व स्तुति योग्य तेज से, पराक्रम से (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वेतु) प्राप्त करे । हे (होतः) विद्वन् ! ऐसे पुरुष को (यज) तू अधिकार प्रदान कर । देखो अ० २१ । ३०, ३१ ॥

होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥३॥

स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(होता) सर्वाधिकारप्रद विद्वान् (इडाभिः) उत्तम प्राणियों से (ईडितम्) स्तुत, प्रशंसा प्राप्त, (आजुह्वानम्) शत्रुओं को मैदान में ललकारने वाले, प्रतिस्पर्द्धी, (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विशेष बलशाली, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे । वह (देवः) विद्वान्, कान्ति और तेज वाला, सबको रुचिकर, (देवैः) विजिगीषा या विजय की इच्छा करने वाले वीर सैनिकों से (सवीर्यः) वीर्यवान् होकर (वज्रहस्तः) शस्त्रास्त्रों और उनसे सम्पन्न सैन्य-

बल को अपने हाथ में अर्थात् वश में लेकर (पुरन्दरः) शत्रुओं के गढ़ तोड़ने में समर्थ होकर (आज्यस्य वेतु) युद्ध से प्राप्त राज्य को प्राप्त करे। हे (होतः यज) ! विद्वन् तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१। ३२॥

होता॑ यक्षद्ब॒र्हिषीन्द्रं॑ निषद्व॒रं वृ॑ष॒भं नर्या॑पसम्।
वसु॑भी रु॒द्रैरा॑दि॒त्यैः स॒युग्भि॑र्ब॒र्हिरास॑दद्वे॒त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज ॥४॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(होता) सबको अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान्, (निषद्वरम्) राज-सभा में विराजने वालों में से सबसे श्रेष्ठ, (वृषभम्) अतिबलवान्, (नर्यापसम्) सब मनुष्य हितकारी कार्यों के करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य और उत्तम गुणों वाले पुरुष को (बर्हिषि) महान्, वृद्धि युक्त, प्रजाओं के राष्ट्र के न्यायासन पर (यक्षत्) संगत करे। वह (वसुभिः) प्रजा को सुख से बसाने वाले, (रुद्रैः) दुष्टों को दण्डों द्वारा रुलाने वाले, (आदित्यैः) आदित्य के समान तेजस्वी, उत्तम सद्गुण प्रदान करने हारे और परस्पर आदान-प्रतिदान करने करने वाले, (सयुग्भिः) साथ योग देने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ मिलकर अथवा वसु, रुद्र, आदित्य, क्रम से एक, दो, तीनों वेदों के अभ्यासी और योगी पुरुषों सहित (बर्हिः) न्यायासन या राजसभा के ऊपर (आदसत्) विराजे और (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य, उत्तम न्याय, शासन को प्राप्त करे। हे (होतः यज) विद्वन्! योग्य पुरुष को अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१। ३३॥

होता॑ यक्षदो॒जो न वी॒र्य॒ꣳ सहो॒ द्वार॒ इन्द्र॑मवर्द्धयन्। सु॒प्रा॒य॒णा ऽ अ॒स्मिन्य॒ज्ञे विश्र॑यन्तामृता॒वृधो॒ द्वार॒ ऽइन्द्रा॑य मी॒ढुषे॑ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ५॥

भा०—(होता) योग्य पुरुषों को योग्याधिकारी देने वाला विद्वान् (यक्षत्) योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। (ओजः) जल प्रवाह के समान वेगवान् (वीर्यम्) वीर्य और (सहः) शत्रु को नाश करने वाल

बल और (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने वाली वीर सेनाएं ये सभी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं। (द्वारः) द्वार जिस प्रकार (यज्ञे) यज्ञ गृह में (सुप्रायणाः) सुख से निर्गम और प्रवेश कराने योग्य होते हैं उसी प्रकार (ऋतावृधः) सत्य व्यवहारों को बढ़ाने वाले या ऋत अर्थात् राष्ट्र के बल और ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले (द्वारः) शत्रुओं के वारक वीर पुरुष (सुप्रायणाः) शुभ, उच्च पदाधिकार स्थानों पर विराजमान होकर (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर सुव्यवस्थित राष्ट्र में (वि श्रयन्ताम्) विविध रूपों में स्थापित किये जाय। वे (मीढुषे) नाना सुखों और ऐश्वर्यों से प्रजाओं का सेचन करने वाले, वीर्यवान् (इन्द्राय) इन्द्र, राजा और राज्य के (आज्यस्य) ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त हों। उसका भोग करें। हे (होतः) विद्वन्! तू (यज) योग्य पुरुषों को 'द्वार' अर्थात् शत्रुनिवारक पदों पर (यज) अधिकार प्रदान कर।

'द्वारः'—द्रवतेर्वा, जनतेर्वा। नि०।

होता॑ यक्षदु॒षे इन्द्र॑स्य धे॒नू सु॒दुघे॑ मा॒तरा॑ म॒ही। स॒वा॒तरौ॑ न तेज॑सा व॒त्समिन्द्र॑मवर्धतां वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ६ ॥

इन्द्रः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(होता यक्षत्) पदाधिकारों का दाता विद्वान् योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। (सुदुघे धेनू वत्सं न) उत्तम दूध देने वाली दो गौएं जैसे बच्छे को, या माता पिता दोनों जैसे बच्चे को दूध पिलाकर पालते हों उसी प्रकार प्रतापयुक्त, तेजस्विनी, उषाओं की तरह समस्त व्यवहारों को प्रकाशित करने वाली (मही) बड़ी (मातरौ) माता पिता के समान पूज्य एवं राष्ट्र को बनाने वाली और राजा को उत्पन्न करने वाली, (सवातरौ) वेगवान् वायु के समान बलवान् पुरुषों से युक्त होकर (तेजसा) तेज से, (वत्सम् इन्द्रम्) स्तुति योग्य इन्द्र को (अवर्धताम्) बढ़ावें और वे दोनों (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वीताम्) प्राप्त करें। (होतः) हे होत! विद्वन्! तू (यज) अधिकार प्रदान कर। वे दोनों उषाएं,

उषासानक्ता, उषा और रात्रि राज्य की दो शक्तियों की प्रतिनिधि हैं। एक विजयशालिनी और दूसरी राष्ट्र को शान्तिपूर्वक व्यवस्थित करने वाली। अथवा एक ज्ञान-विज्ञान की प्रवर्त्तक दूसरी संस्थापक।

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः। कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ७ ॥

अश्विनौ। जगती। निषादः ॥

भा०—(होता यक्षत्) अधिकारदाता विद्वान् योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। (दैव्या) विद्वान् और विजिगीषु पुरुषों में श्रेष्ठ (होतारौ) उत्तम सुख के देने वाले, (भिषजा) उत्तम रोग-चिकित्सकों के समान (सखायौ) मित्र होकर (हविषा) उत्तम अन्न आदि उपायों से (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (भिषज्यतः) शारीरिक और मानसिक तथा राष्ट्र सम्बन्धी रोगों और कष्टों से निवृत्त रखते हैं। वे (कवी) उत्तम दूरदर्शी (देवौ) स्वयं ज्ञान के प्रदाता, (प्रचेतसौ) उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम चित्तों वाले होकर (इन्द्रस्य) इन्द्र, राष्ट्रपति के (इन्द्रियम्) इन्द्रिय सामर्थ्य और ऐश्वर्ययुक्त पद को (धत्तः) रक्षा और पालन करते हैं वे भी (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वीताम्) प्राप्त करें। (होतः यज) हे विद्वन्! तू उनको अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः। इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ८ ॥

इन्द्रः। निचृज्जगती। निषादः ॥

भा०—(होता यक्षत्) होता, सर्वाधिकार देने वाला विद्वान् अधिकार प्रदान करे। शरीर में (त्रिधातवः) तीन धातुओं वाले (त्रयः) तीन (अपसः) सब कर्म करने वाले पदार्थ शरीर के लिये (भेषजम्) उत्तम रोगविनाशक होते हैं उसी प्रकार (तिस्रः देवीः) तीन विद्वानों की परिषदें

राष्ट्र के लिये (भेषजम्) उसके दोषों को दूर करने वाली औषध के समान हैं। वे (इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती, भारती, इन तीन नामों वाली (महीः) बड़े आदर योग्य हैं। वे तीनों (हविष्मतीः) विविध विज्ञानों से युक्त होकर, (इन्द्रपत्नीः) शरीर में तीन धातुएं जैसे जीव का पालन करती हैं उसी प्रकार ये भी राष्ट्र में 'इन्द्र' के पद की पालन करनेहारी, राजा के अधिकार की रक्षा करनेहारी होती हैं। वे तीनों भी (आज्यस्य व्यन्तु) समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्य को अपने अधीन करें। (होतः यज) हे विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर। ये तीन परिषदें राजसभा, विद्वत्सभा और धर्मसभा हैं।

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम्। पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ९ ॥

इन्द्रः। निचृदतिजगती । निषादः ॥

भा०—(त्वष्टारम्) शरीर में कान्ति के उत्पन्न करने वाले, (भिषजम्) रोग के निवारक, (सुयजम्) उत्तम पुष्टि बलदायक, (घृतश्रियम्) स्निग्ध शोभा को धारण करने वाले, (पुरुरूपम्) नाना रूपों में प्रकट, (सुरेतसम्) उत्तम वीर्य को जिस प्रकार मनुष्य सदा धारण करे उसी प्रकार (होता) सबको अधिकारपद प्रदान करने हारा 'होता' नामक विद्वान् (त्वष्टारम्) तेजस्वी, (इन्द्रम्) शत्रुनिवारक, (देवम्) दानशील, राष्ट्रनिरीक्षक, देख भाल करने में चतुर, (भिषजम्) त्रुटियों को दूर करने वाले, (सुयजम) उत्तम व्यवस्था करने में कुशल, (घृतश्रियम्) राज्यलक्ष्मी के धारण में समर्थ, (पुरुरूपम्) नाना प्रकार के पशु, मनुष्य, मृगादि के स्वामी, (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, (मघोनम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद के लिये (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। (त्वष्टा) वह तेजस्वी पुरुष (इन्द्रियाणि) इन्द्रोचित समस्त अधिकारों,

बलों, सामर्थ्यों को (वेतु) प्राप्त करे और (आज्यस्य) राष्ट्र की समृद्धि को भोगे। (होतर्यज) हे विद्वन्! तू उसको अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम्। मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥

स्वराडतिजगती । निषादः ॥

भा०—(होता) 'होता' योग्य अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान् पुरुष (वनस्पतिम्) किरणों के पालक सूर्यवत् तेजस्वी, वनों के समान धनी, बसी प्रजा के स्वामी, सेवन योग्य ऐश्वर्यों के स्वामी, महावृक्षवत् सबको आश्रय में ले कर सुख देने वाले, (शमितारम्) सबको शान्ति दाता, (शतक्रतुम्) सैकड़ों विद्वानों से युक्त (धियः) प्रज्ञा और कर्म के (जोष्टारम्) सेवन करने वाले (इन्द्रियम्) इन्द्र के पद के योग्य, पुरुष को भी (यक्षत्) पदाधिकार प्रदान करे। वह (मध्वा) मधुर ज्ञान से और (सुगेभिः) सुख से गमन करने योग्य, (पथिभिः) मार्गों, मर्यादाओं से (यज्ञम्) प्रजा पालक प्रजापति के राज्य को (सम् अंजन्) सुशोभित करता हुआ उसको (स्वदाति) सुख से भोगे। वह (मधुना) ज्ञानपूर्वक (घृतेन) तेज से (आज्यस्य) राज्यैश्वर्य को (वेतु) प्राप्त करे। (होतः) हे होतः! तू (यज) उसे अधिकार दे।

होता यक्षदिन्द्रꣳस्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳस्वाहा हव्यसूक्तीनाम्। स्वाहा देवाऽआज्यपा जुषाणाऽ इन्द्र ऽ आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११ ॥

निचृच्छक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकारप्रदाता पुरुष (इन्द्रं यक्षत्) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक वीर पुरुष को योग्य पद दे। वह (आज्यस्य स्वाहा) 'आज्य', राज्य, अथवा संग्रामोपयोगी अधिकार उत्तम रीति से

प्रदान करे। (मेदसः स्वाहा) स्नेहयुक्त अथवा हिंसा करने और राष्ट्र की वृद्धि करने वालों को उत्तम अधिकार दे। (स्तोकानां स्वाहा) छोटे-छोटे पदाधिकारियों पर उसका उत्तम अधिकार हो। (स्वाहाकृतीनां स्वाहा) उत्तम वचन बोलने वाले विद्वानों पर उसको अधिकार प्रदान करे। (हव्यसूक्तीनाम् स्वाहा) आदान योग्य, उत्तम स्तुति वचनों को स्वीकार करने का उत्तम रीति से अधिकार दे। (स्वाहा) उत्तम रीति से (आज्यपाः) राज्यैश्वर्य का पालक (देवाः) विद्वान् पुरुष और (इन्द्रः) राजा (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र को प्राप्त करें। (होतः यज) हे विद्वन् ! तू अधिकार दे।

देवं बर्हिरिन्द्रँ᳖ सुदेवं देवैर्वीरवत् स्तीर्णं वेद्यामवर्धयत्। वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतँ᳖ राया। बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज॥ १२॥

अश्विनावृषी। निचृदतिजगती। निषाद॥

भा०—(बर्हिः) इस लोकवासिनी प्रजाएं और वैश्यगण स्वयं (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त और (वेद्याम्) प्राप्त पृथिवी पर फैल कर (देवम्) दिव्य गुण वाले उत्तम दानशील, विजयी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, इन्द्र पद पर विराजमान, (सुदेवम्) उत्तम विद्वान्, तेजस्वी दाता पुरुष को (देवैः) अन्य विद्वानों और विजयी पुरुषों द्वारा (अवर्धयत्) बढ़ावें। जिस प्रकार जंगल के कुशादि तृण दिन के समय ऊपर से काट लेने पर रात्रि के शीतल समय में बढ़ जाते हैं उसी प्रकार (वस्तोः) दिन के प्रखर ताप के समान राजा के शत्रुओं के प्रति प्रचण्डता के युद्धादि के अवसरों पर (वृतम्) काट लिया जाकर भी (अक्तोः) रात्रि के समान शान्तिदायक राज्यव्यवस्था में (राया) धनैश्वर्य से (प्रभृतम्) खूब अच्छी प्रकार हृष्ट-पुष्ट होकर (बर्हिष्मतः) प्रजा के पालक अधिकारी राजाओं, भूपतियों से भी (अति अगात्) अधिक समृद्ध हो जाता है, ऐश्वर्य विभूति से उनको भी लांघ जाता है। तब (वसुवने) वह ऐश्वर्य वसु अर्थात् राष्ट्र के भोक्ता राजा के (वसुधेयाय) ऐश्वर्य रखने के स्थान कोष के लिये (वेतु) प्राप्त हो।

प्रजा की समृद्धि से प्राप्त ऐश्वर्य राष्ट्रवासी जनों के हित के लिये राष्ट्रकोष में जमा हो। (यज) हे होतः! तू ऐसी आज्ञा प्रदान कर।

देवीर्द्वारऽ इन्द्रꣳ सङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणꣳ रेणुकंकाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १३ ॥

भुरिक् शक्वरी। पंचमः ॥

भा०—(देवीः) जिस प्रकार पति की कामना करने वाली स्त्रियां (यामन्) उपयम अर्थात् विवाह के अवसर पर (इन्द्रम्) अपने इच्छा-नुकूल पति की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार विजय की कामना वाली, विजिगीषा से युक्त, (द्वारः) शत्रुओं का वारण करने वाली सेनाएं (संघाते वीडवीः) संघात अर्थात् परस्पर एकत्र होकर व्यवस्था द्वारा बलशालिनी होकर (यामन्) राज्य के नियम व्यवस्था के कार्य में (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को गृह द्वारों के समान बढ़ाती हैं। वे सेनाएं (वत्सेन) स्तुति योग्य, (तरुणेन) हृष्ट-पुष्ट, जवान, (कुमारेण) बुरी तरह शत्रुओं को मारने वाले या ब्रह्मचारी (मीवता) हिंसक, घातप्रतिघात में कुशल पुरुषों द्वारा शत्रुओं का (अर्वाणम्) तीव्र वेगवान् अश्व, और घुड़सवार सैन्य को (रेणुकाकाटम्) ऐसे वेग से कि उनकी उड़ी धूल से कूप आदि भी भर जायं (अप नुदन्ताम्) दूर करें। इस प्रकार विजय से प्राप्त (वसुवने) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले राजा के (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य कोष को वे और शत्रुवारक सेनाएं भी (व्यन्तु) भोग करें। (यज) हे होतः! ऐसी आज्ञा प्रदान कर।

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्। दैवीर्विशः प्रायासिष्टाꣳ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १४ ॥

विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(देवी) दिव्य गुणों वाली, व्यवहार और आनन्द विनोद करने वाली (उषासानक्ता) दिन रात्रिवत् प्रजाओं को उद्योग और विश्राम देने

वाली, सेना और प्रजाएं (इन्द्रम्) इन्द्र, राजा को भी (प्रयति यज्ञे) उत्तम रीति से सञ्चालित राज्य-कार्य में (अह्वेताम्) बुलावें। वे (दैवीः) राजा की (विशः) प्रजाओं को (प्र अयासिष्टाम्) उत्तम रीति से प्राप्त करें। उनको उद्योगों में लगाती रहें, वे दोनों (सुप्रीते) उत्तम रीति से प्रसन्न होकर (सुधिते) सुखपूर्वक हित करने वाली होकर (वसुवने) धन के विभाग कार्य में (वसुधेयस्य) राज्यकोष को (वीताम्) उपभोग करें। (यज) हे होतः ! उनको आज्ञा प्रदान कर।

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्धताम्। अयाव्यन्याघा द्वेषाᳪंस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १५ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(देवी) दिन और रात्रि दोनों जिस प्रकार सूर्य से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार राजा के प्रभाव से उत्तम गुणों को धारण करने वाले स्त्री पुरुष या दो संस्थाएं (जोष्ट्री) राष्ट्र की यथायोग्य सेवा करने वाली, (वसुधिती) बसने योग्य राष्ट्र और ऐश्वर्य को धारण करने वाली होकर (इन्द्रम्) राजा के बल ऐश्वर्य को (अवर्धताम्) बढ़ावें। (अन्या) दोनों में से एक (अघा) पापी, (द्वेषांसि) प्रजा को दुःख देने वाले, शत्रुओं को (अयावि) दूर हटावे। और (अन्या) दूसरी (वार्याणि) वरण योग्य (वसु) ऐश्वर्यों को (वक्षत्) धारण करे। और वे दोनों (शिक्षिते) सुशिक्षित (यजमानाय) दानशील (वसुवते) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) धन को (वीताम्) प्राप्त करें। (यंज) उनको अधिकार दे।

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्धताम्। इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिᳪं सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऽ ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १६ ॥

भुरिगाकृतिः । निषादः ॥

भा०—(सुदुघे पयसा) उत्तम रीति से दूध देनेवाली दो गौएं स्वामी या बछड़ों को पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार दो संस्थाएं (देवी) उत्तम अन्न आदि देने में समर्थ, (दुघे) समस्त राष्ट्र को पूर्ण करने वाली, (ऊर्जाहुती) अन्न देने वाली, (पयसा) पुष्टिकारक अन्न से (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र की (अवर्धताम्) वृद्धि करें। उन दोनों में से (अन्या) एक संस्था (ऊर्जम्) राष्ट्र के अन्न को धारण करे। और (अन्या) दूसरी (सग्धिम् सपीतिम्) सबके एक समान जल आदि पान के योग्य पदार्थों को (आवक्षत्) प्राप्त करावे। वे दोनों (नवेत) नये अन्न से (पूर्वम्) पूर्व विद्यमान अन्न की और (पुराणेन) पुराने गत वर्ष के अन्न से (नवम्) नये (ऊर्जम्) अन्न को (अधाताम्) सुरक्षित रक्खें! अर्थात् नया अन्न प्राप्त करके पुराने की भी इसलिये रक्षा करें कि पुराने अन्न को प्रयोग में लाकर उसको बीज रूप में क्षेत्रों में डलवा कर उससे नये अन्न को प्राप्त करें। इस प्रकार वे (ऊर्जम्) राष्ट्र को अन्न (दयमाने) प्रदान करती और रक्षा करती हुईं ही (ऊर्जाहुती) राष्ट्र को अन्न सम्पत् देने से 'ऊर्जाहुती' हैं। वे दोनों (ऊर्जयमाने) अन्न द्वारा बल वृद्धि करती हुईं (शिक्षिते) नाना विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करके (वार्याणि वसु) प्राप्त करने योग्य नाना उत्तम ऐश्वर्यों को (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता (यजमानाय) राजा के (वसुधेयस्य) धनैश्वर्य को (वीताम्) प्राप्त करें और उसकी रक्षा करें। (होतः यज) हे होतः! विद्वन्! तू उन दोनों संस्थाओं को अधिकार प्रदान कर।

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्र॑मवर्धताम् । ह॒ताघ॑शꣳसा॒वभा॑र्ष्टां वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒तौ व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ १७ ॥

भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा०—(देवौ) दो विद्वान् (दैव्या) विद्वानों और राजा के हितकारी, (होतारा) उत्तम सुखों और ऐश्वर्यों के देने वाले, (देवम्) विजिगीषु

(इन्द्रम) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक राजा को (अवर्धताम्) पुष्ट करें। वे दोनों (हताघशंसौ) पाप की शिक्षा देने वाले दुष्टों का नाश करके (वार्याणि) उत्तम (वसु) ऐश्वर्यों को (अभाष्ट्रीम्) प्राप्त करावें। वे दोनों (शिक्षितौ) शिक्षा प्राप्त करके, (यजमानाय वसुवने) दानशील राष्ट्र के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य की (वीताम्) रक्षा करें। (यज) हे होतः ! इनको अधिकार दे ।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन्। अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(देवीः) देवियां जैसे (पतिम्) पालक पति के वंश की वृद्धि करती हैं, उसी प्रकार (तिस्रः देवीः) दिव्य गुण वाली तीन संस्थाएं भी (पतिम् इन्द्रम्) अपने पति, इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा की (अवर्धयन्) वृद्धि करें। उनमें से एक (भारती) 'भारती' नामक संस्था है। (दिवम्) द्यौलोक को जैसे सूर्य रूप लाखों नक्षत्र जगमगा देते हैं उसी प्रकार 'भारती' परिषत् (दिवम् अस्पृक्षत्) विद्वान् पुरुषों की बनी 'दिव्' नाम सर्वोच्च राजसभा को संयोजित करती है। और (सरस्वती) सरस्वती नाम विद्वत्सभा (रुद्रैः) दुष्टों के रुलाने बलवान्, ज्ञानोपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों से (यज्ञम् अस्पृक्षत्) व्यवस्थित राष्ट्र का प्रबन्ध करती है और तीसरी (इडा) 'इडा' (वसुमती) वसु, राष्ट्रवासियों को धारण करने वाली जनपदसभा या लोकसभा, प्रजासभा, (गृहान्) गृहों गृहस्थ नागरिकों का प्रबन्ध करती है। (वसुवने) राजा के (वसुधेस्य) राजा के (वसुधेयस्य व्यन्तु) राष्ट्रजन की ये तीनों संस्थाएं वृद्धि या रक्षा करें। हे होतः ! (यज) तू तीनों सभाओं की योजना कर। भारती राजसभा है जो शासक पुरुषों के निमित्त उपद्रवकारी दुष्टों के दमन के उपायों का विचार करती है। दूसरी सरस्वती विद्वत्सभा है जो ज्ञान वृद्धि करती हैं और

तीसरी 'इडा' है जो गृहों जनपदवासियों नागरिकों की व्यवस्था करती है।

देवऽइन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत्। शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

कृतिः। निषादः ॥

भा०—(देवः) विजिगीषु, तेजस्वी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नराशंसः) समस्त नेता पुरुषों द्वारा प्रशंसा योग्य होकर (त्रिवरूथः) तीनों सभारूप गृहों का स्वामी, (त्रिबन्धुरः) तीनों के नियमों को बांधने वाला होकर (देवः) गुणवान्, उदार, दानशील, तेजस्वी, (इन्द्रम्) इन्द्र पद की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। वह स्वयं (शितिपृष्ठानाम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाले, तीव्र बुद्धि वाले या श्यामवर्ण की पीठ वाले, पीठ भाग पर श्याम, काले गौन पहने (शतेन) सौ और (सहस्रेण) हज़ार अर्थात् बहुत सरदारों से (आहितः) घिरा रहकर, उनके सहयोग में (प्रवर्त्तते) राज्य करता है। (मित्रावरुणा) 'मित्र' सर्वस्नेही, न्यायाधीश और 'वरुण' दुष्टों का वारक पुलिस विभाग का अध्यक्ष, दोनों को शरीर में प्राण, अपान के समान (होत्रम् अर्हतः) अधिकार प्राप्त करके कार्य सम्पादन करना चाहिये, (बृहस्पतिः) बृहती वेद वाणी का पालक विद्वान् पुरुष (स्तोत्रम्) ज्ञानोपदेश का कार्य कर और (आध्वर्यवम्) हिंसारहित मित्र पद या राज्य शासक के कार्य को (अश्विनौ) विद्वान् स्त्री पुरुष, (अर्हतः) योग्य सम्पादन करें। वह इन्द्र (वसुवने) राष्ट्र कार्य के प्राप्त करने हारे इन्द्र पद के (वसुधेयस्य) धन को (वेतु) भोग करे, रक्षा करे। (यज) हे होतः! तू उनको अधिकार प्रदान कर।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृꣳहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥

निचृदतिशक्करी । पंचमः ॥

भा०—(देवः) ज्ञानद्रष्टा, विजयशील, सुखप्रद विद्वान् (वनस्पतिः) सेवन योग्य पदाधिकारों व ऐश्वर्यों का स्वामी, (हिरण्यपर्णः) सुवर्ण के समान तेजोयुक्त पत्रों वाले महावृक्ष के समान तेज, यश और पराक्रमयुक्त पालन सामर्थ्यों और ज्ञानों से युक्त, (मधुशाखः) मधुर, मनोहर शाखाओं के समान ब्रह्म ज्ञानमय वेद-शाखाओं से युक्त, (सुपिप्पलः) उत्तम ज्ञानमय फलों से भरा हुआ, विद्वान् पुरुष (देवम् इन्द्रम्) सर्वोत्तम ऐश्वर्यवान् राजा के पद की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। महावृक्ष जैसे (अग्रेण) चोटी से आकाश को छूता है, वैसे (अग्रेण) मुख्य पद से, (दिवम्) प्रकाशमय सूर्यवत् ज्ञान को (अस्पृक्षत्) धारण करता है और मध्य और चरणभाग से (अन्तरिक्षम् पृथिवीम्) अन्तरिक्ष और पृथिवी अर्थात् रक्षक शासकों और प्रजाजनों को भी मध्यमवृत्ति और विनयवृत्ति से (अदंहीत्) बढ़ाता है। वह (वसुवने) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के (वसुधेयस्य) राष्ट्रैश्वर्य की (वेतु) रक्षा करे। (यज) हे होतः! तू ऐसे विद्वान् पुरुष को अधिकार दे।

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्वासस्थमिन्द्रेणासन्न-
मन्या बर्हीᳪष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बर्हिः) अन्तरिक्ष, वायु जैसे (वारितीनाम्) जलों के स्थान मेघों के बीच में (इन्द्रम् देवम् अवर्धयत्) प्रकाशमय विद्युत् को बढ़ाता है, वैसे (देवं बर्हिः) दानशील प्रजागण, राष्ट्र, (वारितीनाम्) शत्रुओं को वारण करने वाली सेनाओं के बीच स्थित (इन्द्रम् देवम्) शत्रुनाशक राजा की वृद्धि करते हैं। वह अन्तरिक्ष के समान शक्तिसम्पन्न, मुख्य प्रजा या दानशील पुरुष (स्वासस्थम्) उत्तम रीति से राष्ट्र में स्थित (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा के द्वारा (आसन्नम्) अति समीप होकर उस

द्वारा (अन्या बर्हींषि) अन्य प्रजाओं को भी (अभि अभूत्) अपने अधीन कर लेती हैं। वह मुख्य प्रजाजन भी (वसुवने) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के (वसुधेयस्य) कोष योग्य धन की रक्षा करें। हे होतः! तू उनको भी (यज) अधिकार प्रदान कर।

दे॒वोऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्रं॑मवर्धयत् । स्वि॑ष्टं कु॒र्वन्त्स्वि॑ष्ट॒कृत् स्वि॑ष्टम॒द्य क॑रोतु नो वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वे॒तु यज॑ ॥ २२ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अग्निः देवः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी विद्वान् पुरुष (स्विष्टकृत्) उत्तम यज्ञों का परिमित कार्यों का कर्त्ता भी (देवम् इन्द्रम् अवर्धयत्) देव, 'इन्द्र', राजा व राज्य की वृद्धि करता है। वह(स्विष्टम्) शुभ इष्ट कार्यों का सम्पादन (कुर्वन्) करता हुआ ही (स्विष्टकृत्) 'स्विष्टकृत्' उत्तम काम करने वाला है। वह (नः) हम प्रजाजनों का भी (अद्य) आज (सु-इष्टं करोतु) वांच्छित कार्यों को करे।

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पुरो॒डाशं॑ ब॒ध्नन्निन्द्रा॑य॒ छाग॑म् । सू॒प॒स्थाऽअ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभव॒दिन्द्रा॑य॒ छाग॑न । अघ॑त्तं मे॑द॒स्तः प्रति॑ पच॒ताग्र॑भी॒दवी॑वृधत्पु॒रो॒डाशे॑न त्वाम॒द्यऽऋ॑षे ॥ २३ ॥

कृतिः । निषादः ॥

भा०—यजमान विद्वान् पुरुष को अपना होता वरण करता है उसी प्रकार (अयं यजमानः) दानशील राष्ट्रवासी जन भी (अग्निम्) ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष को (होतारम्) पूर्वोक्त सर्वाधिकार के दाता पद पर (अद्य) आज (अवृणीत) वरण करता है। और वह (पक्तीः) पाक करने योग्य पदार्थों और कार्यों को (पचन्) परिपक्क करता हुआ, अर्थात् जिन कार्यों में बाद में पारिश्रमिक प्राप्त हो उनके (पचन्) फलरूप से पारिश्रमिक निर्धारित करता हुआ, अथवा (पक्तीः) परिपक्क ज्ञान वाली संस्थाओं को

(पचन्) परिपक्क, दृढ़ करता हुआ और (पुरोडाशं पचन्) इसी प्रकार कार्यारम्भ में (पुरोडाशम्) पूर्व ही देने योग्य धन को भी (पचन्) परिपक्क अर्थात् निश्चित करता हुआ, और (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद या राष्ट्र रक्षार्थ शत्रुओं को काटने वाले पुरुष या सैन्यबल और सेनापति को (बध्नन्) वेतन पर बांध कर, नियत करता हुआ (अग्निम् होतारम् अवृणीत) विद्वान् 'होता' नामक पुरुष का वरण करे। (इन्द्राय छागेन) ऐश्वर्यमय राष्ट्र रक्षा के लिये, शत्रु के छेदक सैन्यबल के द्वारा (वनस्पतिः देवः) वनस्पतियों में श्रेष्ठ महावृक्ष के समान सर्वाश्रय राजा, (अद्य) आज (सु-उपस्थाः) प्रजा द्वारा सुख वा उपासना, आश्रय प्राप्त करने योग्य है। हे (ऋषे) मन्त्रद्रष्टः ! विद्वन् ! होतः ! (मेदस्तः) स्नेह से या सार पदार्थ को स्वीकार करके अथवा नाश योग्य शत्रु से रक्षा करके (तम्) उस राष्ट्र को वह पूर्वोक्त राजा (अघत्) भोजन के समान उपयोग करे। हे (ऋषे) विद्वन् ! सर्वद्रष्टः ! (पचता) परिपाक योग्य, श्रम के एवज में प्रदान करने योग्य फलरूप पदार्थों को भी वह (प्रति अग्रभीत्) तुझे प्रदान करे। और (पुरोडाशेन) पुरोडाश अर्थात् प्रारम्भ में श्रद्धा और प्रेम से भी देने योग्य पदार्थों द्वारा (त्वाम् अवीवृधत्) तेरी वृद्धि करे। इसी के समान देखिये अ० २१। मन्त्र ५९-६१॥

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्दऽइन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २४ ॥

स्वराड् जगती। निषादः॥

भा०—(होता) अधिकार देने वाला विद्वान् (सम् इधानम्) स्वयं अच्छी प्रकार प्रकाशमान, (महत् यशः) बड़े यश से (सुसमिद्धम्) उत्तम गुणों से विख्यात, (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, (अग्निम्) ज्ञानवान् (वयोधसम्) दीर्घ जीवन, बल, ब्रह्मचर्य को धारण करने और कराने

वाले, (इन्द्रम्) दुष्ट वासनाओं को दूर करने वाले आचार्य अर्थात् २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य और पुरुष को (यक्षत्) उच्च अधिकार प्रदान करे और वह (गायत्रीं छन्दः) गायत्री छन्द, (इन्द्रियम्) इन्द्रोचित आत्मबल व ऐश्वर्य अथवा उत्तम इन्द्रियों में बल, और (त्र्यविम्) मन, वाणी और देह तीनों की रक्षा करने वाली साधना को, (गाम्) वाणी को और (वयः) वीर्य और दीर्घजीवन को राष्ट्र में (दधत्) धारण करावे। और (आज्यस्य वेतु,) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करे। (होतः यज) हे होतः ! विद्वन् ! तू योग्य पुरुष को यह अधिकार प्रदान कर। अर्थात् राज्य में विद्वान् आचार्यों की स्थापना की जाय। वे गुरुमन्त्र का उपदेश करें। २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन करावें, लोगों में दीर्घजीवन का साधन करें।

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम्। उष्णिहं छन्दऽइन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २५ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकारदाता विद्वान् (तनूनपातम्) शरीरों के न गिरने देने वाले, शरीरों के रक्षक, (उद्भिदम) ज्ञान के तत्वों को खोल-खोल कर बतलाने वाले, (यम्) जिस बीज को (अदितिः) पृथिवी (गर्भम् दधे) गर्भ में धारण करती है और वह बीज ऊपर की तह को तोड़ कर अंकुर रूप में उत्पन्न होता है उसी प्रकार (अदितिः) माता के समान अखण्ड राजशक्ति (यम्) जिसको अपने (गर्भम्) गर्भ में (दधे) धारण करती है ऐसे (उद्भिदम्) वृक्ष की तरह से बढ़े हुए, स्थिर, आश्रय वृक्ष के समान, (शुचिम्) अति शुद्ध चरित्रवान्, (वयोधसम्) बल, आयु के धारक और वर्धक (इन्द्रम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) आदरपूर्वक उत्तम पद से युक्त करे। इस प्रकार वह (उष्णिहं छन्दः) राष्ट्र में उष्णिक् छन्द के समान २८ वर्ष गुरु के अधीन ब्रह्मचर्य, (इन्द्रियम्) शारीरिक बल, (दित्यवाहं गाम्) दित्यवाड् रथवाही बैल

के समान (वयः) बल वीर्य को राज्य में (दधत्) धारण करावें। उक्त विद्वान् (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि करे। (होतः यज) हे विद्वन् ! तू उसको योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् । अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २६ ॥

निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार दाता विद्वान् (ईडेन्यम्) स्तुति करने योग्य, (वृत्रहन्तम्) मेघ या अन्धकार को छिन्न-भिन्न करने वाले सूर्य के समान अज्ञान और बाधक कारणों को दूर करने वालों में सबसे श्रेष्ठ, (इडाभिः ईड्यम्) उत्तम वाणियों से प्रशंसा के योग्य (सहः) बल के कारण (सोमम्) सोम, चन्द्र के समान आह्लादक, (इन्द्रम्) वायुवत् बलवान्, विद्वान् (वयोधसम्) दीर्घायु पुरुष को (यक्षत्) स्थापित करे। (आनुष्टुभं छन्दः) अनुष्टुप् छन्द के समान, ३२ वर्ष के ब्रह्मचर्य पूर्वक (इन्द्रियम्) शरीर के भीतर, इन्द्रिय, वीर्य और (पञ्चाविं गाम्) ढाई वर्ष के बैल के समान (वयः) बल को (दधत्) राष्ट्र में धारण करावे। वह विद्वान् (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र ऐश्वर्य की वृद्धि करे। (होतः यज) हे विद्वन् ! तू उसे पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् । बृहतीं छन्दऽइन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २७ ॥

स्वराडतिजगती । निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकार देने वाला विद्वान् (सुबर्हिषम्) उत्तम प्रजा से युक्त, (पूषण्वन्तम्) अच्छे पोशाक अन्न और भूमि से युक्त, (अमर्त्यम्) अन्य पुरुषों से कहीं अधिक, (बर्हिषि) आसन पर (सीद-

न्तम्) बैठे हुए के समान (बर्हिषि सीदन्तम्) महान् राष्ट्र पर शासक रूप से विराजमान, (प्रिये) प्रिय, तृप्ति कर (अमृते) अन्न और वीर्य और जल के आश्रय पर (वयोधसम्) बल, दीर्घ आयु को धारण करने वाले (इन्द्रम्) विद्वान् पुरुष को (यक्षत्) उत्तम पद पर स्थापित करे। (बृहती छन्दः इन्द्रियम्) बृहती छन्द के समान ३६ वर्ष का इन्द्रियदमन, ब्रह्मचर्य पालन और (त्रिवत्सं गां वयः) तीन वर्ष के बैल के समान बल (दधत्) धारण करावे। वह (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करे। और (होतः यज) हे विद्वन्! तू उस योग्य पुरुष को पद प्रदान कर।

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणाऽऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्। पङ्क्तिं छन्दऽइहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥ २८॥

स्वराट् शक्करी। धैवतः॥

भा०—(होता) पदाधिकारप्रदाता विद्वान् (व्यचस्वतीः) विशेष रूप से और विविध प्रकारों से गमन करने और फैलाने वाली, (सु-प्र-अयनाः) उत्तम और अच्छे पदों और अधिकारों पर स्थित, (ऋता-वृधः) बल, राष्ट्र और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली (देवीः) विजयशील, रक्षाकारिणी, (हिरण्ययीः) लोह के आयुधों से तेजोयुक्त, (द्वारः) युद्ध में वेग से धावन करने, प्रवल वेग से आक्रमण करने और शत्रु का वारण करने वाली सेनाओं को राष्ट्ररूप विशाल भवन में (व्यचस्वतीः) विविध मार्गों से लोगों के प्रवेश निर्गम के अवकाश वाली (सुप्रायणः) सुख से गुजरने योग्य, (ऋतावृधः) ऐश्वर्यवर्धक, (हिरण्ययीः) सुवर्ण, लोहादि से भूषित, महाद्वारों के समान (यक्षत्) राष्ट्र में सुसंगत करे और (वयोधसम्) बलधारी (ब्रह्माणम्) महान् राष्ट्र के पोषक, विद्वान्, बलवान् (इन्द्रम्) सेनापति को (यक्षत्) नियुक्त करे। (इह) इस निमित्त (पंक्ति छन्दः इन्द्रियम्) पंक्ति छन्द के समान ४० अक्षरों के तुल्य ४० वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य को और (तुर्यवाहं गां वयः) ४ वर्ष के वृषभ के समान बल को भी (दधत्)

धारण करावे। वे वीर सेना और शक्तिशाली सेनापति सब (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र-ऐश्वर्य की रक्षा और भोग करें। (होतः यज) हे विद्वन्! तू उनको योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहतीऽउभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्। त्रिष्टुभं छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

निचृदति शक्वरी। पंचमः ॥

भा०—(होता) अधिकार प्रदान करने वाला पुरुष (सुपेशसा) शुभ, उत्तम स्वरूप वाली, (सुशिल्पे) उत्तम शिल्प वाली, (उभे) दोनों (नक्तोषासा न) दिन और रात्रि के समान (दर्शते) दर्शनीय, पूर्वोक्त दोनों संस्थाओं को और (विश्वम्) समस्त (वयोधसम्) बल और आयु वाले सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) अधिकार दे। (इह) इस कार्य में (त्रिष्टुभं छन्दः इन्द्रियम्) त्रिष्टुप् छन्द के ४४ अक्षरों के समान ४४ वर्षों के अध्यक्ष वीर्य पालन या ब्रह्मचर्य और (पष्ठवाहं गाम् वयः) पीठ से बोझा उठाने वाले बैल के समान बल, उमर को (दधत्) धारण करावें। वे दोनों संस्थाएं और उनका पालक इन्द्र (आज्यस्य वीताम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य का पालन, वृद्धि और उपभोग करें। (होतः यज) हे विद्वन्! तू अधिकार दे।

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्। जगतीं छन्दऽइन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

भुरिक शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(होता) अधिकार के देने वाला विद्वान् (प्रचेतसा) उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान वाले, (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों में (उत्तमम्) सबसे ऊंचे (यशः) यश, वीर्य, परम ज्ञान (होतारौ) प्राप्त करने वाले, (दैव्या) सर्व विद्वानों में श्रेष्ठ, (कवी) दूर तक देखने वाले दीर्घदर्शी (सयुजौ)

परस्पर सहयोग से विचार करने हारे दो विद्वान् और (वयोधसम् इन्द्रम्) राष्ट्र के बल को धारण करने वाले तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) योग्य पद पर संगत करें। (जगतीं छन्दः इन्द्रियम्) जगती छन्द के ४८ अक्षरों के समान अक्षय इन्द्रिय के बल वीर्य, ब्रह्मचर्य और (अनड्वाहं गां वयः) शकट या बोझा उठाने में समर्थ बैल के समान बल को (दधत्) धारण करावे। वे दोनों (आज्यस्य वीताम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि, पालन और भोग करें। (होतः यज) हे विद्वन् ! तू उनको अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम्। विराजं छन्द ऽइहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

सरस्वती ऋषिः। तिस्रो देव्यः वाग्यः देवताः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(होता) 'होता' विद्वान् (पेशस्वतीः देवीः) रूपवती स्त्रियों को (वयोधसम् पतिम्) पूर्ण अवस्था को प्राप्त पति को (यक्षत्) प्राप्त कराता है, उसी प्रकार (हिरण्ययीः) हित और रमणीय गुणों को धारण करने वाली (तिस्रः) तीन (बृहतीः) बड़ी-बड़ी (महीः) अति आदर योग्य (भारतीः) ज्ञान, दीप्ति और क्रियाओं में कुशल (देवीः) विद्वानों की संस्थाओं को (वयोधसम्) बल और ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य के स्वयं धारण करने और राष्ट्र में धारण कराने में समर्थ (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को (पतिम्) उनके पालक, पति, प्रधान पद के भोक्ता रूप से (यक्षत्) सुसंगत करे। वह पालक राजा (इह) इस राष्ट्र में (विराजं छन्दः) विराट् छन्द के ४० अक्षरों के छन्द के समान विविध पदार्थों के प्रकाशक और बलकारी ४० वर्ष ब्रह्मचर्य व्रतपालन, (गाम्) पृथिवी को (इन्द्रियम्) राष्ट्र के बल वीर्य और (धेनुं गां न वयः) दुधार गाय के समान जान कर अन्न, बल को (दधत्) धारण करावे। वे सब

(आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा और वृद्धि प्राप्ति करें। (होतः) हे विद्वन् ! (यज) इनको अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

इन्द्रः। भुरिक शक्करी। धैवतः॥

भा०—(होता) 'होता' योग्याधिकार देनेवाला विद्वान् (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, उत्पादक बल से सम्पन्न, (त्वष्टारम्) कान्तिमान्, तेजस्वी, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टिकारक अन्नादि सम्पत्ति के वर्धक (रूपाणि विभ्रतम्) नाना प्रकार के पशुओं को पालन-पोषण करने वाले, (वयोधसम्) पूर्ण दीर्घायु को धारण करने वाले, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पृथक्) पृथक्-पृथक् अलग-अलग नाना प्रकार की (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त समृद्धि (यक्षत्) धारण करावे। वह राष्ट्र में (द्विपदं छन्दः) द्विपदा गायत्री के २० अक्षरों के समान २० वर्षों तक (इन्द्रियम्) इन्द्रिय-संयम का पालन करावे। और (उक्षाणं गां न वयः) वीर्यसेचन में समर्थ बैल के समान बल वीर्य को (दधत्) धारण करे। और (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य या वीर्य की रक्षा करे। (होतः यज) हे विद्वन् ! ऐसे उत्तम पुरुष को योग्य अधिकार प्रदान कर।

अर्थात् धन, धान्य, सम्पत्ति, भूमि आदि का पृथक् अधिकार बालिग होने पर दिया जाय और वह अधिकार पुरुष को (द्विपदः छन्दः) द्विपद् छन्द अर्थात् १२ + ८ = २० वर्ष के बाद प्राप्त हो। वह ब्रह्मचारी, सदाचारी और कमाऊ हो, नपुंसक, निर्बल और अल्पायु न हो।

होता। यक्षद्वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं हिरण्यपर्णमुक्थिनं रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

इन्द्रो देवता। निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(होता) योग्याधिकारप्रदाता विद्वान् पुरुष (वनस्पतिम्) महावृक्ष के. समान सबको आश्रय देने में समर्थ, वन-पालक के समान नाना भोग्य पदार्थों या जनों के पालक, (शमितारम्) शान्तिदायक, (शतक्रतुम्) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्म-सामर्थ्यों से युक्त, (हिरण्यपर्णम्) सुवर्ण आदि ऐश्वर्य से सबके पालन करने वाले, अथवा अति सुन्दर ज्ञान से युक्त, (उक्थिनम्) वेदोक्त गुरु-उपदेश को धारण करने वाले (रशनाम्) राष्ट्र के, समाज के और अपने शरीर की इन्द्रियों पर दमन एवं संयत वाणी को (बिभ्रतम्) धारण करने वाले, लंगोटबन्द मेखलाधारी, जितेन्द्रिय, विद्वान् (वशिम्) पूर्ण वशी, (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (वयोधसम्) बल, वीर्य और दीर्घायु के धारण करने वाले (इन्द्रम्) श्रेष्ठ पुरुष को (यक्षत्) योग्य 'वनस्पति' नामक अधिकार पद प्रदान करे। (इह) इस कार्य में वह (ककुभं छन्दः) ककुप् छन्द के (८+१२+८) २८ अक्षरों के समान २८ वर्ष का (इन्द्रियम्) इन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचर्य और (वेहतं गाम् इव) गर्भघातिनी गौ व (वशाम्) वशा, बांझ गौ के समान (वयः) बल (दधत्) धारण करे। जिस प्रकार 'वशा' वंध्या गाय विक्षत नहीं होती और गर्भ धारण नहीं करती, इसी प्रकार वह 'वनस्पति' नामक पदाधिकारी भी सबको वश करे और अक्षत शक्तिमान् बना रहे। जिस प्रकार गर्भघातिनी गौ गर्भ में आये बीज का नाश करती है उसी प्रकार पृथ्वी पर नाना भोक्ता राजाओं के आ जाने पर भी और राष्ट्र में विरोधी तत्व की जड़ न जमने दे और उनके प्रभाव को न रहने दे, प्रत्युत राष्ट्र को भी भरा-पूरा ही बनाये रक्खे। ऐसे पुरुष को 'वनस्पति' पद पर नियुक्त करे। इसी प्रकार सेनापति भी ऐसा हो जो वशा के समान अन्यों को जमने न दे और शत्रु-राजाओं को स्थिर न रहने दे। प्रत्युत गर्भघातिनी गौ के समान उनको गर्भ में ही नाश कर दे। (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के युद्धोपयोगी बल, वीर्य ऐश्वर्य की रक्षा, वृद्धि करे। (होतः यज) हे विद्वन् होतः! ऐसे पुरुष को तू उक्त अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिच्छन्दसं छन्द ऽइन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

अग्निः। अतिशक्करी। पंचमः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकारप्रदाता विद्वान् पुरुष (स्वाहा-कृतीः) उत्तम ज्ञान, वाणियों के उपदेश करने वाली संस्थाओं को (यक्षत्) योग्य अधिकार दे और (अग्निम्) ज्ञानवान्, तेजस्वी (गृहपतिम्) गृह के पालक (वरुणम्) सर्व दोषों के वारण करने में समर्थ श्रेष्ठ पुरुष को (कविम्) क्रान्तदर्शी, विद्वान् (भेषजम्) रोगचिकित्सा में कुशल वैद्य और (क्षत्रम्) बल, वीर्य से सम्पन्न राज्यकर्त्ता क्षत्रिय, (वसोधसम्) दीर्घायु, बल, वीर्य, अन्न के धारक (इन्द्रम्) राजा को (पृथक्) पृथक्-पृथक् नाना पदों पर (यक्षत्) नियुक्त करे। इन पदों पुरुषों में (अतिच्छन्दसं छन्दः इन्द्रियम्) क्रम से 'अति' शब्द से युक्त अतिधृति, अत्यष्टि, अतिशक्करी और अतिजगती इन चार छन्दों के क्रम से ७६, ६८, ६० और ४८ अक्षरों के समान इतने-इतने वर्षों का (बृहत् इन्द्रियं) विशाल ब्रह्मचर्यपालन, विद्याभ्यास व अनुभव और (ऋषभं गाम्) ऋषभ बैल के समान सर्वश्रेष्ठ पद को (दधत्) धारण करे। वे ही लोग (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ज्ञान ऐश्वर्य की वृद्धि और पालन करें। (होतः यज) हे विद्वन्! उन योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्धयत्। गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ३५ ॥

इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(देवम्) दिव्य गुण वाला (बर्हिः) आकाश (इन्द्रम् देवम्) प्रकाशमान सूर्य को, उसके सामर्थ्य की (अवर्धयत्) वृद्धि करता, उसके तेज को फैलने देता है और वही प्रकाश, (इन्द्रे) जीवन में (चक्षुः इन्द्रियं वयः दधत्) चक्षु नामक तेजोमय इन्द्रिय को बल धारण कराता है, उसी

प्रकार (देवम् बर्हिः) दानशील, करप्रद प्रजा (वयोधसम्) बल और ऐश्वर्य के धारण करने वाले (देवम् इन्द्रम्) तेजस्वी राजा की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। वह प्रजागण, (गायत्र्या छन्दसा) गायत्री छन्द अर्थात् २४ वर्ष के व्रतपालक ब्राह्मणरूप बल से (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (चक्षुः इन्द्रियम्) आंख के समान देखने वाली शक्ति और (वयः दधत्) बल को धारण करावे। वह प्रजारूप गायत्री (वसुवने) ऐश्वर्यवान् राजा के (वसुधेयस्य) ऐश्वर्यों का (वसु) पालन करे। हे होतः ! (यज) तू उसको यह अधिकार प्रदान कर।

देवीर्द्वारो॑ वयो॒धस॒ꣳ शुचि॒मिन्द्र॑मवर्धयन् । उ॒ष्णिहा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं प्रा॒णमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥३६॥

इन्द्रः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(देवीः द्वारः) उत्तम प्रकाश से युक्त बड़े-बड़े द्वार जिस प्रकार (वयोधसम्) दीर्घ जीवन प्रदान करनेवाली (शुचिम्) शुद्ध (इन्द्रम्) वायु को (अवर्धयन्) गृह में बढ़ा देते हैं और वह वायु (उष्णिहा छन्दसा) अंग-प्रत्यंग में व्यापक स्निग्ध पदार्थ के बल से युक्त होकर (इन्द्रियम्) जीव के हितकारी (प्राणम्) प्राण वायु को (इन्द्रे) जीव में (वयः दधत्) दीर्घ जीवन और बलरूप से धारण कराता है उसी प्रकार (देवीः) विजयशील (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनाएं (वयोधसम्) शक्तिशाली (शुचिम्) निष्कपट (इन्द्रम्) सेनापति और राजा के बल को (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं और वह (उष्णिहा छन्दसा) अति अधिक स्नेह से युक्त छन्द अर्थात् २८ वर्ष के व्रतपालन से प्राप्त रक्षा-सामर्थ्य से (प्राणम् इन्द्रियम्) प्राण के समान इन्द्र पद के उचित ऐश्वर्य और बल को (इन्द्रे दधत्) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में धारण कराता है। अतः हे होतः विद्वन् ! (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) राज्य-कोष को ये सेनाएं भी (व्यन्तु) पालन, वृद्धि और उपभोग करें (यज) उनको तू यह अधिकार प्रदान कर।

दे॒वी उ॒षासा॒नक्ता॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । अनु॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं बल॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वी॒तां यज॑ ॥ ३७ ॥

इन्द्रः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(देवी) जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री (देवम्) योग्य प्रिय पति को बढ़ाती है और जिस प्रकार (देवी) प्रकाशयुक्त (उषासानक्ता) दिन और रात्रि दोनों (इन्द्रम् अवर्धताम्) सूर्य के महिमा और बल की वृद्धि करते हैं। उसी प्रकार विजय कामना से युक्त, तेज से शत्रुओं को दाह या संताप देनेवाली 'उषा' नामक संस्था और अव्यक्त रूप से व्यवस्था करने वाली 'नक्त' नामक राजसंस्था दोनों (वयोधसम्) बलधारी (इन्द्रम् अवर्धताम्) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र के बल की वृद्धि करें। वह राजा (इन्द्रे) समृद्ध राज्य में (अनुष्टुभा) प्रजा के अनुकूल राजा और राजा के अनुकूल प्रजा के परस्पर प्रशंसा और गुण स्तुतियुक्त (छन्दसा) छन्द अर्थात् ३२ वर्ष के व्रतपालन से प्राप्त परस्पर रक्षा व्यापार से (इन्द्रियं बलं दधत्) राजोचित उत्तम बल को धारण करता है। हे होतः विद्वन् ! (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) उक्त दोनों संस्थाएं भी ऐश्वर्यभोक्ता राजा के कोश की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। (यज) तू उसको अधिकार प्रदान कर।

दे॒वी जोष्ट्री॒ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्धताम् । बृ॒ह॒त्या छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ श्रोत्र॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वी॒तां यज॑ ॥ ३८ ॥

इन्द्रः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(देवी देवम्) प्रियतमा स्त्री अपनी इच्छानुकूल प्रिय पुरुष को सन्तानादि से बढ़ाती है और (देवी जोष्ट्री) उत्तम व्यवहार वाली, प्रेम करने वाली (वसुधिती) ऐश्वर्य को धारण करने वाले नरनारी (देवम्) कामना योग्य (वयोधसम्) दीर्घ जीवन और बलप्रद (इन्द्रम्) शुभ

सन्तान को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (देवी) उत्तम तेजोयुक्त (जोष्ट्री) परस्पर प्रेमयुक्त विद्या संस्थाएं (वसुधिती) राष्ट्र में बसने वाले लोकों को धारण करने में समर्थ होकर (वयोधसम्) दीर्घजीवी (देवम् इन्द्रम्) विद्वान् राजा को (अवर्धताम्) बढ़ावें और वह (बृहत्या छन्दसा) बृहती छन्द अर्थात् बड़ी भारी वेदवाणी के बल से (श्रोत्रम् इन्द्रियम्) शरीर में श्रवण इन्द्रिय के समान (श्रोत्रम् वयः दधत्) श्रवण योग्य ज्ञानरूप बल को धारण कराता है। (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) राजा के राज्यकोष की वे दोनों संस्थाएं भी वृद्धि और पालन करें। हे विद्वन्! (यज) तू उनको अधिकार प्रदान कर।

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३६ ॥

इन्द्रः। निचृत् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—(देवी देवम्) पति के अनुकूल रहने वाली उत्तम स्त्री अभिलाषा के योग्य पुरुष को प्रेम और मान से बढ़ाती है और (सुदुघे) उत्तम दूध देने वाली दो गौएं जिस प्रकार (पयसा) दूध से (वयोधसम्) अन्न देने वाले स्वामी को बढ़ाती हैं और (ऊर्जाहुती) अन्न और जल को प्रदान करने वाली द्यौ और पृथिवी दोनों (पयसा) अन्न और जल द्वारा (दुघे) समस्त मनोरथों की पूरक होकर (इन्द्रम्) जीव, प्राण को (अवर्धताम्) बढ़ाती हैं उसी प्रकार (ऊर्जाहुती) उत्तम जल और अन्न को प्रदान करने वाली (देवी) विद्वानों की दो संस्थाएं (दुघे) सब कार्यों को पूर्ण करने वाली (सुदुघे) उत्तम पदार्थों को देने वाली होकर (पयसा) अन्न और जल से (वयोधसं देवम्) दीर्घजीवन-धारी उत्तम राष्ट्र की (अवर्धताम्) वृद्धि करें। (पंक्त्या छन्दसा शुक्रम् इन्द्रियम्) जिस प्रकार अन्न की परिपाक क्रिया से मनुष्य 'शुक्र' वीर्य को बल रूप से और (वयः) दीर्घ

जीवन (दधत्) धारण करता है उसी प्रकार (पङ्क्त्या छन्दसा) पंक्ति छन्द या अन्न के परिपक्व होने की क्रिया से (शुक्रम्) शुद्ध, वीर्य के जनक (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य बलकारी (वयः) अन्न को (इन्द्रे) राष्ट्र में (दधत्) धारण करावे । (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) धनभोक्ता राजा के ऐश्वर्य को वे दोनों संस्थाएं भी पालन और उपभोग करें । हे होतः ! (यज) उनको तू अधिकार प्रदान कर ।

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्धताम् । त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ४० ॥

इन्द्रः । अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(देवौ देवम्) विद्वान् माता-पिता उत्तम गुणवान् पुत्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (दैव्या होतारा) विद्वानों में उत्तम विद्वान् (देवौ) कार्य-व्यवहार में कुशल (होतारौ) योग्य पदाधिकारों या ज्ञानों के देनेहारे पुरुष (देवम् इन्द्रं वयोधसम्) ऐश्वर्य के दाता बलशाली राजा की वृद्धि करते हैं। (त्रिष्टुभा छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द अर्थात् क्षात्र बल से वे (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में (त्विषिम् इन्द्रियम्) तेज और ऐश्वर्य को और (वयः) बल, दीर्घजीवन को धारण कराते हैं। (वसुवने वसुधेयस्य वीताम् यज) पूर्ववत् ।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्धयन् । जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

इन्द्रः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(तिस्रः देवीः) तीनों श्रेणियों की उत्तम स्त्रियां अपने (पतिम्) पति की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार (तिस्रः देवीः) तीनों पूर्वोक्त विद्वत्सं-स्थाएं (वयोधसम्) राष्ट्र के बल को धारण करनेवाले (पतिम् इन्द्रम्) पालक राजा को बढ़ाती हैं। वे (जगत्या छन्दसा) जगती छन्द अर्थात्

वैश्य बल से (इन्द्रे) राष्ट्र में (शूषम्) परराष्ट्रशोषक (इन्द्रियम्) बल, वीर्य और (वयः) जीवन को (दधत्) धारण कराते हैं। (वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु) वे भी राजा के कोष की वृद्धि, पालन करें। (यज) हे होतः! उनको तू अधिकार दे।

दे॒वो न॑रा॒शꣳसो॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्धयत्। वि॒रा॒जा छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ रू॒पमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४२ ॥

इन्द्रः। निचृदतिजगती। निषादः॥

भा०—(नराशंसः) सब मनुष्यों से प्रशंसित, जनों का उपदेष्टा (देवः) उत्तम पदार्थों और ज्ञानों का देने हारा है, विद्वान् (देवम्) विद्या के अभिलाषी पुरुष की ज्ञान से वृद्धि करता है वह विद्वान् (वयोधसम् देवम् इन्द्रम् अवर्धयत्) दीर्घजीवी, बल को धारण करने वाले, अन्नदाता राजा इन्द्र की वृद्धि करता है। (विराजा छन्दसा) विराट् छन्द, अर्थात् विशेष कान्तिजनक ज्ञान से (इन्द्रे) राजा और राष्ट्र में (इन्द्रियं रूपम् वयः दधत्) इन्द्र पद के योग्य रूप और बल को धारण कराता है। वह भी (वसुधेयस्य०) पूर्ववत्।

दे॒वो वन॒स्पति॑र्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्धयत्। द्विप॑दा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं भग॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४३ ॥

पूर्ववत्॥

भा०—(देवः देवम्) दानशील पुरुष धन के अभिलाषी पुरुष को धन देकर बढ़ाता है, (वनस्पतिः देवः) वनों के पालक, वट आदि के समान आश्रितजनों को शरण देनेवाला, विद्वान् पुरुष (वयोधसम्) अन्न के दाता (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। वह (द्विपदा छन्दसा) दो चरणवाले भृत्य मनुष्यों के बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राजा में (इन्द्रियम्) इन्द्र पद के योग्य (भगम्) ऐश्वर्य और (वयः) बल को (दधत्) धारण कराता है। (वसुधेयस्य०) पूर्ववत्॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्धयत् । ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४४ ॥

इन्द्रः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(वारितीनाम्) जलों द्वारा अति अधिक उन्नत आकाशस्थ समुद्रों वा नदियों का (देवं बर्हिः) उत्तम जल (देवम्) दिव्य समुद्र को बढ़ाता है उसी प्रकार (वारितीनाम्) वारण करने में समर्थ गतियों वाली सेनाओं का (बर्हिः) अति विस्तृत विजयशील सेनाबल (वयोधसम्) अन्नदाता, (इन्द्रं देवम्) ऐश्वर्यवान् राजा के बल की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है । (ककुभा छन्दसा) ककुप् अर्थात् दिशाओं में व्यापक या सर्व-श्रेष्ठ, सर्वाच्छादक बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राजा में (इन्द्रियम्) इन्द्र पद के योग्य (वयः) बल और (यशः) यश, कीर्त्ति (दधत्) धारण कराता है । (वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत् ।

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्धयत् । अतिछन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४५ ॥

इन्द्रः । स्वराडतिजगती । निषादः ॥

भा०—(देवः देवम्) परमेश्वर जीव को बढ़ाता है, विद्वान् ज्ञान के इच्छुक शिष्य को बढ़ाता है उसी प्रकार (स्विष्टकृत्) समस्त राष्ट्र के सुख, इष्ट धन, जन को उत्पन्न करनेवाला (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानी (देवः) सर्व विद्याप्रकाशक होकर (वयोधसम्) सब के अन्नदाता (इन्द्रम् देवम् अवर्धयत्) राजा और राज्य की वृद्धि करता है और (अतिछन्दसा छन्दसा) अति बलशाली रक्षा साधन से (इन्द्रे) राज्य में (इन्द्रियम्) इन्द्र पद के योग्य (क्षत्रम्) क्षात्र बल और ऐश्वर्य और (वयः) अन्न और बल (दधत्) धारण कराता है । (वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत् ।

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम्। सूपस्था ऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय वयोधसे छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति-पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऽऋषे ॥ ४६ ॥

इन्द्रः। आकृतिः। पंचमः ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी अध्याय का मन्त्र २३ ॥

इत्यष्टाविंशोऽध्यायः ।

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्येऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

[अ० २९] प्रजापतिर्ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ समिद्धोऽअञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः। वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

[१–११] अश्वः सामुद्रिः, बृहदुक्थो वामदेव्यो वा ऋषिः। आप्रियः। अग्निर्जातवेदा। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी विद्वान् पुरुष ! हे (जातवेदः) विद्याओं में निष्णात, ज्ञानप्रद बुद्धिमन् ! (समिद्धः) खूब प्रदीप्त हुआ अग्नि (मधुमत्) मधुर अन्न से युक्त (घृतम्) घी को (पिन्वमानः) सेवन करके अर्थात् चरु और स्निग्ध पदार्थ पाकर (कृदरं अञ्जन्) सकल पदार्थों के छिन्न-भिन्न करनेवाले गुण को प्रकट करता है तू भी (मधुमत् घृतम् पिन्वमानः) मधुर अन्न से युक्त घृत आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थों का सेवन करता हुआ (मतीनाम्) मनन योग्य बुद्धियों के (कृदरम्) समस्त

पदार्थों के विवेक करनेवाले गुण को (अञ्जन्) प्रकट करता हुआ (देवानां प्रियम्) विद्वानों के प्रिय (सधस्थम्) एक साथ स्थिर होने योग्य, सर्वमान्य सिद्धान्त तक (वाजिनम्) वीर्यवान्, सामर्थ्यवान् पुरुष को (वहन्) उठा कर (वाजी) घोड़ा स्थानान्तर को ले जाता है वैसे तू भी लक्ष्य तक उसे (आ वक्षि) पहुँचाता है।

जाठर अग्नि के दृष्टान्त से (मधुमत् घृतं पिन्वमानः) अन्न युक्त घृत को सेवन करके जिस प्रकार जाठर अग्नि (मतीनां कृदरम्) मनुष्यों के उदर की शक्ति को (अञ्जन्) प्रकट करता है उसी प्रकार हे पुरुष ! मधुर घृत का सेवन करके (मतीनाम्) बुद्धियों के (कृदरम्) विवेकजनक रहस्य को प्रकट कर और (जातवेदः) हे बुद्धिमान् पुरुष ! (वाजिनं वहन् वाजी) बलवान् पुरुष को जिस प्रकार वेगवान् अश्व उठा कर ले जाता है उसी प्रकार तू स्वयं (वाजी) संग्राम सम्पन्न, युद्धविजयी होकर (वाजिनम्) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (वहन्) धारण करता हुआ (देवानां प्रियम् सधस्थम्) देवों के प्रिय, एकत्र होने के स्थान सभा-भवन को (आ वक्षि) धारण कर, उसको सभापति बनकर चला। अर्थात्—जैसे जाठर अग्नि अन्नादि खाकर मनुष्यों की उदरशक्ति को प्रकट करता है और (देवानाम्) देव, इन्द्रियों के (सधस्थं आवक्षि) एकत्र रहने के स्थान शरीर को धारण करता है उसी प्रकार राजा या सभापति (मधुमत्) अन्न युक्त या मधुर फलों से युक्त (घृतम्) तेजस्वी सूर्यवत् तेजस्वी के पद को सेवन करता हुआ बुद्धियों के या मननशील मनुष्यों के बीच राजधानी या केन्द्र स्थान को प्रकट करता हुआ स्वयं (समिद्धः) अति तृप्त होकर (सधस्थम्) एकत्र रहने के स्थान सभास्थल या राष्ट्र को धारण करे।

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्। अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳪं स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

भा०—हे (सप्ते) राष्ट्र में व्यापक ! हे युद्ध में आगे बढ़ने वाले ! समवाय या परस्पर संघ बनानेहारे ! (घृतेन अञ्जन्) जिस प्रकार आग

घी से और विद्युत् जल से प्रकट होता है उसी प्रकार तू स्वयं (घृतेन) तेज से (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ (देवयानान्) विद्वानों के चलाने योग्य संग्रामविजयी पुरुषों के वर्तने योग्य, राजनीति, उत्तम (पथः) मार्गों, मर्यादाओं को (प्रजानन्) भली प्रकार जानता हुआ (वाजी) संग्रामों में कुशल, ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और अश्व के समान वेगवान् होकर (देवान्) विद्वानों और विजयशील राजाओं को (अपि एतु) प्राप्त हो। हे (सप्ते) संघ बना लेने में कुशल ! समवायकारिन् ! (त्वा अनु) तेरे अनुकूल ही (प्रदिशः) उत्तम विद्वान् पुरुष अथवा दिशा प्रदिशाओं के वासीजन, (सचन्ताम्) संघ बनाकर रहें और तू (अस्मै यजमानाय) इस दानशील, करप्रद प्रजाजन को (स्वधाम् धेहि) अपने राष्ट्र धारण करने के बल, अधिकार आदि प्रदान कर। अथवा हे राष्ट्र ! तू (अस्मै यजमानाय) इस दानशील, सुव्यवस्थापक राजा को (स्वधाम् देहि) बल, राष्ट्र के धन आदि के धारण करने का बल प्रदान कर।

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥३॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! बलशालि ! तू (ईड्यः च असि) स्तुति के योग्य है, तू (वन्द्यः च असि) अभिवादन करने योग्य है। (आशुः च असि) अति शीघ्र वेगवान् है और (मेध्यः च) सत्संग करने योग्य है और (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानवान् (जातवेदाः) विद्वान् प्रज्ञावान् पुरुष, (वसुभिः देवैः) प्रजाओं को बसाने वाले विद्वानों या स्वयं राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनों के साथ (सजोषाः) समान भाव से प्रेमयुक्त होकर (प्रीतं त्वाम्) अति प्रसन्न तुझ (वह्निम्) राष्ट्र के वहन करने में समर्थ पुरुष को (वहतु) प्राप्त हो।

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम्।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥४॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में—हम लोग (स्तीर्णम्) आच्छादित, सुरक्षित (बर्हिः) प्रजा लोक को (सु स्तरीम) उत्तम रीति से विस्तृत करें। और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (उरु) बहुत बड़े रूप में (पृथु) और विस्तृत रूप में (प्रथमानम्) स्वयं फैलनेवाले (देवेभिः युक्तम्) वीर विजयी, विद्वान्, पुरुषों से युक्त प्रजाजन को, (सजोषाः) अति प्रेमयुक्त होकर (अदितिः) अखण्ड शासन व्यवस्था, (स्योनं कृण्वाना) प्रजा को सुख करती हुई (सु-इते) उत्तम मार्ग में (दधातु) रक्खे। (२) विद्युत्पक्ष में—(स्तीर्णम्) आच्छादित, साङ्गोपाङ्ग यानादि यन्त्रों को और (पृथु प्रथमानम्) विस्तृत, विख्यात एवं फैले हुए (बर्हिः) आकाश या जल में भी व्यापक (देवेभिः युक्तम्) दिव्य पदार्थ जलादि से युक्त सबको (जुषाणा) प्राप्त और सबको (स्योनं कृण्वाना) सुख करती हुई (अदितिः) अखण्ड शक्ति विद्युत् आदि (सुविते) उत्तम गतिशील यन्त्रादि में बल (दधातु) धारण करावे।

एताऽ उ॑ वः सुभगा॑ विश्वरू॑पा विपक्षो॑भिः श्रय॑माणाऽ उदातैः। ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भ॑माना द्वारा देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

भा०—(१) (एताः) ये नाना उत्तम (द्वारः) गृह के द्वार और (देवीः) देवियां दोनों ऐसी हों कि द्वारों के पक्ष में (एताः द्वारः) ये द्वार (देवीः) प्रकाशयुक्त, (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, उत्तम रीति से सेवन योग्य, सुखकारी, सुकर, (विश्वरूपाः) नाना रूपों के (आतैः) बराबर चलने वाले आने जानेवाले (विपक्षोभिः) विविध प्रकार के पक्षों से (उत् श्रयमाणाः) खूब ऊंचे तक विस्तृत (ऋष्वाः) बड़ी (सतीः) होकर भी (कवषः) उत्तम शब्द करनेहारी, (शुम्भमानाः) सुशोभित (सुप्रायणाः) सुख से आने जाने योग्य (भवन्तु) हों। और (२) ऐश्वर्य और अंग सौन्दर्य से युक्त, सुभगा हों, दुर्भगा न हों, वे (विश्वरूपाः) नाना रूपों और नाना रुचिकर गुणों-वाली, (विपक्षोभिः) नाना ग्राह्य पदार्थों से (विश्रयमाणाः) विविध प्रकार से सेवन करने वाली और (आतैः) नाना आचार-व्यवहारों से (उत्श्रय-

माणाः) उत्तम पद को प्राप्त होती हुई (ऋष्वाः) बड़ी (सतीः) सदाचारिणी (कवषः) मधुर शब्द बोलनेहारी, (शुम्भमानाः) सुशोभित, आभूषित, (सुप्रायणाः) उत्तम आचरणवाली, सुख से गमन करने योग्य अथवा उत्तम गृह आदि से सम्पन्न (भवन्तु) रहें। (२) शत्रुवारक सेनाओं के पक्ष में—(द्वारः देवीः) विजयशील, शत्रुओं के वारण करने में समर्थ सेनाएं (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्यवाली, (विपक्षोभिः) पक्षों—बाजुओं से (श्रातैः) नाना चालों से (विश्रयमाणाः) विविध रूप धारण करने वाली, (उत्-श्रयमाणाः) उत्तम स्थिति को प्राप्त, (ऋष्वाः) शत्रुनाशक (सतीः) होकर (कवषः) नाना शब्द करती हुई, (शुम्भमानाः) चमचमाती हुई, (सुप्रायणाः भवन्तु) उत्तम-उत्तम अयन, पदों और स्थानों से युक्त हों।

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने।
उषासा वाथं सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि॥६

मनुष्याः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अन्तरा) शरीर के भीतर (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, प्राण और उदान, विचरते हैं और ब्रह्माण्ड में सूर्य और वायु विचरते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के बीच में 'मित्र' अर्थात् प्रजा के प्रति स्नेहवान् और उनको मृत्यु से बचाने वाला और 'वरुण' दुष्टों का वारक, न्यायाधीश और दुष्टों का दमनकारी ऐसे दो विभाग (उषासा) दिन और रात्रि के समान न्याय-प्रकाशक और प्रजापालक, (यज्ञानाम्) समस्त श्रेष्ठ व्यवहारों, परस्पर की सुसंगत व्यवस्थाओं, या प्रजा के पालनरूप यज्ञों के (मुखम्) मुख्य पुरुष, राजा के साथ (अभि संविदाने) सलाह करते हुए, (सुहिरण्यैः) उत्तम तेज स्वी, ऐश्वर्यवान् (सुशिल्पे) उत्तम शिल्पों में चतुर हैं। उनको (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के (योनौ) पद या अधिकार पर (सादयामि) स्थापित करता हूँ। (२) इसी प्रकार (उषासानक्ता) दिन और रात्रि दोनों सन्ध्याकाल (यज्ञानां मुखम् अभि संविदाने) यज्ञों के मुख अर्थात् आरम्भकाल की सूचना देते हैं। उत्तम प्रकाश से युक्त,

सुन्दर हैं उनको (ऋतस्य योनौ) यज्ञ के निमित्त स्थिर करता हूँ। (३) स्त्री पुरुष के पक्ष में—गृहस्थ में स्त्री पुरुष समस्त (यज्ञानाम्) यज्ञों, गृहस्थ के उचित श्रेष्ठ धर्म कार्यों के (मुखम्) मुख्य भाग पर परस्पर सहमति करते हुए (सुहिरण्ये) परस्पर उत्तम रीति से हितकर और रमणीय, (सुशिल्पे) उत्तम कार्य-कुशल होकर रहें। उन दोनों को (ऋतस्य) परस्पर सत्य व्यवहार एक दूसरे के प्रति निष्कट और अनन्य होकर रहने के (योनौ) निमित्त इस गृहस्थाश्रम में (सादयामि) स्थापित करता हूँ।

प्रथमा वांᳩ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

अश्विनौ। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे उपदेशक और अध्यापक जनो! (वाम्) तुम दोनों (प्रथमा) सबसे प्रथम, सबसे श्रेष्ठ, (सरथिनौ) समानरूप से रथों पर विराजमान, (सुवर्णा) उत्तम वर्ण वाले, (विश्वा भुवना पश्यन्तौ) समस्त लोकों को देखते हुए सूर्य चन्द्र के समान वर्त्तमान (देवौ) दानशील, द्रष्टा, एवं प्रकाशक होकर रहो। (वाम्) तुम दोनों को (अपिप्रयम्) मैं नित्य तृप्त कर प्रसन्न रखूं। आप दोनों (चोदना मिमाना) नाना वेदानुकूल कर्त्तव्य कर्मों को जानते हुए (होतारा) उपादेय पदार्थों का ग्रहण वा दान करते हुए (प्रदिशा) उत्तम ज्ञान से (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (दिशन्तौ) उपदेश करते रहें। (२) दोनों स्त्री पुरुष, पति पत्नी, (सरथिनौ) एक रथ पर चढ़े हुए, (सुवर्णा) उत्तम वर्ण के, (देवौ) एक दूसरे को चाहने वाले, (विश्वा भुवनानि पश्यन्तौ) समस्त लोकों को देखते हुए, (चोदना मिमानौ) उत्तम कर्मों को करते हुए, (होतारा) सुखों को परस्पर लेते, देते हुए, (प्रदिशा) उत्कृष्ट मार्ग से (ज्योतिःदिशन्तौ) ज्ञानज्योति प्रदान करते रहो। (वां अपिप्रयम्) मैं पुत्र तुम दोनों को आनन्दित करूं।

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञᳪ सरस्वती सह रुद्रैर्न ऽआवीत्।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥

सरस्वती । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(भारती) भारती, नाम सभा (आदित्यैः) आदित्य के समान तेजस्वी पूर्ण विद्वान् पुरुषों से (नः यज्ञं वष्टु) हमारे यज्ञरूप सुसंगत राष्ट्र को उज्ज्वल करे। (सरस्वती) सरस्वती, नाम विद्वत्सभा (रुद्रैःसह) रुद्र, उपदेश करने वाले विद्वानों और दुष्ट पुरुषों को रुलाने वाले वीर पुरुषों सहित (नः) हमें (आवीत्) प्राप्त हो, हमारी रक्षा करे। (इडा) नाम संस्था (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (वसुभिः सह) बसने बसाने हारे राष्ट्र के प्रतिनिधियों सहित (उपहूता) आदरपूर्वक बुलाई जाकर हमें प्राप्त हो। (देवीः) ये तीनों देवियां, उत्तम व्यवहारज्ञ, मार्ग-प्रदर्शक, सर्वद्रष्ट्री संस्थाएं, (नः हमारे) (यज्ञम्) यज्ञ को (अमृतेषु) नाश-रहित आधारों पर (धत्त) स्थापित करें।

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायतऽआशुरश्वः।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥ ९ ॥

त्वष्टा । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(त्वष्टा) कान्तिमान्, वीर्यवान् पुरुष (देवकामम्) विद्वानों के प्रिय (वीरम्) वीर पुत्र को (जजान) उत्पन्न करता है। (त्वष्टुः) त्वष्टा के शिल्पों से ही (अर्वा) गतिशील यन्त्र भी (आशुः) वेगवान् (अश्वः) अश्व के समान मार्ग तय करने वाला (जायते) उत्पन्न होता है। (त्वष्टा) समस्त विश्व का रचयिता, विश्वकर्मा परमेश्वर (विश्वं भुवनम् जजान) समस्त भुवन, जगत् को पैदा करता है। इस कारण हे (होतः) होता! तू (बहोः कर्त्तारम्) बहुत से वीर कार्यों और वीर पुरुष उत्पन्न करनेवाले, बहुत से पदार्थों को रखनेवाले और बहुत बड़े विश्व के रचने वाले, उत्तम गृहस्थ और राजा, शिल्पी और परमेश्वर को (इह) इस महान्, यज्ञ अश्वमेध या राष्ट्रकार्य और उपासना में (यक्षि) अधिकार प्रदान कर, नियुक्त कर उपासना कर। अर्थात् वीर्यवान् गृहस्थ को गृहस्थ यज्ञ,

पुत्रप्रजनन कार्य में नियुक्त कर, शिल्पवान् पुरुष को राष्ट्र में नियुक्त कर, देवोपासना में उपासक को नियुक्त कर।

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२॥ऽऋतुशः पाथऽएतु।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥१०॥

भा०—(अश्वः) सूर्य (घृतेन त्मन्या) स्वयं अपने तेज से (समक्तः) युक्त होकर (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु में (देवान्) किरणों के द्वारा (पाथः एतु) जल को ग्रहण करता है उसी प्रकार (अश्वः) राष्ट्र का भोक्ता राजा (त्मन्या) स्वयं (घृतेन सम् अक्तः) तेज से सम्पन्न होकर (ऋतुशः) प्रति ऋतु, (पाथः) अपने पालन कार्य के निमित्त (देवान् उप एतु) देवों, विद्वानों को प्राप्त हो। (वनस्पतिः) मनुष्यों या सेवनीय पदार्थों का पालक (देवलोकं प्रजानन्) विद्वान् जनों को जानता हुआ, (अग्निना स्वदितानि हव्यानि) अग्नि द्वारा स्वदित, स्वीकृत, सुपक्व अन्नों को (वक्षत्) प्राप्त करे। अर्थात् अन्नों को प्रथम यज्ञाग्नि में देकर उसके बाद ज्ञानी पुरुष द्वारा प्रथम परीक्षित अन्नों को ग्रहण करे।

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥

अग्निः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्रणी, विद्वन्! तू (प्रजापतेः) प्रजा के पालक राजा पद के (तपसा) तप से, प्रभाव से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (सद्यः जातः) शीघ्र राजा बनकर (यज्ञम्) राष्ट्ररूप कार्य को (दधिषे) धारण कर। तू (स्वाहाकृतेन) स्वाहा द्वारा अग्नि में आहुति किये हुए (हविषा) अन्न से अथवा (सु-आह-कृतेन) उत्तम कीर्ति के जनक (हविषा) उपाय से (पुरोगाः) अग्रगामी होकर (याहि) प्रयाण कर और (साध्याः) उत्तम रीति से साधन सम्पन्न (देवाः) विद्वान् और विजयी, वीर जन (हविः अदन्तु) अन्न और उपादेय राष्ट्र का उपभोग

करें। अग्नि में चरु भस्म होकर दिव्य पदार्थों में लीन हो जाता है इसी प्रकार राजा द्वारा कर रूप में प्राप्त किया, पदार्थ विद्वानों, वीरों विजेता सेना पुरुषों के कामों में व्यय होता है।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽउद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽउपस्तुत्यं महि जातं ते ऽअर्वन्
॥ १२ ॥ ऋ० १ । १६३ । १ ॥

[१२–२३] भार्गवो जमदग्निर्दीर्घतमाश्च ऋषी । अश्वस्तुतिः । यजमानः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अर्वन्) वेग से प्रयाण करनेहारे राजन्! (यत्) जब तू (समुद्रात् उद्यन्) समुद्र से ऊपर उठते हुए सूर्य या मेघ के समान उदय को प्राप्त होकर (प्रथमं जायमानः) पहले-पहल उत्पन्न होकर, राजा बनाया जाकर (वा) और (पुरीषात्) ऐश्वर्य से ऊपर उठता हुआ, उन्नत राजपद पर विराजता हुआ (अक्रन्दः) शब्द करता, आज्ञा प्रदान करता है, गर्जना या घोषणा करता है उस समय तेरी (पक्षा) दोनों बाजू (श्येनस्य) बाज पक्षी के समान अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ दायें बायें दो सेनाओं के दस्ते (Wings) और (हरिणस्य) हरिण की (बाहू) अगली टांगों के समान अति शीघ्रगामी दो सेनादल समान शत्रुपीड़न में समर्थ दोनों बाहू आगे होते हैं और उस समय (ते) तेरा स्वरूप (महि) बहुत अधिक (उपस्तुत्यं जातम्) वर्णन करने योग्य हो जाता है।

यमेन दत्तं त्रित ऽएनमायुनगिन्द्रऽ एणं प्रथमो ऽअध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो ऽअस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥१३॥
ऋ० १ । १६३ । २ ॥

अग्निः । भुरिक् त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—(त्रितः) तीनों वेदों का विद्वान्, त्रिविध शक्तियों से सम्पन्न पुरुष, (यमेन) नियम करने वाले पद द्वारा (दत्तम्) प्रदत्त, स्वीकृत

(एनम्) इस राष्ट्र को (आयुनग्) नियुक्त करता है। (इन्द्रः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष (एतम्) इस राष्ट्र पर (प्रथमः) सबसे प्रथम (अधि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता रूप से विराजता है। (गन्धर्वः) गौ, पृथिवी या आज्ञारूप वाणी के धारण करने में समर्थ पुरुष (अस्य) इस राष्ट्र रूप अश्व की (रशनाम्) रस्सी, बागडोर को (अगृभ्णात्) धारण करता है। (वसवः) हे वसुगणो ! प्रजाजनो ! विद्वानो ! (सूरात्) सबके प्रेरक सूर्य के तेज से (अश्वम्) इस व्यापक राज्य को (निर् अतष्ट) निर्माण करो। अध्यात्म में—(यमेन दत्तम्) प्राण वायु से धारित शरीर को (त्रितः) तीन धातुओं से युक्त अन्न या आत्मा (आयुनक्) युक्त करता है। (इन्द्रः) जीव इसका अधिष्ठाता है। गन्धर्व मन इसकी 'रशना' बागडोर को सम्भालता है। (वसवः) बसनेवाले चक्षु आदि इन्द्रिय (सूरात् प्रेरक) प्राण से ही इसको निर्माण करते हैं।

असि य॒मो अस्या॑दि॒त्यो अ॑र्व॒न्नसि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑। असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्त आहुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि ॥ १४ ॥

ऋ० १ । १६३ । ३ ॥

अग्निः। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (यमः असि) स्वयं प्राण वायु के समान राष्ट्र का नियामक है। (आदित्यः असि) सूर्य के समान सब कार्यों का प्रकाशक, सूर्यवत् प्रजा से कर लेनेहारा है। तू ही (अर्वन् असि) शीघ्र गतिवाला होकर (गुह्येन व्रतेन) रक्षा करने योग्य हमसे (त्रितः) तीनों लोकों में व्यापक वायु के समान उत्तम मध्यम और अधम व राजा, शासक और प्रजा तीनों में व्यापक है और (सोमेन) ऐश्वर्यमय राष्ट्र से (समया विपृक्तः) सदा संयुक्त रहता है। (ते) तेरे (दिवि) राजसभा में (त्रीणि बन्धनानि) तीनों प्रकार के बंधन (आहुः) बतलाते हैं। सूर्य लोक को बांधने वाले तीन बंधन, आकर्षण, प्रकाश और प्राण हैं। परस्पर समाज तीन बंधन शरीररक्षा, वाणी की प्रतिज्ञा और मानस प्रेम। राजा इन

तीनों से बलवान् अश्व के समान बंधा रहे। वह आचार में पवित्र वाणी में सच्चा और मन में प्रजा के प्रति प्रेमी रहे। सूर्य के द्यौलोक में तीन बांधने के साधन हैं—आकर्षण, तेज और गति या चेतन सामर्थ्य। उत्पन्न जीव के भी जीवन में तीन बंधन हैं—देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण जिनके प्रतिनिधि यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं।

त्रीणि त॑ऽआहुर्दि॒वि बन्ध॑नानि॒ त्रीण्य॒प्सु त्रीण्य॒न्तः स॑मु॒द्रे।
उ॒तेव॑ मे॒ वरु॑णश्छन्त्स्यर्व॒न्यत्रा॑ त॒ऽआ॒हुः प॑र॒मं ज॒नित्र॑म्॥ १५॥

ऋ० १। १६३। ४॥

अग्निः। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! हे आत्मन्! (दिवि) द्यौ लोक में सूर्य के (त्रीणि बन्धनानि) तीन बांधने वाले बल हैं और (त्रीणि अप्सु) तीन ही बंधन जलों में हैं—अन्न, स्थान और बीज और इसी प्रकार (त्रीणि अन्तः समुद्रे) तीन ही बंधन अन्तरिक्ष में वृष्टि के उत्पादक हैं—मेघ, विद्युत् और गर्जन। उसी प्रकार हे राजन्! (दिवि) ज्ञान प्रकाशक राजसभा तेरे तीन प्रकार के बंधन या मर्यादाएं हैं। तीन बंधन आप्त या प्रजाओं के बीच में हैं और समुद्र के समान अपार अनंत सुखजनक पदार्थों के उत्पादक, राष्ट्र या सेनासमुदाय में भी तीन प्रकार के बन्धन (आहुः) कहे जाते हैं। हे (अर्वन्) अर्वन्! राजन्! विद्वन्! (उतेव) और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ होकर तू (मे) मुझे राष्ट्र जन को (छन्त्सि) सन्मार्ग का उपदेश कर (यत्र) जहां (ते) तेरा (परमम्) परम, सबसे उत्कृष्ट (जनित्रम्) जन्म या विकास हुआ (आहुः) बतलाते हैं।

इ॒मा ते॑ वाजिन्नव॒मार्ज॑नानी॒मा श॒फाना॑ᳪ स॑नि॒तुर्नि॒धाना॑। अत्रा॑ ते भ॒द्रा र॑श॒ना ऽअ॑पश्यमृ॒तस्य॒ या ऽअ॑भि॒रक्ष॑न्ति गो॒पाः॥१६॥

अग्निः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—हे (वाजिन्) संग्रामशील! ऐश्वर्यवन्! राजन्! सेनापते! (ते) तेरे (इमा) ये (अवमार्जनानि) राष्ट्र के कण्टकशोधन करने के उपाय

हैं और (सनितुः) राष्ट्र के विभाग करने हारे तेरे (शफानाम् निधाना) चरणों या पदों के ये रखने के स्थान या खुरों के समान आश्रयभूत राज्याङ्गों या पदों के लिये खजाने हैं और (अत्र) यहां (ते) तेरी (भद्राः) कल्याण करने वाली तेरी (गोपाः) रक्षण करने वाली (रशनाः) रस्सियों के समान बाधने वाली मर्यादाएं हैं (याः) जो (ऋतस्य) सत्य व्यवहार, यज्ञ, राष्ट्र की (अभिरक्षन्ति) रक्षा करती हैं।

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो ऽअपश्यम्पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ १७ ॥

अग्निः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—मैं (दिवा) दिन के समय आकाश मार्ग से (पतयन्तम्) जाते हुए (पतङ्गम्) सूर्य के समान (ते आत्मानम्) हे राष्ट्रपते ! तेरे आत्मा, स्वरूप को (मनसा) मन से, ज्ञानपूर्वक (आराद्) सदा निकट में ही (अजानाम्) जानता हूँ, समीप ही विचारता हूँ और (अरेणुभिः) धूलि आदि से रहित (सुगेभिः) सुगम, सरल (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानाम्) जाते हुए (पतत्रि) नित्य गमन करते हुए (शिरः) तेरे शिर अर्थात् मुख्य पद पर स्थित व्यक्ति को (अपश्यम्) देखूं। अर्थात् राजा स्वयं साक्षात् आकाश में सूर्य के समान तेजस्वी होकर रक्षा कार्य में रहे। उसका शिर, मुख्य भाग उत्तम विशुद्ध मार्गों से गमन करे। वह सात्विक सन्मार्ग पर चले।

(२) आत्मा के पक्ष में—जीव तेरे आत्मा को मैं आकाश में जाते सूर्य के समान जानूं। (सुगेभिः) सुखदायी (अरेणुभिः) राजस तामस विकारों से रहित (पथिभिः) मार्गों से जाते हुए (शिरः) मुख्य, मन को जाता हुआ देखूं। अर्थात् आत्मा को सूर्य के समान तेजस्वी जानूं और मस्तक को सद्विचारों से युक्त स्वच्छ मार्ग में जाता पाऊं।

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिषऽआ पदे गोः।
यदा ते मर्त्तो ऽअनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥१८॥

अग्निः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! (अत्र) इस (गोः पदे) पृथ्वी के शासनाधिकार पर विराजमान (इषः) अन्नादि पदार्थों या सेनाओं को (जिगीषमाणम्) विजय करने की इच्छा वाले (ते) तेरे (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप को मैं (अपश्यम्) देखता हूँ और (यदा) जब (ते) तेरे अधीन रहने वाला (मर्त्तः) मनुष्यजन, (भोगम् अनु आनड्) भोगयोग्य सम्पत्ति प्राप्त करता है (आत् इत्) तभी (ग्रसिष्ठः) बहुत खाने वाला जीव जिस प्रकार (ओषधीः) अन्नादि पदार्थ खाता है उसी प्रकार तू भी (ग्रसिष्ठः) शत्रुओं के राज्यों और धनों को सबसे अधिक ग्रसन में समर्थ होकर (ओषधीः) संताप देने वाले शत्रुओं को, (अजीगः) ग्रस लेता है । (२) आत्मा के पक्ष में—हे आत्मन् ! (गोः पदे) वाणी के या गमन योग्य, प्राप्तव्य अपने (पदे) ज्ञानमय स्वरूप पर विजय चाहने वाले तेरे (रूपम्) सुन्दर रूप को मैं देखूं । (ते मर्त्तः) तेरा मरणधर्मा शरीर जब (भोगम् अनु आनड्) भोग को चाहता है तभी (ग्रसिष्ठः) बहुत भोक्ता होकर (ओषधीः अजीगः) जीवन देनेवाले अन्नादि ओषधियों को ग्रसता है ।

अनु॑ त्वा॒ रथो॒ऽअनु॒ मर्यो॑ऽअर्व॒न्ननु॒ गावो॒ऽनु॒ भगः॑ क॒नीना॑म् ।
अनु॒ व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु॒रनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्यं᳖ ते ॥ १९ ॥

मनुष्यः । विराट् त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—हे (अर्वन्) ज्ञानवन्, व्यापक ! राष्ट्र ! हे राष्ट्रपते ! जिस प्रकार अश्व के पीछे (रथः, मर्यः गावः) रथ, मनुष्य और अन्य पशु आदि रहते हैं उसी प्रकार (त्वा अनु) तेरे पीछे-पीछे (रथः) रथ आदि यान, एवं रमण योग्य पदार्थ, (अनु मर्यः) तेरे पीछे समस्त मनुष्य, (अनु गावः) तेरे पीछे, समस्त गौ आदि दुधार पशुगण, (अनु कनीनां भगः) तेरे पीछे-पीछे तेरे अधीन कन्याओं का सौभाग्य, (अनु व्रातासः) तेरे अधीन समस्त मनुष्य गण (सख्यम् ईयुः) तेरे अधीन होकर ही मित्रता को प्राप्त होते हैं (देवाः) देवगण, (ते वीर्यम्) तेरे ही बल का (अनु ममिरे)

तेरे अनुकूल निर्माण करते हैं। राजा के सुव्यवस्था रहने पर रथ, जन, पशु, स्त्रियों की रक्षा, मनुष्य संघ, उनके परस्पर मैत्री भाव आदि स्थिर हैं।

हिरण्यशृङ्गोऽयो ऽअस्य पादा मनोजवा ऽअवरऽइन्द्रऽ आसीत्।
देवाऽइदस्य हविरद्यमायन्योऽअर्वन्तं प्रथमो ऽअध्यतिष्ठत् ॥२०॥

अग्निः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(यः) जो (प्रथमः) सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ, सब से मुख्य होकर (अर्वन्तम्) व्यापक शक्ति वाले, अतिवेगवान् इस राष्ट्र पर (अधि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता होकर विराजता है। (देवाः) देव, विद्वान् एवं विजयशील शूरवीर पुरुष भी (अस्य) इसके (हविरद्म) अन्न के समान भोग्य वस्तु (आयन्) बन जाते हैं। (हिरण्यशृङ्गः) लोह के बने हिंसा-साधनों, हथियारों से युक्त (इन्द्रः) इन्द्र, शत्रुनाशक सेनापति भी (अस्य अवरः) इसके अधीन नीचे पद पर (आसीत्) होता है और (अस्य) इसके (मनोजवाः पादाः) मन के समान अति वेग वाले पैरों के समान इसके शेष अङ्ग अर्थात् नीचे के पदाधिकारी भी (मनोजवाः) इसके मन के अनुकूल वेग से कार्य करने वाले और (अयः) सुवर्णादि वेतन से बद्ध हैं।

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳशूरणासो दिव्यासोऽअत्याः।
हꣳसाऽइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥२१॥

मनुष्याः। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—(ईर्मान्तासः) ईर्म अर्थात् बाहुरूप से पृथ्वी के परले अन्त को विजय करने वाले, (सिलिकमध्यमासः) कृश पेट वाले, अथवा अपने बीच मुखिया को रखनेवाले ऐसे (शूरणासः) शीघ्र युद्धविजयी, (दिव्यासः) तेजस्वी (अत्याः) नित्य गतिशील, वेगवान्, (अश्वाः) अश्वारोहीगण (यद्) जब (दिव्यम्) विजय करने योग्य (अज्मम्) संग्राम (सम् आक्षिषुः) करते हैं तब (हंसा इव) पंक्तिबद्ध सारस पक्षियों के समान (श्रेणिशः)

श्रेणि, दल या दस्ता बना-बना कर (यतन्ते) युद्ध करते हैं। अध्यात्म योगियों के पक्ष में—(ईर्मान्तासः) सिद्धान्त के विज्ञ या उद्देश्य तक पहुँचे हुए (सिलिकमध्यमासः) क्षीण, कृश मध्य भाग वाले वीर, गतिशील आत्मा, (अश्वाः) ज्ञानी दिव्य (अज्मम्) 'अजनि' अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होते हैं वे हंसों के समान श्रेणी बना बना कर एक दूसरे के पीछे सन्मार्ग पर चलते हैं। 'ईर्मान्तासः'—ईर्मौ इति बाहू। समीरितान्तः पृथ्व्यन्ताः वा (निरु०)। 'सिलिकमध्यमासः'–संसृतमध्यमा, शीर्षमध्यमाः (निरु०) संलग्नमध्यमाः इति दया०। मध्ये निविडा इति सायणः। संश्लिष्टोदरा, निरुदरा इति उवटः। कृशोदराः इति महीधरः। हंसाः'—'घ्नन्त्यध्वानं' इति (निरु०)। 'अज्मम्' अजनिम, आजिम् (निरु०)। अजन्ति गच्छन्ति यम् मार्गम् इति दया०। अज्मम् संग्रामम् इति मही०। 'श्रेणिशः'—बद्धपंक्तयः इति दया०। शीघ्रधावनाय श्रेणिशः पंक्तीभूय। इति सा०।

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातऽइव ध्रजीमान्।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ २२ ॥

वायवः। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अर्वन्) वीर पुरुष ! (तव शरीरम्) तेरा शरीर (पतयिष्णु) वेग से जाने समर्थ हो। (तव चित्तम्) तेरा चित्त (वातः इव) वायु के समान (ध्रजीमान्) बहुत अधिक बल से युक्त हो। तेरे (शृङ्गाणि) सींगों के समान हिंसा करने वाले सेना दल (अरण्येषु) जंगलों में दुर्गम (पुरुत्रा) नाना स्थानों पर (विष्ठिता) विविधरूपों में स्थित होकर (जर्भुराणाः) खूब परिपुष्ट होते हुए अथवा राष्ट्र का निरन्तर धारण पालन करते हुए (चरन्ति) विचरें।

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥२३॥

मनुष्यः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व के समान तीव्र गति, बलवान् पुरुष (देवद्रीचा) देव विजयशील पुरुषों और विद्वानों से प्राप्त होने वाले (मनसा) ज्ञान से (दीध्यानः) स्वयं प्रकाशित, तेजस्वी होता हुआ (शसनम्) शासन-कार्य पर (उप प्र अगात्) नियुक्त होता है। (अजः) शत्रुओं को दूर हटाने और उन पर शर वर्षा करने वाला वीर (नाभिः) सब को बांधने या व्यवस्थित करने में समर्थ होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (पुरः) आगे, मुख्य पद पर (नीयते) लाकर बैठाया जाता है। (पश्चात्) पीछे उसके पोषक रूप से (रेभाः) विद्याओं के उपदेश करने में कुशल (कवयः) मेधावी, विद्वान् पुरुष (अनु यन्ति) उसका साथ देते हैं।

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२॥ अच्छा पितरं मातरं च।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या ऽअथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

विद्वान्। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अर्वान्) ज्ञानी, बलवान् पुरुष, (यत्) जब (परमम्) सब से उत्तम (सधस्थम्) एकत्र रहने के स्थान, सभाभवन, देश या स्थान के (उप अगात्) प्राप्त होता है और जब (पितरं मातरं च) पालक पिता और मानयोग्य माता को भी साक्षात् करता है। (अद्य) तब वह (जुष्टतमः) अति प्रेमयुक्त होकर (देवान्) देव, विद्वान् पुरुषों को (गम्याः) प्राप्त होता है। (अथ) और (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिये (वार्याणि) उत्तम-उत्तम पदार्थों को (आशास्ते) प्रदान करता है। (२) अध्यात्म में— जीव ज्ञानी होकर परम स्थान, मोक्ष को प्राप्त होता है, वहां वह पिता परमेश्वर और माता प्रकृति का साक्षात् ज्ञान करता है। दिव्य पदार्थों और सुखों को भी पाता है। दानशील परमेश्वर से नाना वरणयोग्य पदार्थ प्राप्त करता है।

समिद्धो ऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥२५॥

ऋ० १०। ११०। १॥

[२५-३६] जमदग्नी रामो वा जामदग्न्य ऋषिः । आप्रियः समित्तनूनपादादयो विद्वांसः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (जातवेदः) अग्ने ! ज्ञानवन् ! जातप्रज्ञ ! विद्वन् ! (अद्य) आज तू (समिद्धः) अच्छी प्रकार ज्ञान से अग्नि के समान प्रकाशित एवं प्रज्ज्वलित, तेजस्वी स्वयं (देवः) दानशील राजा के समान, सर्वद्रष्टा होकर (मनुषः दुरोणे) मनुष्यों के दुःख से रक्षण करने योग्य गृह के समान इस राष्ट्र में (देवान्) विद्वान् एवं विजयशील शूरवीर पुरुषों को (यजसि) सुसंगत कर और (मित्रम्) मित्र राजा को भी (आ वह च) प्राप्त कर । (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (त्वम्) तू (दूतः) शत्रु को उत्पात देने में समर्थ, (कविः) क्रान्तदर्शी और (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् (असि) होकर रह । (२) सामान्य विद्वान् ज्ञानवान् होकर मनुष्य के गृह में अग्नि के समान (देवान्) विद्वानों और प्रेमी पुरुषों का सत्कार करे, मित्र को प्राप्त करे । मेधावी, ज्ञानी बने ।

(२) दूत तेजस्वी हो राजाओं को (यजसि) संगत करे, मित्र राजा को प्राप्त करे ।

तनूनपात्पथ ऽ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २६ ॥

ऋ० १० । ११० । २ ॥

विद्वान् । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (तनूनपात्) विस्तृत राष्ट्र को पतन न होने देने वाले, रक्षक ! हे (सुजिह्व) उत्तम वाणी वाले ! तू (ऋतस्य) सत्य के (यानान्) पथः) आचरण करने योग्य, चलने योग्य मार्गों को (मध्वा) मधुर उपदेश-रस से (सम् अञ्जन्) अच्छी प्रकार प्रकाशित करता हुआ (स्वदय) सबके लिये रुचिकर बना । अर्थात् धर्म के कार्यों को उत्तम आकर्षक भाषा में लोगों के सामने रखकर उन पर उनको चलने की प्रेरणा कर और (धीभिः) अपनी बुद्धियों से (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञातव्य विषयों

को (उत) और (यज्ञम्) परस्पर संगत राष्ट्र को, समाज को अथवा उपास्य देव को (ऋन्धन्) अति समृद्ध, सुशोभित, करता हुआ, (नः) हमारे (अध्वरम्) हिंसा से रहित या अविनाशी यज्ञ, राष्ट्रपालन के कार्य को (देवत्रा च) देवों, विद्वानों, कार्यकुशल, व्यवहारश्रेष्ठ पुरुषों के आधार पर (कृणुहि) सम्पादन कर ।

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा ऽउभयानि हव्या
॥ २७ ॥ विद्वान् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यज्ञैः) सत्संग आदि उत्तम, आदर सत्कार के कार्यों से (यजतस्य) सत्कार करने योग्य, (नराशंसस्य) समस्त पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय, प्रजापालक या विद्वान् उत्तम पुरुष के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को हम (एषाम्) इन प्रजाजनों के बीच (उपस्तोषाम) वर्णन करें । (ये) जो (सुक्रतवः) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (शुचयः) शुद्ध, निष्कपट, (धियन्धाः) बुद्धिमान्, उत्तम कर्मशील, (देवाः) विद्वान् होकर (उभयानि) शरीर और आत्मा के सुखकारी अथवा राजा और प्रजा दोनों के हितकारी (हव्या) प्राप्त करने योग्य पदार्थों या पदाधिकारों का (स्वदन्ति) भोग करते हैं ।

आजुह्वान ऽईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स ऽएनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥२८॥
ऋ० १० । ११० । ३ ॥

अग्निः । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (आजुह्वानः) सब अपने समान बल वालों से स्पर्द्धा किया जाता या दुःखितों से पुकारा जाता है वा सबको अपने राष्ट्र में बुलाने हारा, (ईड्यः) सबके आदर योग्य, (वन्द्यः) सबके अभिवादन करने योग्य, (वसुभिः सजोषाः) राष्ट्रवासी प्रजाजनों का समान रूप से प्रेमपात्र,

(देवानाम्) विद्वानों, राजाओं में से (यह्वः) महान्, (होता) सबको योग्य अधिकार, मान, पद और धन का दाता, (यजीयान्) सबको सुसंगत करने वाला होकर (एनान्) इन सब पुरुषों को (इषितः) प्रेरित या अभिलाष युक्त होकर (यक्षि) सुसंगत कर ।

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते ऽ अग्रे ऽअह्नाम् । व्युं प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो ऽअदितये स्योनम् ॥ २९ ॥ ऋ० १० । ११० । ४ ॥

अन्तरिक्षम् । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में वेदी पर बिछाने के लिये पूर्वाभिमुख आसनार्थ कुशा बिछाई जाती है उसी प्रकार (अस्याः पृथिव्याः) इस पृथिवी की (प्रदिशा) समस्त उत्तम दिशाओं में या उत्तम शासन से (प्राचीनम्) उत्कृष्ट दिशा में जाने वाला उन्नतिशील उत्तम ज्ञानवान् प्रजाजन (वस्तोः) बसने के लिये वा (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (वस्तोः) सूर्य के आच्छादक, विस्तृत प्रकाश के समान (वृज्यते) लाया जाता है । वह (देवेभ्यः) विजयी, वीर पुरुषों, विद्वानों और (अदितये) आदित्य के समान तेजस्वी राजा के लिये भी (वितरम्) विस्तृत (स्योनम्) सुखकारी (वरीयः) धन ऐश्वर्य को (वि प्रथते उ) विविध प्रकार से फैलाता है ।

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः । देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ३० ॥ ऋ० १० । ११० । ५ ॥

स्त्रियः, देव्यो द्वारः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(न) जैसे (पतिभ्यः) पतियों के लिये (जनयः) स्त्रियां, (देवीः) गृहदेवियां (व्यचस्वतीः) विविध प्रकार से गमन करने वाली (उर्विया) सब प्रकार से आश्रय लेती हैं और अपने को समर्पण करती हैं, उसी प्रकार (द्वारः) गृह के द्वार भी (व्यचस्वतीः) विविध प्रकार के

आवागमन के योग्य, (उर्विया) बड़े-बड़े कपाटों को (विश्रायन्तम्) खोलें। हे (देवीः) पतियों को कामना करने वाली गृहदेवियो ! आप (बृहतीः) विशाल हृदय वाली, (विश्वमिन्वाः) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली हो। अतः (देवेभ्यः) अभिलाषा करने वाले पुरुषों के लिये ही तुम (सुप्रायणाः) सुखपूर्वक प्राप्त होकर, सुखप्रद उत्तम गृह बनाकर (भवत) रहो। हे (द्वारः देवीः) प्रकाश वाले द्वारो ! तुम (बृहतीः) बड़े-बड़े और (विश्वमिन्वाः) सबको अपने भीतर गुजारनेहारे हो। तुम (देवेभ्यः) उत्तम विद्वान् पुरुषों के लिये (सु-प्र-अयनाः भवत) सुख से आने-जाने के साधन होवो। (२) जैसे स्त्रियां अपने पतियों के प्रति अपने को खोलती हैं उसी प्रकार (व्यचस्वतीः) विविध देशों में जाने वाली, अथवा विविध प्रकार की चालों और व्यूहों में जाने वाली सेनाएं सेनापतियों के प्रति (उरु विश्रयन्ताम्) विशाल स्वरूप प्रकट करें। वे (देवीः) विजयेच्छु, (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने वाली (बृहतीः) बड़ी भारी (विश्वमिन्वाः) पूर्ण राष्ट्र या शत्रुदेश में और युद्धभूमि में व्यापने वाली होकर भी (देवेभ्यः) विजिगीषु पुरुषों के लिये (सुप्रायणाः भवत) सुख से अपने-अपने अयन अर्थात् नियत स्थान में स्थित रहें।

'सुप्रायणाः'—'अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः'। गीता।

आ सुष्वयन्ती यजते ऽ उपाके ऽ उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥३१॥

स्त्रियः, उषासानक्ते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(उषासानक्ता) दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष (उपाके) एक दूसरे के पास आकर (यजते) सुसंगत होकर (सुष्वयन्ती) भली प्रकार समीप रहकर सदाचार का पालन करते हुए (दिव्ये) परस्पर कामना करके (योषणे) परस्पर संगत होने वाले दोनों (बृहती) प्रजा की वृद्धि करने वाले (सुरुक्मे) सुखपूर्वक एक दूसरे को चाहने वाले, कान्ति-

मान्, सुभूषित होकर (श्रियम्) लक्ष्मी को और (शुक्रपिशम्) वीर्यांशों को (दधाने) स्थापन और धारण करते हुए (योनौ) एक ही गृह में (आ निसदताम्) विराजें। (२) राष्ट्र में दिन रात्रि के समान उषाः और नक्त नाम की दो संस्थाएं (यजते उपाके) मिल कर रहने के स्थान में समीप-समीप आकर (सुरुक्मे) अति रोचक स्वरूप हों और (शुक्रपिशं दधाने) राष्ट्र के शुद्ध स्वरूप को धारण करें।

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२॥

विद्वांसः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(दैव्या) विद्वानों में कुशल, (होतारा) उत्तम शिक्षा देने वाले, (सुवाचा) शुभ वाणियां बोलने वाले, (मनुषः यजध्यै) मनुष्यों को परस्पर सुसंगत रखने के लिये (यज्ञं मिमाना) यज्ञ, सुव्यवस्थित राष्ट्र का निर्माण करते हुए (विदथेषु) उत्तम विज्ञानों और लाभ के कार्यों में (प्रचोदयन्ता) भली प्रकार प्रेरणा करते हुए (कारू) क्रियाकुशल होकर (प्राचीनं ज्योतिः) प्राचीन, सनातन से प्राप्त वेदमय, ज्योति को (प्रदिशा) उपदेश से (दिशन्ता) उपदेश करते हुए दो विद्वान् रहें।

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥३३॥

वाग्। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(भारती) भारती, (इडा) इडा और (सरस्वती) सरस्वती (तिस्रः देवीः) तीनों दिव्यगुण वाली, ज्ञान प्रकाश से युक्त संस्थाएं (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के समान (चेतयन्ती) ज्ञान का प्रकाश करने वाली और (स्वपसः) उत्तम ज्ञानों और कर्मों को सम्पन्न करने वाली होकर (इह) यहां (नः यज्ञम्) हमारे यज्ञ और राष्ट्र को (तूयम्) शीघ्र (एतु) प्राप्त हों। (इदं बर्हिः) इस लोक को (स्योने) सुखपूर्वक (आ सदन्तु) पद सुशोभित करें, शासन करें।

य ऽइमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंꣳ शद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥३४॥

विद्वान् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (जनित्री) संसार को उत्पन्न करने वाले (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी या सूर्य और पृथिवी (इमे) इन दोनों को और (विश्वा भुवना) समस्त लोकों और प्राणियों को (रूपैः) नाना रूपों और रुचिकर पदार्थों से (अपिंशत्) प्रत्येक अवयव-अवयव में बनाता है । हे (होतः) ज्ञानप्रद ! तू (इषितः) प्रेरित होकर (यजीयान्) नाना पदार्थों को सुसंगत करने में कुशल होकर (तम् त्वष्टारम्) उस निर्माणकर्त्ता, विधाता (देवम्) देव, परमेश्वर की (अद्य) आज, सदा, (इह) इस राष्ट्र या संसार में (विद्वान्) सबको भली प्रकार जान कर (यक्षि) उपासना कर ।

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऽऋतुथा हवींꣳषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो ऽअग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥३५॥

अग्निः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वान् ! (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) पान, भोजन करने योग्य जल, दुग्ध और (हवींषि) अन्नों को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार (त्मन्या) अपनी बुद्धि से (सम् अञ्जन्) प्रकट करता हुआ (उप अवसृज) प्रदान कर । इसी प्रकार (हव्यम्) हवन करने योग्य चरु को (मधुना) मधुर गुण युक्त (घृतेन) घृत से (सम् अञ्जन्) मिला कर (उप अवसृज) आहुति प्रदान कर जिससे (वनस्पतिः) किरणों का पालक सूर्य और (शमिता देवः) शान्तिदायक मेघ और (देवः अग्निः) तेजस्वी, आग, तीनों (स्वदन्तु) ग्रहण करें । (२) राष्ट्र और गृहपक्ष में— विद्वान् पुरुष मधुर घृत आदि से अन्नों को मिलाकर ऋतु-ऋतु के अनुसार अन्नों का प्रदान करे । (वनस्पतिः) वनस्पति के समान सर्वाश्रय राजा या गृहपति (शमिता) शान्तिप्रद ब्राह्मण विद्वान् और (अग्निः देवः) अग्रणी

सेनापति आदि प्रमुख पुरुष उन सब पदार्थों का यथावत् उपभोग करें। उन मुख्य पुरुषों का भोजन विद्वान् वैद्य के निरीक्षण में हो, वह ऋतु अनुसार पुष्टिकारक पदार्थों के साथ मिलाकर उनको भोजन दे।

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ ३६ ॥

अग्निः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (यज्ञं वि अमिमीत) यज्ञ को विविध रूपों में प्रकट करता है और वह अग्नि ही (देवानां पुरोगाः अभवत्) समस्त वायु आदि दिव्य पदार्थों का अग्रगामी है और (अस्य-वाचि स्वाहा कृते हविः देवाः अदन्ति) इस अग्नि की ज्वाला में स्वाहा किये हुए हविष को अन्य वायु, जल आदि भी प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी ज्ञान पुरुष जो (देवानाम्) विद्वानों और विजय की कामना करने वाले और व्यवहारकुशल पुरुषों का (पुरोगाः) अग्रगामी, नेता (अभवत्) हो जाता है। वह (सद्यः जातः) शीघ्र ही सामर्थ्यवान् होकर (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत, सुव्यवस्थित, प्रजापालन करने वाले राष्ट्र का (वि अमिमीत) विशेष और विविध प्रकारों में निर्माण करता है। (अस्य होतुः) सबको यथायोग्य पदाधिकार प्रदान करने वाले इस विद्वान् के (प्रदिशि) उत्कृष्ट शासन में और (ऋतस्य वाचि) सत्य व्यवहार, या ज्ञान, शासन-विधान की वाणी या आज्ञा के अधीन रहकर (देवाः) सुख चाहने वाले विद्वान् शासक सैनिक और प्रजागण, (स्वाहाकृतम्) उत्तम आदर से प्रदान किये (हविः) अन्न और भोग्य पदार्थ को (अदन्तु) भोग करें।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ३७ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्विद्वांसः। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—सूर्य (उषद्भिः) दाहकारी किरणों के सहित उदित होता है उसी प्रकार (जो (मर्याः) मनुष्य (अकेतवे) अज्ञानी पुरुष को (केतुम्)

ज्ञान प्रदान करते हैं और जो (अपेशसे) धनहीन पुरुष को (पेशः) धन प्रदान करते हैं उन (उषद्भिः) अज्ञान और दारिद्र्यनाशक तेजस्वी पुरुषों के साथ-साथ तू भी हे राजन् ! (अकेतुम्) प्रज्ञाहीन पुरुष को (केतुं कृण्वन्) प्रज्ञा प्रदान करता हुआ (अपेशसे) सुवर्णादि से रहित, निर्धन पुरुष को (पेशः कृण्वन्) सुवर्ण प्रदान करता हुआ (अजायथाः) प्रसिद्ध हो ।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥३८॥

ऋ० ६ । ७५ । १ ॥

पायुर्भारद्वाजः । सन्नाहादीनि संग्रामाङ्गानि, विद्वान् वीरः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जब (वर्मी) कवच पहने हुए योद्धा (समदाम्) संग्रामों के (उपस्थे) समीप (याति) जाता है तब (प्रतीकम्) सेना का का मुख (जीमूतस्य इव) मेघ के समान होता है। जिस प्रकार मेघ बिजुलियों, गर्जनों और बौछारों से भयंकर होता है उसी प्रकार आग्नेयास्त्रों की लपट, शस्त्रों की चमक, उसके गर्जन और शस्त्र वर्षा से सेना का मुख भी भयंकर होता है। अथवा उस कवचधारी वीर का ही (प्रतीकम्) स्वरूप मेघ के समान होता है। शरीर पर मेघ के समान श्याम कवच और हाथ में बिजुली के समान तीव्र तलवार और वर्षण करने को शस्त्रास्त्र होते हैं। हे वीर पुरुष ! (त्वम्) तू ऐसे रणसंकट में भी (अनाविद्धया) बिना चोट खाये, सुरक्षित (तन्वा) शरीर से या अनष्ट विस्तृत सेना से (जय) विजय कर। (वर्मणः) कवच का (सः महिमा) वह महान् सामर्थ्य ही (त्वा पिपर्तु) तेरी रक्षा करे।

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥३९॥

ऋ० ६ । ७५ । २ ॥

वीराः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(धन्वना) धनुष से हम (गाः जयेम) गौओं और भूमियों को विजय करें। (धन्वना आजिम्) धनुष के बल से हम संग्राम का (जयेम) विजय करें। (धन्वना) धनुष के बल से (तीव्राः) अति तीव्र आने वाली (समदाः) मद और हर्ष, गर्व और उत्साह से भरी शत्रु सेनाओं का (जयेम) विजय करें। (धनुः) धनुष (शत्रोः) शत्रु के (अपकामम्) मन चाहे फल का नाश (कृणोति) कर देता है और (धन्वना) धनुष से हम (सर्वाः प्रदिशः) समस्त दिशाओं का (जयेम) विजय करें।

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥४०॥

ऋ० ६। ७५। ३॥

वीराः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(योषा इव) स्त्री जिस प्रकार (वक्ष्यन्ती इव इत्) मानो कुछ कहती हुई सी (कर्णम् आगनीगन्ति) कान के समीप आती और (प्रियं सखायम्) अपने प्यारे सखा, पति को (परि-सस्वजाना) आलिंगन करती हुई (समने पारयन्ती) एक चित्त हो करने योग्य गृहस्थोचित कृत्य पुत्रोत्पत्ति आदि कार्यों के पार लगा देती है इसी प्रकार (इयम् ज्या) यह धनुष की डोरी, (अधिधन्वन्) धनुष पर (वितता) कसी हुई (वक्ष्यन्ती इव इत्) मानो कुछ कहती हुई सी (कर्णम् आगनीगन्ति) कान तक आती है और अपने (सखायं प्रियं परि सस्वजाना) मित्र के समान प्रिय धनुर्दण्ड को आलिंगन करती हुई, (शिङ्क्ते) ध्वनि करती है वही (समने) संग्राम में (पारयन्ती) पार पहुँचा देती या पालन करने वाले को पूर्ण सामर्थ्यवान् करती है।

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्यताꣳ संविदानेऽआर्त्नीऽइमे विष्फुरन्तीऽ अमित्रान् ॥४१॥

ऋ० ६। ७५। ४॥

वीराः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(समना योषा इव) एकचित्त होकर रहने वाली प्रियतमा स्त्री पति को और (माता इव) माता दोनों (सं विदाने) परस्पर मिलकर अपने उस ही प्रेमपात्र (पुत्रम्) पुत्र को (उपस्थे) अपनी गोद या क्रोड में आलिंगन कर (बिभृताम्) धारण करती हैं। उसी प्रकार (इमे आर्त्नी) ये दोनों धनुष की डोरी से बंधी दोनों कोटियां भी धनुर्दण्ड का अथवा (पुत्रम्) पुरुषों की रक्षा करने वाले वीर सेनापति का (बिभृताम्) पोषण करती हैं और (ते) वे दोनों (आचरन्ती) उसके दोनों तरफ पत्नी और माता के समान रक्षक और सेवकरूप से आचरण करने वाली होकर (तान् शत्रून् अपविध्य) उन शत्रुओं को दूर से ही ताड़न करके और (अमित्रान्) शत्रुओं को (विस्फुरन्ती) विविध प्रकारों से विनष्ट करती हुई राजा की (बिभृताम्) रक्षा करें। इसी से धनुर्व्यूह की दोनों सेनाओं का भी वर्णन कर दिया है।

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥४२॥

वीराः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बह्वीनां पिता) बहुत सी कन्याओं का पिता और जिसके (बहुः पुत्रः) बहुत से पुत्र भी हों वे सब बच्चे मिल कर जिस प्रकार (समना अवगत्य) एकत्र होकर (चिश्चाकृणोति) चीं चां करते हैं। उसी प्रकार (इषुधिः) बाणों को धारण करने वाला तूणीर या तरकस (बह्वीनां पिता) बहुत से तीरों का 'पिता' पालक है। (अस्य पुत्रः) इसके गर्भ से निकलने वाले पुत्र भी बाणरूप (बहुः) संख्या में बहुत से हैं। वे सब (समना अवगत्य) युद्ध स्थान में आकर (चिश्चा कृणोति) चीं, चां इत्यादि ध्वनि करते हैं। वह (इषुधिः) तरकस (सर्वाः) समस्त (सङ्काः) संघ बना कर खड़ी हुई (पृतनाः) समस्त शत्रुसेनाओं को (पृष्ठे निनद्धः) पीठ पीछे बंधा रह कर भी (प्रसूतः सन्) जब अपने गर्भ से बाणों को पैदा करता है तब (जयति) विजय करता है।

रथे॑ तिष्ठ॑न्नयति वा॒जिन॑ः पु॒रो यत्र॑ यत्र का॒मय॑ते सुषार॒थिः ।
अ॒भीशू॑नां महि॒मान॑ं पनायत॒ मन॑ः प॒श्चाद॑नु॒ यच्छन्ति र॒श्मय॑ः ॥४३

वीराः । जगती । निषादः ॥

भा०—(सु-सारथिः) उत्तम सारथि, कोचवान्, (रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ भी (यत्र यत्र कामयते) जहां-जहां चाहता है वहां-वहां (वाजिनः) वेगवाम् अश्वों को (पुरः नयति) अपने आगे-आगे ले जाता है। (मनः) मन जिस प्रकार इन्द्रियों को अपने वश रखता है उसी प्रकार (रश्मयः) रासें (पश्चात्) घोड़ों को पीछे से (अनु यच्छन्ति) नियम में बांधे रहती हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! (अभीशूनाम्) इन मन की प्रवृत्तियों के समान वेग से सब तरफ ले जाने वाली रासों के ही (महिमानम्) महान् सामर्थ्य की (पनायत) स्तुति करो उनको ही बड़े महत्व का जानो। उन हीं के वश करने के कार्य को बड़ा आवश्यक जानो ।

अध्यात्म में—मन रासें हैं। उसकी ही सब महिमा है कि वह इन्द्रियों को वश करता है। जैसा काठक उपनिषद् वल्ली ३ । ३, ४ ॥ में है:—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्विचक्षणाः ॥

आत्मा रथ का स्वामी है, शरीर रथ है, बुद्धि सारथि, मन रासें है, इन्द्रिय घोड़े और विषय उनके दौड़ने का स्थान है। बुद्धि, इन्द्रिय और मन वाला आत्मा भोक्ता है ॥

ती॒व्रान् घोषा॑न् कृण्वते॒ वृष॑पाणयोऽश्वा॒ रथे॑भिः स॒ह वा॒जय॑न्तः ।
अ॒व॒क्राम॑न्तः॒ प्रप॑दैर॒मित्रा॑न् क्षि॒णन्ति॒ शत्रूँ॑१॥ रन॑पव्ययन्तः ॥४४॥

ऋ० ६ । ७५ । ७ ॥

वीराः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वृषपाणयः) शस्त्रों के वर्षण करने वाले, धनुषों को हाथ में लिये वीर पुरुष (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) तीव्र, कर्णकटु शब्द करते हैं। इसी प्रकार (रथेभिः सह) रथों के साथ-साथ (वाजयन्तः) वेग से जाने हारे (अश्वाः) घोड़े, घुड़सवार भी (अवक्रामन्तः) भागते-भागते भी (प्रपदैः) अगले पैरों से (अनपव्ययन्तः) स्वामी का अपव्यय वा स्वयं भी कुमार्ग में दूर न भागते हुए, सेनापति व सारथि के वश में रहकर स्वयं नष्ट न होते हुए भी (अमित्रान् शत्रून्) मित्रों से भिन्न, द्वेषी शत्रुओं को (क्षिणन्ति) विनाश करते हैं।

र॒थ॒वाह॑न॒ꣳ ह॒विर॑स्य॒ नाम॒ यत्राऽऽयु॑धं॒ निहि॑तमस्य॒ वर्म॑।
तत्रा॒ रथ॒मुप॑ श॒ग्मꣳ स॑देम वि॒श्वाहा॑ व॒यꣳ सु॑मन॒स्यमा॑नाः ॥४५॥

ऋ० ६। ७५। ८॥

वीराः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(यत्र) जिस रथ पर (रथवाहनम्) रथ को चलाने योग्य उपकरण (हविः) खाने, पीने, पहनने की अन्नादि सामग्री, (नाम) शत्रुओं का नमाने वाले (आयुधम्) अस्त्र-शस्त्र और (यस्य) इस वीर रथी का (वर्म) कवच भी (निहितम्) रखा जाता है (तत्र) उस (शग्मम्) सुखकारी (रथम्) रथ को (वयम्) हम सब (सुमनस्यमानाः) शुभ चित्त होकर (विश्वाहा) सब दिनों (उप सदेम) प्राप्त हों। (२) अध्यात्म में—(रथम्) रसस्वरूप आत्मा को हम प्राप्त हों वही (रथवाहनम्) रस को प्राप्त कराने हारा है। जिसमें (आयुधम्) सब प्रकार के आनन्द (वर्म) परम रक्षास्थान और (हविः) परम उपादेय ज्ञान है।

स्वा॒दु॒ष॒ꣳ स॑दः पि॒तरो॑ वयो॒धाः कृ॑च्छ्रे॒श्रितः॒ शक्ती॑वन्तो गभी॒राः।
चि॒त्रसे॑ना॒ इषु॑बला॒ ऽअमृ॑ध्राः स॒तोवी॑रा ऽउ॒रवो॑ व्रातसा॒हाः ॥४६॥

ऋ० ६। ७५। ९॥

वीराः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(स्वादु-संसदः) स्वादु, रसवान्, उत्तम पदार्थों का सब मिलकर आनन्द लाभ करने हारे, अथवा स्वादु, सुख से एक स्थान पर खड़े, (पितरः) राष्ट्रपालन करने में समर्थ (वयोधाः) बल-वीर्य के धारक (कृच्छ्रेश्रितः) संकट समय में विपत्तियों में रहकर भी (शक्तिवन्तः) शक्तिमान्, बलवान् या शक्ति नाम अष्टचक्रा तोपों को धारने वाले (गभीराः) गम्भीर स्वभाव, (चित्रसेनाः) नाना प्रकार की सेनाओं के स्वामी (इषुबलाः) अस्त्रों द्वारा फेंके जाने वाले बाण आदि के बल से सम्पन्न, (अमृध्राः) अहिंसनीय, दृढ़ शरीर, (सतोवीराः) बीच में विद्यमान, अथवा अति वीर पुरुषों से युक्त, (व्रातसाहाः) वीर समूहों को भी पराजय करने में समर्थ (उरवः) विशाल बाहुओं और शरीर वाले हों।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी ऽअनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो ऽअघशꣳस
ऽईशत ॥ ४७ ॥ ऋ० ६ । ७५ । १० ॥

धनुर्वेदाध्यापकाः । विराट् जगती । निषादः ॥

भा०—(ब्राह्मणासः) ब्रह्मवेद के जानने हारे, वेदज्ञ विद्वान् और (पितरः) पालक, क्षत्रिय लोग (सोम्यासः) सोम, राष्ट्र के हितकारी और सौम्य स्वभाव के हों। वे दोनों (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि के समान प्रकाशक और सबके आश्रय (शिवे) कल्याणकारी, (अनेहसा) निष्पाप, बुरे कर्मों से रहित हों। (पूषा) सर्वपोषक राजा और (ऋतावृधः) सत्य व्यवहार, यथार्थ ज्ञान, 'ऋत' सत्य ज्ञानमय वेद को बढ़ाने हारे जन (नः) हमें (दुरिताद्) दुष्ट आचरणों से (पातु) बचावें और (रक्ष) पालन करें। (अघशंसः) पाप की शिक्षा देने वाला जन (नः माकिः ईशत) हम पर कभी स्वामी न हो।

सुपर्णं वस्ते मृगोऽअस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यꣳसन्
॥ ४८ ॥ ऋ० ६ । ७५ । ११ ॥

वीरः त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(मृगः) तीव्र मृग के समान गतिशील बाण (सुपर्णम्) शोभन पक्षों को (वस्ते) धारण करता है और (अस्याः दन्तः) इस बाण का मुख या फला केवल दन्त के समान काटने वाला होता है। अथवा—बाण (सुपर्णं वस्ते) पक्षी के पंखों को धारण करता और (यस्य दन्तः मृगः) इसका काटने का साधन मृग अर्थात् व्याघ्र के दांत के समान तीक्ष्ण होता है। वह स्वयं (गोभिः) गोचर्म की बनी तांतों से (सनद्धा) खूब बंधा जकड़ा हुआ और (प्रसूता) धनुष द्वारा प्रेरित होकर (पतति) बड़ी दूर जा पड़ता है (यत्र) जहां (नरः) मनुष्य (संद्रवन्ति) परस्पर एक दूसरे के साथ वेग से भागते हैं और (विद्रवन्ति च) एक दूसरे के विपरीत होकर दौड़ते हैं। (तत्र) उस युद्ध काल में भी (इषवः) बाण (अस्मभ्यम्) हमें (शर्म) सुखप्रद आश्रय (यंसन्) प्रदान करते हैं।

'सुपर्ण', 'मृग', 'गो' इत्यादिशब्दाः कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति इति यास्कवचनात् तद्विकारवाचका भवन्ति।

ऋजी॑ते॒ परि॑ वृङ्ग्धि॒ नोऽश्मा॑ भवतु न॒स्त॒नूः ।
सोमो॒ऽअधि॑ ब्रवीतु॒ नोऽदि॑तिः॒ शर्म॑ यच्छतु ॥ ४९ ॥

ऋ० ६ । ७५ । १२ ॥

वीराः । विराडनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(ऋजीते) हे सरल, सीधे मार्ग से जाने वाले बाण ! (नः परिवृङ्ग्धि) तू हमें आघात करने से छोड़ दे। अथवा—हे राजन् ! (ऋजीते) सरल व्यवहार में हमें (परि वृङ्ग्धि) चला। (नः तनूः) हमारा शरीर (अश्मा भवतु) पत्थर के समान कठोर हो। (सोमः) सबका प्रेरक विद्वान्, राजा हमें (अधि ब्रवीतु) उत्तम मार्ग का उपदेश करे और (अदितिः) अखण्ड राजनीति या पृथिवी (नः) हमें (शर्म) शरण, सुख (यच्छतु) प्रदान करे।

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

ऋ० ६ । ७५ । १३ ॥

वीराः, अश्वाजनिः । विराडनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान् पुरुष (एषाम्) इन अश्वों के (सानु) टांगों पर और (जघनान्) जांघों के भागों पर (आजंघन्ति) थोड़ा-थोड़ा मारते हैं और (उप जिघ्नते) हलका-हलका ताड़ते हैं, तब हे (अश्वाजनि) अश्वों को प्रेरणा देने वाली कशे ! या उसको धारण करने वाले सारथे ! तू (अश्वान्) अश्वों को (समत्सु) संग्रामों में (चोदय) प्रेरित कर।

अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ ५१ ॥

ऋ० ६ । ७५ । १४ ॥

महावीरः सेनापतिः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(हस्तघ्नः) हाथ में बंधी डोरी के आघातों से बार-बार ताड़ित होने वाला हाथबन्द नामक कवच जिस प्रकार (बाहुम्) बाहु को (अहिः इव भोगैः) सांप के समान अपने अंगों से (परि एति) बाहु पर चारों ओर से लिपट जाता है और (ज्यायाः) डोरी के (हेतिम्) आघात को (परिबाधमानः) बचाता हुआ मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार (हस्तघ्नः) अपने हाथों से ही शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल वीर पुरुष (भोगैः) अपने पालन करने वाले साधनों से (अहिः इव) मेघ के समान (परि एति) नगर को घेरता है (बाहुम्) पीड़ा देने वाले शत्रु को और (ज्यायाः हेतिम्) डोरियों से फेंके गये बाण (परि बाधमानः) दूर से ही नष्ट करता हुआ (विश्वा वयुनानि) सब प्रकार के ज्ञानों और युद्धकौशलों को जानने

हारा (विद्वान् पुमान्) ज्ञानी पुरुष (पुमांसम्) नगरवासी जन को (विश्वतः) सब प्रकारों से (परि पातु) रक्षा करे ।

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूयाऽ अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धोऽअसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२॥

ऋ० ६ । ४७ । २६ ॥

गर्गो भारद्वाजः । सुवीरो वनस्पतिः । भुरिक्पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य, जलों के पालक मेघ के समान मुख्य सेना पुरुषों के पालक सेनापते ! तू (अस्मत्सखा) हमारा मित्र, (प्रतरणः) युद्ध आदि संकटों से, रथ के समान, नदी पर नाव के समान, पार कराने वाला, (सुवीरः) उत्तम वीर योद्धाओं से युक्त एवं स्वयं भी वीर (वीड्वङ्गः) दृढ अंगों वाला (भूयाः) होकर रह । (गोभिः) रथ जैसे गोमर्चों से ढका एवं रासों से बंधा होता है उसी प्रकार तू (गोभिः) दूध के बने नाना पदार्थों से दृढ़ शरीर या अपने मुख्य नायक की आज्ञाओं से (संनद्धः असि) अच्छी प्रकार बद्ध है । तू (वीडयस्व) खूब वीर कर्म कर । (ते आस्थाता) तेरे आश्रय रहने वाला तेरा अधिष्ठाता भी (जेत्वानि) विजय करने योग्य पदार्थों को (जयतु) जीते ।

दिवः पृथिव्याः पर्योजऽ उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्य्याभृतꣳ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥ ५३ ॥

ऋ० ६ । ४७ । २७ ॥

वीरः । विराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(दिवः) सूर्य या द्यौलोक, आकाश से और (पृथिव्याः) पृथिवी से सब प्रकार का (ओजः) बल और पराक्रम (परिभृतं उद्भृतं च) प्राप्त किया जाता और उत्पन्न किया जाता है और (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वृक्षों से भी (सहः) शत्रुओं के विजय करने में समर्थ बल को

(परि आभृतम्) संग्रह किया जाय । इसी प्रकार (अपाम्) जलों के (ओज्मानम्) बल को (परि) सब तरफ से एकत्र करके प्राप्त कर। (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभिः) किरणों से (आभृतम्) घिरे हुए (वज्रम्) प्रकाशमय तीक्ष्ण ताप रूप वज्र को भी (हविषा) ग्रहण करने वाले उपाय द्वारा (रथम्) रथ या रस, या सार को (यज) प्राप्त कर । (२) राष्ट्र पक्ष में—(दिवः) आकाश से जैसे सूर्य का प्रकाश रूप ओज प्राप्त होता है वैसे ज्ञानी पुरुषों से विज्ञान प्राप्त करो । पृथिवी से जैसे अन्न उत्पन्न किया जाता है वैसे पृथिवी-निवासी प्रजा से अन्न संग्रह करो । वनस्पतियों से जैसे औषधसंग्रह किया जाता है वैसे प्रजा पालक माण्डलिक राजाओं से शत्रुओं का पराजयकारी सेनाबल संग्रह करो । जलों से जैसे नहरें एवं यन्त्रों के चलाने का बल प्राप्त किया जाता है वैसे आप्त प्रजाओं से पुरुष-बल प्राप्त किया जाय । सूर्य की किरणों से जैसे आतशी शीसे वा ता-द्वारा तेज प्राप्त किया जाता है वैसे (इन्द्रस्य) सेनापति की (गोभिः) आज्ञाओं द्वारा (आवृतम्) छिपे (वज्रम्) बल वीर्य को (रथम्) साररूप रस के समान, या शिल्पी जैसे रथ के नाना अंग जोड़कर रथ बनाता है वैसे (यज) उन सब बलों को प्राप्त करके (हविषा) उपाय से, संयोजित कर ।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑ ।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥ ५४ ॥

ऋ० ६ । ४७ । २८ ॥

वीरः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(इन्द्रस्य वज्रः) सेनापति या राजा का जलवर्षक मेघ के विद्युत् के समान प्रखर (वज्रः) शत्रुनिवारक शस्त्रास्त्र, सेना आदि बल वीर्य और (मरुताम्) प्रचण्ड वायुओं के समान तीव्र वेगवान् एवं शत्रु-मारक सेनापतियों का (अनीकम्) सैन्य है और (मित्रस्य गर्भः) सूर्य के समान तेजस्वी, स्नेही मित्र का ग्रहण-सामर्थ्य और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष,

दुष्टनिवारक, बलवान् स्वयंवृत राजा का (नाभिः) प्रबन्धबल या संघबल है। (सः) वह सब हे (देव) राजन्! तू ही है। हे (रथ) रथ के समान वेग से जाने वाले अंग प्रत्यग में दृढ़ एवं रमणीय गुणों से युक्त! वह तू (नः) हमारे (हव्यदातिम्) अन्नादि के दान को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (हव्या) समस्त ग्राह्य पदार्थों को (प्रति गृभाय) ग्रहण कर।

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनु॒तां विष्ठि॑तं॒ जग॑त्।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ऽ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥५५॥

ऋ० ६। ४७। २९॥

वीराः, दुन्दुभिः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (दुन्दुभे) नगारे के समान गम्भीर गर्जन करने एवं शत्रुगणों को मारने हारे अथवा शत्रुबल को वृक्षवत् चीर देने हारे परशु के समान तीक्ष्ण! तू (पृथिवीम्) पृथिवी-निवासिनी प्रजा को (द्याम्) आकाश के समान उन्नत पुरुषों या राजसभा को भी (उप श्वासय) आश्वासन दे, उनको प्राणयुक्त कर। (जगत्) समस्त जगत् (विष्ठितम्) विविध प्रकारों से स्थित सुरक्षित होकर (त) तुम्हें (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (मनुताम्) जाने। (सः) वह तू (इन्द्रेण) राजा और सेनापति के साथ (देवैः) और देवों, विद्वान् पुरुषों के साथ (सजूः) मिलकर (दूरात् दवीयः) दूर से भी दूर के (शत्रून्) शत्रुओं को (अपसेध) पराजित कर। जैसे दुन्दुभि भयंकर शब्द से दूर से ही शत्रुओं को दहलाता है वैसे राजा भी भेदनीति, गर्जना और मन्त्रबल से राष्ट्र की रक्षा और परबल का नाश करे। 'दुन्दुभिः' दुन्दुभिरिति शब्दानुकरणम्। द्रुमो भिन्नमिति वा दुंदुभ्यतेर्वा स्याद् वधकर्मणः॥ निरु०॥

आ क्र॑न्दय॒ बल॒मोजो॑ न॒ऽ आ धा॒ निष्ट॑निहि दुरि॒ता बाध॑मानः।
अप॑ प्रोथ दुन्दुभे दु॒च्छुना॑ऽ इ॒त इन्द्र॑स्य मु॒ष्टिर॑सि वी॒डय॑स्व ॥५६॥

ऋ० ६। ४७। ३०॥

भुरिक् त्रिष्टुप। धैवतः॥

भा०—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभे ! भेरी के समान भैरव गर्जन करने शत्रुओं को परशु के समान काटने और भेदने हारे नीतिमन् ! तू (बलम् आक्रन्दय) सैन्यबल को बुलाकर तैयार रख। (नः) हम प्रजाओं में (ओजः) पराक्रम को (आ धाः) धारण करा (निः स्तनिहि) खूब गर्जना कर। (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) दूर करता हुआ (दुच्छुनाः) दुःखदायी पुरुषों को (इतः) हमारे राष्ट्र से (अप प्रोथ) दूर भगा। तू (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) इन्द्र, राजा के प्रहारक मुक्के के समान प्रबल प्रहार करने वाला (असि) है। तू (वीडयस्व) अपने को दृढ़ बना। (२) दुन्दुभि पक्ष में—दुन्दुभि बल को एकत्र करे। सेना में बल फूंक दे, बुरे भावों को बाध कर वीर-भाव सञ्चारित करे। सेनापति के मुक्के के समान दुःखदायी शत्रुओं के दिलों को धुन डाले।

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

ऋ० ६ ॥ ४७ । ३१ ॥

भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सेनापते ! (अमूः) इन परायी सेनाओं को (आ अज) सम्मुख से परे हटा। (इमाः प्रति आवर्त्तय) इनको लौटा डाल। (केतुमत् दुन्दुभिः) ध्वजा वाला नगारा जैसे जोर से शब्द करता है, उसी प्रकार यह (केतुमत्) प्रज्ञावान्, शत्रुहिंसक, सेनापति (वावदीति) बराबर आज्ञाएं दे और (नः) हमारे (अश्वपर्णाः) अश्वों से दौड़ने वाले, घुड़सवार (नरः) वीर (चरन्ति) वेग से विचरें और (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) रथारोही वीर (जयन्तु) शत्रुओं पर विजय करें।

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः

कुल्माषं ऽ ऐन्द्राग्नः सꣳहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्णऽएकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥

भुरिगत्यष्टिः । गांधारः ॥

भा०—राष्ट्र के भिन्न-भिन्न अधिकारियों के अधीन नियुक्त पुरुषों के भिन्न-भिन्न लक्षण । (कृष्णग्रीवः आग्नेयः) अग्नि नामक प्रधान अग्रणी पुरुष गर्दन में कृष्ण वर्ण का चिह्न रखें । (सारस्वती मेषी) सरस्वती नामक सभा के विद्वान् पुरुष मेषी अर्थात् भेड़ी के समान श्वेत वस्त्र वाले अथवा ऊन का वस्त्र धारण करें । (सौम्यः बभ्रुः) 'सोम' नाम पदाधिकारी पुरुष 'बभ्रु' अर्थात् भूरे रंग की पोशाक पहने । (पौष्णः श्यामः) पूषा अधिकारी के पुरुष श्याम रंग के पोषाक पहनें । (बार्हस्पत्यः शितिपृष्ठः) बृहस्पति के अधीन पुरुष पीठ पर काले रंग के पोशाक वाला हो । (वैश्वदेवः शिल्पः) विश्वे देव अर्थात् सामान्य प्रजा के सेवक जन नाना वर्णों के पोशाक वाले हों । (ऐन्द्रः अरुणः) 'इन्द्र' सेनापति के लाल केसरिया । (मारुतः कल्माषः) 'मरुत्' तीव्र वेगवान् सेना के सैनिक जन कल्माष, चितकबरे या खाकी रंग की पोशाक पहनें । (ऐन्द्राग्नः संहितः) इन्द्र और अग्नि दोनों के समान रूप से कर्त्ताजन, मिले हुए पोशाक पहनें । (सावित्रः अधोरामः) 'सविता' के नीचे से श्वेत हों, (वारुणः कृष्णः) वरुण के भृत्य काले पोशाक के हों, परन्तु (पेत्वः) अति वेग से जाने वाले का या पूरे सवारी में (एकशितिपात्) एक पैर काले रंग का हो ।

ये चिह्न भिन्न-भिन्न विभागों के कार्यकर्त्ताओं के नियत किये जायें अथवा उन-उन विभाग के चिह्नों पर इस-इस प्रकार के पशु का चित्र हो ।

अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माषं ऽ आग्नेयः कृष्णोऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ॥ ५९ ॥

५८, ५९, ६०—इमानि ब्राह्मणवाक्यानि द्रव्यदेवताप्रतिपादकानि न तु मन्त्राः इति महीधरो याज्ञिकोऽनन्तदेवश्च ॥

भुरिगतिशक्करी । पंचमः ॥

भा०—(अनीकवत अग्नये रोहिताञ्जिः अनड्वान्) अनीकवान्, सेनामुख के स्वामी, अग्रणी पुरुष का लक्षण लाल वर्ण का वृषभ हो। अर्थात् जिस प्रकार लाल लंगोटी का बैल शकट को ढोता है उसी प्रकार वह अग्रणी पुरुष सेनाव्यूह के अग्र में रह कर सेनाव्यूह को मार्ग पर ले जाता है। इसी से उस अग्रणी नेता का व्यंग्य लक्षण लाल चिह्न का शकटवाही बैल है। (अधोरामौ सावित्रौ) सविता अर्थात् पुत्र-प्रजनन करने में समर्थ स्त्री पुरुष अपने अधोभाग, इन्द्रियों से रमण करते हैं उससे उनके प्रतिनिधि चिह्न 'अधोराम' नीचे को शुक्र वाले या अधोभाग में शुक्र = श्वेत भाग वाला पशु नियत जानो। (पौष्णौ) प्रजाओं के पालन पोषण करने वाले धनाढ्य स्त्री-पुरुष दोनों (रजतनाभी) मानो सबको सुवर्ण, चांदी, धन से अपने साथ बांध लेने में समर्थ होते हैं। इसलिये उनके लक्षण नाभि में स्थित श्वेत वर्ण वाले दो पशु हैं। (वैश्वदेवौ पिशङ्गौ) विश्वदेव, सामान्य प्रजा के स्त्री-पुरुष निःशस्त्र होने से (तुपरौ) बिना सींग के पशु उनके चिह्न हैं। (मारुतः कल्माषः) वायु यथा वेग से आकाश को धूलिधूसरित या मेघावृत कर देता है उसी प्रकार मरुत् के समान तीव्र वेगवान् सेना के जन युद्धस्थल को नाना वर्णों से रंग देते हैं इसलिये उनका निदर्शक चिह्न चितकबरा या खाकी पशु है। (आग्नेयः कृष्णः यजः) अग्नि अस्त्र आदि के विभाग का चिह्न 'श्याम यज' है, क्योंकि उनके अग्नि-अस्त्र में श्याम अर्थात् काला बारूद, मसाला और अज अर्थात् गोले आदि के दूर फेंकने के लिये बल प्रयुक्त होता है इस श्लेष से उनका निदर्शक 'कृष्ण यज' है। (सारस्वती मेषी) भेड़ जिस प्रकार सिर झुका कर चलती है और मेष जिस प्रकार माथे से प्रहार करता है उसी प्रकार सरस्वती के उपासक विद्वान् विनय से रहते हैं और मस्तक से विज्ञान द्वारा स्पर्धा करते हैं, इसलिये उनकी सभा सरस्वती का लक्षण 'मेषी' है। (वारुणः पेत्वः) जल जिस प्रकार अति शीघ्रगामी है और जिस प्रकार

दुष्टों का वारक दमनकारी सिपाही भी अति शीघ्रकारी है उसका चिह्न भी (पेत्वः) शीघ्रगन्ता अश्व है ।

[1]अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल ऽ इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविꣳशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये[2] पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र ऽऔष्णिहाय त्रयस्त्रिꣳशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः ॥ ६० ॥

१ विराट् संकृतिः । गांधारः ॥ २ धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(गायत्राय) गायत्री छन्द से जाने गये ब्राह्म बल से युक्त और (राथन्तराय) रथ, बल या आत्मज्ञान से तरण करने वाले (अग्नये) अग्नि, अग्रणी, प्रधान पुरुष के लिये (अष्टाकपालः) आठ कपालों में परिपक्व विचार आवश्यक है । वह अपने अधीन विचारार्थ आठ विचारवान् पुरुषों को नियुक्त करे । (त्रैष्टुभाय) क्षात्र बल से युक्त (पञ्चदशाय) पन्द्रह अंगों से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (एकादशकपालः) ११ कपालों अर्थात् विद्वान् पुरुषों से परिपक्व विचार आवश्यक है । (जागतेभ्यः) जागत अर्थात् वैश्यों से समृद्ध (वैरूपेभ्यः) नाना प्रकार की रुचि वाले (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त दानशील पुरुषों के लिये (द्वादशकपालः) १२ कपालों, १२ विद्वानों द्वारा विचार आवश्यक है । (मैत्रावरुणाभ्यां आनुष्टुभाभ्यां एकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या) प्राण और अपान के समान मित्र और वरुण, दोनों आनुष्टुभ अर्थात् इस सामान्य जनों के हितकारी २१ अधिकारियों से युक्त विशेष कान्ति दोनों को 'पयस्या' चरु हो अर्थात् दूध जिस प्रकार शुद्ध सात्विक एवं पुष्टिप्रद है उसी प्रकार शुद्ध सात्विक और पुष्टिप्रद पुरुष ही प्रजा के न्याय निर्णय और दुष्ट दमन

के कार्यों का विधान करें। (पांक्ताय त्रिनवाय, शाकराय बृहस्पतये चरुः) पाचों जनों के हितकारी २७ विभागों से युक्त शक्तिशाली बृहस्पति के लिये (चरुः) अन्नमात्र भोग्य पदार्थों की व्यवस्था होनी चाहिये। (सवित्रे) प्रजोत्पत्ति करने वाले (औष्णिहाय) अति अधिक स्नेहवान् (त्रयः त्रिंशाय) तेतीस विभागों से युक्त, (रैवताय) धनधान्यवान् के लिये (द्वादशकपालः) १२ कपालों में संस्कृत अर्थात् १२ विद्वानों द्वारा सुविचारित (प्राजापत्यः) प्रजापालक माता-पिता के निमित्त (चरुः) विधान होना चाहिये। (आदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुः) राजा की अखण्ड पालक शक्ति के लिये भी परिपक्क विचार होना आवश्यक है। (वैश्वानराय अग्नये द्वादशकपालः) समस्त नरनारी के हितकारी नेता के लिये द्वादश कपाल अर्थात् उसके अधीन १२ विद्वान् विचारक हों। (अनु त्वा अष्टाकपालः) अनुमति नाम सभा के लिये आठ कपाल अर्थात् आठ विद्वान् आवश्यक हैं। कपाल शब्द केवल विभागप्रदर्शक है।

॥ इति इत्येकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३०, ३१] नारायणः ऋषिः। *

॥ ओ३म् ॥ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ १ ॥

सविता देवता। त्रिष्टुप् धैवतः ॥

---

* अथ पुरुषमेधः। शत० १३। ६। २। १—२० ॥

भा०—हे (सवितः) जगत् के उत्पादक ! हे (देव) सबके द्रष्टा और प्रकाशक परमेश्वर ! विद्वन् ! (यज्ञम्) परस्पर संगति से होने वाले कार्य का (प्रसुव) भली प्रकार संचालन कर और (भगाय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (यज्ञपतिम्) यज्ञ, प्रजापालक, राष्ट्र के पालक राजा का (प्रसुव) उत्तम रीति से अभिषेक कर। (दिव्यः) ज्ञान और प्रकाशक गुणों से युक्त होकर (गन्धर्वः) गौ, वाणी और पृथिवी का धारण करने वाला परमेश्वर, विद्वान् और राजा (केतपूः) अपने ज्ञान से सबको पवित्र करने हारा होकर (नः केतम्) हमारे ज्ञान और चित्त को (पुनातु) पवित्र करे और वह (वाचस्पतिः) समस्त वाणियों का पालक, आज्ञाओं और वाणियों का स्वामी (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) स्वादयुक्त, मधुर करे वा रुचि से सुने। शत० १३।६।२।९॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ २ ॥

विश्वामित्रः। सविता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक और सबके प्रकाशक प्रभु, परमेश्वर के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त कराने एवं वरण करने योग्य, (भर्गः) पापों के भून डालने वाले तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः) हमारे (धियः) बुद्धियों, कर्मों और वाणियों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग में प्रेरित करे। शत० १३।६।२।९॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ३ ॥

श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (देव सवितः) सर्वप्रकाशक ! सर्वोत्पादक परमेश्वर ! (विश्वानि) सब प्रकार के (दुरितानि) दुष्ट आचरणों और दुःखदायी, बुरे व्यसनों को (परा सुव) दूर करो। (यत् भद्रम्) जो सुखदायक,

कल्याणकारी है (तत्) उसे (नः) हमें (आसुव) प्राप्त कराइये। शत० १३। ६। २। ९॥

विभक्तारं॑ँ हवामहे वसो॑श्चित्रस्य राध॑सः।
सवितारं॑ नृचक्ष॑सम् ॥ ४॥

मेधातिथिर्ऋषिः। सविता देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(चित्रस्य) विचित्र, (वसोः) इस पृथ्वी पर बसने वाले चराचर जीव संसार के बसाने वाले प्रभु के (राधसः) धन के (विभक्तारम्) विभाग करने वाले, उनको नाना वर्गों, श्रेणियों और कर्मों में विभक्त करने वाले, (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों के द्रष्टा, सर्वसाक्षी, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक 'सविता' नाम विद्वान् और परमेश्वर की (हवामहे) हम स्तुति करते हैं।

ब्रह्म॑णे ब्राह्मणं॑ क्षत्राय॑ राजन्यं॑ मरुद्भ्यो॑ वैश्यं॑ तप॑से शूद्रं॑ तम॑से तस्क॑रं नारकाय॑ वीरहणं॑ पाप्मने॑ क्लीबमा॑क्रयाया॑ऽ अयोगूं॑ कामा॑य पुँश्चलूमति॑क्रुष्टाय मागधम् ॥ ५॥

स्वराडतिशक्वरी। पंचमः।

भा०—(१) (ब्रह्मणे ब्राह्मणम्) ब्रह्म, परमेश्वर की उपासना, ब्रह्म ज्ञान, वेदाध्ययन, अध्यापन के लिये 'ब्राह्मण' ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् को नियुक्त करो। (२) (क्षत्राय राजन्यम्) प्रजा को विनष्ट होने के बचाने, राज्य पालन और वीर्य पराक्रम के लिये 'राजन्य', श्रेष्ठ राजा को नियुक्त करो। (३) (मरुद्भ्यः वैश्यम्) मनुष्यों के हित के लिये, उनके अन्न आदि उत्पन्न करने, गोपालन और प्रदान और नाना व्यवसायों के लिये (वैश्यम्) वैश्य को नियुक्त करो। (४) (तपसे) श्रम के कार्य के लिये (शूद्रम्) शीघ्र गति से जाने वाले, श्रमशील पुरुष को नियुक्त करो।

[५-३०] ब्रह्मणे ब्राह्मणमिति द्व कण्डिके, 'तपसे'०नुवाकश्च (इत्यध्यायपरिसमाप्तिपर्यन्तो ऽनुवाकश्च), ब्राह्मणम् इति सर्वानुक्रमणिका।

(५) (तमसे) अन्धकार के भीतर कार्य करने के लिये (तस्करम्) जो उसमें कार्य करने में समर्थ है उसे नियुक्त करो। (६) (नारकाय वीरहणम्) नीचे की योनि नीच स्तर के कष्ट भोगने के लिये (वीरहणम्) पुत्रों और वीर्यवान् पुरुषों के नाश करने वाले को पकड़ो। (७) (पाप्मने क्लीबम्) पाप को नष्ट करने के लिये 'क्लीब' शक्तिहीन पुरुष को नियुक्त करो कि वह पाप कर ही न सके अथवा पाप पर विजय करने के लिये क्लीब का अनुकरण करो, अर्थात् पाप के प्रति स्वतः नपुंसक के समान उदासीन होकर रहे। (८) (आक्रयाय अयोगूम्) सब प्रकार के पदार्थों के क्रय-विक्रय करने के लिये 'अयोगू' अर्थात् चांदी सोने के परिमाण, सिक्कों की गणना और व्यवहार-विज्ञ पुरुष को नियुक्त करो। (९) (कामाय पुंश्चलूम्) काम के उपभोग में गिरने के निमित्त पुरुषों में अति चंचल स्वभाव के पुरुष या स्त्री को दोषयुक्त जानो। (१०) (अतिक्रुष्टाय मागधम्) अति राग से आलाप करने के लिये 'मागध' को उपयुक्त जानो। शत० १३। ६। २। १० ॥

नृत्ताय॑ सू॒तं गी॒ताय॑ शैलू॒षं धर्मा॑य सभाच॒रं न॒रिष्ठा॑यै भीम॒लं न॒र्माय॑ रे॒भꣳ हसा॑य॒ कारि॑मान॒न्दाय॑ स्त्रीष॒खं प्र॒मदे॑ कुमारीपु॒त्रं मे॒धायै॑ रथका॒रं धैर्या॑य॒ तक्षा॑णम् ॥ ६ ॥

निचृदष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—(११) (नृत्ताय) नाट्य के लिये (सूतम्) दूसरे से प्रेरित होने वाले अथवा नाटक के पात्रों के प्रेरक पुरुष को नियुक्त करो।

सूतम् क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां जातम् इति दयानन्दः।

(१२) (गीताय शैलूषम्) गीत कर्म के लिये 'शैलूष' नट को उपयुक्त जानो जो नाना भावविकारों को दर्शाते हुए गा सके। (१३) (धर्माय सभाचरम्) धर्म, अर्थात् स्मृतिशास्त्र राज-नियम या विधान के निर्णय के लिये 'सभाचर', धर्मसभा में कुशल पुरुष को उपयुक्त जानो। (१४)

(नरिष्ठायै) नेता का पद प्राप्त करने के लिये (भीमलम्) भयंकर, भीतिप्रद पुरुष को नियुक्त करो, जिसके भय से प्रजाजन उस पद का मान करें। (नर्माय) कोमल वचनों के प्रयोग करने के कार्य में (रेभम्) सुन्दर वचनों को प्रयोग करने वाले, स्तुति करने में चतुर पुरुष को प्राप्त करो। (१६) (हसाय) आनन्द विनोद और उपहास के काम में (कारिम्) नकल उतारने वाले को चतुर जानो। (१७) (आनन्दाय) आनन्द, गृहसुख प्राप्त करने में (स्त्रीसखम्) स्त्री के साथ मित्र रूप से रहने वाले पति को योग्य जानो। (१८) (प्रमदे) अति अधिक हर्ष, कामवेग के उत्पत्ति में (कुमारीपुत्रम्) कुमारी दशा में से उत्पन्न कानीन सन्तान को जानो अर्थात् कुमारी दशा में जो संतान होते हैं वे अयुक्त काम व्यसनों में फंसकर प्रायः दुराचारी होते हैं इसलिये उनको दूर करने का यत्न करो। (१९) (मेधाय) वृद्धि के कार्य में (रथकारम्) रथकार को दृष्टान्त के रूप से जानो। रथकार जैसे कौशल से रथ के अवयवों को लगाता है वैसे बुद्धिपूर्वक कार्ययोजना के लिये रथकार का अनुकरण करना चाहिये। (२०) (धैर्याय) धैर्य की शिक्षा के लिये (तक्षणम्) तनखान को दृष्टान्त रूप से जानो। जैसे श्रम से तनखान छोटे से औजार से बड़ी धीरता से अपने हाथ पांव को बचाते हुए लकड़ी गढ़ कर कपाट, मेज, कुर्सी आदि बनाता है उसी प्रकार हम धैर्य से साधनों का प्रयोग कर पदार्थों को तैयार करें।

तप॑से कौला॒लं मा॒याये॑ कर्मा॒रꣳ रू॒पाय॑ मणिका॒रꣳ शु॒भे व॒पꣳ श॑र॒व्या॒या॑ इषुका॒रꣳ हे॒त्यै ध॑नुष्का॒रं कर्म॑णे ज्याका॒रं दि॒ष्टाय॑ रज्जुस॒र्जं मृ॒त्यवे॑ मृग॒युमन्त॑काय श्व॒निन॑म् ॥ ७ ॥

निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(२१) (तपसे कौलालम्) अग्नि के तपाने के कार्य में (कौलालम्) घड़े बनाने वाले कुम्हार का अनुकरण करो। वह कच्चे बरतनों को विधि से रख कर अग्नि से तपाता है उसी प्रकार हम भी मां

बाप, आचार्य अपने शिष्यों और राजा अपने प्रजा और राष्ट्र के कार्यों की रक्षा करते हुए उनको परिपक्व एवं दृढ़ करें। (२२) (मायायै कर्मारम्) बुद्धि और आचार्य के कार्यों के लिये लोहकार का अनुकरण करो। वह बुद्धिमत्ता से लोहे आदि की नाना वस्तुएं बनाता है वैसे ही नाना पदार्थों को उत्पन्न करने का कौशल उससे सीखना चाहिये। (२३) (रूपाय मणिकारम्) सुन्दर जड़ाऊ पदार्थ को बनाने के लिये 'मणिकार' का अनुकरण करो। मणियों के आभूषण बनाने वाला सूक्ष्मता से मणियों को जड़ता है, वह सुन्दर आभूषण बन जाता है, उसी प्रकार पदार्थों को सुन्दर बनाने का यत्न करो। (२४) (शुभे) मुख की शोभा के लिये (वपम्) केश डाढ़ी के काटने वाले नाई को लो। राष्ट्र की सुख समृद्धि के लिये (वपम्) बीज वपन करने वाले किसान को लो। सुन्दरता को पैदा करने के लिये जिस प्रकार नाई औजारों से मुख की शोभा के विघातक बालों को छांट कर सुन्दर बना देता है उसी प्रकार राजा भी राष्ट्र के शोभा के नाशक कारणों को दूर कर और दुर्भिक्षादि को दूर करने के लिये कृषकों को नियुक्त करे। कृषक के समान ही मनुष्य अपनी शुभ सन्तान के लिये धैर्य से स्त्री रूप भूमि में बीज वपन करे, उसके समान ही सन्तानों की देख-रेख भी करे। (२५) (शरव्यायै) वाणों को प्राप्त करने के लिये (इषुकारम्) बाण बनाने वाले तथा शस्त्रों के शिल्पी को प्राप्त करो, उसे राष्ट्र में बसाओ। (२६) (हेत्यै धनुष्कारम्) देर फेंकने वाले अस्त्रों के लिये धनुष आदि यन्त्र बनाने वाले शिल्पी को प्राप्त करो। (२७) (कर्मणे) अधिक देर तक युद्ध कार्य करने के लिये (ज्याकारम्) डोरी के बनाने वाले को प्राप्त करो। युद्ध अधिक कार्य से डोरी का बार-बार टूटना सम्भव है, इसलिये उसके बनाने वाले से बराबर डोरियां प्राप्त हो सकेंगी। (२८) (दिष्टाय) बहुत लम्बी रचना के लिये (रज्जुसर्जम्) लम्बी रस्सी बनाने वाले का अनुकरण करो। वह छोटे-छोटे निर्बल तृणों से भी बट २ कर लम्बा रस्सा बना लेता है। उसी प्रकार राजा अल्पशक्ति वाले मनुष्यों

की और उनको उसके समान पुनः आवर्त्तन या अभ्यास द्वारा दृढ व परिपक्व कर दृढ़ सेना बनावे। (२९) (मृत्यवे मृगयुम्) मृत्यु अर्थात् दुष्ट प्राणियों के वध के लिये (मृगयुम्) व्याध को उपयुक्त जानो। दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये राजा व्याध का अनुकरण करे। उसी के समान खोज-खोज कर दुष्ट पुरुषों को नाना उपाय से प्रलोभन आदि दे के जाल में फांस और उनको पकड़ कर निर्दय होकर मृत्युदण्ड दे। (३०) (अन्तकाय श्वनिनम्) दुष्ट प्राणियों का अन्त करने के लिये 'श्वनी' अर्थात् कुत्ते पालने वाले शिकारी को ले। जिस प्रकार कुत्तों के साथ शिकारी शिकार को घेर कर व्याघ्र आदि को भी मार लेता है उसी प्रकार राजा भी शत्रु और दुष्ट पुरुषों को घेर-घेर कर नष्ट करे।

'दिष्टाय रज्जुसर्पम्' और 'अन्तकाय स्वनिनम्' पाठ असंगत है।

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सराभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य ऽ उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यतांया ऽ अकितवं पिशाचेभ्यों विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

क्रतिः। निषादः ॥

भा०—(३१) (नदीभ्यः) नदियों को पार करने के लिये (पौञ्जिष्ठम्) काष्ठखण्डों के पुञ्जों या बड़े पशुओं की खालों की मशकों का बेड़ा बना कर तैरने वाले पुरुषों को नियुक्त करे। (३२) (ऋक्षीकाभ्यः नैषादम्) रीछ जाति के वनचारी जन्तुओं के लिये नैषाद, निषाद या जंगली जाति के पुरुषों को नियुक्त करो। वे रीछ आदि का सुगमता से वध कर देते हैं अथवा—(ऋक्षीकाभ्यः) कुटिल चाल वाली स्त्रियों को वश करने के लिये (नैषादम्) नीच धर्म से रहने वाले पुरुषों को ही नियुक्त करे। (३३) (पुरुषव्याघ्राय) पुरुषों में व्याघ्र के समान शूरवीर पुरुषों के पद के लिये (दुर्मदम्) दुर्दान्त, अदम्य पुरुष को नियुक्त करे। (३४) (गन्धर्वा-

प्सरोभ्यः) युवा पुरुष और युवती स्त्रियों की रक्षा के लिये (व्रात्यम्) व्रात अर्थात् मनुष्य समूहों के हितकारी विद्वान् को नियुक्त करो। (३५) (प्रयुग्भ्यः) उत्कृष्ट योगाभ्यासों के लिये प्रवृत्त, (उन्मत्तम्) उत्तम कोटि के हर्ष से युक्त योगी को जानो। (३६) (सर्वदेवजनेभ्यः अप्रतिपदम्) राष्ट्र भर में गुप्तचर के काम के और 'देवजन' अर्थात् युद्ध के विजयार्थ सैनिक कार्य के लिये अज्ञात पुरुष को प्राप्त करे, जिसको कोई जान न सके ऐसे को चर बनावे और जो किसी को कुछ नहीं समझे ऐसे वीर को सिपाही बनावे। (३७) (अयेभ्यः) पासों को खेलने के लिये (कितवम्) जुआरी पुरुष को दोषी जाने। (३८) (ईर्यतायै अकितवम्) दूसरों को सन्मार्ग पर ले चलने के लिये छल-कपट से रहित सज्जन पुरुष को नियुक्त करे। (३९) (पिशाचेभ्यः) कच्चे मांस पर गीधों की तरह रूप-भोग पर पड़ने वाले पुरुषों को वश करने के लिये (विदलकारिम्) विरुद्ध दल खड़ा करा देने वाली भेद नीति का प्रयोग करे। (४०) (यातुधानेभ्यः कण्टकीकारिम्) कुटिल मार्गों से धन प्राप्त करने वाले और प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, ठगों, चोर, लुटेरों के वश करने के लिये कण्टकी अर्थात् हिंसा करने वाली नीति वा सेना वा तीव्र दृष्टि का प्रयोग करे।

कण्टकः कन्तपो वा कृन्ततेर्वा कन्टतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। निरु० ॥ कण्टति पश्यति परान् इति स्कन्दस्वामी।

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीᳪसंज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥९॥

स्वराडत्यष्टिः । गांधारः ॥

भा०—(४१) (संधये) परस्त्रीगमन के दोष के कारण (जारम्) जार, व्यभिचारी पुरुष को राष्ट्र से दूर करे। अथवा (संधये) परराष्ट्र से संधि करने के लिये (जारम्) उत्तम रीति से बात कहने वाले, वाक्य-कुशल विद्वान् को नियुक्त करे। (४२) (गेहाय) घर में विद्यमान स्त्री के

प्रति दुर्बुद्धि से (उपपतिम्) पति के समान भोग करने में प्रवृत्त उपपति पुरुष को राष्ट्र से दूर करे। (४३) (आर्त्यै) आर्ति अर्थात् क्षुधा आदि पीड़ा को दूर करने के लिये (परिवित्तम्) पर्याप्त धनवान् पुरुष को प्राप्त करो। (४४) (निर्ऋत्यै) निर्ऋति अर्थात् भूख, महामारी आदि कष्टों को दूर करने के लिये (परि-विविदानम्) सब तरफ से साधनों को प्राप्त करने वाले को नियुक्त करो। (४५) (अराध्यै) कार्य में सिद्धि न हो तो उसको या दरिद्रता को दूर करने के लिये (एदिधिषुः पतिम्) पूर्व ही धारण करने योग्य सम्पत्ति के पालक स्वामी को प्राप्त करो।

लौकिक संस्कृत में छोटे भाई के विवाहित हो जाने पर जो बड़ा अविवाहित है वह 'परिवित्त' और छोटा भाई 'परिविविदान' कहाता है। इसी प्रकार बड़ी बहिन के विवाह के पूर्व छोटी बहिन विवाह करे तो वह 'एदिधिषु' या 'अग्रे दिधिषु' है उसका पति 'एदिधिषूपति' कहाता है। महर्षि के मत में—(आर्त्यै) काम पीड़ा में प्रवृत्त हुए (परिवित्तम्) विवाहित छोटे भाई के अविवाहित बड़े भाई को दूर करो। अर्थात् उसका भी विवाह करो। या राजा ऐसे नियम बनावे कि बड़े भाई के पहले छोटे भाई का विवाह न हो। इससे स्त्री की अभिलाषा के कारण गृहकलह न होंगे। (निर्ऋत्यै परिविविदानम्) निर्ऋति अर्थात् पृथिवी के लेने के लिये प्रवृत्त परिविविदान बड़े भाई की उपेक्षा करके दाय भाग लेने वाले छोटे भाई को दूर करो। अर्थात् राजा नियम बना दे कि बड़े भाई की उपेक्षा करके छोटे भाई को जायदाद न मिले। इसी प्रकार (अराध्यै एदिधिषुः पतिम्) बड़ी कन्या के अविवाहित रहते हुए भी छोटी कन्या का विवाह करने वाले पुरुष को 'अराधि' अर्थात् अविद्यमान सिद्धि में प्रवृत्त जान कर उसे दूर करो। इसका तात्पर्य यह कि बड़ी कन्या के विवाह हो जाने पर यदि कोई पुरुष अप्राप्तकाला छोटी कन्या से ही विवाह करने में प्रवृत्त हो तो राजा उसको दूर करे अर्थात् राजा ऐसा नियम बना दे कि प्राप्त-काल बड़ी कन्या के होते हुए अप्राप्तकाल छोटी कन्या को कोई विवाह न

करे। (४६) (निष्कृत्यै) प्रायश्चित, संताप आदि द्वारा मलशोधन करना 'निष्कृति' है उसके लिये (पेशस्कारीम्) सुवर्ण को तपा-तपा कर शुद्ध करने की शैली का प्रयोग करो। महर्षि के मत से—प्रायश्चित के लिये (प्रवृत्त) 'पेशस्कारी' अर्थात् रूप बनाकर बैठने वाली व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो अर्थात् प्रायश्चितों द्वारा मानसिक मलों को दूर करने के लिये (पेशस्कारीम्) रूप बना कर लुभा लेने वाली स्त्रियों को दूर करे, उनके प्रलोभनों से बचे। (४७) (संज्ञानाय स्मरकारीम्) ज्ञान को भली प्रकार प्राप्त करने के लिये स्मरण, अनुचिन्तन, पुनः पुनः मनन क्रिया का अभ्यास करो। बार-बार अभ्यास और मनन करने से उत्तम ज्ञान हो जाता है। महर्षि के मत में—(संज्ञानाय प्रवृताम् स्मरकारीं परासुव) भली प्रकार कामचेष्टा को जगाने में लगी स्मरकारी अर्थात् काम जानने वाली दूती को दूर करो। इससे काम-प्रबोध न होगा। (४८) (प्रकामोद्याय) उत्तम कामना से कहने के लिये (उपसदम्) निकटतम व्यक्ति को ही प्राप्त करे। अर्थ—उत्तम इच्छाओं के कथन वा यथेष्ट विषयों पर विवाद द्वारा निर्णय करने के लिये (उपसदम्) समीप स्थित होकर विचार करने वाली उपसमिति को प्रयुक्त करो अथवा यथेष्ट बातचीत करने के लिये निकटतम मित्र को प्राप्त करो। (४९) (वर्णाय) किसी बात को स्वीकार करा देने के लिये (अनुरुधम्) अनुरोध करने वाले पुरुष की नियुक्ति करो। (५०) (बलाय उपदाम्) बल अर्थात् सैन्य बल की वृद्धि के लिये उनमें अधिक उत्साह बढ़ाने के लिये (उपदाम्) भेट पुरस्कार देने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳस्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायाऽअभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥१०॥

... निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(५१) (उत्सादेभ्यः) विनाशकारी कार्यों के लिये (कुब्जम्) कुत्सित मार्ग से चलने वाले पुरुष को दण्डित कर (५२) (प्रमुदे) विनोद-कारी कार्यों के लिये (वामनम्) बौने पुरुष को नियुक्त करो। (५३) (द्वार्भ्यः) द्वारों की रक्षा के लिये (स्रामम्) जिसकी आंखों से सदा जल बहता हो ऐसे चक्षु दोष के रोगी पुरुष को मत रक्खो। द्वारों की रक्षा के लिये तीव्र दृष्टि और प्रभावजनक चक्षु-वाला चाहिये। (५४) (स्वप्नाय) सुखपूर्वक शयन करने के लिये (अन्धम्) अन्धे, नेत्रहीन पुरुष को मत नियुक्त करो। प्रत्युत अच्छे देखने वाले को पहरेदार बनाओ। जैसे अंधे को रूप ज्ञान न होने से उसे रूप के स्वप्न नहीं आते इसी प्रकार स्वप्नदोष से बचने के लिये लोचनहीन पुरुष का अनुकरण करो। बुरे पदार्थों और व्यसनों के प्रति अन्धे के समान बने रहो, उनकी तरफ दृष्टि न करो। (५५) (अधर्माय बधिरम्) अधर्म के कार्यों के लिये बधिर, बहरे, कान से न सुनने वाले का अनुकरण करो। अर्थात् अधर्म की बात पर कान मत दो। अथवा, अधर्माचरण के लिये अपराधी को बहरा कर दो। (५६) (पवित्राय भिषजम्) शरीर और राष्ट्र को पवित्र करने व रोग और मलों से रहित करने के लिये 'भिषग्' अर्थात् रोग निवारक, वैद्य, डाक्टर पुरुष को नियुक्त कर। अर्थात् पदार्थों को स्वच्छ पवित्र रखने के लिये वैद्य या भिषग् को स्वास्थ्य विभाग का अध्यक्ष नियत करो। (५७) (प्रज्ञानाय) दूर के पदार्थों का ज्ञान करने के लिये (नक्षत्रदर्शम्) नक्षत्रों को देखने वाले या नक्षत्रों को दिखा देने वाले दूरवीक्षण यन्त्र के समान दूरदर्शी विद्वान् को नियुक्त करो (५८) (आशिक्षायै) सब प्रकार की विस्तृत शिक्षा के लिये (प्रश्निनम्) प्रश्न करने वाले शिष्य व अध्यापक को नियुक्त करो। जितने ही प्रश्न प्रतिप्रश्न उठाए जायेंगे उतना ही विस्तृत ज्ञान प्राप्त होगा। (५९) (उपशिक्षायै अभिप्रश्निनम) समीप स्थित विद्यार्थियों की शिक्षा या अति सूक्ष्म विषयों की शिक्षा के लिये उनके सम्मुख नाना प्रश्नों का समाधान करने वाले विद्वान् को नियुक्त करो।

(६०) (मर्यादायै) मर्यादा, न्याय अन्याय की व्यवस्था के निर्णय के लिये (प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों का विविध प्रकार से समाधान कहने वाले विवेचक पुरुष न्यायाधीश को नियुक्त करो।

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वार्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

स्वराडाकृतिः । पंचमः ॥

भा०—(६१) (अर्मेभ्यः) बड़ी सवारियों के लिये (हस्तिपम्) हाथीवान् को नियुक्त कर। (६२) (जवाय अश्वपम्) वेग से देशान्तर पहुँचने के लिये अश्वों के पालक पुरुष को नियुक्त करो। (६३) (पुष्टयै) अन्न, गोदुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थों के प्राप्त करने के लिये (गोपालम्) गौओं के पालक पुरुष को रक्खो। (६४) (वीर्याय अविपालम्) वीर्य की वृद्धि के लिये भेड़ों के पालने वाले पुरुष को नियुक्त करो। (६५) (तेजसे अजपालम्) तेज, स्फूर्ति की वृद्धि के लिये बकरियों के पालक पुरुष को नियुक्त करो। यहां पशु-पालन के अनुभवी पुरुषों की यह अनुभवसिद्ध बात है कि भैंस का दूध सुस्ती बढ़ाता है, गौ का दूध पुष्टिकारक, भेड़ का दूध वीर्यवर्धक है और बकरी का दूध कान्ति और स्फूर्ति पैदा करता है।

धन्वन्तरि के मत से:—

गोदुग्ध—पथ्यं रसायनं बल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः ॥

अजादुग्ध—छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहितरं लघु।

अविदुग्ध—आविकं तु पयः स्निग्धं कफपित्तहरं परम्।

स्थौल्यमेदहरं पथ्यं लोमशं गुरुवृद्धिदम् ॥

(६६) (इरायै) अन्न की वृद्धि के लिये (कीनाशम्) किसान को नियुक्त कर। (६७)(कीलालाय) अन्न ओषधि के सार-भाग को प्राप्त करने के लिये (सुराकारम्) सुरा विधि से भपके द्वारा आसव चुवाने वाले

पुरुष को नियत कर। (६८) (भद्राय गृहपम्) सुख और कल्याण की वृद्धि के लिये गृह पालक पुरुषों को नियुक्त करे। (६९) (श्रेयसे वित्तधम्) सबके कल्याण के लिये धर्म कार्य करने के निमित्त वित्तधारण करने वाले धनाढ्य पुरुषों को प्रेरित कर। (७०) (आध्यक्ष्याय) अध्यक्ष के का के लिये (अनुक्षत्तारम्) क्षत्ता अर्थात् अश्वों को चलाने वाले सारथि या कोचवान के समान अपने अधीन पुरुषों को सन्मार्ग पर चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

भायै दार्वाहारं प्रभाया ऽ अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्य ऽ उपसेक्तारमव ऽ ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासःपल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

विराट् संकृतिः। गांधारः ॥

भा०—(७१) (भायै) अग्नि के लिये (दार्वाहारम्) लकड़हारे को नियुक्त करो। पञ्जाब के पश्चिम प्रान्त मुलतान आदि स्थानों में अभी तक 'भा' अग्नि का वाचक है। (७२) (प्रभायै अग्न्येधम्) और अधिक तीव्र अग्नि के लिये अग्नि को और अधिक प्रदीप्त करने वाले पुरुष को नियुक्त कर (७३) (ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के विशेष तापकारी बल या तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये 'अभिषेक्ता' अर्थात् राज्य-अभिषेक करने वाले विद्वान् को प्राप्त कर। अथवा सूर्य के विशेष ताप को दूर करने लिये जल से स्नान कराने वाले मार्ग पर जल सेचने वाले को नियुक्त कर (दया०) (७४) (वर्षिष्ठाय) अति अधिक सर्वश्रेष्ठ (नाकाय) दुःख रहित परमसुख प्राप्त करने के लिये (परिवेष्टारम्) सर्वत्र व्यापक या सब सुखों के दाता परमेश्वर की उपासना कर। (७५) (देवलोकाय) विद्वान् जनों के कार्य के लिये (पेशितारम्) प्रत्येक अवयव-अवयव ज्ञान करने वाले को प्राप्त करो। अथवा—(देवलोकाय) विजयेच्छु पुरुष या विद्वानों के लिये (पेशितारम्) शत्रुओं को

पीस डालने वाले नेता को नियुक्त कर । पिश नाशने । चुरादिः । (७६) (मनुष्य-लोकाय) मनुष्यों को अपने वश करने के लिये (प्रकरितारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले को अथवा (मनुष्यलोकाय) मनुष्यों के हित के लिये उत्तम ज्ञान आदि पदार्थों के प्रदान करने वाले को नियुक्त कर । (७७) (सर्वेभ्यः लोकेभ्यः उपसेक्तारम्) समस्त प्र.णियों के हित के लिये मेघ के समान या माली के समान जल और सुखों का सेचन करने वाले उदार पुरुष को नियुक्त करो, अथवा समस्त लोकों और प्राणियों की सन्तति-वृद्धि के लिये वीर्यसेचन में समर्थ, नर-जीवों को प्राप्त करो । (७८) (अव ऋत्यै) नीचे की ओर, दुष्टाचरणों की तरफ जाने और (वधाय) प्राणि-वध को रोकने के लिये (उपमन्थितारम्) दुष्टाचरण करने वालों और वधकारी पुरुषों को दण्ड देने वाले प्रवल पुरुष को नियुक्त कर । (७९) (मेधाय) ताड़ना करने या दण्ड देने के लिये (वासः पल्पूलीम्) वस्त्र को धोने वाली धोबिन का अनुकरण करो । अर्थात् जैसे वस्त्र को धोने वाला तभी तक वस्त्र को छांटता, कूटता है जब तक उसमें मल रहता है इसी प्रकार अपराधियों की राजा उतनी ही ताड़ना करे जिससे उनके मलिन आचार नष्ट हो जायं । इसी बात का अध्यापक और माता-पिता भी अपने शिष्य और पुत्रों की ताड़ना के समय ध्यान रखें । अथवा—(मेधाय) बुद्धि की वृद्धि या सत्संग लाभ के लिये (वासः पल्पूलीम्) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली धोबिन की क्रिया का अनुकरण करे । जिस प्रकार खार लगाने से वस्त्र शुद्ध हो जाता है इसी प्रकार सत्संग लाभ करके मनुष्य सदाचारी हो जाय । अथवा—वस्त्र के समान स्वच्छ अपने उपसेवनीय अंगों और पदार्थों को भी स्वच्छ रखने वाली स्त्री को प्राप्त करो । वास उपसेवायाम् । चुरादिः पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयोः पल्पूल लवनपवनयोः । चुरादिः ॥ (८०) (प्रकामाय) उत्तम कामना योग्य काम्य, गृहस्थ सुख को प्राप्त करने के लिये (रजयित्रीम्) हृदय को रंगने वाली अर्थात् अनुराग, प्रेम करने वाली, शुभ स्त्री को प्राप्त करो । अथवा—

उत्तम अभिलाषा के लिये (रजयित्रीम्) रंगने वाली स्त्री का अनुकरण करो। रंगने वाली वस्त्र को स्वच्छ करके रंगती है इसी प्रकार हृदय स्वच्छ करके मनुष्य कामना करे तो उसकी अवश्य सिद्धि होती है।

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳ स्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

भुरिक् कृतिः । निषादः ॥

भा०—(८१) (ऋतये) 'ऋति' हत्या आदि के कार्य के लिये (स्तेन-हृदयम्) चौर के समान भीरु हृदय को पकड़ लेना चाहिये। हत्यारे आदि दण्ड से भागते हैं। उनको दिल से परख कर पकड़ना चाहिये। अथवा—(ऋतये) शत्रु नाश करने के लिये (स्तेन-हृदयम्) चोर के हृदय के समान अप्रकट, छुपे आकार विचार के पुरुष को नियुक्त करे। (८२) (वैरहत्याय) वैर से हत्या के कर्म को रोकने के लिये (पिशुनम्) उन अपराधों को तुरन्त सूचित करने वाले पुरुषों और साधनों को नियुक्त करे। (८३) (विविक्त्यै) विवेक के लिये (क्षत्तारम्) सारथि के समान इन्द्रियों को सन्मार्ग में चलाने वाले एवं मनुष्यों को सन्मार्ग में चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करे (८४) (औपद्रष्ट्र्याय अनुक्षत्तारम्) सूक्ष्मता से सब पदार्थों के दिखाने के कार्य के लिये मार्गदर्शक एवं अश्वों के समान उच्छृंखल वृत्तियों को नियम में रखने वाले तपस्वी पुरुष को नियुक्त करे। महाभारतकाल में धृतराष्ट्र का सञ्जय और दुर्योधन का विदुर 'क्षत्ता' पद पर नियुक्त थे। दशरथ का 'क्षत्ता' सुमन्त्र था। यह पद राजा को संदिग्ध कार्यों में सलाह देते और सूक्ष्म बातों का विवेचन और मोहादि के समय में ज्ञानप्रदर्शन करता था। जाति जन्मादि का इसमें कोई विचार नहीं है। (८५) (बलाय अनुचरम्) बल बढ़ाने के लिये आज्ञा में चलने वाले पुरुषों को स्वीकार कर। (८६) (भूम्ने परिष्कन्दम्) बहुत

प्रजा जो उत्पन्न करने के लिये वीर्यसेचन में समर्थ पुरुषों को आज्ञा करे। यह राजनियम हो कि नपुंसक, निर्वीय पुरुष गृहस्थ में प्रवेश न करें उनको विवाह करने का हक न हो। अथवा, (भूम्ने) बड़े सेनाबल के लिये (परिस्कन्दम्) छावनी, स्कन्धावार को नियुक्त करे। (८७) (प्रियाय प्रियवादिनम्) प्रिय कार्य के लिये मधुरभाषी पुरुष को नियुक्त करे। (८८) (अरिष्ट्यै अश्वसादम्) राष्ट्र को नाश न होने देने उसमें शान्ति स्थापन और कुशल क्षेम और विघ्ननाश करने के लिये अश्वारोही सैन्य को नियुक्त करे। (८९) (स्वर्गाय लोकाय भागदुघम्) विशेष सुख प्राप्त करने और लोक के हित के लिये कर रूप से राजा के भाग को एकत्र करने वाले पुरुष नियुक्त करो। (९०) (वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्) सबसे उत्तम सुख, आनन्द को प्राप्त करने के लिये विज्ञान को सर्वत्र प्रदान करने वाले विद्वान् और ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य को नियुक्त करो।

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥१४॥

निचृदत्यष्टिः । गांधारः ॥

भा०—(९१) (मन्यवे) मन्यु अर्थात् राष्ट्र के भीतरी क्रोध को शान्त करने के लिये (अयःस्तापम्) लोहे के तपाने वाले लोहार को दृष्टान्त के रूप में लो। वह जिस प्रकार तपे लोहे को एक दम शीतल जल में डालता है या वह उसको संडासी से पकड़ कर उस पर चोटें मार कर यथेष्ट वस्तु बना देता है उसी प्रकार राजा क्रोधान्ध द्रोही पुरुषों को भी उपाय से वश करे और शान्ति के उपचार करे। (९२) (क्रोधाय निसरम्) राष्ट्र के बाह्य क्रोध को शान्त करने के लिये (निसरम्) नियमपूर्वक शत्रु के प्रति अभिसरण या चढ़ाई करने वाले को नियुक्त करे। (९३)(योगाय योक्तारम्) योग अर्थात् चित्तवृत्ति के निरोध के अभ्यास के लिये (योक्तारम्) योग करने वाले पुरुष की आराधना करे। (९४) (शोकाय) 'शोक,

अर्थात् तेजस्वी होने के लिने (अभिसर्त्तारम्) शत्रुओं के प्रति मुकाबले पर अभिसरण या प्रयाण करने हारे पुरुष को नियुक्त करो। (९५) (क्षेमाय विमोक्तारम्) रक्षण आदि कुशल प्राप्ति के लिये दुःखों और संकटों से मुक्त करने वाले को नियुक्त करो। (९६) (उत्कूलनकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम्) ऊंचे नीचे स्थानों और अवसरों के लिये तीनों प्रकार के ऊंचे, नीचे और सम एवं तीनों प्रकार के कालों में स्थित करने में कुशल पुरुष वा यन्त्र साधनों को नियुक्त करो। (९७) (वपुषे मानस्कृतम्) शरीर की पुष्टि आदि हित के लिये विचारपूर्वक कर्म माप और तोल करने वाले को नियुक्त करो। (९८) (शीलाय आञ्जनीकारीम्) शील स्वभाव की रक्षा के लिये आञ्जनी-अञ्जन लगाने वाली सुशील, सुरूप स्त्री का अनुकरण करो। (९९) (निर्ऋत्यै कोशकारिम्) विपत्ति आदि दूर करने के लिये सञ्चय करने वाली स्त्री या नीति का अनुकरण करो। अथवा (निर्ऋत्यै) भूमि के प्राप्त करने के लिये (कोशकारिम्) कोश-अनैश्वर्य की वृद्धि करने वाली भूमि को प्राप्त करो। (१००) (यमाय असूम्) यम अर्थात् ब्रह्मचारी पुरुष के लिये (असूम्) जिसने अभी तक पुत्र न जना हो ऐसी ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री को प्राप्त कराओ। अथवा—(यमाय) नियन्ता राजा के लिये या नियन्त्रण के लिये (असूम्) शत्रुओं पर शस्त्रादि फेंकने वाली सेना को प्राप्त करो।

यमार्य यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाᳬ संवत्सरार्य पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳬ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसंधᳬ साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—(१०१) (यमाय) नियन्ता पुरुष के लिये (यमसूम्) यम, नियन्त्रण करने वाले नियमों को बनाने वाली या नियामक पुरुषों को आज्ञा में चलाने वाली राजसभा प्राप्त हो। (१०२) (अथर्वभ्यः) प्रजा-

पालक विद्वान् पुरुषों के लिये (अवतोकाम्) शत्रुओं को अपने नीचे दबा कर दुःख देने वाली सेना प्राप्त हो। अथवा, जो स्त्री 'अवतोका' है अर्थात् जिसके बालक गर्भ में नष्ट हो जाते हैं। उस स्त्री को 'अथर्वा' नामक उन विद्वानों के पास चिकित्सार्थ ले जाय जो बालक के प्राणों को नष्ट न होने दें अथवा 'अवतोका' वह स्त्री है जिसका बालक प्रसवकाल में नीचे की ओर बाहर को आने को हो ऐसी प्राप्तप्रसवा स्त्री को बालरक्षा के विज्ञ विद्वानों के सुपुर्द करे। (१०३) (संवत्सराय पर्यायिणीम्) संवत्सर ज्ञान के लिये 'पर्याय' अर्थात् क्रम से कालों का ज्ञान कराने वाली यन्त्रकला या गणितविद्या को प्राप्त करो। अथवा (संवत्सराय पर्यायिणीम्) एक बार नर और एक बार मादा सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री को एक वर्ष के लिये संयम से रक्खे। उसका यह दोष नष्ट हो जायेगा। (१०४) (अविजाताम् परिवत्सराय) विशेष कारण से जो सन्तान न उत्पन्न करती हो तो उसकी 'परिवत्सर' अर्थात् द्वितीय वर्ष में वैद्य की चिकित्सा करानी उचित है। (१०५) (अति त्वरीम इदावत्सराय) अधिक पतिसंग करने वाली स्त्री को पुत्रलाभ के निमित्त तीसरे वर्ष तक परीक्षा करे। वा (१०६) (अतिष्कद्वरीं इद्वत्सराय) अति अधिक रजःस्राव करने हारी स्त्री सन्तान के निमित्त पांचवें वर्ष तक परीक्षा करे। (१०७) (वत्सराय विजर्जराम्) विशेष रोगादि के कारण से कृश या जर्जर शरीर की स्त्री को (वत्सराय) एक वर्ष के लिये संयम से रहने दे। (१०८) (संवत्सराय पलिक्नीम्) जिस स्त्री की उमर से पहले ही पलित आ जाय ऐसी स्त्री को सन्तान के निमित्त ४ वर्ष तक प्रतीक्षा करे। (१०९) (अजिनसंधं ऋभुभ्यः) शिल्पी लोगों के कार्य के लिये 'अजिन-संध' अर्थात् चर्म के पदार्थों को सीने जोड़ने वाले कारीगर को नियुक्त करो अथवा विद्वान् पुरुषों या 'ऋत' अर्थात् राष्ट्र के चमकने वाले राजाओं के कार्य के लिये ऐसे पुरुष नियुक्त करो जो (अजिन-संधम्) अजेय राष्ट्रों को भी चर्मों के समान परस्पर संधि या मेल कराने में समर्थ है। इससे राजाओं और

विज्ञानी पुरुषों में विरोध न होकर सहयोग से विज्ञान, कला-कौशल, व्यापार, राज्य, ऐश्वर्य की उन्नति होती है। (११०) (साध्येभ्यः चर्मम्नम्) साध्य अर्थात् बनाने योग्य कड़े चर्मों को जिस प्रकार चमड़े घोटने वाला रगड़-रगड़ कर मुलायम कर लेता है इसी प्रकार (साध्येभ्यः) वश करने योग्य उद्दण्ड पुरुषों के वश करने के लिये उन पर बराबर दण्ड का प्रयोग करने वाले पुरुष को नियुक्त करे।

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय केवर्त्तं तीर्थेभ्यऽआन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—(१११) (सरोभ्यः) सरोवरों को स्वच्छ रखने के लिये (धैवरम्) धीवर को नियुक्त करो। अथवा (सरोभ्यः) उत्तम ज्ञानों के प्राप्त और शिक्षण के लिये 'धीवर' बुद्धि में श्रेष्ठ पुरुष को नियुक्त करो। (११२) (उपस्थावराभ्यः) उपवन में लगे छोटे-छोटे स्थावर वृक्षों की वाटिकाओं या छोटे २ कार्यों के लिये (दाशम्) वेतनबद्ध भृत्य को नियुक्त करो। (११३) (वैशन्ताभ्यः वैन्दम्) छोटे-छोटे ताल-तलैयों के प्रबन्ध और रक्षा के लिये वैन्द अर्थात् उससे लाभ लेने वाले पुरुष को नियुक्त करे। उन ताल तलैयों को वे ही अच्छा रक्खें जो उससे कुछ फायदा उठाते हैं। (११४) (नड्वलाभ्यः शौष्कलम्) जिन भूमियों में नड़, सरकण्डे आदि उत्पन्न हों उन दलदल वाली भूमियों को बसाने के लिये शोषण करने या उनके सुखा डालने वाले उपायों से विज्ञ पुरुष को नियुक्त करे। (११५) (पाराय मार्गारम्) परले पार या दूर देशों को जाने के लिये जल जन्तुओं के शत्रु, उनके नाशक पुरुष को नियुक्त करे। और—(११६) (आवाराय केवर्तम्) उरले पार आने के लिये जल के भीतर रहने वाले, उसी में अजीविका करने वाले को नियुक्त करो।

(११७) (तीर्थेभ्यः आन्दम्) तीर्थ, जलों के भीतर उतरने की सीढ़ियों या घाटों के बनाने के लिये बांध लगाने में चतुर, जो किनारा दृढ़ता से बांध दे ऐसे पुरुष को नियुक्त करो। (११८) (विषमेभ्यः मैनालम्) ऊंचे-नीचे विषम संकटमय स्थानों के लिये भी हिंसक जन्तुओं के नाश करने वाले पुरुष को नियुक्त करो। (११९) (स्वनेभ्यः) नाना प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करने के लिये (पर्णकम्) जो पुरुष रक्षा और युद्धादि कार्य में कुशल हो ऐसे को नियुक्त करो। (१२०) (गुहाभ्यः किरातम्) पर्वतों की गुहाओं की रक्षा और प्रबन्ध के लिये, तुच्छ कर देने वाले पुरुषों को लगावें। वे उन स्थानों में रहें। (१२१) (सानुभ्यः जम्भकम्) पर्वत शिखरों के प्रबन्ध के लिये हिंसक जन्तुओं के नाशक पुरुष को नियुक्त करे। (१२२) (पर्वतेभ्यः) पर्वतों में बसने के लिये (किम्पूरुषम्) अल्प शक्ति और व्यवसाय वाले अथवा पुरुष प्रमाण से भी छोटे कद वाले पुरुषों को बसावे।

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्या ऽ अपगल्भꣳ सꣳ शराय प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥

विराड् धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(१२३) (बीभत्सायै) बीभत्स क्रियाओं के लिये (पौल्कसम्) पुक्कस नाम घृणित पदार्थ के साथ व्यवहार करने वाले पुरुष को लगावे। (१२४) (वर्णाय) उत्तम वर्ण या सुन्दर वरण करने योग्य पदार्थ के लिये (हिरण्यकारम्) सुवर्णकार को नियुक्त करो। (१२५) (तुलायै वणिजम्) तुला, तराजू के व्यवहार के लिये वणिग् व्यवसाय में कुशल पुरुष को लगावे। (१२६) (पश्चादोषाय ग्लाविनम्) पीछे से दोष देने के लिये अप्रसन्न पुरुष, जिसको ग्लानि हो जाय उसे उपयुक्त जाने, क्योंकि वही पीछे से दोष दिया करता है। (१२७) (विश्वेभ्यः भूतेभ्यः) समस्त

प्राणियों के सुख के लिये (सिध्मलम्) त्वचा रोग के रोगी पुरुष को सदा दूर रक्खे। अथवा समस्त प्राणियों के सुख के लिये सुखसाधक पदार्थों से युक्त पुरुष को नियुक्त करो। (१२८) (जागरणं भूत्यै) जागना, सावधान रहना भूति, ऐश्वर्य वृद्धि के लिये आवश्यक है। (१२९) (स्वपनम्) सोना आलस्य करना (अभूत्यै) ऐश्वर्य के नाश के लिये है। (१३०) (आर्त्यै जनवादिनम्) पीड़ा को दूर करने और उससे खबरदार करने के लिये सर्वसाधारण के स्पष्ट रूप से सूचित कर देने वाले पुरुष को नियुक्त करे। (१३१) (व्यृद्ध्य) ऋद्धि सम्पत्ति के नाश करने के लिये प्रवृत्त हुए (अपगल्भम्) बुरे प्रकार के ढीठ पुरुष को दमन करे। अथवा (व्यृद्ध्यै) सम्पत्ति समृद्धि के नाश या विपरीत गुण वाली समृद्धि से बचने के लिये (अपगल्भम्) दुरभिमानी को दमन करे और विनीत पुरुष को नियुक्त करे। (१३२) (संशराय) अच्छी प्रकार शरों या बाणों का प्रयोग करने के लिये (प्रच्छिदम्) दूर तक छेदन-भेदन में कुशल पुरुष को नियुक्त कर।

अ॒क्षरा॒जाय॑ कित॒वं कृ॒ताया॑दिनवद॒र्शं त्रेता॑यै क॒ल्पिनं॑ द्वाप॒राया॑-धिक॒ल्पिन॑मास्क॒न्दाय॑ सभास्था॒णुं मृ॒त्यवे॑ गोव्य॒च्छमन्त॑काय गोघा॒तं क्षु॒धे यो गां वि॒कृन्तन्तं॒ भिक्ष॑माण उप॒तिष्ठ॑ति दुष्कृ॒ताय॒ चर॑काचार्यं पा॒प्मने॑ सैल॒गम् ॥ १८ ॥

निचृत् प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—(१३३) (अक्षराजाय कितवम्) पासों से खेलने वाले पुरुषों के बीच राजा, सबका मुख्य होने के लिये 'कितव' जुआखोर, धूर्त या चतुर पुरुष को जाने। अथवा, अक्षों, इन्द्रियों के बीच में उसका स्वामी होने के लिये (कितवम्) अति चतुर, चेतनायुक्त मन या आत्मा के समान 'अक्ष', अध्यक्ष पुरुषों के बीच में राज-पद के लिये भी 'कितव' अर्थात् विशेष ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष, जो प्रत्येक को कह सके कि 'किं तव' तेरा क्या कार्य है ? इस प्रकार प्रत्येक के कार्य का निरीक्षण करने वाले सूक्ष्म

विवेचक पुरुष को सबका निरीक्षक रखना चाहिये। (१३४) (कृताय) कये कर्म के निरीक्षण और अधिक उन्नति के लिये (आदिनवदर्शम्) किये कर्म में दोष या त्रुटि को देखने में चतुर पुरुष को नियुक्त करे। (१३५) (त्रेतायै कल्पिनम्) भूत, भविष्यद् और वर्तमान तीनों कालों में होने वाले कार्यों को देखने के लिये सामर्थ्यवान् या कल्पनाशील, दूर-दर्शी, विज्ञ पुरुष को नियुक्त करो। (१३६) (द्वापराय अधिकल्पिनम्) करने और देखने वाले दोनों की पहुँच से परे और भी उत्तम कार्य करा लेने के लिये उनसे भी अधिक कल्पनाशील, चतुर मस्तिष्क को नियुक्त करो। (१३७) (आस्कन्दाय) सब तरफ से राष्ट्र के रसों को सूर्य के समान लेने की व्यवस्था के लिये (सभास्थाणुम्) सभा के बीच में स्थिर पदाधिकारी को नियुक्त करो। (१३८) (मृत्यवे गोव्यच्छम्) गौ आदि पशुओं पर विविध कष्टदायी विकार वा चेष्टा करने वाले को मृत्युदण्ड के लिये दे दो। (१३९) (अन्तकाय गोघातम्) गौ को मारने वाले पुरुष को अन्त कर देने वाले जल्लाद के हाथ सौंप दे। (१४०) (यः) जो प्रजा-जन (भिक्षमाणः) अन्न की याचना करता हुआ (उपतिष्ठति) उपस्थित हो तो (क्षुधे) भूख की निवृत्ति के लिये (गां विकृन्तन्तं) भूमि को खोदने, हल चलाने वाले कृषक को नियुक्त करो, (१४१) (दुष्कृताय चरकाचार्यम्) दुष्कर्म के दूर करने के लिये (चरकाचार्यम्) भोज्य पदार्थों की विद्या के आचार्य को नियुक्त करो जो सबको पुष्टिकारक और दोषयुक्त भोजन का विवेक करे और बुरे-बुरे भोजनों के दुर्व्यवहार और हानियों को बत-लाता रहे। (१४२) (पाप्पने) पाप कार्य को रोकने के लिये (सैलगम्) दुष्टों के वश करने वाले को नियुक्त करे। अथवा (पाप्मने) पापाचरण के लिये दुष्ट पुरुषों की सन्तानों, शिष्यों साथियों को भी दण्डित करे।

प्रतिश्रुत्काया॑ऽअर्त॒नं घोषा॑य भ॒षम॑न्ता॑य बहुवा॒दिन॑मन॒न्ताय॒ मूक॒ꣳ शब्दा॑याडम्बराघा॒तं मह॑से वीणावा॒दं क्रोशा॑य तूणव॒ध्मं॑मवरस्परा॑य शङ्ख॒ध्मं वना॑य वन॒पम॒न्यतो॑ऽरण्याय दाव॒पम् ॥१९॥

भुरिग् धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(१४३) (प्रतिश्रुत्कायै) प्रतिज्ञा-पूर्त्ति के लिये (अर्त्तनम्) ऐसे व्यक्ति को नियत करे जो लोकों से प्रतिज्ञा निभवा सके। (१४४) (घोषाय भषम्) घोषणा करने के लिये बड़ी आवाज से बोलने वाले को नियुक्त करे। (१४५) (अन्ताय बहुवादिनम्) सिद्धान्त प्रतिपादन या मर्यादा निर्णय के लिये बहुत अधिक कहने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो। (१४६) (अनन्ताय मूकम्) अनन्त अर्थात् जिस वाद-विवाद की मर्यादा न हो उसको दूर करने के लिये 'मूक' गूंगे का अनुसरण करे। मौन रहे। (१४७) (शब्दाय आडम्बराघातम्) शब्द करने के लिये आडम्बरपूर्वक बाजों को बजाने वाले को नियुक्त करो। अथवा, भयंकर शब्द के लिये कोलाहल करने वाले को दण्डित करो। (४७) (महसे वीणावादम्) महत्वपूर्ण कार्य आनन्द, प्रसन्नता के लिये वीणा बजाने वाले को नियुक्त करो। (१४९) (क्रोशाय) सैन्य बल और जनसमूह को निमन्त्रण देकर बुलाने के लिये (तूणवध्मम्) तूणव नामक ढोल या ढक्का बजाने वाले को नियुक्त करो। (१५०) (अवरस्पराय शङ्खध्मम्) आस-पास और दूर के लोगों को बुलाने के लिये शंख बजाने वाले को नियुक्त करो। (१५१) (वनाय वनपम्) वन की रक्षा के लिये वनपाल को नियुक्त करो। (१५२) (अन्यतः अरण्याय) जिस देश में एक तरफ वन हों ऐसे देश की रक्षा के लिये (दावपम्) जंगल में लगने वाली आग से देश की रक्षा करने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

नर्माय पुँश्चलूँ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—(१५३) (नर्माय) कोमल, मन लुभाने वाले वचनों को बोलने में लगी (पुंश्चलूम्) व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो। (१५४) (हसाय)

उपहास के लिये (कारिम्) नकल उतारने वाले को दण्डित करे। अथवा शोभाजनक पदार्थों को बनाने के लिये कारीगर शिल्पी को नियुक्त करे। (१५५) (यादसे शावल्याम्) जल जन्तुओं की रक्षा के लिये 'शबल' वर्ण अर्थात् मलिन कार्य करने वाली जाति को दूर करो जिससे वे उनका विनाश न करें। (१५६-१५८) (महसे) बड़े कारबार या राज्यप्रबन्ध के लिये (ग्रामण्यम्) ग्रामनायक, (गणकम्) गणक, हिसाब में चतुर और (अभिक्रोशम्) सबको बुलाने वाले (तान्) इन तीन को नियुक्त करे। (१५९-१६१) (नृत्ताय) नृत्य के लिये (वीणावादम्) वीणा बजाने वाले, (पाणिघ्नम्) हाथ से तबले आदि बजाने और (तूणवध्मम्) तुरही बजाने वाले को नियुक्त करो। (१६२) (आनन्दाय तलवम्) आनन्द, प्रसन्नता के लिये करताल बजाने वाले को नियुक्त करो।

अ॒ग्नये॒ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिण॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒लम॒न्तरि॑क्षाय व॒ꣳश॒नर्ति॑नं दि॒वे ख॑ल॒तिꣳ सूर्या॑य हर्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः किर्मि॒रं च॒न्द्रम॑से कि॒लास॒मह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षꣳ रात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम् ॥ २१

(राजेश्वरौ । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(१६३) (अग्नये पीवानम्) अग्रणी पद के लिये, प्रबल हृष्ट-पुष्ट पुरुष को नियुक्त करो। (१६४) (पृथिव्यै) पृथिवी के शासन के लिये (पीठसर्पिणम्) सिंह-आसन या मुख्य आसन पर विराजने हारे तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करे। (१६५) (वायवे चाण्डालम्) वायु के समान तीव्र बल से शत्रु के अंग भंग करने के लिये चण्डता से युद्ध करने वाले, प्रचण्ड पुरुष को नियुक्त करे। (१६६) (अन्तरिक्षाय वंशनर्त्तिनम्) अन्तरिक्ष में रहने या अन्तरिक्ष मार्ग से जाने के लिये बांस पर नाचने वाले का अनुकरण करे। वह व्यायाम से बहुत चुस्त शरीर होकर कूदने फांदने में समर्थ होता है, वह निरवलम्ब स्थान में भी भयभीत नहीं होता इसी प्रकार अन्तरिक्ष विहार के लिये भी अल्प आलम्ब से जाने में पटु को प्राप्त करें। (१६७) (दिवे) द्यौलोक के ज्ञान के लिये (खलतिम्)

नक्षत्रों और ग्रहों का सञ्चलन जानने वाले को नियुक्त करो। सञ्चलनार्थस्य स्खलतेः खलतिरिति औणादिको निपातः॥ स्खलति सञ्चलति इति खलतिः। उपचारात् स्खलनविज्ञः॥ स्खलनं ग्रहगतिभ्रंशो वा। दया०॥ (१६८) (सूर्याय हर्यक्षम्) सूर्य के समान तेजस्वी पद के लिये हरि अर्थात् सिंह या सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले, प्रभावशाली पुरुष को नियुक्त करो। अथवा—(सूर्याय) सूर्य के दुष्प्रभाव को रोकने के लिये या उससे बचने के लिये (हर्यक्षम्) हरे रंग के काच के बने देखने के यन्त्र का प्रयोग करो। (१६९) (नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम्) नक्षत्रों के ज्ञान के लिये 'किर्मिर' अर्थात् चित्र विचित्र, काले पर श्वेत चित्र का प्रयोग करो। (१७०) (चन्द्रमसे किलासम्) चन्द्रमा के प्रकाश का आनन्द लेने के लिये 'किलास' अर्थात् श्वेत वर्ण के पदार्थों पर दृष्टि करो। (१७१) (अह्ने शुक्ल-पिंगाक्षम्) दिन के लिये श्वेत, पीले रूप को चक्षुवत् देखने वाले को नियुक्त करो। (१७२) (रात्र्यै कृष्ण-पिंगाक्षम्) रात्रि के समय के लिये श्याम और पीला वर्ण आंख से देखने वाले को नियुक्त करो।

अथैतानष्टौ विरूपाना लंभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्रा ऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा ऽअब्राह्मणास्त प्राजापत्याः॥ २२॥

राजेश्वरौ। निचृत् कृतिः। निषादः॥

भा०—(अथ) और (एतान्) इन (अष्टौ) आठ (विरूपान्) विकृत रूप वाले पुरुषों को (आलभते) राजा अपने अधीन रक्खे। (अतिदीर्घम्) बहुत अधिक लम्बा, (अतिह्रस्वं च) बहुत छोटा, बौना, (अतिकृशं च) बहुत दुबला, पतला, (अतिशुक्लं च) बहुत श्वेत, अति गौर, (अतिकृष्णं च) बहुत ही काला (अति लोमशं च) बहुत अधिक लोम ला। ये आठ विचित्र होने से संग्रह करने योग्य हैं। यदि ये (अशूद्राः)

शूद्र कर्म करने वाले न हों और (अब्राह्मणाः) ब्राह्मण के काम करने वाले विद्वान् भी न हों तो (ते) वे (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के ही अधीन उसकी सम्पत्ति एवं भरण-पोषण योग्य जीव समझे जायं। इसी प्रकार (अशूद्राः अब्राह्मणाः) शूद्र और ब्राह्मण के काम के अयोग्य (मागधः) स्तुति पाठक या नृंशस, घोर लोभी (पुंश्चली) पुरुषों के भीतर व्यभिचार का जीवन बिताने वाली, चञ्चल नारी, (कितवः) जूआखोर और (क्लीबः) नपुंसक (ते) ये चारों भी (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के ही अधीन रहें। अर्थात् यदि ये ब्राह्मणोचित्त ज्ञान, सदाचार का जीवन और शूद्रवत् श्रम का जीवन विता सकें तो राजा इनको अपने अधीन न ले। ये क्षत्रियों में रह नहीं सकते क्योंकि स्तुतिपाठक, खुशामदी जुआचोर, व्यभिचारी पुरुषों से क्षात्र कर्म नहीं हो सकता। किसी व्यापार में ये लग नहीं सकते। व्यभिचारी, जूआखोरी से असत्य व्यवहार और दुराचार बढ़ता है, इसलिये ऐसों को राजा अपने नियन्त्रण में रक्खे। मागध को बन्दी बनाकर स्तुतिपाठ के लिये रक्खे। 'कितव' को क्रीड़ा के लिये, पुंश्चली को सेवा के लिये, क्लीब को अन्तःपुर की भृत्यता के लिये रखे। इस प्रकार उनको भी योग्य कामों में लगाये रखे जिससे वे जीवन बुरे कर्मों में व्यय न करें। अथवा, ऐसे व्यक्तियों को अलग कैद में रक्खे जिससे ये दुराचारादि में न फैला सकें।

इति त्रिंशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रिंशोऽध्यायः॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

[१—१६] नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । पुरुषसूक्तम् । १—१५ अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

॥ ओ३म् ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(सहस्रशीर्षाः) हजारों, असंख्य शिरों वाला, (सहस्राक्षः) हजारों, अनन्त आंखों वाला, (सहस्रपात्) हजारों, अनन्त पैरों वाला (पुरुषः) 'पुरुष' सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है । वह (भूमिम्) सबको उत्पन्न करने वाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को (सर्वतः) सब प्रकार (स्पृत्वा) व्यापकर (दशाङ्गुलम्) और भी दश अंगुल अर्थात् दश अंग-विकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का (अतिष्ठत्) अतिक्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर उनसे भी अधिक शक्तिमान् अध्यक्ष होकर विराजता है ।

(१) 'सहस्रशीर्षाः सहस्राक्षः सहस्रपात्'—सहस्रशब्दस्य उपलक्षणत्वाद् अनन्तैः शिरोभिर्युक्तः इत्यर्थः । यानि सर्वप्राणिना शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षत्वं सहस्रपादत्वं चेति सायणो ऋग्भाष्ये ।

अर्थ—'सहस्र' शब्द केवल उपलक्षण है । वह अनन्त शिरों से युक्त है, यह अभिप्राय है । सब प्राणियों के शिर उसी महान् पुरुष के देह के भीतर समा जाने से वे सब उसी के हैं । इससे उसके हजारों सिर हैं । इसी प्रकार उसकी हजारों आंखें और हजारों पैर भी हैं । सायण ऋ०भाष्य

गीता में—'अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्' । 'अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्त-

[१—१६]—शत० १३ । ६ । २ । १२ ॥ ऋग्वेद १० । ९० ॥ अथर्ववेद १९ । ६ ॥

बाहुम्' 'रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरूपादम् । बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं । इत्यादि । गी० ११ ॥ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । ऋ० १०।८१।३॥

इस मन्त्र के अनुसार अनन्त पदार्थों का द्रष्टा होने से वह सहस्राक्ष आदि है।

(२) 'भूमिम्' भूगोलम् इति दयानन्दः । ब्रह्माण्डगोलरूपान् इति सायणः । भुवनकोशस्य भूमिरिति उवटः ।

(३) 'दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत् ।'—'दशाङ्गुलम्' इत्युपलक्षणम् ब्रह्माण्डाद् बहिरपि सर्वतो व्याप्य स्थितः इत्यर्थः । इति सायणः ॥ 'दशांगुल' यह उपलक्षण भर है। अर्थात् ब्रह्माण्ड को व्याप कर और दश अंगुल बाहर तक भी वह व्याप्त है, अभिप्राय यह है कि ब्रह्माण्ड से बाहर भी सर्वत्र व्याप्त कर विराजता है ।

दश च तानि अंगुलानि दशाङ्गुलानीन्द्रियाणि । केचिदन्यथा रोचयन्ति दशाङ्गुलप्रमाणम् हृदयस्थानम् । अपरे तु नासिकाग्रम् दशांगुलम् । इत्युवटः॥ दश अंगुल दश इन्द्रिय हैं । आत्मा उनसे परे, उनको विषय गोचर नहीं है । कइयों के मत में हृदय दश अंगुल प्रमाण है वह उसमें विराजता है । कोई नासिका-अग्र के आगे दश अंगुल मापते हैं । उवट ।

पञ्चस्थूलसूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यंगानि यस्य तत् जगत् । इति दया० ॥ पांच स्थूलभूत और पांच सूक्ष्मभूत, इन दस अंगों वाला जगत् 'दशाङ्गुल' कहाता है । वह परमेश्वर इस समस्त जगत् को व्याप कर विराजता है । जैसा लिखा है—वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः तेनेदं पूर्णं पूरुषेण सर्वम् ॥ उप० । यह महर्षि दयानन्द का मत है ।

पुरुषः—सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः इति सायणः । नारायणाख्य इत्युवटः । सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वरः इति दयानन्दः । सायण के मत से—सब प्राणियों का समष्टि रूप, ब्रह्माण्ड देह के समान धारण करने वाला विराट नामक पुरुष है । उवट के मत से नारायण

नामक पुरुष है। म० दयानन्द के मत से—सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर पुरुष है। पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः। पूरयतेर्वा पूरयति अन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य। यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्। यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति किञ्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ निरु० प० अ० २। ख० ३ ॥ नाना इमे वै लोकाः पूः। अयमेव पुरुषो योऽयं पवते। सोऽस्यां परि शेते। तस्मात् पुरुषः। इति शत० ॥

पुरु॑षऽए॒वेद१ँ॒ सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भाव्य॑म्।
उ॒ताmृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑ना॒तिरोह॑ति ॥ २ ॥

ईशानः। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(पुरुषः एव) वह जगत् में पूर्ण व्यापक परमेश्वर ही है (यत् भूतम्) जो जगत् उत्पन्न है (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य में उत्पन्न होगा और (यत्) जो (अन्नेन) भोग्य अन्न के समान भोग्य कर्मफल से स्वयं (अति रोहति) शरीर, स्थावर जंगम रूप पृथिव्यादि पर उत्पन्न होता (इदं सर्वम्) इस सबका (उत) और (अमृतत्वस्य) अमृत-तत्व, मोक्ष या सत्, अविनाशी स्वरूप का (ईशानः) स्वामी, परमेश्वर है। वही सब कुछ रचता है। सायण के मत में—भूत और भव्य सब वही पुरुष है। वही अमृतत्व का स्वामी भी है। वही भोग्य अन्न के निमित्त से जगत् रूप में प्रकट होता है।

'अन्नेनातिरोहति'—भोग्येन अन्नेन निमित्तभूतेन स्वकीयकारणा-वस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति। तस्मात्प्राणिनां कर्म-भोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदम् तस्य वस्तुतत्वम्। इति सायणः ॥

भोग्य अन्न के कारण अपनी कारण-दशा से पार होकर पुरुष दृश्य-जगत् का रूप प्राप्त करता है। फल भोग के लिये वह जगत् की दशा में आता है, वह वैसा है नहीं। सायण के मत में ब्रह्म परिणामी हो जाता है। जीवों के कर्म फल भोग के लिये जीव शरीर धारण करे, सो युक्ति-युक्त है। ईश्वर ही स्वयं ब्रह्माण्ड शरीर में बंधे, यह अनुचित है।

एतावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्यायाँ॑श्च॒ पूरु॑षः ।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥ ३ ॥

पुरुषः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) इतना ये सब दृश्य, ब्रह्माण्डमय जगत् (महिमा) महान् सामर्थ्य है। (पूरुषः) इस जगत् में परिपूर्ण परमेश्वर (अतः) इससे (ज्यायान् च) कहीं बड़ा है। (विश्वा भूतानि) समस्त उत्पन्न होने वाले पृथिवी आदि लोक (अस्य पादः) इसका एक पाद, एक अंश, उसका ज्ञान कराने वाले कार्यरूप ज्ञापक हैं और (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (अस्य) इस परमेश्वर का स्वरूप (दिवि) तेजोमय अपने स्वरूप में (अमृतम्) अमृत, नित्य, अविनाशी रूप से विद्यमान है।

यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यस्मात्तस्य परब्रह्मण इयत्ताया अभावात् पादचतुष्टयम् निरूपयितुमशक्यम् । तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षया अत्यल्पम् इति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः । इति सायणः ॥

इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं चराचरं जगत् ...परमेश्वरस्य चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्यवधिं प्राप्नोति ।....नानेन कथनेन तस्यानन्तत्वं हन्यते । किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्वं जगतो न्यूनत्वं च च ज्ञाप्यते । इति दया० । ब्रह्म, सत्य, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है ऐसा कहा है । इसका परिमाण नहीं है । इसलिये उसके चार पाद नहीं कहे जा सकते । तो भी जगत् ब्रह्म के स्वरूप की अपेक्षया बहुत छोटा है इस अभिप्राय से 'पाद' रूप से कहा है । (सायण) सूर्य चन्द्रादि लोकलोकान्तर वाला चर अचर समस्त जगत् परमेश्वर के एक चौथाई अंश में स्थित है । अर्थात् उसके चौथाई अंश के भी बराबर नहीं है । ऐसा कहने से परमेश्वर की अनन्तता नहीं खण्डित होती । परन्तु जगत् की अपेक्षा उसकी अपेक्षा न्यूनता ही कही गई है । (म० दया०)

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑षः॒ पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त्पुनः॑ ।
ततो॒ विष्व॒ङ् व्य॑क्राम॒त्साशनानश॒ने ऽ अ॒भि ॥ ४ ॥

पुरुषः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(त्रिपात् पुरुषः) तीन अंशों वाला पुरुष (उर्ध्वं उद् ऐत्) सबसे ऊंचा, संसार में पृथक् शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप होकर रहता है और (अस्य पादः) उसका एक अंश पुनः बार-बार (इह अभवत्) इस संसार में व्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। (ततः) उस एक अंश से ही वह परमेश्वर (साशनानशने अभि) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़, दोनों चराचरों को (विश्वङ्) सब प्रकार से व्याप्त होकर (वि-अक्रामत्) विविध प्रकारों से उनको उत्पन्न करता है। 'उदैत्'—'देदीप्यमानस्तिष्ठति' इति उवटः। सूर्य के समान स्वयं उज्ज्वल होकर सबको प्रकाशित करता हुआ विराजता है। 'साशनानशने'—साशनमशनादिव्यवहारोपेतम् । प्राणिजातम्। अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकम् । इति सायणमहीधर-दयानन्दाः। साशनम स्वर्गः अनशनम् मोक्ष इति उवटः ॥

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ ऽ अधि॒ पूरु॑षः ।
स जा॒तो ऽ अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥ ५ ॥

स्रष्टा । अनुष्टुप । गान्धारः ॥

भा०—(ततः) उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (विराट् अजायत) 'विराट्' विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। (विराजः अधि) उस विराट् के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से (पूरुषः) पुर में बसने वाले स्वामी के समान, ब्रह्माण्डों को पूर्ण करने हारा व्यापक परमेश्वर ही था। (सः) वह (पुरः) सबसे पूर्व विद्यमान रह कर (जातः) कार्य-जगत् में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी (अति अरिच्यत) उससे भी कहीं अधिक बड़ा है। (पश्चात्) पीछे से वह (भूमिम्) प्राणियों

५—'विराळजायत' इति काण्व० ।

और वृक्षादि को उत्पन्न करने वाली भूमि को उत्पन्न करता है। अथवा—(स जातः अतिअरिच्यत) वह प्रादुर्भूत होकर भी उस जगत् से पृथक् रहा और (सः पश्चाद्) वह पीछे (भूमिम् अथो पुरः) भूमि और जीवों के शरीरों को उत्पन्न करता है। विशेष विवरण अथर्ववेदालोकभाष्य, कां० १८। ६। ९॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तं पृषदा॒ज्यम्।
प॒शूँस्ताँश्च॑क्रे वाय॒व्या॒नार॒ण्या ग्राम्या॒श्च ये॥ ६॥

ऋ० १०। ९०। ८॥

पुरुषः। विराडनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सर्वपूज्य, सर्वसम्मत (यज्ञात्) सर्वोपास्य, सबको प्राण आदि सब कुछ देने हारे परमेश्वर, प्रजापति से (पृषद्-आज्यम्) दधि, घृत आदि भोग्य पदार्थ (सम्भृतम्) उत्पन्न हुआ और वह ही (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के समान गुण वाले, तीव्र वेगवान् अथवा (वायव्यान्) वायु से जीने हारे (पशून्) पशुओं के (ये) जो (आरण्याः) जंगल के सिंह, शूकर आदि और (ग्राम्याः च) ग्राम के गौ, अश्व आदि सबको (चक्रे) उत्पन्न करता है। अथवा—(पृषदाज्यं सम्भृतम्) (पृषत्-आज्यम्) शरीर में पालक और पूरक रूप से विद्यमान वीर्य या शुक्र को व्यक्त रूप में प्रकट करने वाला, अथवा जिस वीर्य से प्राणियों के नाना देह यथाक्रम सन्तान रूप में बराबर उत्पन्न होते हैं वह वीर्य भी उसी परमेश्वर की शक्ति से उत्पन्न होता है।

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ऽ ऋचः॒ सामा॑नि जज्ञिरे।
छन्दा॑ᳬसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत॥ ७॥

स्रष्टेश्वरः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय, सर्वोपास्य एवं सबके दाता, (सर्वहुतः) सर्वसम्मत, सब कुछ त्यागने के पात्र अथवा समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लेने हारे उस परमात्मा से ही

(ऋचः) ऋग्वेद, ऋचाएं, मन्त्र, (सामानि) सामवेद, साम के समस्त गायनों के ज्ञान (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (छन्दः ह) 'छन्द' अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (यजुः अजायत) यजुर्वेद उत्पन्न होता है।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥
पुरुषः। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(अश्वाः) घोड़े (ये के च) और जो भी कोई गधे आदि (उभयादतः) दोनों जबाड़ों में दांत वाले जीव हैं और (गावः) गौए भी (तस्मात् ह) उससे ही (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) (अजावयः) बकरी, भेड़ें भी (जाताः) पैदा हुई हैं।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥
निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(तम्) उस (यज्ञम्) पूजनीय, (अग्रतः जातम्) सबसे आगे, प्रादुर्भूत जगत् के कर्त्ता, (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (अग्रतः) सृष्टि के पूर्व (बर्हिषि) विद्यमान महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ में (प्र औक्षन्) खूब अभिषिक्त करते हैं। (तेन) उसी ज्ञानमय परम पुरुष रूप से (साध्याः) योगाभ्यास आदि के साधना वाले ज्ञानी और (ऋषयः च) ऋषि (ये च) और जो भी हैं वे (अजयन्त) उपासना करते हैं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥१०॥
निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष (पुरुषम्) उस महान् पूर्ण, पुरुष का (वि अदधुः) विविध प्रकारों से वर्णन करते हैं, वे उसको (कतिधा) कितने प्रकार से (वि अकल्पयन्) विभक्त करते या कल्पना

करते हैं। (अस्य मुखम् किम्) इसका मुख भाग क्या है ? (बाहू किम्) बाहुएं क्या हैं (ऊरू किम्) जांघें क्या हैं ? (पादौ उच्येते) दोनों पैर क्या कहे जाते हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪं शूद्रो ऽअजायत ॥११॥
निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर की बनाई सृष्टि में (ब्राह्मणः मुखम् आसीत्) ब्राह्मण, देव और वेदज्ञ और ईश्वरोपासक जन मुख रूप हैं। (बाहू राजन्यः कृतः) राजन्य, क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान बाहु के समान बने हैं। (यत् वैश्यः) जो वैश्य हैं (तत्) वह (अस्य ऊरू) उसके जंघा हैं और (पद्भ्याम्) पैरों से (शूद्रः अजायत) शूद्र को प्रकट किया जाता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥
अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—प्रजापति के ब्रह्माण्डमय विराट् शरीर का वर्णन। (चन्द्रमाः) चन्द्र (मनसः) मन रूप से (जातः) कल्पना किया गया है। अर्थात् जैसे शरीर में मन वैसे विराट् शरीर में चन्द्र। (सूर्यः चक्षोः अजायत) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया जाता है। मानो उसकी आंख-सूर्य है। (श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च) श्रोत्र से वायु और प्राण प्रकट किये जाते हैं। मानो श्रोत्र वायु और प्राण हैं। (मुखाद्) मुख से (अग्निः अजायत) अग्नि को प्रकट किया जाता है, मानो अग्नि मुख है।

नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षᳪं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्पयन् ॥ १३ ॥
अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(नाभ्या: अन्तरिक्षम् आसीत्) नाभि-भाग से अन्तरिक्ष भाग कल्पित है। (द्यौः) आकाश (शीर्ष्णः सम् अवर्त्तत) शिर भाग से कल्पित हुआ। (पद्भ्याम् भूमिः) पैरों से भूमि और (दिशः श्रोत्रात्) श्रोत्र से दिशाएं तथा (लोकान्) लोकों को (अकल्पयन्) कल्पित किया गया है। उस विराट् के अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्यौ है, भूमि पैर हैं, कान दिशाएं तथा लोक हैं।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽ इध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जब (हविषा) स्वीकार व साक्षात् करने योग्य, परम वेद्य, (पुरुषेण) पूर्ण परमेश्वर से (देवाः) विद्वान् गण (यज्ञम्) उपासनामय ज्ञानयज्ञ का (अतन्वत) सम्पादन करते हैं तब (अस्य) इस यज्ञ का (वसन्तः) वर्ष के प्रारम्भ काल, वसन्त के समान सौम्य पूर्व भाग (आज्यम्) अग्नि को घृत के समान आत्मा के बल वीर्य की प्राप्ति कराता है। (ग्रीष्मः इध्मः) वर्ष में ग्रीष्म ऋतु के समान मध्य भाग, अग्नि को ईंधन के समान आत्मा की ज्ञानाग्नि प्रखर कर देता है। (शरत् हविः) वर्ष के शरत् के समान शीतल, शान्तिदायक रात्रिवत् समस्त प्राणों को पुनः आत्मा में आहुति होने से वह भी यज्ञ में हवि के समान है। इसी प्रकार प्रारम्भ में बाल्यकाल वसन्त, यौवन ग्रीष्म और वृद्धता शरत् है। उवटाचार्य के मत में—वसन्त सत्व, ग्रीष्म रजस् और शरत् तमोगुण है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽ अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(देवाः) विद्वान्‌गण (यद्) जिस (यज्ञम्) यज्ञ को (तन्वानाः) करते हुए (पुरुषम्) पूर्ण पुरुष को (पशुम्) सर्वद्रष्टा रूप से (अबध्नन्) ध्यानसूत्र से बांधते हैं (यस्य) उसके (सप्त) सात (परिधयः)

परिधि, धारण सामर्थ्य हैं। उसके (त्रिःसप्त) इक्कीस (समिधः) प्रकाशक सामर्थ्य (कृताः) विधान किये गये हैं।

'सप्त परिधयः' सात परिधियां—सात छन्द। अध्यात्म में जीवन यज्ञ को कहते हैं। पशु द्रष्टा पुरुष आत्मा को 'देव' दिव्य शक्तियां, चक्षु आदि इन्द्रियां बांध रही हैं, वे सात परिधियां सात शीर्षण्य प्राण और २१ समिधायें प्राकृतिक २१ विकार, अहंकार आदि हैं। अथवा—सात समिधायें, शरीर की सात धातुएं। 'त्रिःसप्त समिधः' प्रकृति, महत्, अहंकार, ५ तन्मात्राएं, ५ स्थूलभूत, ५ इन्द्रिय और तीन गुण। अथवा ५ तन्मात्रा, ५ भूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और मन (अन्तःकरण चतुष्टय)। संवत्सर यज्ञ में १२ मास, ५ ऋतु, ३ लोक, १ आदित्य ॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन्। ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥ १६ ॥

विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(यज्ञेन) पूर्वोक्त मानस यज्ञ से (देवाः) विद्वान् जन (यज्ञम्) उस प्रजापति पुरुष की (अयजन्त) उपासना करते हैं। (तानि धर्माणि) वे सब धारक सामर्थ्य (प्रथमानि आसन्) प्रथम ही विद्यमान रहे। (ते ह) वे (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले ईश्वरोपासक जन, (नाकम्) उस सुखमय परमेश्वर को ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं, उसी में विराजते हैं, (यत्र) जिसमें (पूर्वे) पूर्व के (साध्याः) साधनाशील, (देवाः) विद्वान् ब्रह्मात्म-ज्ञान के साक्षात् द्रष्टा लोग (सन्ति) विराजते हैं।

अ॒द्भ्यः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै रसा॑च्च वि॒श्वक॑र्मणः॒ सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑। तस्य॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रूपमे॑ति॒ तन्मर्त्य॑स्य दे॒वत्व॑मा॒जान॒मग्रे॑ ॥१७॥

आदित्यः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अद्भ्यः) जलों से और (पृथिव्यै) पृथिवी, (विश्वकर्मणः) समस्त संसार के कर्त्ता परमेश्वर के (रसात्) प्रेरक बल से (अग्रे) सब से प्रथम जो ब्रह्माण्ड (सम् अवर्त्तत) उत्पन्न हुआ। (त्वष्टा) वह विधाता

ही (तस्य) उसके (रूपम्) रूप को (विदधत्) स्वयं विविध रूपों से धारण करता हुआ (एति) प्राप्त होता है। (मर्त्यस्य) मरणधर्मा पुरुष के (तत्) उस (आजानम्) समस्त जनों के करने योग्य कर्म और (देवत्वम्) दर्शन करने योग्य ज्ञान को (अग्रे) सबसे पूर्व (एति) स्वयं प्राप्त करता है। जल और पृथिवी से विश्वकर्मा जगत्-स्रष्टा ने उसको बनाया स्वयं बनाने वाला 'त्वष्टा' तदनुरूप हो गया। यही उस (मर्त्यस्य) मरणधर्मा विनाशी पदार्थ का भी (अग्रे) पहले से ही (आजानम् देवत्वम्) जन्म से ही देव रूप है। वह स्वतः ईश्वर की दिव्य शक्ति का स्वरूप है।

'देवत्वम्, आजानम'—मर्त्ये देवत्वं प्रभुत्वं, आजानम् आप्तम् इत्यर्थः (उवटः)। पुरुषस्य विराडाख्यस्य सम्बन्धि, तत् विश्वं प्रसिद्धं देव-मनुष्यादिरूपं सर्वं जगत् अग्रे सृष्ट्यादौ आजानं सर्वतः उत्पन्नम्। इति सायणः॥ देवत्वम् विद्वत्त्वम्। आजानं समन्तात् जनानां मनुष्याणामिदं कर्त्तव्यं कर्म इति दयानन्दः। आजानदेवत्वं, मुख्यं देवत्वम्। द्विविधा देवाः। कर्मदेवा आजानदेवाश्च। उत्कृष्टेन कर्मणा देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः। सृष्ट्यादावुत्पन्ना आजानदेवाः। ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः। ये शतं कर्मदेवाना-मानन्दाःस एक आजानदेवानामानन्दः। तै०। उप०। इति श्रुतेः सूर्यादय आजानदेवाः॥ इति महीधरः।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥

आदित्यः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अहम्) मैं (एतम्) उस (महान्तम्) बड़े भारी (पुरुषम्) ब्रह्माण्ड में व्यापक परमेश्वर को (आदित्यवर्णम्) सूर्य के समान तेजस्वी और (तमसः) अन्धकार प्रकृति से (परस्तात्) दूर, भिन्न (वेद) जानता हूँ। (तम्) उसको ही (विदित्वा) जानकर जीव (मृत्युम् अति एति) मृत्यु को पार कर जाता है। (अन्यः) दूसरा कोई (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट मोक्ष प्राप्ति के लिये (न विद्यते) नहीं है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे ऽ अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

आदित्यः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(प्रजापतिः) वह समस्त प्रजा का पालक (गर्भे अन्तः) गर्भ, गर्भस्थ जीवात्मा वा हिरण्यगर्भ के भीतर, व्यापक होकर (चरति) विचरता है, वह (अजायमानः) स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विविध रूपों से प्रकट होता है। (तस्य) उसके (योनिम्) परम कारणस्वरूप को (धीराः) धीर, ध्याननिष्ठ योगिजन हो (परिपश्यन्ति) साक्षात् करते हैं। (तस्मिन् ह) उस मूल-कारण परमेश्वर में ही (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन, नाना ब्रह्माण्ड एवं सूर्यादि लोक (तस्थुः) स्थित हैं।

यो देवेभ्य ऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

सूर्यः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यः) जो (देवेभ्यः) दिव्य गुण वाले पृथिवी, अग्नि, जल, तेज वायु आदि को उत्पन्न करने के लिये स्वयं (आतपति) तप करता है और (यः) जो (देवानाम्) पृथिव्यादि लोकों, पञ्चभूतों से भी (पुरः हितः) पूर्व उनका मूल कारण होकर विद्यमान रहा और (यः) जो (देवेभ्यः) तेजोमय सूर्यादि पदार्थों से भी (पूर्वः) प्रथम (जातः) हिरण्य-गर्भ रूप से प्रकट होता है। उस (ब्राह्मये) ब्रह्म, वेद द्वारा प्रतिपादित, (रुचाय) स्वयंप्रकाश परमेश्वर को (नमः) नमस्कार है। इसी प्रकार जो सूर्य पृथिव्यादि लोकों के लिये तपता है, जो सबके बीच 'पुरोहित', प्रवर्त्तक प्रकाशक है, उनसे पहले उत्पन्न हुआ उस प्रकाशमान् सूर्य से 'नमः' अन्न उत्पन्न होता है।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा ऽ अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽ असन्वशे ॥ २१ ॥

विश्वेदेवाः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् गण, (ब्राह्मम्) पर ब्रह्म सम्बन्धी, (रुचम्) तेज, ज्ञान को वा ब्रह्म के विद्वान् को (जनयन्तः) उत्पन्न करते हुए, (अग्रे) सबसे प्रथम (तत्) उस परमेश्वर का ही (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं। (एवम्) इस प्रकार (यः) जो ब्रह्मनिष्ठ, विद्वान् (विद्यात्) परमेश्वर के विज्ञान को प्राप्त करता है (तस्य) उसके (वशे) अधीन समस्त (देवाः) देव, विद्वान्, एवं उत्तम व्यवहार और दिव्य आत्मिक और भौतिक शक्तियां (असन्) रहती हैं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण ॥२२॥

आदित्यः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे परमेश्वर (श्रीः च) सबको आश्रय देने वाली और (लक्ष्मीः च) सब में तुझे व्यापक और शक्तिमान् दिखाने वाली, दोनों शक्तियां (ते) तेरी (पत्न्यौ) संसार को पालन करने हारी हैं। (अहोरात्रे पार्श्वे) सूर्य जब प्रत्यक्ष होता है तब दिन और जब नहीं प्रत्यक्ष हो तब रात्रि होती है इसी प्रकार हे परमेश्वर ! तुम्हारे दो पार्श्व हैं। जब तुम साक्षात् होते हो तब हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाना दिन के समान है। तामस आवरण से जब तुम प्रत्यक्ष नहीं होते तब रात्रि है। (नक्षत्राणि रूपम्) जिस प्रकार नक्षत्र सब सूर्य के रूप हैं, उसी प्रकार सब तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के प्रतिरूप हैं।

यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छस्व मम तेजोंशसम्भवम् ॥ गीता ॥
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । कठोप० ॥

(अश्विनौ व्यात्तम्) आकाश और पृथिवी, दोनों खुले मुख के समान

२२—'पत्न्या अहो०ठे' इति काण्व०।

हैं। अथवा (अश्विनौ) प्राण और अपान, दो जबाड़ों वाले खुले मुख के समान हैं। तू ही (इष्णन्) समस्त जगत् को प्रेरणा कर रहा है। तू सबको (इषाण) प्रेरित कर। (अमुम्) उस परम प्राप्तव्य मोक्ष पद को (मे इषाण) मुझे प्राप्त करा और (मे) मुझे (सर्वलोकं इषाण) समस्त लोक, समस्त प्रकार के दर्शन, ज्ञान और समस्त लोकों का भोग्य सुख (इषाण) प्रदान कर।

महर्षि दयानन्द ने उपसंहार में लिखा है—अत्रेश्वरसृष्टिराजगुण-वर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्ति इति वेद्यम्। इस अध्याय में ईश्वर की सृष्टि, राजगुणों का भी वर्णन किया है इस से इस अध्याय की पूर्व अध्याय से संगति है। फलतः इस अध्याय की योजना राजा के पक्ष में नीचे लिखे प्रकार से जाननी चाहिये—

(१) (सहस्र०) वह राजारूप पुरुष हजारों शिरों वाला हजारों आंखों वाला, हजारों पैरों वाला है। वह समस्त भूमि को अधीन करके दश अंगुल ऊंचा होकर विराजे, राजसभा के सभासद् रूप उसी के शिर हैं, वे उसी की आंखें हैं, नाना चर उसकी सहस्रों आंखें हैं और सहस्रों भृत्य, सैनिकादि उसके सहस्रों पद हैं। वह राज-सत्ता से भूमि को व्याप कर राज्य के दशों अंगों, दश दिशाओं वा दशों मन्त्रियों पर अधिष्ठाता रूप से विराजे। (२) जो भूत और भव्य अर्थात् राष्ट्र की उत्पन्न और भावी सम्पत्ति है वह सबका राजा है। (अमृतत्व) जीवन-प्रद पदार्थ जल और अन्न वा जो पदार्थ भी अन्न के रूप में उगता है उसका भी वह स्वामी है। (३) यह उसका बड़ा सामर्थ्य है। वह उससे भी अधिक शक्तिशाली होकर रहे। समस्त राष्ट्र के प्राणी उसका एक भाग हों और (दिवि) राजसभा आदि दिव्य सामर्थ्य में उसके तीन भाग सुरक्षित रहें। (४) वह उस तीन गुणा अधिक सामर्थ्य को स्वयं धारण करके ही सबसे ऊंचा रहे। एक अंश से राष्ट्र में रहे। चर, अचर, स्थावर, जंगम सबकी विशिष्ट व्यवस्था करे। (५) वह स्वयं विराट् सभा को बनावे, उस पर स्वयं

अधिष्ठाता रहे। वह सबसे अधिक सामर्थ्यवान् हो। वह भूमियों और पुर, गढ़ और दुर्ग आदि भी बनावे। (६) वह सबसे पूज्य होकर समस्त (पृषदाज्यम्) पालक, सेनाबल को धारण करे। अन्नादि संग्रह करे। ग्राम और जंगल की पशु सम्पत् को बढ़ावे। (७) वह ऋक्, साम, अथर्व और यजुः सब वेदों का ज्ञान करे, उनकी रक्षा करे। उनके अध्ययनाध्यापन के द्वारा उनको प्रचारित और प्रकाशित करे। (८) अश्व, गौ, भेड़, बकरी सबकी वृद्धि करे। (९) पुरुषोत्तम को विद्वान् लोग (बर्हिषि) महान् राष्ट्र प्रजाजन पर (प्रौक्षन्) अभिषिक्त करें। उसके बल पर साधनसम्पन्न, बलवान् और ऋषि ज्ञानी पुरुष सब (अजयन्त) संगत होकर, परस्पर मिल कर कार्य करें। (१०) महान् राष्ट्ररूप पुरुष की कितने विभागों में विद्वान् कल्पना करते हैं? उसका मुख, बाहु, जांघ और पैर क्या है? (११) महान् राष्ट्र पुरुष के एवं पुरुष राजा के भी, ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय लड़ने वाले बाहू, व्यापादि वैश्य जंघाएं और शूद्र, सेवक जन चरण हैं। (१२) उसका मन चन्द्र के समान आह्लादक हो। आंखें सूर्य के समान तेजस्वी हों। कान वायु के समान व्यापक और मुख अग्नि के समान तेजस्वी हो। (१३) अन्तरिक्ष के समान उसकी नाभि अर्थात् केन्द्रस्थ राजधानी सर्वाश्रय हो, आकाश के समान शिर, तेजस्वी नाना नक्षत्रों के समान विद्वानों से मण्डित राजसभा हो। पैर भूमि के समान स्थिर, प्रतिष्ठित हों। लोक सब श्रोत्र के समान एक दूसरे के दुःख श्रवण करने हारे हों। (१४) यह पुरुष ही राज्याधिकार के लिये स्वीकार करने योग्य 'हवि' साधन है। उससे राष्ट्रयज्ञ विस्तृत करते हैं। उसका राज्य, बल, ऐश्वर्य वसन्त के समान शोभाजनक और प्रजाओं का बसाने वाला हो। इध्म अर्थात् तेज ग्रीष्म के समान प्रखर, असह्य हो। ग्रहण करने वाला बल 'शरत्' अर्थात् शीत काल के समान भयजनक, फलदायक शत्रुनाशक और कंपाने वाला हो। (१५) उसके ७ परिधि, सप्ताङ्ग राज्य हों, २१ 'समिधः' महामात्य हों। देव, विद्वान् गण राष्ट्रयज्ञ को विस्तृत

करते हुए पशु अर्थात् सर्वसाक्षी, द्रष्टा पुरुष को राज्य कार्य में बद्ध या दृढ़ता से स्थापन करें। (१६) उस सर्वपूज्य राजा से प्रजापालक राष्ट्र यज्ञ का सम्पादन करते हैं। वे नाना राष्ट्रधारक प्रथम नियत, स्थित हों। वे महान् सामर्थ्यवान् शासक जन उस सुखमय राष्ट्र पर (समवाय) बनाकर रहें। उसी में साधनों से सम्पन्न विद्वान् और विजयी लोग रहें। (१७) राजा जल, पृथिवी और विश्वकर्मा, शिल्पी विद्वानों के बल से नाना प्रकार के साधनों से सम्पन्न हों। शिल्पी जन या त्वष्टा प्रजापति राज्य का दर्शनीय स्वरूप बनाता है। इसी से उस भृत्य मनुष्य को भी 'देवत्व' प्राप्त होता है। वह राजा 'देव' कहाता है। (१८) मैं उसी तेजस्वी, शोक, अज्ञान से परे निर्दोष, निष्पक्षपात सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करूं। उसको बिना पाये प्रजा को दूसरा शरण नहीं। (१९) प्रजा-पालक राजा सब कार्यों के भीतर व्यापक रहे वही स्वयं उपस्थित होकर नाना प्रकार के राज्य कार्यों को प्रकट करता है। वीर पुरुष उसके राजपद को साक्षात् करते हैं। उसमें समस्त राष्ट्रविभाग और जन आश्रित रहते हैं। (२०) वह विजयी, शासकों के लिये उग्र होकर सूर्य के समान तपता है। वह विद्वानों के समक्ष गुरु के समान व्यवस्थापक है। वह उन द्वारा ही राजा बनाया जाता है। वह ब्रह्म, वेद और ब्राह्म-बल से उत्पन्न होकर तेजस्वी है। उसका (नमः) सब आदर करें। (२१) ब्राह्म अर्थात् ब्राह्मणों से उत्पन्न इस (रुचम्) तेजस्वी राजन्य को उत्पन्न करते हुए विद्वान् लोग प्रथम ही उसको उपदेश करें। जो ब्रह्मज्ञ पुरुष इस प्रकार के पद का लाभ करता है सब उसके अधीन रहें। (२२) सबको आश्रय देने वाली श्री, राष्ट्रसम्पत्, शोभा और लक्ष्मी उसको राजा रूप से दिखावे, ऐसी राज्यलक्ष्मी वैभव ये दोनों उसकी पत्नी पालक शक्तियां हैं। सूर्य के जिस प्रकार दिन रात दो स्वरूप हैं इसी प्रकार राजा के दो स्वरूप दिन और रात्रि हैं, सर्वप्रकाशक दिन और सर्वप्राणियों को सुख से रमाने वाली राज्यव्यवस्था रात्रि है। (नक्षत्राणि) युद्ध में न भागने वाले अग्नि वीर और

क्षत्र से भिन्न दूसरे प्रजागण ये सब राज्य के रूप हैं। अश्विनी नामक दो मुख्य पदाधिकारी राजा के मुख हैं। वह सबको प्रेरणा करता हुआ सबका सञ्चालन करे। दूर के भोग्य पदार्थों को भी राष्ट्र में प्राप्त करावे। समस्त प्रकार के लोकों को वह प्राप्त करे, उनका सञ्चालन करे और सबका अधिपति होकर रहे।

॥ इत्येकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

[३२—३३, ५४] स्वयंभु ब्रह्म ऋषिः। आत्मा देवता।

॥ओ३म्॥ तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॑ च॒न्द्रमाः॑।
तदे॒व शु॒क्रं तद् ब्रह्म॒ ता आपः॒ स प्र॒जाप॑तिः ॥ १ ॥

परमात्मा। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(तत्) वह, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सनातन, सच्चिदानन्द नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, न्यायकारी, दयालु, जगत्-स्रष्टा, जगद्-हर्त्ता जगन्नियन्ता परमेश्वर ही (अग्निः) स्वयंप्रकाश, सर्वत्र, सर्वप्रकाशक, सबसे पूर्व विद्यमान 'अग्नि' है। (तद् आदित्यः) वह ही परमेश्वर, समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लय कर लेने वाला और सूर्य के समान तेजस्वी 'आदित्य' है। (तद् वायुः) वह ही अनन्त बलवान्, सर्वप्राण, सर्वकर्त्ता एवं व्यापक 'वायु' है। (तत् उ चन्द्रमाः) वह ही आह्लादजनक, आनन्दमय 'चन्द्रमा' है। (तद् एव शुक्रम्) वह ही शुद्धस्वरूप और और जगत् के सब कार्यों को अति शीघ्रता से, विना विलम्ब यथाविधि

१—अथातः सर्वमेधः आ प्रव.युमरच्छ [३३। ५४] इत्यन्तात्। इयमेव 'तदेवोपनिषत्'।

करने और सबका प्रकाशक एवं स्वयं देदीप्यमान 'शुक्र' है। (तत् ब्रह्म) वह ही सबसे महान्, सबका बढ़ाने वाला 'ब्रह्म' है। (ताः आपः) वही सब में व्यापक 'आपः' है। (सः प्रजापतिः) वही समस्त प्रजाओं का पालक होने से प्रजापति है।

राजा—अग्नि के समान शत्रुसंतापक परंतप और अग्रणी, सूर्य के समान तेजस्वी, वायु के समान बलवान्, प्रजा का प्राण, चन्द्र के समान बलधारक, अन्न के समान सबका पोषक, जलों के समान प्राणप्रद प्रजापालक होने से वह राजा ही आदित्य, वायु, चन्द्र, शुक्र, ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि नामों से कहा जाता है। अन्यत्र भी—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥ २॥

परमात्मा। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(विद्युतः) विद्युत् जैसे (निमेषाः) निमेष होते हैं, अर्थात् मेघस्थ विद्युत् जैसे सहस्रों बार चमकती और सहस्रों बार छिप छिप जाती है, वे सब विलास उसी से उत्पन्न होते हैं और जैसे (विद्युतः) विशेष तेजस्वी सूर्य से (निमेषाः) दिन और रात्रि उत्पन्न होते हैं, अथवा जिस प्रकार सूर्य के (निमेषाः) नियम से बराबर 'मेष' आदि राशि प्रवेश राशि के संक्रमण से मास और वर्ष उत्पन्न होते हैं, अथवा निमेष त्रुटि, काष्ठा, विपल, पल, घड़ी, होरा, याम, दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदि सभी उत्पन्न होते हैं, अथवा—सूर्य से निरन्तर वर्षणशील मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार (विद्युतः पुरुषात्) विशेष द्युति से प्रकाशमान्, समस्त जगत् के प्रकाशक पूर्ण परमेश्वर से (सर्वे निमेषाः) समस्त निमेष, अध्यातम में नेत्रादि इन्द्रियों के निमीलन, उन्मीलन, सूर्य से, कला, काष्ठा आदि काल के अवयव और जगत् के उत्पत्ति, स्थित, प्रलय तथा निरन्तर होने वाला

उत्पाद और विनाश सब (अधिजज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। कोई भी (एनम्) उसको (न तिर्यञ्चम्) न तिरछे, (न ऊर्ध्वम्) न ऊपर से और (न मध्ये) न बीच में से (परिजग्रभत्) ग्रहण करता है, अर्थात् उसको किसी विशेष अंग से भी पकड़ा नहीं जा सकता, उसका पूर्ण ज्ञान नहीं किया जा सकता।

स एष नेति नेत्यात्मा अगृह्यो नहि गृह्यते। बृहदारण्यकोप० ॥

(२) राजा के पक्ष में—विशेष तेजस्वी पुरुष से राष्ट्र के समस्त निमेष, छोटे बड़े कार्य उत्पन्न होते हैं। उसको कोई ऊपर से, बीच में से, या तिरछे भी नहीं पकड़ सकता। कोई उसको वश नहीं कर सकता।

न तस्य॑ प्रति॒मा ऽ अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यश॑ः। हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ ऽइत्ये॒ष मा मा॑ हिꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त ऽ इत्ये॒षः ॥ ३ ॥

हिरण्यगर्भः परमात्मा। निचृत् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(यस्य) जिसका (महत्) बड़ा भारी (नाम) नाम, स्वरूप और जगत् को वश करने का सामर्थ्य है और जिसका (महद् यशः) बड़ा भारी यश है। (तस्य) उसकी (प्रतिमा न अस्ति) कोई मापक साधन, परिमाण, प्रतिकृति नहीं है। (हिरण्यगर्भः इति) 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे०' यह अनुवाक (अ० २५। १०-१३) (यस्मान्न जातः इति एषा) 'यस्मान्न जातः० [अ० ८।३६] इत्यादि ऋचा और (मा मा हिंसीदित्येषा) 'मा मा हिंसीत्०' इत्यादि अनुवाक में (१२।१०२) (यस्य महत् यशः) जिसका बड़ा यशोगान है। अथवा—(एषः हिरण्यगर्भः इति) वह परमेश्वर ही अपने भीतर सूर्यादि लोकों को धारण करने हारा 'हिरण्यगर्भ' कहाता है। (मा मा हिंसीत् इति एषा) मुझे मत मार इस प्रकार की प्रार्थना उसी से की जाती है। (यस्मात् न जातः) जिससे बढ़ कर कोई नहीं पैदा हुआ है। (२) राजा के पक्ष में—जिसका मननकारी बल और यश बड़ा हो उसका (प्रतिमा) मुकाबले का कोई नहीं। उसका 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि सूक्तों से भी वर्णन किया जाता है।

एषो ह॑ देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स ऽ उ गर्भे ऽअन्तः । स ऽएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ४ ॥

आत्मा । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(एषः देवः) निश्चय से यह ही सब पदार्थों का द्रष्टा और प्रकाशक (सर्वाः प्रदिशः) समस्त दिशाओं को (अनु) व्यापे हुए है । (ह) वही निश्चय से (पूर्वः) सबसे पूर्व (जातः) प्रथम प्रकट होता है । (सः उ) और वह ही (अन्तः गर्भे) भीतर गर्भ में आत्मा और हिरण्यगर्भ में परमात्मा विद्यमान रहता है । (सः एव) वह ही (जातः) समस्त लोकों में शक्ति रूप से प्रकट होता है । (सः) वह ही (जनिष्यमाणः) भविष्य में भी प्रकट होगा । हे (जनाः) पुरुषो ! वह (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक होकर (सर्वतः मुखः) सब ओर उसके मुखों के समान सब प्रकार के काम करने की शक्ति वाला है ।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति । गीता ।१३।१३ ॥

यस्माज्जातं न पुरा किञ्चनैव य ऽ आबभूव भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ५ ॥

परमात्मा । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यस्मात् पुरा) जिससे पहले (किञ्चन) कुछ भी (न जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ और (यः) जो (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों, भुवनों को (आबभूव) व्याप्त हो रहा है । वह (प्रजापतिः) प्रजापालक परमेश्वर राजा और पिता के समान (प्रजया) अपनी समस्त उत्पन्न प्रजा सृष्टि के साथ (संरराणः) उसमें ही रमण करता हुआ (त्रीणि ज्योतींषि) तीन ज्योति अग्नि, विद्युत्, सूर्य या सत्, चित्, आनन्द इनको (सचते) प्राप्त है, इनमें व्यापक है, इन तीन रूपों से स्मरण किया जाता है और (सः)

वह (षोडशी) चन्द्र के समान, आह्लादक १६ कला अर्थात् शक्तियों से सम्पन्न है। प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक, ये १६ अंश या कलाएं समष्टि रूप से परमात्मा में और व्यष्टि रूप से जीवात्मा में होने से वह षोडशी है। १६ राज्याङ्गों से युक्त राजा भी षोडशी है। वह भी प्रजा से ही रमण करता है। उसी में आनन्द प्रसन्न रहता है। 'प्रजापतिः स्व दुहितरं चकमे' इत्यादि अर्थवाद भी इसी बात को दर्शाते हैं।

अध्यात्म में तीन तेज, आत्मा, इन्द्रिय और मन, समाज में ब्राह्मबल, क्षात्र-बल और अर्थबल यही परमेश्वर के 'त्रिपाद्' या 'त्रीणिपदानि' है।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो ऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥
ऋ० १०। १२१। ५॥

परमात्मा। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(येन) जिस परमेश्वर ने (द्यौः) आकाश को (उग्रा) विशेष बलशालिनी और वृष्टिदायिनी बनाकर उसको धारण किया और (येन) जिसने (दृढा च पृथिवी) पृथिवी को दृढ बना कर धारण किया। (येन) जिसने (स्वः स्तभितम्) समस्त सुख या तेजोमय आदित्य को धारण किया है, (येन नाकः) जिसने आनन्दमय, सर्वदुःखरहित मोक्ष को धारण किया है। (यः) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः) समस्त लोकों को और (विमानः) विशेष रूप से बनाने और जानने हारा है (कस्मै) उस प्रजापति स्वरूप, आनन्दमय, परमेश्वर की (हविषा) भक्ति से (विधेम) स्तुति अर्चना करें।

यं क्रन्दसी ऽअवसा तस्तभाने ऽअभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर ऽउदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम।
आपो ह यद् बृहतीर्यश्चिदापः ॥ ७ ॥

परमात्मा। स्वराडतिजगती। निषादः ॥

भा०—(यम्) जिसका आश्रय लेकर (क्रन्दसी) आकाश और पृथिवी (अवसा) बल, सामर्थ्य से (तस्तभाने) समस्त जगत् को थाम रही है और स्वयं थमी हैं (मनसा) जिसके ज्ञानबल या स्तम्भन सामर्थ्य से वे दोनों (रेजमाने) कांपती या चलती हुई (अभि ऐक्षेताम्) दोनों एक दूसरे के सन्मुख देख रही हैं वा दिखाई दे रही हैं। (यत्र अधि) जिसके बल पर (सूरः) सूर्य (उदितः) उदय होकर (विभाति) प्रकाश करता है (कस्मै) उस सुखस्वरूप जगत् के कर्त्ता (देवाय) सबके प्रकाशक, देव की हम (हविषा) भक्ति से (विधेम) उपासना करें । (आपो ह यद् बृहती० २७।२५) और (यश्चिदापः० २७।२६) ये दोनों ऋचाएं भी उसी परमेश्वर का वर्णन करती हैं।

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । तस्मिन्निदꣳसञ्च वि चैति सर्वꣳ सऽ ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८

परमात्मा । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वेनः) विद्वान् मेधावी, ज्ञानवान् पुरुष (तत्) उस ब्रह्म को (गुहा निहितम्) बुद्धि में स्थित, अथवा गूढ़ कारण रूप में विद्यमान (सत्) सत् रूप से (पश्यत्) देखता है, (यत्र) जिसमें (विश्वम्) समस्त विश्व, (एकनीडम्) एक ही आश्रय पर स्थित (भवति) होता है। (तस्मिन्) उसमें (इदम्) यह दृश्य जगत् (सम एति च) प्रलयकाल में लीन हो जाता है और पुनः सृष्टि के अवसर में (वि एति च) विविध रूप में प्रकट हो जाता है। (सः) वह परमेश्वर (प्रजासु विभूः) समस्त सृष्टियों और प्राणियों में व्यापक (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है, उरोया पिरोया हुआ है।

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् ।

८—०'कनीळम्' इति काण्व० ।

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ ९ ॥

अथर्व० २ । १ । २ ॥

विद्वान् । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(गन्धर्वः) गौ अर्थात् वेदवाणी को धारण करने वाला, वेदज्ञ (विद्वान्) विद्वान्, आत्मज्ञानी पुरुष (तद्) उस (अमृतम्) अमृत स्वरूप (गुहा) बुद्धि में (विभृतम्) विशेष रूप से विद्यमान (धाम) सबको धारण करने वाले, परम तेजोमय, सर्वाश्रय, परमेश्वर के स्वरूप का (प्रवोचेत् नु) हमें उपदेश करे । (अस्य) उस परमेश्वर के (त्रीणि पदानि) तीन पद, जानने योग्य तीन स्वरूप (गुहा निहितानि) बुद्धि में स्थित हैं । (यः) जो (तानि) उनको (वेद) साक्षात् कर लेता है (सः) वह (पितुः पिता) पिता से भी बड़ा, पिता का भी पिता, पालक (असत्) है ।

'त्रीणि पदानि'—त्रिपादस्यामृतं दिवि । त्रीणि पदा विचक्रमे । त्रिपाजस्यः । त्रिपस्त्यं ऋ० ८।३९।८॥ त्र्यनीकः । ऋ० ३।५६।३॥ त्रिऊधन् । त्रिप्रतिष्ठितः । अ० १०।२।३२॥ त्रिसधस्थः । ऋ० ५।४।८॥ त्रिदिवः त्रिनाक, त्र्यरुण, त्रिधातु, त्रिवृतः इत्यादि नाना त्रिक लेने योग्य हैं।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा ऽ अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥

अथर्व० २ । १ । ३ ॥

परमात्मा । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सः) वह (नः) हमारा (बन्धुः) बन्धु, भाई के समान हृदयों में बांधने वाला है । (जनिता) वह उत्पन्न करने वाला, पिता है । (सः विधाता) वह विविध उपायों से धारण पोषण करने हारा है । वह (विश्वा) समस्त (धामा) धारण सामर्थ्यों, स्थानों और (भुवनानि) लोकों को भी (वेद) जानता है । (यत्र) जिस परमेश्वर में (देवाः) विद्वान्गण, एवं सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ (अमृतम्) अमृत, मोक्ष-सुख और नाश न

होने वाले सत् तत्व को (आनशाना:) प्राप्त करते हुए उस (तृतीये) परम, सबसे परे विद्यमान, जीव और प्रकृति से भी विलक्षण (धामन्) परम तेज में (अधि ऐरयन्त) स्वच्छन्द विचरते हैं। 'तृतीये धामनि'—तृतीय रजस्, तृतीय नाक, तृतीय पृष्ठ, तृतीय लोक ये सब रचना एकार्थक हैं। 'तृतीयं' तीर्णतमम् इति निरु०। सर्वोच्च लोक।

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥

परमात्मा। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(भूतानि परीत्य) पांचों भूतों को व्याप्त होकर, (लोकान् परीत्य) समस्त लोकों को व्याप्त होकर, (सर्वाः प्रदिशः दिशः च) सब दिशाओं, उपदिशाओं को व्याप्त होकर, (ऋतस्य) अभिव्यक्त हुए इस संसार के भी (प्रथमजाम्) प्रथम विद्यमान प्रकृति को (उपस्थाय) प्राप्त होकर, (आत्मना) अपने स्वरूप से (आत्मानम्) आत्मा अर्थात् अपने आप को (अभि संविवेश) संयुक्त करता है। अध्यात्म में—आत्मवित् ज्ञानी, भूतों को, लोकों को और दिशा उपदिशाओं को जान कर (ऋतस्य प्रथमजाम् उपस्थाय) सत्य परमात्मा को प्रथम उत्पन्न वाणी का ज्ञान करके वह (आत्मना) परमात्मा के साथ (आत्मानम् अभि संविवेश) अपने आत्मा को जोड़ देता है।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। श० १४। ३ ॥

परि द्यावापृथिवी सद्य ऽ इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् १२

परमात्मा। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी (परि इत्वा) सब प्रकार से व्याप कर (लोकान् परि इत्वा) समस्त लोकों को व्याप कर (दिशः परि) समस्त दिशा और (स्वः (परि) परम मोक्षमय सुख को व्याप कर

(ऋतस्य) महान् संसार की (विततम्) व्यापक (तन्तुम्) परम आश्रय, मूलकारण प्रकृति तत्व को (विचृत्य) विशेष रूप से बांध कर (तत्) इसको (अपश्यत्) देखता है। (तत् अभवत्) प्रधान तत्व के साथ संयुक्त होता और (तत् आसीत्) इस ब्रह्माण्ड अर्थात् जगत् रूप में प्रकट होता है। अध्यात्म में—ज्ञानयोगी द्यौ और पृथिवी दोनों को समस्त लोकों को और दिशाओं को जान कर, (स्वः) उस सुखमय मोक्ष को प्राप्त करके (ऋतस्य) सत्यमय परमेश्वर के यज्ञमय प्रजापति के विस्तृत (तन्तुम्) जन्म मरण के सूत्र को (विचृत्य) काट कर, बन्धन मोक्ष मुक्त होकर (तत् अपश्यत्) उस आत्मस्वरूप को साक्षात् करता है (तत अभवत्) और तन्मय हो जाता है (तत् आसीत्) या उसमें वैसा ही रहता है।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ॥ १३ ॥ ऋ० १ । १८ । ६ ।

इन्द्रः । भुरिग् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सदसः) सभामण्डप के समान इस सर्वाश्रय ब्रह्माण्ड के (पतिम्) पालक, (अद्भुतम्) सर्वाश्चर्यकारी, (इन्द्रस्य) जीव के (काम्यम्) कामनायोग्य, (प्रियम्) अति प्रिय (सनिम्) भजन करने योग्य, परम सेव्य (मेधाम्) अति पवित्र, मुझ आत्मा को अपने में धारण करने वाले परमेश्वर को (स्वाहा) उत्तम स्तुति से ही मैं (अयासिषम्) प्राप्त होऊं।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥

परमात्मा । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(याम्) जिस (मेधाम्) आत्ममान को धारण करने वाली परम बुद्धि को (देवगणाः) देव, विद्वान् गण (पितरः) पालक जन, पूर्व के विद्वान् (च) भी (उपासते) उपासना करते हैं (तया मेधया) उस परम प्रज्ञा से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! या गुरो! (माम्) मुझको

(स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी और योगाभ्यास द्वारा (मेधाविनं कुरु) मेधावान्, प्रज्ञावान् करो।

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

परमेश्वरविद्वांसौ। निचृद् बृहती। मध्यमः ॥

भा०—(वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा, प्रज्ञा, बुद्धि प्रदान करे। (अग्नि) ज्ञान-स्वरूप (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी, आचार्य और परमेश्वर (मेधाम्) मेधा प्रदान करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और (वायुः च) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे। (धाता) सबका पोषक परमेश्वर (स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी द्वारा (मे मेधां दधातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे।

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ १६ ॥

विद्वद्-राजानौ। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मण विद्वान् जन और क्षत्रिय लोग (उभे) दोनों (मे) मेरे (श्रियम्) लक्ष्मी का (अश्नुताम्) उपभोग करें। (देवाः) देव, विद्वान् गण या दिव्य गुण (मयि) मुझमें (उत्तमां श्रियम्) उत्तम लक्ष्मी (दधातु) धारण करावें। (तस्यै ते स्वाहा) उस तुझ लक्ष्मी से मैं उत्तम यश को प्राप्त करूं। 'सभाया ज्ञानस्य न्यायस्य दण्डस्य वा पतिम् पालकम्' दयानन्दः। इस लिङ्ग से यह समस्त अध्याय दण्डपति शासक, सभापति राजा के पक्ष में भी लगता है जिसको संक्षेप से दर्शाते हैं—

१—राजा शत्रुतापक होने से 'अग्नि', कर लेने से 'आदित्य', बलवान् उग्र होने से 'वायु', आह्लादक होने से 'चन्द्र', वीर्यवान् होने से 'शुक्र',

आप्त पुरुषों का आश्रय होने से 'आपः' और प्रजापालक होने से 'प्रजापति' है । २—उस तेजस्वी राजा से ही राष्ट्र के सब (निमेषाः) छोटे बड़े कार्य व्यवहार उत्पन्न होते हैं । उस राजा को कोई शत्रु भी न ऊपर से, न पीछे से, न बीच से आक्रमण करे । ३—उसके बराबरी का कोई नहीं । उसका महान् नाम और यश है । ४—वह सबसे मुख्य हो, वह सब प्रदेशों का शासक हो । वह प्रसिद्ध हो, राष्ट्र के प्रत्येक पदार्थ और जन का स्वामी हो । वह सबसे मुख्य अधिकारी होकर रहे । ५—जिससे बढ़कर सब पर कोई शासक नहीं वह प्रजापालक राजा प्रजा से ही सुखी होता हुआ तीनों प्रकार के ज्योति, बलों, अधिकारों को प्राप्त करे और १६ हों अमात्यों या राज्याङ्गों से युक्त हो । शरीर-बल, ज्ञान-बल और अर्थबल अथवा अपना देह, सभा और राष्ट्र का बल तीन ज्योति हैं । ६—वह आकाश, पृथिवी, सुखप्रद ऐश्वर्य और सर्व सुख कर राष्ट्र का वशकर्त्ता हो अन्तरिक्ष के पद पर रह कर समस्त (रजसः) लोकों को वश करे । ७—राजा और प्रजावर्ग उसके रक्षण-बल से सुव्यवस्थित होकर चित्त से उसका भय मानें । वह सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो । ८—विद्वान् जन उस राजा को राष्ट्र के मध्य भाग में स्थित देखता है, समस्त राष्ट्र उस पर एकाश्रय होकर रहता है । वह उसी के आश्रय पर बढ़ता घटता है । वह विशेष सामर्थ्यवान् होकर प्रजाओं में करने योग्य व्यवस्थाओं से ओत प्रोत हो जाता है । ९—विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेज के धारण करने वाले उस अमर, अखण्ड शासन का उपदेश करें । जिसने तीन पद उसी में विराजमान हैं । जो उस राज्य-तत्व को जानता है वह पालक पिता से बढ़ कर पालक है । १०—वह समस्त प्राणियों, लोकों, देशों और दिशाओं को प्राप्त करके 'प्रथमजा' अर्थात् भूमि को प्राप्त कर स्वयं अपने बल से उसमें जमकर बैठता है । ११—वह राजा प्रजावर्ग और समस्त लोकों और (स्वः) राज-सभा को प्राप्त कर, वश कर (ऋतस्य) राष्ट्र की सत्य व्यवस्था,

कानून सूत्र को बांध कर राष्ट्र पर आंख रखता है और तन्मय हो जाता है और राष्ट्रस्वरूप होकर रहता है। १२—मैं प्रजाजन 'सदसस्पति' अर्थात् राष्ट्रपति, सभापति, दण्डपति, अद्भुत, (इन्द्रस्य काम्यम्) ऐश्वर्य-मय राष्ट्र के कामना योग्य, जिसको सब कोई चाहे, ऐसे आश्चर्यजनक वीर, प्रिय राजा को प्राप्त करूं और (सनिम्) सेवनीय, सुखप्रद और (मेधाम्) मुझ राष्ट्र प्रजा के धारक पोषक या शत्रुनाशक शक्ति को प्राप्त करूं। १३—जिस (मेधाम्) संगतिकारक शक्ति को या शत्रुनाशक शक्ति को देव, विजेता राजा लोग और राष्ट्र के पालक लोग उपासना करते, उसका आश्रय लेते हैं, हे अग्रणी नेतः ! तु उससे मुझे युक्त कर। १४—शत्रुओं का वारक, अग्रणी, प्रजापालक, शत्रुनाशक, पृथ्वीपति, वायु के समान उग्र, बली पुरुष मुझे वह 'मेधा' शक्ति प्रदान करे। १६—मेरी राष्ट्र सम्पत्ति का ब्राह्मण, क्षत्रिय, विद्यावान् और बलवान् पुरुष भोग करें। विजेता लोग और विद्वान् लोग मुझ में श्री,सम्पत्ति को धारण करें, (तस्यै ते स्वाहा) उसको वे उत्तम पात्र में प्रदान करें।

इति द्वात्रिंशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

१—१७ अग्निर्देवता।

॥ ओ३म् ॥ अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासोऽअग्नयः पावकाः। श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः॥ १॥ ऋ० १० । ४६ । ७॥

वत्सप्री ऋषिः। अग्नयः। विराट त्रिष्टुप्। धैवतः॥

१—१७ अग्निदैवत्याः पुरोरुचः।

भा०—(अस्य) इस राजा के राज्य और परमेश्वर की सृष्टि में (अग्नयः) अग्रणी, नेता पुरुष और अग्नि, विद्युत् आदि अति तीव्र ताप के पदार्थ (पावकाः) दूसरों को पवित्र करने वाले (दमाम्) गृहों की (अरित्राः) शत्रुओं और रोगादि से रक्षा करने वाले और (अर्चद्धूमासः) उज्ज्वल, दीप्तियुक्त धूम वाले अग्नि के समान तेजस्वी बलशाली हों। वे (श्वितीचयः) श्वेत पदार्थ चांदी, रजत, मुक्ता आदि ऐश्वर्य, यश और शुक्र अर्थात् शुभ चरित्रों के सञ्चय करने हारे (श्वात्रासः) अति धनवान्, अथवा आलस्यरहित, शीघ्रता से कार्य करने वाले (भुरण्यवः) प्रजाओं के धारण पोषण करने वाले, (वनर्षदः) वन में रहने वाले, तपस्वी, सेवनीय, संविभक्त धनों, ऐश्वर्यों या गृहों में निवास करने वाले या रश्मियों में स्थित, सूर्य के समान तेजस्वी या जलों से अभिषिक्त, (वायवः न) वायुओं के समान, बलवान् तीव्र (सोमाः) प्रेरक, जीवनप्रद, राष्ट्र के प्राणस्वरूप एवं ऐश्वर्यप्रद (अजरासः) जरारहित युवा, बलवान् हों।

हर॑यो धूमके॑तवो वात॑जूताऽ उप॒ द्यवि॑।
यत॑न्ते वृथ॑ग॒ग्नयः॑ ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ४३ । ४ ॥

विश्वरूप ऋषिः । अग्नयः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—जिस प्रकार (वृथक्) नाना प्रकार के (अग्नयः) अग्निएं (हरयः) पीत वर्ण के अति तेजस्वी, (धूमकेतवः) धूम से दूर से ही जानने योग्य, (वातजूताः) वायु द्वारा प्रदीप्त होकर (द्यवि) प्रकाश के निमित्त (उप यतन्ते) जला करते हैं, उसी प्रकार (अग्नयः) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष (हरयः) ज्ञान धारण करने हारे (धूमकेतवः) धूम के समान चतुर्दिगन्त फैलने वाले ज्ञान से युक्त और (वातजूताः) वायु के समान प्राणप्रद, परमेश्वर की उपासना वा प्राणायाम से वा वायु के समान बल से बलवान् होकर (द्यवि) प्रकाश और ज्ञान के निमित्त (उप यतन्ते) यत्न करते हैं।

यजा॑ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ२ऋ॒तं बृ॒हत्।
अग्ने॒ यक्षि॒ स्वं दम॑म् ॥ ३ ॥ ऋ० ५ । ७५ । ५ ॥

गौतमः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्, अग्रणी नेतः ! तू (नः मित्रावरुणा) हमारे 'मित्र' स्नेही पुरुषों और 'वरुण' श्रेष्ठ और दुःखनिवारक पुरुषों का (यज) आदर कर। तू (देवान् यज) विद्वान् पुरुषों को दान दे और (स्वम्) अपने (दमम्) दमन करने हारे राष्ट्र को (यक्षि) सुसंगत, सुव्यवस्थित कर।

युद्वा हि देवहूतमाँ२ऽ अश्वाँ२ऽ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥ ४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १२ । ३७ ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेऽ अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रोऽअन्यस्याँ ददृशे सुवर्चाः ॥५॥

ऋ० १ । ९५ । १ ॥

कुत्सः । अग्निः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जैसे (द्वे) दो (विरूपे) भिन्न-भिन्न रूप रंग वाली स्त्रियां (सु-अर्थे) शुभ प्रयोजन में लगी हुईं (चरतः) भिन्न-भिन्न प्रकार का आचरण और आहार विहार करती हैं और (अन्या-अन्या) वे दोनों पृथक्, पृथक् या एक दूसरे के (वत्सम्) बालक को (उपधापयेते) दूध पिलाती हैं। (अन्यस्याम्) एक में से तो (हरिः) श्याम वर्ण का, मनोहर (स्वधावान्) उत्तम, शान्ति आदि गुणों वाला पुत्र (भवति) हो और (अन्यस्याम्) दूसरी में से (शुक्रः) शुचिकर, शुद्ध, (सुवर्चाः) उत्तम, तेजस्वी पुत्र (ददृशे) प्रकट हुआ दिखाई दे इसी प्रकार रात्रि और दिन (द्वे विरूपे चरतः) दोनों प्रकाश और अन्धकार के कारण भिन्न-भिन्न रूप होकर विचरते हैं। दोनों (अन्या-अन्या वत्सम् उपधापयेते) पृथक्-पृथक् एक दूसरे के बालक के समान चन्द्र और सूर्य को पोषित करते हैं। अथवा वे दोनों एक दूसरे से मिल कर (वत्सम्) बसे हुए संसार को पालते पोसते हैं। एक में (हरिः) ताप आदि हरने से हरि, मनोहर, (स्वधावान्) अन्नादि ओषधि के पोषक रसों एवं जल, ओस आदि से

युक्त चन्द्र उत्पन्न होता है और (अन्यस्याम्) दूसरी, दिन वेला में (शुक्रः) कान्तिमान् (सुवर्चाः) उत्तम तेजस्वी सूर्य (ददृशे) दिखाई देता है। अथवा—दिन वेला रात्रि से उत्पन्न हुए सूर्य को अधिक तेजस्वी करती है और रात्रि वेला दिन के अन्तिम प्रहर में उत्पन्न अग्नि को अधिक उज्ज्वल कर देती है। जलादि रस के शोषण करने से सूर्य 'हरि' है और कान्तिमान् होने से अग्नि 'शुक्र' है।

अ॒यमि॒ह प्र॑थ॒मो धा॑यि धा॒तृभि॒र्होता॒ यजि॑ष्ठो अध्व॒रेष्वीड्यः॑।
यमप्न॑वानो॒ भृग॑वो विरुरु॒चुर्वने॑षु चि॒त्रं वि॒भ्वं॑ वि॒शेवि॑शे ॥ ६ ॥

ऋ० ४। ७। १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३। १५ ॥

त्रीणि॑ श॒ता त्री स॒हस्रा॑ण्य॒ग्निं त्रि॒ꣳशच्च॑ दे॒वा नव॑ चासपर्यन्।
औक्ष॑न् घृ॒तैरस्तृ॑णन् ब॒र्हिर॑स्मा॒ऽआदिद्धोता॑रं॒ न्यसादयन्त ॥ ७ ॥

ऋ० ३। ९। ९ ॥

विश्वामित्रः। विश्वेदेवाः विद्वांसः। स्वराट् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(त्रीणि शता, त्री सहस्राणि, त्रिंशत् च नव च) तीन सहस्र, तीन सौ, तीस और ९ अर्थात् ३३३९ इतने (देवाः) विजयशील सैनिक (अग्निम्) अपने अग्रणी सेनापति की (असपर्यन्) आज्ञा मानें। वे उसको (घृतैः) जलों से (औक्षन्) अभिषेक करें और (अस्मै) उसके लिये (बर्हिः) बड़ा, वृद्धिसूचक आसन, पद भी (अस्तृणन्) प्रदान करें। और (आत् इत्) उसके पश्चात् उसको ही (होतारम्) सबका होता, आज्ञापक एवं वेतन और अधिकार देने वाला बना कर (नि असादयन्त) मुख्य आसन पर बैठावें।

मू॒र्धानं॑ दि॒वोऽअ॑र॒तिं पृ॑थि॒व्या वै॑श्वान॒रमृ॒तऽआ जा॒तम॒ग्निम्।
क॒विꣳस॒म्राज॒मति॑थिं॒ जना॑नामा॒सन्ना पात्रं॑ जनयन्त दे॒वाः ॥ ८ ॥

ऋ० ६। ७। १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ७ । २४ ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र ऽ आहुतः ॥ ९ ॥ ऋ० ६ । १६ । ३४ ॥

भारद्वाजः । अग्निः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) सूर्य और वायु (वृत्राणि) आकाश को घेरने वाले मेघों को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (द्रविणस्युः) यश और धनैश्वर्य का इच्छुक (अग्निः) अग्रणी, दुष्टसंतापक, विद्वान्, नेता और राजा (विपन्यया) विविधि प्रकार के व्यवहारों से युक्त नीति से स्वयं (समिद्धः) शीघ्रकारी होकर (आहुतः) शत्रुओं से ललकारा या दुःखी प्रजाओं से कष्ट निवारणार्थ पुकारा जाकर (वृत्राणि) प्रजा के नगरों के घेरने वाले शत्रुओं और सदाचार नाशक पापों को (जंघनत्) नाश करे । इसी प्रकार यश का अभिलाषी नेता राजा प्रजाओं स्तुतियों प्रार्थनाओं से प्रेरित, होकर तेजस्वी सर्व स्वीकृत होकर कदाचारियों और राज्य के विघ्नों को नाश करे ।

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न ऽ इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

मेधातिथिः । विश्वेदेवाः । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान तेजस्विन् ! (वायुना) वायु के समान अपने आक्रमण के प्रबल वेग से शत्रुओं को हिला देने वाले (इन्द्रेण) शत्रुघातक सेनापति और (विश्वेभिः) समस्त वीर पुरुषों के साथ मिल कर (मित्रस्य धामभिः) मित्र, स्नेही राजा के पदाधिकारियों सहित (सोम्यम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य रूप (मधु) मधुर, भोग्य ऐश्वर्य को (पिब) स्वीकार कर । सूर्य का ताप जैसे रसधारक वायु के साथ किरणों से जल पान कर लेता है उस प्रकार राजा मित्रों सहित सेनापति के बल से राष्ट्र का भोग्य अन्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करे ।

आ यदिषे नृपतिं तेज ऽ आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवान ँ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ११ ॥

ऋ० १ । ७१ । ८ ॥

पराशरः । अग्निः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (नृपतिम्) नर रूप नायक, पति अर्थात् पुरुष को (इषे) कामनापूर्त्ति वा निषेक के निमित्त (तेजः) तेज, वीर्य (आनट) प्राप्त होता है तभी वह (शुचि) शुद्ध, दीप्तियुक्त (रेतः) उत्पादक वीर्य (द्यौः अभीके) कामना युक्त स्त्री में (निषिक्तम्) निषिक्त हो तो (अग्निः) वह तेजस्वी पुरुष (शर्धम्) बलवान्, (अनवद्यम्) निर्दोष, अनिन्द्य, सुन्दर (स्वाध्यम्) उत्तम विचारानुसार (युवानम्) जवान, दीर्घायु हृष्ट-पुष्ट सन्तान को (जनयत्) उत्पन्न करता है और (सूदयत् च) इसी के निमित्त निषेक करता है उसी प्रकार (यत्) जब (इषे) वर्षा के निमित्त या अन्नादि से उत्पन्न होने के लिये राजा के समान नेतृ शक्तियों के पालक या सब मनुष्यों के पालक सूर्य का (तेजः) तेज (आ आनट्) सर्वत्र व्याप्त होता है तब और (द्यौः अभीके) आकाश में सर्वत्र (शुचि रेतः निषिक्तम्) शुद्ध जल रूप से गर्भित हो जाता है। तब (अग्निः) वह सूर्य (शर्धम्) बलकारी (अनवद्यम्) निर्दोष (युवानम्) यौवन या बल के वर्धक परस्पर मिश्रित, (स्वाध्यम्) सुख से स्मरण या धारण करने योग्य, उत्तम पोषक जल को (जनयत्) उत्पन्न करता है और (सूदयत् च) भूमि पर वर्षाता है। (२) राजा जब (इषे) अन्नादि के वितरण के लिये राजा का तेज फैलता है (द्यौरभीके) ज्ञान प्रकाश से युक्त राजसभा में विशुद्ध सामर्थ्य को प्रदान करता है और तब (अग्निः) अग्रणी नेता दोषरहित, स्तुतियोग्य, राष्ट्र के यौवन या धारण करने योग्य (दर्शम्) सामर्थ्य को उत्पन्न करता है और उसको पुनः प्रजा पर ही वर्षा कर देता है।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघुवंशे ॥

अग्ने शर्धं महते सौभगाय तवं द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्य ँ सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महांथंसि ॥१२॥
ऋ० ५ । ६८ । ३ ॥

विश्ववारा ऋषिका । अग्निः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! राजन् ! तू (महते) बड़े भारी (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करने के लिये (शर्द्ध) बल प्रकट कर, उद्योग कर । (तव) तेरे (द्युम्नानि) धन और ऐश्वर्य (उत्तमानि) उत्तम, कोटि के (सन्तु) हों । तू (जास्पत्यम्) पति पत्नी के सम्बन्ध को (सुयमम्) खूब दृढ़ (आ कृणुष्व) बना । (शत्रूयताम्) शत्रुता का व्यवहार चाहने वाले पुरुषों के (महांसि) तेजों और ऐश्वर्यों को तू (अभि तिष्ठ) विजय कर ।

त्वा थं हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥
ऋ० ६ । ४ । ७ ॥

भारद्वाजः । अग्निः । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! आचार्य ! हम लोग (मन्द्रतमम्) अति गम्भीर, सबको प्रसन्न करने हारे, स्वयं सुप्रसन्न, दयालु (त्वां हि) तुझको ही (अर्कशोकैः) सूर्य के समान तेजों से युक्त पुरुषों सहित (ववृमहे) वरण करते हैं । तू (नः) हमारे (महि) बड़े प्रयोजन वाले वचन को (श्रोषि) श्रवण कर । (नृतमाः) श्रेष्ठ मनुष्य (शवसा) बल, ज्ञान के कारण (इन्द्रं न) सूर्य के समान तेजस्वी, (वायुं न) और वायु के समान व्यापक, बलशाली एवं प्राणों के पालक (देवता) देव स्वरूप, दाता और द्रष्टा, ज्ञानप्रकाशक जान कर (राधसा) धन और ऐश्वर्य से (त्वाम्) तुझको (पृणन्ति) पूर्ण करते हैं ।

'अर्कशोकैः' मन्त्रैः दीप्तैः, यथोक्तस्थानकर्मानुप्रदानवद्भिः । देवताद्यात्मवित्त-सन्तानगर्भगुरुशुश्रूषाधिगताविप्लवितब्रह्मचर्यैः । इति उवटः ॥

त्वे ऽ अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ १४ ॥

ऋ० ७ । १६ । ७ ॥

वसिष्ठः । अग्निः । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (स्वाहुत) उत्तम पदार्थों और ज्ञानों को प्राप्त करने हारे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ये) जो (सूरयः) सूर्य के समान तेजस्वी, विद्वान् (यन्तारः) स्वयं जितेन्द्रिय, अथवा (जनानां यन्तारः) मनुष्यों को नियम में रखने वाले (मघवानः) धन ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर भी (गोनां ऊर्वान्) गौ आदि पशुओं के नाश करने वालों को (दयन्त) नाश करते एवं दण्ड देते हैं वे (त्वे) तेरे (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों ।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो ऽ अर्यमा प्रातर्यावाणो ऽ अध्वरम् ॥ १५ ॥

ऋ० १ । ४४ । १३ ॥

प्रस्कण्वः । अग्निः । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (श्रुत्कर्ण) अभ्यर्थना करने वाले के वचनों को श्रवण करने वाले, अथवा (श्रुत्कर्ण) पुरुषों के द्वारा बहुश्रुत कर्णों वाले ! अथवा बहुत विद्वानों को अपने अधीन रखने हारे ! (अग्ने) अग्रणी, विद्वन् ! राजन् ! तू (सयावभिः) सदा साथ जाने वाले, सहयोगी (वह्निभिः) राज-कार्यों को भली प्रकार निर्वाहने वाले (देवैः) विद्वानों के साथ मिलकर (श्रुधि) प्रजा के व्यवहारों को सुन और (बर्हिषः) इस आसन पर, अथवा इस महान्, राष्ट्र व राजसभा में (मित्रः) सबको स्नेह से देखने हारा (अर्यमा) स्वामी के समान मान करने योग्य होकर तू और (प्रातर्यावणः) प्रातः ही राज-कार्यों पर जाने वाले अधिकारी जन (अध्वरम्) अहिंसनीय, अनाढ्य, उल्लंघन न करने योग्य राज्यकार्य में (आसीदन्तु) आ-आ कर बैठें ।

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव ऽ आवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥१६॥
ऋ० ३ । १ । २० ॥

गोतमः । अग्निर्जातवेदाः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—(विश्वेषाम्) समस्त (यज्ञियानाम्) पूजनीय, राष्ट्रपालन रूप यज्ञ के सम्पादक पुरुषों में (अदितिः) अखण्ड ज्ञान और आज्ञा वाला (विश्वेषाम्) और समस्त (मानुषाणाम्) मनुष्यों में से (अतिथिः) सबसे अधिक पूज्य, सर्वोपरि स्थित और (देवानाम्) विद्वान्, विद्या और धन के दानशील एवं विजयेच्छु पुरुषों में से (जातवेदाः) ज्ञानवान् (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् राजा (अव) रक्षण कार्य और अन्न आदि को (आवृणानः) प्रदान करता हुआ (सुमृडीकः भवतु) उत्तम सुख देने वाला हो ।

महो ऽ अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो ऽ अद्या वृणीमहे १७
ऋ० १० । ३६ । १२ ॥

लुशो धानाकः । सविता अग्निः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हम लोग (समिधानस्य) अति तेजस्वी, (अग्नेः) संतापकारी, दुष्ट-संहारक, अग्रणी, नायक राजा के (महः) बड़े भारी (शर्मणि) शरण में रह कर (मित्रे) स्नेहवान् मित्र और (वरुणे) श्रेष्ठ पुरुष के आश्रय पर, उनके प्रति (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अनागाः) अपराधरहित होकर (स्याम) रहें और (सवितुः) सबके प्रेरक परमेश्वर और राजा के (श्रेष्ठे) परम कल्याणमय, सर्वोत्तम (सवीमनि) शासन या आज्ञा में (स्याम) रहें और (देवानाम्) विद्वान्, ज्ञानप्रद और विजयेच्छु पुरुषों के (तम्) उस (अवः) रक्षण और ज्ञान को (अद्य) आज, एवं सदा (वृणीमहे) प्राप्त करें ।

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त ऽ इन्द्र । याहि वायुर्न नियुतो नो ऽ अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ १८ ॥ ऋ० ७ । २३ । ४ ॥

वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(आपः न) जल जैसे (ऋतम्) जीवन की (पिप्युः) वृद्धि करते हैं उसी प्रकार (आपः) आप्त जन (ऋतम्) सत्य ज्ञान की (पिप्युः) वृद्धि करें। हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे विद्वन् ! (गावः न) वेदवाणियां जैसे (ऋतं नक्षन्) यज्ञ, पूजनीय ब्रह्म और सत्य तत्व को व्यापती हैं उसी प्रकार (ते जरितारः) तेरे स्तुति करने हारे एवं तेरे यथार्थ तत्व का उपदेश करने वाले गुरुजन (ऋतम्) सत्य ज्ञान को (नक्षन्) प्राप्त करें, उसमें रमें। हे विद्वन् ! राजन् ! (वायुः न) वायु जैसे (नियुतः) अपने तीव्रता आदि विशेष गुणों को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार तू वायु के समान प्रचण्ड बलशाली होकर (नियुतः) निरन्तर युद्ध करने हारी सेनाओं को अथवा निरन्तर संयोग विभाग करने वाली शक्तियों को (याहि) प्राप्त कर और (त्वं हि) तू ही (धीभिः) अपने कर्म और विज्ञानों द्वारा (वाजान्) नाना ऐश्वर्यों और अन्नों को (नः) हमें (अच्छ) भली प्रकार (विदयसे) विविध प्रकार से प्रदान करता है।

गाव ऽ उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १९ ॥ ऋ० ८ । ६१ । १२ ॥

पुरुमीढाजामीढौ । इन्द्रवायू । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(गावः) सूर्य की किरण जैसे (यज्ञस्य) ब्रह्माण्डमय यज्ञ की रक्षा करती हैं उसी प्रकार हे (गावः) गौओ ! तुम (यज्ञस्य) राष्ट्र के सुसंगत यज्ञ की (उप अवत) अच्छी प्रकार रक्षा करो। हे (मही) बड़ी सूर्य और पृथिवी (रप्सुदा) रूप शोभा प्रदान करने वाली तुम दोनों जिस प्रकार प्रजापालन रूप व्यवहार की (अवतम्) रक्षा करते हो उसी प्रकार हे (मही) बड़ी शक्ति वाली (रप्सुदा) रूप शोभा को देने वाली राजा

प्रजाओ ! तुम दोनों (यज्ञस्य अवतम्) परस्पर के सुसंगत व्यवहार की, गृहस्थ धर्म की स्त्री पुरुषों के समान (अवतम्) रक्षा और पालन करो और जैसे (उभा) दोनों स्त्री पुरुष (कर्णा हिरण्यया) सुवर्ण के आभूषण और हित और प्रिय वचनों से युक्त कानों वाले होकर (यज्ञस्य अवतम्) मैत्री उत्पन्न करने वाले प्रेम वचन को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (हिरण्यया) हित और रमणीय (कर्णा) आचरण करने वाले होकर (यज्ञस्य) परस्पर के मित्रता के प्रेम व्यवहार की (अवतम्) रक्षा करो । उसी प्रकार राजा प्रजा ये दोनों भी (हिरण्यया) धनैश्वर्य से सम्पन्न होकर (कर्णा) एक दूसरे के कार्य करने वाले, उपकारक बन कर (यज्ञस्य) राष्ट्र रूप सुसंगत व्यवहार की (अवतम्) रक्षा करें । 'उभा कर्णा हिरण्यया' 'दोनों कान सोने वाले' इस शब्द से कानों में स्वर्ण के आभूषण पहनना एवं यज्ञ का रक्षण और शरीर की रक्षा करने का तत्व भी स्फुट होता है । अथवा—(२) (यथा मही रप्सुदा यज्ञस्य अवतम् तथा उभा हिरण्यया कर्णा यज्ञस्य अवतम् । यथा च गावः मही अवन्ति तथा गावः उभा कर्णा अवत ।) जैसे नाना रूप वाली बड़ी द्यौ और पृथिवी यज्ञ प्रजापति विराट् पुरुष को प्राप्त हैं, उनमें दोनों सूर्य, चन्द्र दो कुण्डल के समान हैं । उसी प्रकार दोनों सुवर्ण से भूषित कान यज्ञ आत्मा या पुरुष को प्राप्त हों और जिस प्रकार किरणें आकाश पृथिवी को व्यापती हैं उसी प्रकार वाणियां दोनों कानों को व्यापें । अथवा—(३) (गावः उपावत) जब किरणें व्यापती हैं, तब (मही यज्ञस्य रप्सुदा अवतम्) ब्रह्माण्ड को रूप देने वाली बड़ी आकाश और पृथिवी प्राप्त होती हैं । उसी प्रकार (गावः उपावत) हे वेदवाणियो ! तुम प्राप्त हो अतः (उभौ कर्णौ) हमारे दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण से मण्डित होकर जैसे शरीर की शोभा करते हैं उसी प्रकार ज्ञान श्रवण सुशोभित होकर (यज्ञस्य अवतम्) वे दोनों कान गुरूपदेश श्रवण से मण्डित होकर यज्ञ, अर्थात् आत्मा को मंडित करें ।

यदद्य सूर ऽ उदितेऽनागा मित्रोऽ अर्यमा ।
सुवाति सविता भगः ॥ २० ॥ ऋ० ७ । ६६ । ४ ॥

वसिष्ठः । सविता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(यत्) जब (मित्रः) सबका स्नेही, मित्र के समान (अर्यमा) स्वामी रूप से अभिमत, न्यायकारी, (सविता) सबका प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्वी, (भगः) सर्वैश्वर्यवान् (सुवाति) राज्य करता है तब (सूरे, उदिते इव) सूर्य उग आने पर जैसे कोई पुरुष अपराध, चोरी आदि नहीं करता, कहीं अन्धकार नहीं रहता, समस्त प्रजागण उसी प्रकार (अद्य) आज (सूरे उदिते) तेजस्वी सूर्य के समान राजा के उदय होने पर (अनागाः) पाप से दूर रहें ।

आ सुते सिञ्चत श्रिय ँ रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् ॥ ऋ० ८ । ६१ । १३ ॥

सुनीतिर्ऋषिका । रसाः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! तुम (रसाः) सारवान्, बलवान् एवं तीव्र वेग से जाने वाले जलप्रवाहों के समान बलवान् होकर (रोदस्योः अभिश्रियम्) आकाश और पृथिवी के बीच सर्वत्र शोभाजनक (वृषभम्) वर्षणशील सूर्य या मेघ के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग या दो बड़े राज्यों के बीच (अभिश्रियम्) अति अधिक शोभा पाने वाले, आश्रय करने योग्य, एवं (वृषभम्) अति बलवान् पुरुष को (सुते) राष्ट्र के बीच में (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी (असिञ्चत) प्रदान करके अभिषेक करें और वह राज्य को (दधीत) धारण करे ।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥ २१ ॥

भा०—'तं प्रत्नथा०' और 'अयं वेनः०' ये दोनों (अ० ७।१२) और (२६) मन्त्रों की प्रतीक मात्र हैं । उनकी व्याख्या वहीं देखो ।

आ तिष्ठन्तं परि विश्वे ऽ अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद्वृष्णोऽअसुरस्य नामा विश्वरूपोऽअमृतानि तस्थौ ॥२२॥
ऋ० ३ । ३८ । ४ ॥

विश्वामित्रः । इन्द्रः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(तिष्ठन्तम्) एकत्र स्थिर हुए राजा को (विश्वे) सब लोग (परि) चारों ओर से (अभूषन्) घेर कर खड़े होते हैं। वह (स्वरोचिः) स्वयंप्रकाश, सूर्य के समान तेजस्वी (श्रियः) शोभाजनक ऐश्वर्यों को (वसानः) धारण करता हुआ (चरति) विचरता है। (वृष्णः असुरस्य) वर्षा करने वाले मेघ के समान समस्त प्राणियों को दान करने वाले उसका (महत् नाम) नमाने का बड़ा भारी सामर्थ्य है कि (विश्वरूपः) विश्वरूप होकर अर्थात् समस्त पदाधिकारियों का स्वरूप धर कर (अमृतानि) अविनश्वर, ऐश्वर्यों पर (तस्थौ) शासक होकर विराजता है। विद्युत् पक्ष में—वर्षणशील मेघ में वह बड़ा भारी बल है जो नाना रूप होकर जलों में व्याप्त है।

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे।
इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳसहो महि श्रवो नृम्णञ्च रोदसी
सपर्यतः ॥ २३ ॥ ऋ० १० । ५० । १ ॥

सुचीकः । इन्द्रः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का (सुमखम्) उत्तम यज्ञ, (सहः) शत्रु के पराजयकारी बल, (महि श्रवः) बड़ा भारी यश और (नृम्णं च) धन इन पदार्थों को (रोदसी) द्यौ और पृथिवी ज्ञानी अज्ञानी और राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों (सपर्यतः) उपहार में प्रदान करते हैं। उस (विश्वानराय) समस्त नरों और नेताओं के उत्पादक (विश्वाभुवे) समस्त विश्व के उत्पादक, सर्व विश्वव्यापक (अन्धसः) अन्न के दान करने वाले (महे) महान् (मन्द-

मानाय) सबको आनन्द देने वाले, स्वयं आनन्दस्वरूप उस परमेश्वर की (वः) तुम लोग (अर्च) अर्चना और स्तुति आदर करो ।

बृहन्निदिध्म ऽ एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २४ ॥ ऋ० ८ । ४५ । २ ॥

त्रिशोकः । इन्द्रः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(येषाम्) जिनका (सखा) मित्र (बृहन्) महान् (इध्म) तेजस्वी, (पृथुः) विस्तीर्ण राज्य वाला (स्वरुः) शत्रुओं का तापक, सूर्य के समान तेजस्वी (युवा) युवा पुरुष के समान सदा बलवान् उत्साही हो, (एषाम्) उन प्रजाओं का (भूरि) बहुत (शस्तम्) उत्तम, प्रशंसा योग्य फल होता है ।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महाँ२ऽ अभिष्टिरोजसा ॥ २५ ॥ ऋ० १ । ९ १ ॥

मधुच्छन्दाः । इन्द्रः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (सोमपर्वभिः) सोम, राजपद या राज्य के पालन करने वाले पुरुषों सहित (अन्धसः) अन्न या राज्यैश्वर्य से (मत्सि) तृप्त हो और (ओजसा) बल पराक्रम से तू स्वयं (महान्) बड़ा (अभिष्टिः) आदर सत्कार करने योग्य है ।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन् व्यꣳसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना ऽ अकृणोद्राम्याणाम् ॥२६॥
ऋ० ३ । ३४ । ३ ॥

विश्वामित्रः । इन्द्रः । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(शर्धनीतिः) बल, सेनाबल को अग्रणी होकर ले चलने वाला (इन्द्रः) शत्रुसंहारक सेनापति (वृत्रम् अवृणोत्) नगररोधी शत्रु को रोक ले और (वर्पणीतिः) नानारूपों के व्यूहों के करने और चलाने में चतुर सेनापति (मायिनाम्) मायावी पुरुषों को भी (अमिनात्) विनाश

करे। (वनेषु) वनों में लगा (उशधग्) अग्नि जैसे सबको भस्म कर देता है। वैसे (उशधग्) पराये धन के लोभी चोर डाकू आदि को पीड़ित करने में कुशल राजा (वनेषु) वनों में स्थित (व्यंसम्) अपने पराये धनों को हरने वाले चोर को उसके बाहुएं या कन्धे काट करके (अहन्) मारे और (रम्याणाम्) प्रसन्न करने वाले स्तुति पाठकों की (धेना) वाणियों को (आविः अकृणोत्) प्रकट करे।

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किन्त ऽ इत्था।
संपृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते ऽ अस्मे ॥
ऋ० १। १६५। ३॥

अगस्त्यः। इन्द्रः। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सत्पते) सज्जनों के पालक ! (त्वम्) तू (माहिनः) अति पूज्य और महान् सामर्थ्यवान् होकर (एकः) अकेला (यासि) प्रयाण करता है, सो (कुतः) किस प्रयोजन से ? (ते) तेरा (इत्था) इस प्रकार कार्य करने में (किम्) क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार (समराणः) ठीक रास्ते पर जाता हुआ तू (शुभानैः) शुभ मङ्गल-कामना करने वाले हितैषी पुरुषों से (सम्पृच्छसे) पूछा जावे। (नः) हमें (तत्) उन सब कारणों को (वोचः) बतला, हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् ! (यत्) क्योंकि (अस्मे) हम (ते) तेरे ही हितैषी हैं।

महाँ२ ऽ इन्द्रो य ऽ ओजसा० कदा चन स्तरीरसि०
कदा चन प्रयुच्छसि ॥ २७ ॥

गौरिवीतिः। इन्द्रः। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् इन्द्र ! (ओजसा महान्) तू बल पराक्रम से महान् है। यह मन्त्र प्रतीक देखो ७। ४०॥ (कदाचन स्तरीः असि) तू कभी प्रजा का नाश नहीं करता। यह मन्त्र प्रतीक देखो ८।२ (कदा च न प्रयुच्छसि) तू कभी प्रमाद नहीं करता। यह मन्त्र प्रतीक देखो अ० ८। ३॥

आ तत्तऽइन्द्रायवः पनन्ताभि यऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीᳬसहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥२८॥

ऋ० १० । ७४ । ४ ॥

गौरिवीतिः । इन्द्रः । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (ये) जो लोग (ऊर्ध्वम्) हिंसक, दुष्ट, (गोमन्तम्) भूमि के मालिक को (तितृत्सान्) मारना चाहते हैं और जो (पुरुपुत्राम्) बहुत से पुत्रों वाली, (सकृत्स्वम्) एक ही बार बहुत अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ, (महीम्) भूमि को और (सहस्रधाराम्) सहस्रों को धारण पोषण करने वाली भूमि या सहस्रों धाराओं से वर्षण करने वाली, (बृहतीम्) विशाल द्यौ को (दुदुक्षन्) गौ के समान दोह लेना चाहते हैं अर्थात् जो उसके ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेने के इच्छुक हैं वे (आयवः) मनुष्य (ते) तेरे (तत्) उस विजय और प्रजापालन के कार्य की निरन्तर स्तुति करते हैं ।

(ये ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्) जो आंगिरस लोग प्राप्त हुए गो संघ को मारना चाहते हैं, यह सायणकृत अर्थ था । (ये गोमन्तं उदकवन्तं ऊर्वं अन्नं तितृत्सान् हिंसितुमिच्छति) जो पानी वाले अन्न अर्थात् सोम को मारना चाहते हैं । यह उवट और महीधर का असंगत है । (२) आचार्य पक्ष में—हे इन्द्र ! आचार्य ! (ये) जो (गोमन्तम् ऊर्वम्) वाणी के स्वामी अर्थात् विद्वान् होकर भी हिंसक या दुष्ट पुरुष को जो नाश करना चाहते हैं और बहुत से शिष्य रूप पुत्रों वाली सहस्रों ज्ञानों का धारण और प्रदान करने वाली, बड़ी (सकृत्स्वम्) एक ही बार समस्त ज्ञान प्रकट करने वाली, (बृहतीम्) वेद वाणी को दोहना चाहते हैं वे (ते आ पनन्त) तेरी शरण आते हैं ।

इमान्ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्तऽआनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२९॥

ऋ० १ । १०२ । १ ॥

कुत्सः । इन्द्रः । जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! मैं (महतः) महान् सामर्थ्य वाले (ते) तेरे लिये (इमाम्) इस (धियम्) धारण योग्य कर्म और ज्ञान को (प्र भरे) धारण करता हूँ। (अस्य) इस तेरे सेवक की (स्तोत्रे) स्तुति करने में (यत् धिषणा) जो बुद्धि या वाणी है वह (ते आनजे) तेरे ही महान् सामर्थ्य को प्रकट करती है। (तम्) उस (सासहिम्) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को (देवासः) वीर विजिगीषु लोग (शवसा) बल के कारण (उत्सवे) उत्सव और (प्रसवे) ऐश्वर्य प्राप्ति और उत्तम शासन के कार्य में प्राप्त करके उसके (आ अनु-मदन्) आनन्द के साथ साथ स्वयं भी आनन्दित हर्षित होते हैं।

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् ।
वातजूतो योऽअभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति ॥३०॥

ऋ० १० । १७० । ३ ॥

विभ्राड् । सूर्यः । विराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(विभ्राट्) विविध दिशाओं में विशेष रूप से प्रदीप्त, सूर्य (बृहत्) बड़ा है। वह (सोम्यं मधु) सोम, जीवन के हितकारी जल को किरणों से पान करता है। (वातजूतः) वायु से किरणों से युक्त होकर वह प्रजाओं को पालता पोषता है, प्रजाओं और लोकों को धारण करता हुआ प्रकाशित होता है उसी प्रकार विशेष तेज से देदीप्यमान तेजस्वी राजा बड़े भारी (सोम्यम्) ऐश्वर्य-जनक, सोम अर्थात् राजपद के योग्य (मधु) अन्न, ज्ञान और शत्रुनाशक, राष्ट्र-स्तम्भक बल और मान को (पिबतु) भोग करे और वह (यज्ञपतौ) यज्ञ अर्थात् परस्पर सुसंगत व्यवस्था और पूज्य पदों के पालन करने वाले पुरुष में (अविहुतम्) अखण्डित, सम्पूर्ण (आयुः दधत्) दीर्घजीवन धारण करता हुआ, अथवा (यज्ञपतिम्) राष्ट्रपति के पद पर (अविह्रुतम् आयुः दधत्) अपने सम्पूर्ण अखण्डित, जीवन प्रदान करता हुआ (यः वातजूतः) जो वायु के समान प्रचण्ड वेग

वाले बलवान् सेनापति के बल से स्वयं बलवान् होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (प्रजाः अभि रक्षति) प्रजाओं की रक्षा करता है और (पुपोष) उनको पुष्ट, समृद्ध करता है वह (वि राजति) विशेष रूप से प्रकाशित होता है।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ३१ ॥ ऋ० १ । ५० । १ ॥

भा०—व्याख्या देखो (७ । ४१)

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ २ऽ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३२ ॥ ऋ० १ । ५० । ६ ॥

प्रस्कण्वः । सूर्यः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वरुण) पापों के निवारक ! सर्वश्रेष्ठ, परमेश्वर ! राजन् ! हे (पावक) सूर्य और अग्नि के समान पवित्र कारक, जनों को दण्ड आदि से निष्पापकारक ! (येन) जिस (चक्षसा) दर्शन या प्रकाश से (भुरण्यन्ताम्) सबके पालक पुरुष को (पश्यति) देखता है उसी से (त्वम्) तू अन्य मनुष्यों को भी (अनु पश्यसि) देख, उनको ज्ञान दे और मार्ग दिखा। राजा छोटे बड़े सबको एक समान देखे, एक समान शासन करे समान रूप से शिक्षित करे।

दैव्यावध्वर्यू ऽ आ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा ।
मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ॥

प्रस्कण्वः। विद्वान् । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (दैव्यौ अध्वर्यू) देवों, विद्वानों, दिव्य गुणों के निमित्त अध्वर, यज्ञ, अहिंसायुक्त राज्यपालन में कुशल दो पदाधिकारी पुरुषो ! आप दोनों (सूर्यत्वचा) सूर्य के समान चमकने वाले बाह्य आवरण से मढ़े (रथेन) रथ से या तेजस्वी रक्षा साधन शस्त्रास्त्र बल और रथारोही सैन्य

३१— यज्ञपता अवि०' इति क एव० ।

सहित (आ गतम्) आओ और (यज्ञम्) राष्ट्र यज्ञ को (मघवा) अन्न, यश और मधुर भोग्य पदार्थों से (सम्-अञ्जाथे) युक्त करो ।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० । चित्रं देवानाम्० ॥३३॥

भा०—तं प्रत्नथा० प्रतीक देखो अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः०' मंत्र प्रतीक देखो ७ । १६ ॥ 'चित्रं देवानाम्०' प्रतीक देखो ७ । ४२ ॥

आ नऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देवऽएतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥
ऋ० १ । १८६ । १ ॥

अगस्त्यः । सविता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(विश्वानरः) सबका नेता, अग्रणी, स्वामी, (सविता) सबका प्रेरक, उत्पादक ! सूर्य के समान (देवः) उत्तम ज्ञान प्रकाशों का दिखाने हारा, दाता, विद्वान् (नः) हमारे (विदथे) संग्राम कार्य, एवं ज्ञानमय स्थान में (सुशस्ति) उत्तम उपदेश करने वाली (इडाभिः) वाणियों सहित (नः) हमें (आ एतु) प्राप्त हो । हे (युवानः) युवा, तरुण, बलवान् पुरुषो ! तुम लोग (अभिपित्वे) अपने आगे जाने वाले (नः) हमारे (विश्वं जगत्) समस्त पुत्र, पशु आदि संसार को (यथा) जिस प्रकार से (अपि मत्सथाः) आनन्द प्रसन्न एवं भोजन अन्नादि से तृप्त करते रहो ऐसी (मनीषा) उत्तम बुद्धि से काम करो ।

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगाऽअभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ३५ ॥ ऋ० ८ । ८३ । ४ ॥

श्रुतकक्षः सुकक्षश्च ऋषी । सूर्यः । पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (सूर्य) समस्त ऐश्वर्य के उत्पादक ! हे (वृत्रहन्) मेघनाशक सूर्य के समान शत्रुओं के नाशक ! तू (अभि उद् अगाः) उदय को

३३—'दैव्या अध्व०' इति काण्व० । 'वेनश्चोदयत्' इति काण्व० ।

३४—इळा० इति काण्व० ।

प्राप्त हो, उन्नत पद पा। (अद्य) आज दिन (यत् यत्) जो कुछ भी है (तत् सर्वम्) वह सब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते वशे) तेरे ही वश में हैं।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ३६ ॥ ऋ० १।५०।४॥

प्रस्कण्वः। सूर्यः। पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—तू (तरणिः) सब संकटों से पार उतारने वाला (विश्वदर्शतः) सबसे दर्शन करने योग्य, (ज्योतिःकृत्) समस्त सूर्यादि तेजस्वी लोकों को बनाने वाला है। हे (सूर्यः) समस्त जगत् के प्रेरक और सञ्चालक! तू (रोचनम्) तेजस्वी, दीप्तिमान् (विश्वम्) समस्त संसार को (आभासि) प्रकाशित करता है। (२) हे सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष प्रजाजनों को पार लगाने वाला होने से तू 'तरणि' है सबसे दर्शनीय, ज्योति अर्थात् ज्ञान प्रकाश का चलाने वाला है, समस्त रुचिकर पदार्थों का प्रकट करने वाला है।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्वितत सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३७ ॥
ऋ० १।११५।४॥

[३७, ३८] कुत्सः। सूर्यः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य सबके प्रेरक सञ्चालक और उत्पादक परमेश्वर का (तत् देवत्वम्) यही अवर्णनीय 'देवत्व' अर्थात् सर्वशक्तिप्रद स्वरूप है और (तत्) वही अलौकिक (महित्वम्) महान् सामर्थ्य है कि वह (विततम्) नाना प्रकारों से फैले विस्तृत संसार को (कर्त्तोः) बनाने में समर्थ है, वही (मध्या) बीच में व्यापक है और वही (सं जभार) इसका संहार करता है। (यदा इत्) जब भी वह (सधस्थात्) एकत्र होने के केन्द्र स्थान से (हरितः) अपनी तीव्र गतिदायिनी शक्तियों को और विस्तृत दिशाओं को भी, समस्त किरणों को सूर्य के समान (अयुक्त) एकत्र कर लेता है (आत्) तभी (रात्रि) रात्रि के समान ही प्रलयकाल की रात्रि (सिमस्मै) इस समस्त ब्रह्माण्ड के ऊपर (वासः तनुते) आवरण सा छा

देती है। (२) सूर्य के समान तेजस्वी राजा का यही देवत्व और महत्त्व है कि वह राष्ट्र के बीच में रहकर राष्ट्र को बनाने और बिगाड़ने में समर्थ है। वह एक ही मुख्य पद से समस्त (हरितः) दिशाओं अर्थात् देशों या समस्त विद्याओं और वीर पुरुषों को रथ में अश्वों के समान, राष्ट्र के कार्य में नियुक्त करता है, तभी 'रात्रि' सबको आनन्द सुख देने वाली राज्य-व्यवस्था सबके लिये वस्त्र के समान गर्मी, सर्दी, दुःख, पीड़ा विपत् से बचाने वाली होकर रक्षा प्रदान करती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ ३८ ॥

ऋ० १। ११५। ५॥

कुत्सः। सूर्यः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार (द्योः उपस्थे) आकाश के बीच में रहकर (मित्रस्य) वायु और (वरुणस्य) जल के (तत् रूपं कृणुते) उस रूप को प्रकट करता है जिसे (अभिचक्षे) समस्त जगत् का प्राणी देखता है। इसी प्रकार (सूर्यः) सबका प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर भी (द्योः) प्रकाशमय, ज्ञानमय स्वरूप में (उपस्थे) विद्यमान रह कर (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुण, सब में विद्यमान प्राण और उदान दोनों का ऐसा (रूपं कृणुते) रुचिकर स्वरूप उत्पन्न करता है जिसे यह मनुष्य भी (अभिचक्षे) देखता है। अथवा—[मित्रम् अहः वरुणो रात्रिः] मित्र दिन और वरुण रात्रि, इन दोनों का ऐसा रूप उत्पन्न करता है जिससे सबको देखता है। (अस्य) इसका भी (रुशत्) तेजोयुक्त सूर्य के समान (अनन्तम्) अनन्त (पाजः) बल, सामर्थ्य (अन्यत्) एक प्रकार का है और (अन्यत् कृष्णम्) दूसरा एक और सामर्थ्य 'कृष्ण' अर्थात् काला है। अर्थात् सूर्य के जिस प्रकार दो सामर्थ्य हैं एक चमकने वाला, दिन करने वाला, दूसरा कृष्ण आकर्षक काला का उसी प्रकार परमेश्वर के दो सामर्थ्य हैं एक (रुशत्

पाजः) तेजोयुक्त अर्थात् सबको प्रकाशमय, चेतनामय करने वाला उत्पादक सामर्थ्य और दूसरा 'कृष्ण' सब संसार का 'कर्षण' करने वाला या कृन्तन, विनाश करनेवाला, प्रलयकारी है जिस प्रकार सूर्य के दोनों प्रकार के सामर्थ्यों को (हरितः) दिशाएं धारण करती हैं, उसी प्रकार इस परमेश्वर के भी दोनों सामर्थ्यों को (हरितः) अतिवेग वाली शक्तियां (संभरन्ति) भरण पोषण करती हैं और वे ही (संभरन्ति) संहार भी करती हैं। (२) अध्यात्म में—सूर्य सबका प्रेरक आत्मा सर्व प्रकाशमय चेतनामय मस्तक के बीच में रह कर मित्र प्राण और वरुण अपान दोनों का रूप करता है। इसका अनन्त सामर्थ्य, एक (रुशत्) रोचक है जो इसको सात्विक कर्म कराता है, चेतन रखता है। दूसरा 'कृष्ण' तामस बल है जो समस्त प्राणों को कर्षण करता है जिसको (हरितः) इन्द्रियां धारण करती हैं। (३) इसी प्रकार राष्ट्र में सूर्य के समान तेजस्वी राजा मित्र और वरुण के रूप धारण करता है वह सज्जनों पर अनुग्रह और दुष्टों पर निग्रह करने वाले दो विभाग करता है। एक उसका तेजस्वी रूप है दूसरा 'कृष्ण' अर्थात् भयानक, शत्रुनाशकारी बल है। जिससे संहारकारी वीर सेनाएं और प्रजाएं धारण करती हैं।

बण्म॒हाँ२ऽ अ॑सि सूर्य॒ बडा॑दित्य म॒हाँ२ऽ अ॑सि।
म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ२ऽ अ॑सि ॥ ३९ ॥

ऋ० ८ । १० । ११ ॥

[३९, ४०] जमदग्निः । सूर्यः । विराट् सतो बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। हे (आदित्य) सबको अपने में ग्रहण करने हारे, तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। (सतः) नित्य कारण रूप में विद्यमान तेरा (महः महिमा) महान् सामर्थ्य (पनस्यते) कहा जाता है (अद्धा) सचमुच हे (देव) देव ! तू (महान् असि) महान् है।

बट् सूर्य श्रवसा महाँ२ऽ असि सत्रा देव महाँ२ऽ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४० ॥
ऋ० ८ । ९० । १२ ॥

जमदग्निः । सूर्यः । भुरिग् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! सर्वप्रेरक प्रभो ! राजन् ! (श्रवसा) श्रवण करने योग्य, ऐश्वर्य ज्ञान और यश तू से (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है । हे देव, सबके प्रकाशक हे सर्वत्र दानशील कान्तिमय ! तू (सत्रा) सत्य ही, वा सत्य के द्वारा (महान् असि) महान् है । (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (देवानाम्) समस्त दानशील पुरुषों या पृथिव्यादि लोकों से बीच, सूर्य के समान (असुर्यः) प्राणियों का हितकारी है तू (पुरोहितः) दीपक के समान विवेक से मार्ग चलने के लिये (पुरः हितः) आगे के मुख्य अग्रणी पद पर स्थापित किया जाता है । तू (विभु) विविध सामर्थ्यों से युक्त (अदाभ्यम्) अविनाशी (ज्योतिः) ज्योति, आनन्दमय, तेजस्वरूप है ।

श्रायन्तऽइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ऽओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥४१॥
ऋ० ८ । ८८ । ३ ॥

नृमेधः सूर्यः । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! तुम लोग (सूर्यम्) सबके प्रेरक सर्वोत्पादक परमेश्वर का (श्रायन्तः इव) आश्रय लेते हुए ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् आत्मा के (विश्वा वसूनि) समस्त देह में बसने से प्राप्त करने योग्य आनन्दों का (भक्षत) भोग करो । हम लोग (जाते) उत्पन्न हुए और (जनमाने) आगे उत्पन्न होने वाले संसार में (भागं न) अपने कमाये धन को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार (ओजसा) बल पराक्रम से कमाये हुए (भागम्) सेवन करने योग्य कर्म-फल को अब तक उत्पन्न और आगे उत्पन्न होने वाले जन्म या देह में (दीधिम) धारण करते हैं ।

(२) सूर्य के समान तेजस्वी राजा का आश्रय लेकर ही हम ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के धनों का भोग करें और उत्पन्न और आगे होने वाले प्रजा आदिक में अपने पराक्रम से कमाये धन प्रदान करें।

अद्या देवा ऽउदिता ऽ सूर्यस्य निर ँ हंसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी ऽउत द्यौः ।४२

कुत्सः । सूर्यः । निचृत् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवाः) सब अर्थों के प्रकाश करने वाले, प्रिय, विद्वान् पुरुषो ! आप (सूर्यस्य) सूर्य के उदय हो जाने पर जैसे किरणें अन्धकार को दूर कर देती हैं वैसे आप लोग (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्म ज्ञान के हृदय में उदित हो जाने पर और राष्ट्र में तेजस्वी राजा के उदय हो जाने पर हमें (अंहसः) पाप से और (अवद्यात्) निन्दनीय कर्म से भी (पिपृत) बचावें। पापों से पृथक् करें और (मित्रः) सबका स्नेही न्यायाधीश, (वरुणः) दुष्टों का वारक, सर्वश्रेष्ठ, (अदितिः) अखण्ड शासनाज्ञा वाला, (सिन्धुः) नदी के समान वेगवान्, बलवान्, राष्ट्र को बांधने वाला, प्रबन्धक (पृथिवी) पृथिवी के समान सर्वाश्रय, उत (द्यौः) आकाश के समान विशाल पुरुष (नः) हमारे (तत्) उस संकल्प को (मामहन्ताम्) सत्कार करे। (२) भौतिक पक्ष में—सूर्य के उदय होने पर (देवाः) सूर्य की किरणें हमें बुरे कर्म (अंहसः) पाप और रोग से दूर करें। हम स्वच्छ निरोग, शुभ संकल्पवान् हों। (मित्रः) सूर्य, (वरुणः) जल, (अदितिः) आकाश, (सिन्धुः) सागर या जल प्रवाह, (पृथिवी) पृथिवी और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (नः तत् मामहन्ताम्) हमारे इस शरीर को उत्तम बनावे।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ४३॥

ऋ० १ । ३५ । २ ॥

हिरण्यस्तूपः । सूर्यः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—सूर्य (कृष्णेन रजसा) परस्पर आकर्षण करने वाले लोक समूह के साथ सर्वत्र भ्रमण करता हुआ मर्त्य, नाशवान् प्राणियों और अनाशवान् भौतिक तत्वों को अपने-अपने स्थान पर स्थिर करता है और (हिरण्ययेन रथेन) तेजस्वी स्वरूप से सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ जाता है। उसी प्रकार (कृष्णेन) शत्रुओं को काट गिरा देने वाले (रजसा) सैन्य-बल से (आवर्तमानः) सर्वत्र विद्यमान रहता (सविता) सबका शासक राजा (अमृतम्) अमृत, अखण्ड, अविनाश्य स्थिर पदार्थों को और (मर्त्यं च) मरने वाले सामान्य जनों को (निवेशयन्) यथा स्थान स्थापित करता हुआ (देवः) विजिगीषु राजा (हिरण्येन) स्वर्ण या लोह के बने (रथेन) रथ से अथवा धनैश्वर्यादि रमणसाधन रथ आदि से (भुवनानि) समस्त प्राणियों को (पश्यन्) देखता, उनका निरीक्षण करता हुआ (याति) प्रयाण करे।

प्र वा॑वृजे सुप्र॒या ब॒र्हिरे॑षा॒मा वि॒श्पती॑व बी॒रिट॑ इयाते ।
वि॒शाम॒क्तोरु॒षसः॑ पू॒र्वहू॑तौ वा॒युः पू॒षा स्व॒स्तये॑ नि॒युत्वा॑न् ॥४४॥

ऋ० ७। ३९। २॥

वसिष्ठ ऋषिः । वायुः पूषा च । निचृद् त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—(सुप्रयाः वायुः) उत्तम वेग से चलने वाला वायु (एषाम्) इन लोकों में से (बर्हिः) जल को (प्र वावृजे) उत्तम रीति से ले लेता है और (पूषा) सबका पोषक सूर्य (एषाम्) इन लोकों में से (बर्हिः प्र वावृजे) किरणों द्वारा जल के अंश को पृथक् कर लेता है। अथवा, (सुप्रयाः वायुः यथो ब्रहिः प्र वावृजे) उत्तम वेग से चलने वाला वायु अन्न को भली प्रकार तुषों से पृथक् कर देता है उसी प्रकार यह राजा (वायुः) वायु के समान प्रचण्ड वेग से जाने वाला, एवं प्रजा का प्राणस्वरूप, (सुप्रयाः) उत्तम अन्न आदि सामग्री से सम्पन्न अथवा उत्तम रीति से प्रयाण करने वाला, बलवान् होकर (एषाम्) इन मनुष्यों में से (बर्हिः) प्रबल जन संघ को (प्र वावृजे) पृथक् कर लेता है। (पूषा) सर्व

पोषक पूषा, भागधुग् नामक अधिकारी (एषाम्) इन प्रजाजनों के (बर्हिः) वृद्धिकर अन्न का उत्तम रीति से संग्रह करता है और (वायुः पूषा) वायु और सूर्य दोनों (वीरिटे इयाते) अन्तरिक्ष मार्ग से जाते हैं उसी प्रकार ये दोनों भी (विश्पती इव) प्रजा जनों के पालक और पोषक होकर (वीरिटे) भयभीत शत्रु और अधीन प्रजा के बीच (नियत्वान्) अश्वारोहिगण से युक्त होकर (इयाते) गमन करते हैं और (अक्तोः) रात्रि और (उषसः) दिन के (पूर्वहूतौ) पूर्व ही बुलाये वायु और सूर्य के समान दोनों (विशां स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याण के लिये हो।

इन्द्र॒वा॒यू बृह॒स्पतिं॑ मि॒त्रा॒ग्निं पू॒षणं॒ भग॑म्।
आ॒दि॒त्यान्मारु॑तं ग॒णम् ॥ ४५ ॥ ऋ० १ । १४ । ३ ॥

[४५, ४६] मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवाः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(इन्द्रवायू) विद्युत्, वायु, (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के पालक सूर्य, (मित्राग्निम्) मित्र, प्राण और अग्नि, (पूषणम् भगम्) पुष्टिकारक, अन्न और सेवन करने योग्य ऐश्वर्य (आदित्यान्) सूर्य की किरणों या बारह मासों और (मरुतां गणम्) वायुओं के समूह का ज्ञान करके उत्तम उपयोग करो। (२) राष्ट्र-पक्ष में—(वायू इन्द्र) इन्द्र राजा, वायु के समान प्रचण्ड सेनापति, (बृहस्पतिम्) विद्वान् पुरुष (मित्राग्निम्) सब-स्नेही न्यायकारी, अग्नि, अग्रणी नेता, (पूषणम्) पोषक, पृथ्वी या भागधुग्, (भगम्) ऐश्वर्यवान् (आदित्यान्) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष, (मारुतं गणम्) मनुष्यों के गण इन सबको अपने अपने पद पर नियुक्त करो।

वरु॑णः प्रावि॒ता भु॑वन्मि॒त्रो विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑।
कर॑तां नः सु॒राध॑सः ॥ ४६ ॥ ऋ० १ । २३ । ६ ॥

मेधातिथिः । वरुणः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(वरुणः) दुष्ट पुरुषों का निवारक प्रजा द्वारा वरण करने योग्य और (मित्रः) प्रजा को मरने से बचाने हारा, सबका स्नेही दोनों

पदाधिकारी शरीर में उदान और प्राण के समान (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षा कार्यों से (प्र अविता) उत्तम रक्षक (भुवत्) हों और (नः) हमें (सुराधसः) उत्तम ऐश्वर्य युक्त (करताम्) करें ।

अधि न ऽइन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् ।
इता मरुतो ऽ अश्विना ॥ ऋ० ८ । ७२ । ७ ॥

कुसीदिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक शक्ति वाले ! हे (मरुतः) शत्रु के मारने हारे वीर भटो ! हे (अश्विना) विद्याओं में पारंगत राष्ट्र में व्यापक अधिकार के स्वामियो ! आप सब यथाधिकार (नः) हमारे और (एषाम्) इन (सजात्यानाम्) समान धन मान और कुल वाले पुरुषों के बीच (अधि) अधिक (इत) प्रतिष्ठा प्राप्त करो ।

तम्प्रत्नथा० । अयं वेनः० । ये देवास०ः । आ न इडाभिः ।
विश्वेभिः सोम्यं मधु० । ओमासश्चर्षणीधृतः ॥ ४७ ॥

भा०—ये सब प्रतीक हैं। 'तम् प्रत्नथा'० अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः'० ७ । १६ ॥ 'ये देवासः'० ७ । १९ ॥ 'आ न इडाभिः'० ३३ । ३४ ॥ 'विश्वेभिः सोम्यं मधु'० ३३ । १० ॥ 'ओमासश्चर्षणीधृतः'० ७ । ३३ ॥ इनकी व्याख्या वहीं देखो ।

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्द्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो ऽअध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥४८॥
ऋ० ५ । ४६ । २ ॥

प्रतिक्षत्र ऋषिः । इन्द्रोदया विश्वेदेवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ज्ञानवन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! हे (मित्र) सर्वस्नेहिन् ! हे (मारुत) मनुष्यों शत्रुहन्ता लोगों के समूह ! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! (देवाः) आप सब देव, विद्वान् गण बल और ज्ञान देने हारे आप (शर्द्धः) शरीर और आत्मा के बल का (प्रयन्त) प्रदान करो । (उभा नासत्या) कभी असत्य का

व्यवहार न करने वाले दोनों (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला या ज्ञानों का उपदेष्टा और (ग्नाः) विदुषी स्त्रियां और ज्ञान करने योग्य वाणियां, (भगः) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री या राजसभा, ये सब (जुषन्त) राष्ट्र की प्रेम से सेवा करें।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिꣳ स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ२ऽ अपः। हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शꣳसꣳ सवितारमूतये ॥ ४९ ॥		ऋ० ५। ४६। ३॥

वत्सार ऋषिः। विश्वेदेवाः। निचृत् जगती। मध्यमः॥

भा०—मैं (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, (अदितिम्) अदिति, अखण्ड शासन करने वाली राजसभा या अन्तरिक्ष, (स्वः) शत्रुओं का तापकारी, ज्ञानोपदेष्टा और सुखकारी, आकाश, (पृथिवीम्) पृथिवी, भूमि (द्याम्) सूर्य, (मरुतः) वायुएं और मरुद्‍गण, (पर्वतान्) पर्वतों, मेघों और पालनसामर्थ्य से युक्त स्थिर राज्य कर्त्ताजन, (अपः) जलों और आप्त पुरुषगण (विष्णुम्) व्यापक सामर्थ्यवान्, (पूषणम्) पुष्टिकारक अन्न, पशु आदि या भागधुग्, (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड और वेद के पालक, परमेश्वर और आचार्य (भगम्) ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् धन कुबेर, (शंसम्) स्तुति योग्य या आचार्य को मैं (ऊतये) रक्षा, ज्ञान, प्रियाचरण आदि विविध प्रयोजनों के लिये (हुवे) प्राप्त करूं।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः। यः शꣳसते स्तुवते धायि पज्र ऽ इन्द्रज्येष्ठा ऽ अस्माँ२ऽअवन्तु देवाः ॥ ५० ॥		ऋ० ८। ५२। १२॥

प्रगाथ ऋषिः। महन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अस्मे) हम में से (यः) जो (शंसते) उत्तम-उत्तम उपदेश करता, (स्तुवते) और परमेश्वर की स्तुति करता है एवं ज्ञान से सत्य गुणों का वर्णन करता है और (यः पज्रः) जो ऐश्वर्यों को कमाने हारा,

(धायि) प्रजाओं को धारण पोषण करता है वह और (रुद्राः) उपदेश करने वाले विद्वान् और शत्रुओं को रुलाने वाले वीर, (मेहनाः) प्रजाओं पर मेघों के समान सुखसमृद्धियों का वर्षण करने वाले (पर्वतासः) अथवा पर्वतों के समान अभेद्य और अलंघनीय, गंभीर वा मेघों के समान शत्रुओं पर बाण वर्षण करने वाले (सजोषाः) परस्पर समान प्रीति से युक्त, (इन्द्र ज्येष्ठाः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष सर्वोपरि श्रेष्ठ स्वामी स्वीकार करने वाले, (देवाः) विजय के इच्छुक सैनिक और विद्वान् पुरुष (भरहूतौ) संग्राम की ललकार आ जाने पर (अस्मान्) हम प्रजाजनों की (अवन्तु) रक्षा करें।

अ॒र्वाञ्चो॑ अ॒द्या भ॑वता यजत्रा॒ऽआ वो॒ हार्दि॒ भय॑मानो व्ययेयम्।
त्राध्वं॑ नो देवा नि॒जुरो॒ वृक॑स्य॒ त्राध्वं॑ क॒र्त्ताद॑व॒पदो॑ यजत्राः ॥५१॥

ऋ० २ । २९ । ६ ॥

कूर्मो गार्त्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (यजत्राः) अभय दान करने और राष्ट्रों को सुसंगत करने वाले, वीर, पूज्य, सत्संग योग्य पुरुषो ! (अद्य) आज आप लोग (अर्वाञ्चः) हमारे सन्मुख, हमें प्राप्त (भवत) होवो। (वः) आप लोगों के (हार्दि) हृदय में स्थित भीतरी भाव को (आ वि अयेयम्) मैं भली प्रकार जानूं। मैं प्रजाजन (भयमानः) शत्रुगण से भय करता हुआ आपकी शरण हूँ। हे (देवाः) विजयशील विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारी (निजुरः) सब प्रकार की सर्वथा विनाश करने वाले, (वृकस्य) हमारा सर्वस्व अपहरण करने वाले चोर, डाकू तथा भेड़िये के समान क्रूर पुरुषों और जीवों से भी (त्राध्वम्) रक्षा करो और हे (यजत्राः) सुसंगत, संघ बनाकर रहने वाले सेनाजनो ! आप लोग (अव पदः) गढ़े के समान गिरने का स्थान, संकट और विपत्ति रूप (कर्त्तात्) गढ़े से, अथवा विपत्तिजनक पुरुष, अथवा राष्ट्र को नीचा गिरा देने वाले हिंसा कार्य, प्रजानाशकृत्य शस्त्रादि वध से (त्राध्वम्) रक्षा करो। वृकः—वृक आदाने। भ्वादिः।

अपि वृक उच्यते विकर्त्तनात् निरु० ५।४।२॥ 'अवपदः कर्त्तात् ।'—यत्र अवपद्यन्ते पतन्ति ततः कर्त्तात् कूपात् इति उवट महीधरदयानन्दाः। विपदः कर्त्तुरिति सायणः। हिंसार्थस्य वा करोतेः कर्तस्तस्मात्। अथवा गर्त्तो वा कर्त्तः। कत्वं छान्दसम्।

विश्वे॑ऽअ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ऽऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः।
विश्वे॑ नो दे॒वाऽअव॒सा ग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ अ॒स्मे ।५२।

कुशो धानाक ऋषिः विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—व्याख्या देखो। अ० १८। ३१॥

विश्वे॑ देवाः शृणु॒तेम॑ꣳ ह॒वं॑ मे॒ ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ य ऽउप॒ द्यवि॒ ष्ठ। ये अ॑ग्निजि॒ह्वाऽउ॒त वा॒ यज॑त्राऽआ॒सद्या॒स्मिन् ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम् ॥ ५३॥ ऋ० ६। ५२। १३॥

सुहोत्र ऋषिः। विश्वेदेवाः देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो! आप लोग (मे) मेरे (इमम्) इस (हवम्) स्तुति, आह्वान, विद्योपदेश का (शृणुत) श्रवण करो। (ये) जो आप लोग (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के समान सबके पालक और (द्यवि) सूर्य के समान सर्वप्रकाशक पद पर (उपस्थ) हमारे समीप रहते हो (उत वा) और जो (अग्नि-जिह्वाः) अग्नि की शिखा के समान सत्य का प्रकाश करने वाली वाणी वाले, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को मुख्य प्रवक्ता रखने वाले (यजत्राः) परस्पर सत्संगत एवं पूजा करने योग्य हैं वे आप लोग भी (अस्मिन् बर्हिषि) इस महान् आसन, उत्तम राष्ट्र, प्रजा या पदासनों पर (आसद्य) विराज कर (मादयध्वम्) समस्त प्रजाओं को हर्षयुक्त करो।

दे॒वेभ्यो॒ हि प्र॑थ॒मं य॒ज्ञिये॑भ्योऽमृत॒त्वꣳ सु॒वसि॑ भा॒गमु॑त्त॒मम्।
आदि॑द्दा॒मानꣳ सवित॒र्व्यूर्णु॑षेऽनूची॒ना जी॑वि॒ता मानु॑षेभ्यः ॥५४॥

ऋ० ४। ५४। २॥

वामदेव ऋषिः सविता देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (सवितः) सूर्य के समान समस्त पदार्थों के प्रकाशक और उत्पादक परमेश्वर ! तू (हि) जिस कारण (यज्ञियेभ्यः) आत्मा और परमात्मा के उपासक एवं ज्ञान यज्ञ के करने वाले (देवेभ्यः) ज्ञान के द्रष्टा पुरुषों को (प्रथमम्) सबसे प्रथम, सर्वश्रेष्ठ और (उत्तमम्) उत्तम (भागम्) सेवन करने योग्य (अमृतत्वम्) अमृतस्वरूप मोक्ष का (सुवसि) प्रदान करता है (आत्) और (दामानम् इत्) सब सुखों और ज्ञानों के देने वाले अपने प्रकाशस्वरूप को भी (व्यूर्णुषे) विविध प्रकार से फैलाता, प्रकट करता है। इसी से (मानुषेभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (अनूचीना) उनके अनुकूल सुख प्राप्त कराने वाले (जीवितानि) जीवनों और जीवनोत्पादक कर्मों को भी (वि ऊर्णुषे) विविध प्रकार से उपदेश करता है। (२) राजा (यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) प्रजा के सुव्यवस्थित राष्ट्र के सञ्चालक एवं विजयी स्त्री पुरुषों को प्रथम (अमृतत्वम्) जीवनोपयोगी अन्न जल और उत्तम सेवन योग्य पदार्थ प्रदान करता है और मनुष्यों को नाना जीवनोपयोगी साधन प्रदान करता है।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

ऋ० ६। ४९। ४॥

[५५—ऋ० ३४। ५८] आदित्यो याज्ञवल्क्यश्च ऋषी। अनारभ्याधीतमन्त्राः ब्रह्मयज्ञार्हाः। तत्र 'प्रवायुम्' इति ऋजिश्वा ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (प्रयज्यो) उत्तम रीति से यज्ञ उपासना सगति, संगठन करने में कुशल विद्वन् ! तू (नियुतः) निश्चित, नियुक्त पुरुषों, निश्चित पदार्थों को प्राप्त होकर (बृहती) बड़ी भारी (मनीषा) प्रज्ञा, बुद्धिबल, मानस प्रेरणा से स्वयं (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (बृहद्रयिम्) महान्

५४—इति समाप्तं सार्वमेधिकम्। इति वैश्वदेवस्तुत चतुर्थमहः।

५५—इत आरभ्य ६९ अदब्धेभिरित्यन्तं पुरोरुचः॥

ऐश्वर्यों के स्वामी, (विश्ववारम्) सबके वरण करने वाले, सबके रक्षक, (रथप्राम्) रथों के रणाङ्गण को भर देने वाले, (द्युतद्यामा) तेजस्वी अग्नि को प्राप्त कर उसको अधिक तेजस्वी बनाने वाले, (वायुम्) वायु के समान तीव्र वेगवान, बलशाली (कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, विद्वान् (वायुम्) प्राणवायु के समान सबके जीवनाधार पुरुष का (इयक्षसि) आदर कर और उससे संगति लाभ कर। अथवा (२) (द्युतद्-यामा कविम् कविः इयक्षसि) समस्त यामों अर्थात् आठों पहरों को प्रकाशित करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का तू विद्वान् पुरुष ही आदर कर। (३) सबका जीवनाधार होने से परमेश्वर 'वायु' है। महान् ऐश्वर्यवान् होने से 'बृहद्रयि' है, सबका रक्षक होने से 'विश्ववार' है। उसकी नियम व्यवस्था सर्वत्र प्रकाशित होने से वह द्युतद्-यामा है। रमणसाधन, परम आनन्द रस से पूर्ण करने हारा होने से 'रथप्रा' है, क्रान्तदर्शी होने से 'कवि' है। उस परमेश्वर को (नियुतः पत्यमानः) प्राणों द्वारा ऐश्वर्यवान् होकर तू साधक (इयक्षसि) उसकी उपासना कर। (४) आचार्य ज्ञानवान् होने से वायु, बृहती वेद वाणी के ऐश्वर्य से युक्त होने से 'बृहद्रयि' ज्ञानरस से शिष्य को पूर्ण करने वाला होने से 'रथप्रा' है। प्रकाश रूप ज्ञान का प्राप्त कराने से 'द्युतद्-यामा' है उसको प्राप्त करके गुरुवत् सदा आदर करे।

इन्द्र॑वायू ऽइमे सुता ऽउप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम्।
इन्द॑वो वामुशन्ति हि ॥ ५६ ॥

भा०—व्याख्या देखो। अ० ७। ८॥

मि॒त्रꣳहु॑वे पू॒तद॑क्षं॒ वरु॑णं च रि॒शाद॑सम्।
धियं॑ घृ॒ताचीं॒ꣳ साध॑न्ता ॥ ५७ ॥ ऋ० १। २। ७॥

मधुच्छन्दाः। मित्रावरुणौ। गायत्री। षड्जः॥

---

५६ क्वचित् पुस्तकेषु "उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वा॒यव॑ इन्द्रवा॒युभ्यां॑ त्वा। ए॒ष ते॒ योनिः॑ स॒जोषो॑भ्यां त्वा।" इत्यधिकं पठ्यते॥

भा०—मैं प्रजाजन (पूतदक्षं) पवित्र ज्ञान और बल से युक्त (मित्रम्) सुहृद्, स्नेही पुरुष को और (रिशादसम्) हिंसा करने वाले शत्रुओं को भी दण्ड देने वाले उनके विनाशक, (वरुणं च) सर्वश्रेष्ठ धार्मिक राजा को (हुवे) स्वीकार करूं और वे दोनों (घृताचीम) घृत को ग्रहण करने वाली अतितीक्ष्ण अग्निज्वाला के समान पाप दहन करने वाली उग्र शक्ति तथा शीतल जल को धारण करने वाली रात्रि के समान सबको सुख देने वाली शान्तिकारिणी शक्ति को (साधन्ता) साधन करने वाले हों। जिस प्रकार प्राण, उदान शुद्ध प्रज्ञा को उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार सूर्य चन्द्र सुखद रात्रि को साधते हैं उसी प्रकार मित्र और वरुण, सुहृद् वर्ग वयस्य और शक्तिशाली पुरुष स्नेह और तीक्ष्णता मधुर और तेजस्विनी वृत्ति वाली राजशक्ति की वृद्धि करें।

दस्रा॑ युवाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः।
आ या॑तꣳ रुद्रवर्त्तनी ॥ ऋ० १ । ३ । ३ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। अश्विनौ देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (दस्रौ) वैद्य जिस प्रकार रोगों का नाश करते हैं उसी प्रकार राज्य की प्रजाओं के दुःखों के विनाश करने वाले (नासत्यौ) कभी असत्य भाषण और असत्य आचरण न करने वाले पूर्वोक्त दोनों विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (रुद्रवर्त्तनी) शत्रुओं के रुलाने वाले या न्यायाधीश के वीर सैनिकों के मार्गों से चलने में समर्थ होकर (आयातम्) आओ। ये (सुताः) उत्पन्न हुए पदार्थ एवं नाना पदों पर अभिषिक्त उत्तम जन भी (युवाकवः) तुम दोनों को चाहने वाले और (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ या बर्हि अर्थात् प्रजा को बढ़ाने वाले हैं।

तं प्र॒त्नथा॑० । अ॒यं वे॒नः॰ ॥ ५८ ॥

भा०—'तं प्रत्नथा०' अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः०' ७ । १६ ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः ।
अग्रन्नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५९ ॥
ऋ० ३ । ३१ । ६ ॥

कुशिक ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—सेना पक्ष में—(यदि) यदि (सरमा) वीर विजयी लोगों को एकत्र रमाने अर्थात् युद्ध क्रीड़ा करने वाली सेना (अद्रेः) मेघ के समान प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर बाणों के वर्षण करने वाले एवं शत्रुओं द्वारा न दीर्ण होने वाले वज्र, अर्थात् शस्त्रबल को (रुग्णम्) टूटा हुआ (विदत्) जाने तो वह (महि) बड़े भारी (पूर्वम्) पूर्व सञ्चित (पाथः) अपने पालनकारी सामर्थ्य को (सध्र्यक्) एक ही स्थान पर एकत्र (कः) करे । वह (सुपदी) उत्तम रीति से पग चलाने वाली (अक्षराणाम्) कभी नाश न होने वाले पुरुषों के (अग्रम्) अग्र, अर्थात् मुख्य भाग को (नयत्) आगे ले जावे वह (प्रथमा) स्वयं सबसे प्रथम होकर (रवं) उत्तम आदेश को (जानती) भली प्रकार जानती हुई (अच्छगात्) भली प्रकार आगे बढ़े । उत्तम सेना जब अपने बल को भग्न हुआ जाने तो वह अपने उत्तम बल को एकत्र कर ले और उत्तम दृढ़ पुरुषों को आगे बढ़ावे और स्वयं सेनापति के आदेशों को भली प्रकार जानते हुए आगे बढ़े । (२) गृहस्थ पक्ष में—(यदि) जब (सरमा) साथ रमण करने वाली स्त्री (रुग्णम् विदत्) दुःखों के भंग करने वाले पति को प्राप्त करे तब ((सध्र्यक्) साथ रहने वाला, सहचारी पति (पूर्व्यम्) पूर्व से ही प्राप्त (अद्रेः) मेघ से उत्पन्न होने वाले (महि पाथः कः) बहुत अन्न, धन अथवा मेघ के समान ज्ञानप्रद आचार्य के श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करे । वह स्त्री जो (सुपदी) उत्तम चरण वाली, (प्रथमा) प्रथम (अक्षराणां रवं जानती) अक्षर अर्थात् अविनाशी वेदवचनों के उपदेश को (जानती) जानती हुई (अग्रं नयत्) आगे २ स्वयं होकर अपने पीछे पति को लेती हुई (अन्वगात्) पति को प्राप्त हो । अर्थात् स्त्री प्राप्त करने के पूर्व पुरुष धन संग्रह

करे अथवा ब्रह्मचर्य पालन करे, वह स्त्री भी ज्ञान प्राप्त करे। स्वयं ज्ञानवती होकर आगे स्वयं प्रदक्षिणा कर पति को प्राप्त करे। (३) वाणी के पक्ष में—(यदि) यदि (सरमा) जब समान रूप से विद्वानों को आनन्दित करने वाली, स्त्री के समान सुखदायिनी वेदमयी वाणी, (अद्रेः) न विदीर्ण होने वाले अज्ञान के (रुग्णम्) विनाशक उपाय को (विदत्) ज्ञान करती है। तब (सध्यूक्) उसके सहयोग से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष (पूर्व्यम्) पूर्व से चले आये (महि पाथः) बड़े भारी ज्ञान को (कः) प्राप्त करता है। और (सुपदी) उत्तम ज्ञान कराने वाली (प्रथमा) सबसे प्रथम विद्यमान वेद वाणी (अक्षराणाम्) अक्षर, अविनाशी सत्य सिद्धान्त तत्वों के (रवं जानती) उपदेश को जानती हुई (गात्) प्रतीत होती है (अग्रं नयत्) हमें आगे, सर्वश्रेष्ठ, सबसे पूर्व विद्यमान परमेश्वर तक पहुँचाती है। (४) स्त्री के पक्ष में—(यदि) जब (सरमा) पति के साथ रमण करने हारी प्रियतमा स्त्री (प्रथमा सुपदी) सर्व प्रथम, सुविख्यात उत्तम ज्ञान और आचरण वाली और (अक्षराणां रवं जानती) अक्षरों के यथार्थ उच्चारण, ध्वनि आदि को जानने हारी होकर (रुग्णम्) दुःखी पीड़ित जन को (विदत्) जाने, (सध्यूक्) सदा साथ रह कर (पूर्व्यम्) पूर्व प्राप्त किये हुए (अद्रेः महि पाथः) मेघ से प्राप्त सेचन से महान् प्रभूत अन्न को पृथ्वी के समान, वीर्य सेचक पति से उत्तम वंश पालक सन्तान उत्पन्न करे। इसीलिये वह स्त्री (पतिम् अच्छ गात्) उत्तम पति को प्राप्त हो।

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुरऽ एतारमग्नेः।
एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ६० ॥

विश्वामित्र ऋषिः। वैश्वानरो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अस्मात्) इस (वैश्वानरात्) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नेः) अग्नि, सूर्य या दीपक के समान प्रकाशस्वरूप तेजस्वी राजा, विद्वान् के (अन्यम्) अतिरिक्त दूसरे किसी को (देवाः) विद्वान् और विजयी पुरुष भी (पुरः एतारम्) अपने आगे २ चलने वाले नायक रूप

(स्पृशं न अविदन्) दूत या द्रष्टा को नहीं जानते । वे (अमृताः) स्वयं दीर्घ, शतायु जीवन वाले होकर इस (अमर्त्यं) अन्य मनुष्यों से अधिक उच्च कोटि के (वैश्वानरम्) सर्वजन-हितकारी पुरुष को ही (क्षेत्रजित्याय) क्षेत्र, भूमि विजय करने के लिये (ईम् एनम्) इसको (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं । (२) अध्यात्म में—समस्त देहों में विद्यमान समस्त प्राणों के पुरोगामी आत्मा के सिवाय (नहि स्पशम् अविदन्) किसी दूसरे को नहीं पाते । ये (अमृताः) अमर (देवा) विद्वान् पुरुष भी (क्षेत्रजित्याय) क्षेत्र, देह या बन्धन को विजय करने के लिये (अमर्त्यं वैश्वानरम् अवृधन्) मरण रहित वैश्वानर, सर्वात्मा की शक्ति को बढ़ाते हैं । (३) परमेश्वर के पक्ष में—व्यापक परमेश्वर के सिवाय विद्वान् जन किसी दूसरे को (स्पशम्) सर्वद्रष्टा नहीं जानते । फल भोगों की प्राप्ति के लिये कर्म रूप बीजों के वपन के लिये एकमात्र क्षेत्र रूप इस देह के बन्धन को विजय करने के लिये ही (अमृतासः देवाः) अमृत, ज्ञानी, एवं अमर परमात्मा में लीन, अविनाशी विद्वान्, मुमुक्षु जन इसी अभय परमेश्वर की महिमा को स्तुति से बढ़ाया करते हैं ।

उग्रा विघनिना मृधऽइन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृडात ऽईदृशे ॥ ६१ ॥ ऋ० १० । ६० । ५ ॥

भरद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(उग्रौ) उग्र, तेजस्वी, (मृधः) संग्राम करने हारे शत्रुओं को (विघनिना) विविध प्रकारों से शत्रुओं को मारने और दण्ड देने वाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी नायक, सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष हों । (ता) वे दोनों (नः) हमें (ईदृशे) इस प्रकार के संग्राम आदि के अवसर में (मृडात) सुखी करें ।

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ२ऽ इयक्षते ॥ ६२ ॥ ऋ० ९ । ११ । १ ॥

भा०—हे (नरः) नायक नेता विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पवमानाय) सदाचरण एवं व्रताचरण द्वारा अपने को पवित्र करने वाले (इन्दवे) परम ऐश्वर्यवान्, सौम्य स्वभाव के एवं (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानों का आदर सत्कार करने वाले गुरुजनों के प्रति विद्यार्थी के समान विनीत पुरुष को (उप गायत) उपदेश करो ।

ये त्वा॑हिह॒त्ये॑ मघव॒न्नव॑र्ध॒न्ये शा॑म्ब॒रे ह॑रिवो॒ ये गवि॑ष्टौ । ये त्वा॑ नू॒नम॑नु॒मद॑न्ति॒ विप्राः॒ पिबे॑न्द्र॒ सोम॑ꣳ॒सग॑णो म॒रुद्भिः॑ ॥ ६३ ॥

ऋ० ३ । ४७ । ४ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (अहिहत्ये) मेघों के आघात करने और उनके छिन्न भिन्न करने के कार्य में वायु और सूर्य के समान तेजस्वी प्रचण्ड और (साम्बरे) मेघ के साथ संग्राम करने के कार्य में तीव्र ताप वाले सूर्य के समान अति प्रखर और (गविष्टौ) किरणों के एकत्र रखने के कार्य में, उनके स्वामी रूप सूर्य के समान इन्द्रियों के वश करने, भूमियों को अपने आधीन रखने और गौ आदि पशु सम्पत्ति को प्राप्त करने के कार्य में (ये) जो विद्वान् और बलवान् प्रजास्थ पुरुष (त्वा) तुझको तेरी शक्ति को (अवर्धन्) बढ़ाते हैं और (ये विप्राः) जो विद्वान् पुरुष (नूनम्) निश्चय से (त्वा अनुमदन्ति) तेरे हर्ष के साथ हर्षित होते हैं, हे (हरिवः) किरणों के स्वामी सूर्य के समान, तीव्र अश्वों और अश्वारोहियों और प्रजाओं के दुखों, अज्ञान अन्धकारों के हरण करने वाले आप्त पुरुषों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) सेनापति राजन् ! तू (मरुद्भिः) वायु के समान तीव्र सैनिक और शत्रुओं को मारने वाले एवं प्रजा के प्राणों के समान प्रिय अधिकारी पुरुषों के साथ (सगणः) गण, अर्थात् दल सहित (सोमम्) ओषधि रस के समान अति बलकारी राष्ट्र के ऐश्वर्य का (पिब) पान कर उपभोग कर, प्राप्त कर, पालन कर ।

जनिष्ठा ऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्र ऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः।
अवर्धन्निन्द्रम्मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठ ॥ ६४ ॥
ऋ० १० । ७३ । १ ॥

गौरिवीतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (मन्द्रः) समस्त प्रजा को हर्षित करने हारा, (ओजिष्ठः) सबसे अधिक पराक्रमी (बहुलाभिमानी) बहुत अधिक आत्माभिमान से युक्त, मनस्वी पुरुष ही (तुराय) अपने शीघ्रकारी गुण, चुस्ती, आलस्यरहितता, कार्यदक्षता, शत्रुनाशक (सहसे) और शत्रु पराजय करने वाले बल के कारण ही (उग्रः) उग्र, प्रचण्ड, शत्रुओं के लिये भयंकर (जनिष्ठाः) हो । (मरुतः) वायुओं के समान प्रचण्ड, शत्रुरूप वृक्षों को मूल से उखाड़ फेंकने वाले शूरवीर उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को सूर्य को वायुओं के समान (अवर्धन्) बढ़ावें और (अत्र) ऐसे वीरता और राज्यपालन के कार्य के लिये ही (यत्) जब (वीरम्) वीर पुत्र को (दधत्) धारण करती हूँ, तभी वह (धनिष्ठा) धन्य, उत्तम गर्भ धारक, सौभाग्यवती है । अथवा, (माता) पृथिवी जब ऐसे वीर को धारण करती है तो वह भी (धनिष्ठा) ऐश्वर्यवती, धन्य, वसुन्धरा, है ।

आ तू नं ऽइन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।
महान्महीभिरूतिभिः ॥ ६५ ॥ ऋ० ४ । ३२ । १ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्माकम्) हमारे (अर्धम्) समृद्ध राष्ट्र-भाग को (आगहि) प्राप्त कर । हे राजन् ! तु (महीभिः) बड़े भारी (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (महान्) बड़ा बलशाली होकर (नः) हमें भी पुष्ट कर ।

'अर्धम्'—अर्धो हरतेर्वा विपरितात् । धारयतेर्वास्यादुद्धृतं भवति, ऋध्नोतेर्वा स्यादृद्धतमो विभागः । समीपे इति सा० । निवासदेशमिति (म०) पक्षमिति (उ०) वर्धनमिति (द०) ।

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा ऽअसि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ६६ ॥

ऋ० ८ । ८८ । ५ ॥

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (प्रतूर्त्तिषु) खूब अधिक हिंसा या खूब हनन करने के स्थानों, संग्रामों में तू (विश्वाः स्पृधः) अपने समस्त स्पर्धा करने वाली, शत्रु-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करता है। तू (जनिता) सब सुखों का उत्पादक और (अशस्तिहा) सब दुष्ट पुरुषों और अपकीर्त्तियों का विनाशक होकर (विश्वतुः) समस्त शत्रुओं का नाश करने हारा (असि) हो। हे राजन् ! सेनापते ! (त्वं) तू (तरुष्यतः) हमें मारना चाहने वाले शत्रुओं को (तूर्य) विनाश कर।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥६७॥

ऋ० ८ । ८८ । ६ ॥

नृमेधः । इन्द्रः । पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (मातरा शिशुं न) माता और पिता जिस प्रकार शिशु के (अनु ईयतुः) पीछे २ प्रेम से चलते हैं उसी प्रकार (क्षोणी) अपने और शत्रु के राष्ट्र दोनों (ते) तेरे (तुरयन्तम्) शत्रु के विनाशकारी (शुष्मम्) बल पराक्रम के (अनु ईयतुः) अनुकूल होकर चलते हैं और (यत्) जब तू (वृत्रम्) राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को (तूर्वसि) मार गिराता है तब (विश्वाः स्पृधः) समस्त शत्रुसेनाएं भी (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (श्नथन्त) शिथिल, हो जो जावें।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥६८॥

भा०—व्याख्या देखो। अ० ८। ४॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वᳬं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंᳬंस ईशत ६९

ऋ० ६ । ७१ । ३ ॥

भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । निचृत् जगती । निषादः ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (अदब्धेभिः) नष्ट न होने वाली, सुखकारी (पायुभिः) पवित्रकारी, पालन में समर्थ किरणों से हम (गयम्) गृह प्राण और देह की रक्षा करता है और जिस प्रकार अग्नि (हिरण्यजिह्वः नव्यसे) सुवर्ण के समान दीप्ति वाली जिह्वा, ज्वाला से सदा नये-नये सुख प्रदान करता है। हे (सवितः) सबके प्रेरक, उत्तम कर्मों और राज्य प्रबन्धों के उत्पादक, विद्वन् ! राजन् ! तू (अदब्धेभिः) अखण्डित, स्थिर, जिनको कोई भंग न कर सके ऐसे (शिवेभिः) कल्याणकारी (पायुभिः) रक्षण पालन करने के उपायों से (अद्य) आज और सदा (नः गयम्) हमारे गृह, पुत्र, कलत्रादि की भी (परिपाहि) रक्षा कर। तू (हिरण्यजिह्वः) हित और हृदय को उत्तम लगने वाली वाणी से युक्त, अथवा हिरण्य के समान सदा उज्वल, खरी, सत्य वाणी बोलने हारा होकर (नव्यसे) सदा नये, मनोहर (सुविताय) उत्तम ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (रक्ष) हमारी रक्षा कर। (नः) हम पर (अघशंसः) पापकर्म की बात कहने वाला (माकिः ईशत) कोई शासन न करे। 'हिरण्यजिह्वः'—हिरण्यं हितरमणं भवतीति वा, हृदयरमणं भवतीति वा। निरु० २ । १० ॥ जिह्वेति वाङ्नाम। निघ० १ । ११ ॥ हिरण्यवद् अविचला जिह्वा यस्य। सत्यावाक्। यद्वा हिरण्या हिता रमणीया च जिह्वा ज्वाला वाणी वा यस्येति। म०, द० सत्यावाक्। उ०।

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ ७० ॥

ऋ० ७ । ९० । १ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजा और प्रजाजनो ! (वाम्) तुम दोनों के परस्पर सहयोग से बनी (वीरया) वीर, बलवती सेना के बल से ही (शुचयः) शुद्ध पवित्र आचारवान्, निष्कपट पुरुष, (मधुमन्तः) ज्ञान और बलों से युक्त (सुतासः) वीर माता से उत्पन्न, सौम्य पुत्रों के समान विद्या और आचार-शिक्षा से सम्पन्न, एवं उत्तम पदों पर अभिषिक्त राजपुरुष (अध्वर्युभिः) परस्पर हिंसा, घात-प्रतिघात से रहित, राष्ट्रयज्ञ के सञ्चालक विद्वान् पुरुषों से मिलकर (प्र दद्रिरे) शत्रुओं की सेनाओं और उनके दल बल का विदारण करें, उनको भयभीत करें। हे (वायो) वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ने हारे बलवन् ! तू (नियुतः) नियुक्त, अपने अधीन सेनाओं या अश्वों, वायु के तीव्रता आदि गुणों को (वह) स्वयं धारण कर, उनको अपने वश कर, (अच्छ याहि) शत्रुओं पर भली प्रकार चढ़ाई कर और (मदाय) हर्ष और प्रजा के सुख के लिये (अन्धसः) अन्न के और (सुतस्य) नाना प्रकार के भोग्य पदार्थ ऐश्वर्य और अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य को ओषधि रस के समान अपने शरीर, मन आदि की शक्ति वृद्धि करने और आत्मसुख और राष्ट्र के हर्ष के लिये (पिब) पान कर, उपभोग कर।

गाव॒ ऽउपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑।
उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥ ७१ ॥

वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—इस ऋचा की व्याख्या देखो अ० ३३ । १९ ॥ तथापि, हे (गावः) सूर्य की रश्मियों के समान तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग (उप अवत) हमारी रक्षा करो और (यज्ञस्य) यज्ञ, सबको एकत्र मिलाये रहने रखने वाले, राष्ट्रयज्ञ के (रप्सुदा) उत्तम रूप प्रदान करने वाले, सूर्य पृथिवी के समान राजा और प्रजाजन (मही) दोनों पूज्य हैं और (उभा) दोनों ही (हिरण्यया) एक दूसरे के प्रति हितकर और रमणीय ज्ञानवान् और सम्पन्न कार्य करने में पतिपत्नी के समान, (कर्णा) एक ही राष्ट्र के

कार्य करने हारे होकर (अवतम्) एक दूसरे की रक्षा करो। अथवा—जिस प्रकार गौवें अपने (अवतम्) रक्षक गोपति के पास आती हैं उसी प्रकार विद्वान् भी अपने रक्षक को प्राप्त करे उसकी रक्षा करे।

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे।
रिशादसा सधस्थ ऽआ ॥ ७२ ॥

दक्ष ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः ॥

भा०—हे (रिशादसौ) प्रजाओं के नाशक शत्रुओं का भी नाश करने वाले मित्र और वरुण, न्यायाधीश और सेनापते! तुम दोनों (सधस्थे) एकत्र मिलकर बैठने के स्थान, एवं (दक्षस्य) समस्त कार्यों के सञ्चालन में उत्साहवान् राजा के (दुरोणे) गृह, सभाभवन में (काव्ययोः) क्रान्त-दर्शी पुरुषों के बनाये व्यवहार और परमार्थ के प्रतिपादक दोनों प्रकार के ग्रन्थों में प्रतिपादित (आजानेषु) चतुर विद्वान् कार्य कुशल बना देने वाले, ज्ञान कराने वाले व्यवहारों आज्ञापनों और निर्णयों के लिये (क्रत्वा) ज्ञानबल से (आ) कार्य सम्पादन करो। 'आजानम्' आज्ञापनम्, इति दया० ऋ० भू० (१३८) ॥

दैव्यावध्वर्यू ऽआ गतथ्ठंरथेन सूर्यत्वचा।
मध्वा यज्ञथ्ठं समञ्जाथे ॥ ७३ ॥

भा०—व्याख्या देखो० अ० ३३ । ३३ ॥

तम्प्रत्नथा०। अयं वेनः० ॥

भा०—'तं प्रत्नथा'० (अ० ७ । १२) की प्रतीक है और 'अयं वेनः'० यह मन्त्र (अ० ७ । १६) की प्रतीक है।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान ऽआसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ७४ ॥
ऋ० १० । १२९ । ५ ॥

७३—दैव्या अध्व० इति काण्व० । ७४—अयवेनश्चोदयात्। इति काण्व० ।

प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो भाववृत्तो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में—(एषाम्) इन अपने स्थानों पर आदरपूर्वक अभिषेक को प्राप्त हुए विद्वान् अधिकारी पुरुषों का शासनाधिकार या तेज (रश्मिः) तेजस्वी सूर्य आदि पदार्थों की किरणों के समान (तिरश्चीनः) बहुत दूर तक जाने वाला, प्रकाश की किरण के समान तिरछा, अपनी सीध में जाने वाला और (विततः) विविध प्रकारों से फैलता है। (अधः-स्वित् आसीत्) वह नीचे भी रहता है और (उपरिस्वित्) और ऊपर भी रहता है। वे सभी राष्ट्र के भीतर (रेतो-धाः आसन्) शरीर में वीर्य को धारण करने वाले अंगों के समान स्वयं वीर्यवान् बलवान् एवं ब्रह्मचारी हों और वे (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले हों। उनकी (स्वधा) अपने शरीर धारण निमित्त प्राप्त अन्न, वेतन आदि पदार्थ (अवस्तात्) नीचे अर्थात् तुच्छ हैं परन्तु उनका (प्रयतिः) राष्ट्र की व्यवस्था का उत्तम यत्न और नियम का कार्य (परस्तात्) परम उच्च, उत्कृष्ट हो। (२) अधिदैवत पक्ष में—इन सूर्यादि लोकों का प्रकाश तिरछा, सर्वत्र दूर दूर तक फैलता है। क्या नीचे, क्या ऊपर, क्या पास, क्या दूर ? सभी स्थान पर है। ये सभी ज्योतिर्मय सूर्य आदि पदार्थ, जीव सृष्टि के उत्पन्न करने वाले बीजों को धारण करते हैं और बड़े सामर्थ्य वाले । (स्वधा) स्वयं संसार को धारण करने वाली प्रकृति, शरीर को धारण करने वाले जीव भोग्य पदार्थ अन्न आदि के समान (अवस्तात्) पर भोग्य और अधीन रहने से नीची श्रेणी के हैं और (प्रयतिः) उनको प्रेरणा देने वाला, चलाने वाला परम प्रयत्न-स्वरूप परमेश्वर (परस्तात्) बहुत ऊंचा, उनसे कहीं महान् है। (३) अध्यात्म में—(एषाम् रश्मिः) प्रकृति, प्रजापति का संकल्प और सृष्टि प्रेरक बल इन तीनों का (रश्मिः) नियामक बल (तिरश्चीनः) मध्य में, (अधस्तात्, उपरिस्वित्) ऊपर और नीचे सर्वत्र व्यापक है। सृष्टि-रचना के अवसर में (रेतोधाः आसन्) बीजरूप से कर्मों को संस्कार रूप में धारण करने वाले कर्त्ता और भोक्ता जीव भी विद्यमान थे और

(महिमानः आसन्) पृथिवी आदि पांच महाभूत भोग्यरूप भी थे, परन्तु उनमें भी (स्वधा अवस्तात्) अन्न के समान भोग, पदार्थ निकृष्ट था और (प्रयतिः परस्तात्) प्रयत्नशील आत्मा उत्कृष्ट था (सायण, मही०)।
(४) अथवा—परमेश्वर के उत्पादक और नियामक बल का वर्णन है—(एषां लोकानां मध्ये रश्मिः) इन समस्त लोकों के बीच में सबका प्रकाशक रश्मि और सर्वनियन्ता (तिरश्चीनः) सब दूर (अधः स्विद् उपरिस्वित्) ऊपर और नीचे, सर्वत्र व्याप्त है। ये समस्त लोक और महत् आदि प्रकृति विकार गण (रेतोधाः) सृष्टि के उत्पादक ब्रह्म बीज को धारण करने वाले और उसी के (महिमानः) समान सामर्थ्य को धारण करने हारे हैं। परमात्मा (स्वधा) स्व-रूप को धारण करने वाली परम शक्ति ही (अवस्तात्) उरे, छोटे से छोटे पदार्थ में भी है और उसका लोक-सञ्चालक (प्रयतिः) महान् प्रयत्न (परस्तात्) दूर से दूर लोक में भी विद्यमान है।

आ रोदसी ऽअपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो ऽअधारयन्।
सो ऽअध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ७५
ऋ० ३। २। ७॥

विश्वामित्र ऋषिः। विद्वान् वैश्वानरो देवता। निचृत् जगती। निषादः॥

भा०—सूर्य प्रकाश से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार तेजस्वी विद्वान्, पुरुष (रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्गों को (आ अपृणत्) व्यापता और उनको पालन और पूर्ण भी करता है। वह (स्वः) अन्तरिक्ष को वायु के समान, (महत् जातम्) उत्पन्न हुए सुखमय बड़े राष्ट्र को भी वश करता है। (यत्) जिससे (एनम्) उसको (अपसः) समस्त कर्म, अथवा कार्य करने वाला प्रजाजन (अधारयन्) धारण करते हैं, वह सब कर्मों का आश्रय हो जाता है। (सः) उसको (कविः) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी पुरुष (अध्वराय) नष्ट न होने वाले, हिंसारहित, पालन करने के उत्तम कर्म के लिये (वाजसातये अत्यः न)

संग्राम, ऐश्वर्य और वेगयुक्त कार्य करने के लिये अश्व के समान (परिणीयते) नियुक्त किया जाता है, वरण किया जाता है। वह (चनोहितः) अन्न आदि ऐश्वर्य को धारण करने वाला होता है। (२) अग्नि के पक्ष में—सूर्य रूप से द्यौ और पृथिवी को व्यापता, पोषता है। समस्त कर्मों को धारण करता है। हिंसारहित शिल्पों में और अश्व के समान यन्त्रों में भी वेग प्राप्त करने के लिये लगाया जाता है। (३) परमेश्वर भी सर्वत्र व्यापक, सबका पोषक है। समस्त कर्मों आश्रय है, वह क्रान्तदर्शी महान् यज्ञ के लिये पुनः-पुनः उपासना किया जाता एवं समस्त ऐश्वर्यों का पोषक है।

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा।
आङ्गूषैराविवासतः ॥ ७६ ॥ ऋ० ७ । ९४ । ११ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(या) जो दो (वृत्रहन्तमा) घेर लेने वाले शत्रुओं के नाश करने वालों में सबसे श्रेष्ठ, (मन्दाना) सबको आनन्दित करने वाले हैं, वे इन्द्र, आचार्य और अग्नि, ज्ञानवान् अथवा सेनापति और सभाध्यक्ष (उक्थेभिः) उत्तम वचनोपदेशों से, (गिरा) उत्तम वाणी से और (आंगूषैः) घोषणाओं द्वारा (आ अविवासतः) लोकसेवा करते हैं, यथार्थ ज्ञान-प्रकाश करते हैं।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥ ऋ० ६ । ५२ । ९ ॥

सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(ये नः सूनवः) जो हमारे पुत्र हैं वे है (अमृतस्य) अमर, अविनाशी परमेश्वर की दी (गिरः) वेद-वाणियों का (श्रृण्वन्तु) श्रवण करें और (नः) हमारे लिये (सुमृडीकाः) उत्तम सुखकारी (भवन्तु) हों। अथवा (ये) जो (अमृतस्य) अमर, प्रजापति परमेश्वर के (सूनवः) पुत्र के तुल्य,

७७—सुमृळीको० इति काण्व०।

उसके उपासक हैं वे (नः गिरः शृण्वन्तु) हमारी वाणियों का श्रवण करें। वा हमें वेद-वाणियों का श्रवण करावें और हमें सुखकारी हों।

ब्रह्माणि मे मतयः शᳮसुतासः शुष्म ऽइयर्त्ति प्रभृतो मेऽअद्रिः।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो ऽअच्छ ॥७८॥

ऋ० १ । १६५ । ४ ॥

अगस्त्य इन्द्रो वा ऋषी। इन्द्रमरुतौ देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सुतासः) विद्या और शिक्षा से अभिषिक्त हुए, पुत्र या शिष्य के समान विनीत (मतयः) मननशील पुरुष (मे) मुझ विद्वान् आचार्य से (ब्रह्माणि) वेद-मन्त्रों के ज्ञानों की (आ शासते) अभिलाषा करते हैं अथवा (ब्रह्माणि मे आ शासते) वेदमन्त्रों का मुझे उपदेश करते हैं और वे (इमा उक्था) इन वेद वचनों या सूक्तों को (प्रति हर्यन्ति) चाहते हैं। (मे) मुझे (प्रभृतः) उत्तम रीति से परिपुष्ट या प्रदत्त (शुष्मः) बल-कारी (अद्रिः) अज्ञान अन्धकार को दूर करने हारा ज्ञानवज्र वा ज्ञानवर्षण करने वाला मेघ के समान गुरु ही (शम्) सुख (इयर्त्ति) प्रदान करता है। (हरी) ज्ञान को धारण करने वाले अध्यापक शिष्य, दोनों (नः) हमें (ता) वे नाना प्रकार के वेद ज्ञानों को (वहतः) प्राप्त करावें। (२) राजा के पक्ष में—(मतयः) प्रजा को स्तम्भन करने वाले बलवान् पुरुष (मे ब्रह्माणि आशासते) मेरे से धन की अभिलाषा करते हैं और (सुतासः) पुत्र के समान प्रिय प्रजाजन (इमा उक्था प्रति हर्यन्ति) इन उत्तम राजाज्ञा और न्याय के बन्धनों को चाहते हैं और (मे अद्रिः प्रभृतः शम् इयर्त्ति) मेरा यह तीक्ष्ण वज्र प्रजा को सुख शान्ति प्रदान करता है। (हरी) राष्ट्र के शकट को उठा लेने वाले अश्वों के समान अमात्य और राजा या सभापति और सेनापति प्रजाओं के दुःखहारी होकर (नः ता अच्छ वहतः) हम प्रजा को वे सब पदार्थ प्राप्त करावें। राजा धनेच्छुओं के लिये धनप्रद और ज्ञानेच्छुओं या साम वचनों के इच्छुकों के लिये ज्ञान प्रदपुरुषों को

नियुक्त करे। शान्ति-स्थापन के लिये वध या दण्ड को उपयोग में लावे। यहां साम, दाम और दण्ड तीनों का विधान है।

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ऽ अस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥७९॥
ऋ० १। १६५। ९॥

अगस्त्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् (नकिः) कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जो (ते अनुत्तम्) तेरे द्वारा नहीं चलाया गया। तु ही सबका प्रेरक है और (त्वावान् देवता) तेरे सदृश द्रष्टा और दानशील, (विदानः) ज्ञानवान् और समस्त पदार्थों का प्राप्त करने कराने वाला भी दूसरा (न अस्ति) नहीं है। हे (प्रवृद्ध) महान्, सबसे अधिक शक्तिशालिन्! (न जायमानः) न भविष्य में कोई पैदा होने वाला और (न जातः) न पैदा हुआ है जो (यानि करिष्या) जिन कामों को तू भावी में करे या (कृणुहि) अब करता है उनको भी (नशते) प्राप्त कर सके। (२) परमेश्वर के पक्ष में—(ते) तेरे स्वरूप को (अनुत्तम् आ) हम किसी अन्य से प्रेरित नहीं पाते अर्थात् तू अद्वितीय है। (न त्वावान् विदानः देवता अस्ति) तेरे जैसा ज्ञानवान् देव भी कोई नहीं है। तु (जायमानः न, जातः न) तू कभी न पैदा होता है, न हुआ है। (यानि करिष्या) जो करेगा और जो (कृणुहि) करता है उसको भी (नकिः नशते) कोई न जान सकता है न उसका पार पा सकता है।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञऽउग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥८०॥
ऋ० १०। १२०। १॥

बृहद्दिव ऋषिः। महेन्द्रो देवता। पांक्तिः। पंचमः॥

भा०—(तत्) वह (इत्) ही (भुवनेषु) समस्त उत्पन्न लोकों, प्रजाजनों के बीच में (ज्येष्ठम् आस) सबसे बड़ा है। (यतः) जिससे

(त्वेषनृम्णः) तेज रूप धन से युक्त, अति तेजस्वी, (उग्रः) शत्रुओं को भय देने वाला, बलवान् सेनापति या राजा (जज्ञे) पैदा होता है और (सद्यः) शीघ्र ही (जज्ञानः) उत्पन्न होकर (शत्रून्) शत्रुओं को (निरिणाति) विनष्ट करता है और (यम् अनु) जिसके अनुकूल रह कर (विश्वे ऊमाः) समस्त प्रजारक्षक जन और प्राणि वर्ग (मदन्ति) अति हर्षित होते हैं । (२) परमेश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर सबसे महान् है, जिससे यह तेजस्वी, सूर्य उत्पन्न होकर अन्धकारों का विनाश करता है और जिसको उगता देख कर सब प्राणी हर्षित होते हैं ।

इमाऽ उं त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८१ ॥

ऋ० ८ । ३ । ३ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (पुरूवसो) बहुत से ऐश्वर्य वाले ! राजन् ! प्रभो ! (इमाः उ गिरः) ये उत्तम उपदेशप्रद वाणियां (याः मम) जो मेरी या मुझ प्रजाजन के हित की हैं वे (त्वा) तुझको या तेरे सामर्थ्य को (वर्धन्तु) बढ़ावें । और (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, आचारवान्, सत्यवादी, निश्छल, (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) स्तुति वचनों से (अभि अनूषत) तेरी साक्षात् स्तुति करें । (२) ईश्वरपक्ष में—हे (पुरुवसो) सब में बसने हारे ! मेरी वाणियां तेरी महिमा बढ़ावें । ब्रह्मचारी, तेजस्वी, सदाचारी विद्वान् तेरी स्तुति करते हैं ।

यस्यायं विश्व ऽआर्यो दासः शेवधिपा ऽअरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सोऽअज्यते रयिः ॥ ८२ ॥

ऋ० ८ । ५१ । ६ ॥

मेधातिथिः । विश्वेदेवाः । निचृत् सतोबृहती । मध्यमः ॥

भा०—(विश्वः आर्यः) समस्त आर्य, श्रेष्ठ पुरुष (यस्य) जिसका (दासः) दास, कर्मकर, भृत्य के समान आज्ञापालक है और (शेवधिपाः)

खजाने को बचाकर रखने वाला, कंजूस पुरुष ही जिसका (अरिः) शत्रु के समान प्रतिद्वन्द्वी है और (अर्ये) वैश्य, धनस्वामी (रुशमे) हिंसाकारी और (पवीरवि) शस्त्रधारी पुरुष के पास भी (तिरः चित्) छिपा हुआ समस्त धन है, (सः रयिः) वह समस्त ऐश्वर्य भी हे राजन् ! (तुभ्य उत अज्यते) तेरे ही लिये खोल कर रख दिया जाता है अर्थात् सब श्रेष्ठ पुरुष तेरे सेवक हैं, उनका सब धन तेरे ही लिये है, अपना धन बचाकर रखने वाला तेरा शत्रु है, वैश्यों और शत्रुहिंसक क्षत्रियों के पास के सभी धन राजा के लिये ही है।

अयꣳसहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र ऽइव पप्रथे।
सत्यः सो ऽअस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ८३ ॥

ऋ० ८ । ३ । ४ ॥

मेधातिथिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत् पंक्ति । पंचमः ॥

भा०—(अयम्) यह राजसभाध्यक्ष (सहस्रम् ऋषिभिः) सहस्रों मन्त्रार्थ वेत्ता विद्वानों के साथ (सहस्कृतः) बलवान् होकर (समुद्र इव) समुद्र के समान गम्भीरता आदि गुणों में विख्यात है। (यज्ञेषु) नाना राजकार्यों और (विप्रराज्ये) मेधावी, बुद्धिमान् विद्वानों के राज्य में (अस्य) उसकी (सत्यः महिमा) सत्य महिमा और (शवः) बल का (गृणे) वर्णन किया जाता है। (२) अथवा—(अयं) यह (ऋषिभिः) यथार्थ तर्कशील विद्वानों के द्वारा (सहस्रं सहस्कृतः) हजारों ज्ञानों और बलों से युक्त है। (अस्य सः महिमा समुद्र इव पप्रथे) इसकी महिमा समुद्र के समान बढ़ती है। मैं (यज्ञेषु विप्रराज्ये शवः गृणे) प्रजाजन यज्ञों और विद्वानों के राज्य में इसके बल की स्तुति करूं। 'सहस्रम्'—सहस्र कृत्वः इत्युवटः। सहस्रैः ऋषिभिरिति सायणः। सहस्रसंख्यं ज्ञानं प्राप्तः इति दयानन्दः।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम्। हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो ऽअघशꣳस ऽईशत ॥ ८४ ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० ३३ । ६९)

आ नो॑ य॒ज्ञं दि॑वि॒स्पृशं॒ वायो॑ या॒हि सु॒मन्म॑भिः ।
अ॒न्तः प॒वित्र॑ऽ उ॒परि॑ श्रीणा॒नो॒ऽयꣳ शु॒क्रो ऽअ॑यामि ते ॥ ८५ ॥

ऋ० ८ । १० । ६ ॥

जमदग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (वायो) वायो ! वायु के समान प्रचण्ड वेग से शत्रुरूप बृक्ष को उखाड़ने में समर्थ ! अथवा, छाज से गिरते अन्न को वेग से पवित्र करने हारे वायु के समान विवेकवान् ! वायो ! तू (सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (नः) हमारे (दिविस्पृशम्) राजसभा में आश्रित, विद्या-प्रकाश से युक्त (यज्ञम्) राज्य-पालन के कार्य, या प्रजापति पद को (आयाहि) प्राप्त हो। (पवित्रे अन्तः उपरि) पावन या शोधन करने वाले छाज पर जिस प्रकार अन्न रहता उसी प्रकार (पवित्रे) शुद्ध सदाचार युक्त एवं प्रजा को पवित्र करने वाले तुझ पर (अयम्) यह (शुक्रः) शुद्ध किरणों वाले सूर्य के समान विद्वान् वेदज्ञ पुरुष (श्रीणानः) अधिष्ठित हैं। इसी कारण मैं प्रजाजन (ते अयामि) तुझ बलवान् राजा के शरण आता हूँ। अर्थात् जिस प्रकार छाज पर से अन्न गिरता है, वायु उसको पवित्र करता, उसके भी ऊपर सूर्य का प्रकाश रहता है उसी प्रकार प्रजा पालन के कार्य में विवेकी सभाध्यक्ष और उस पर भी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष हो। प्रजा उसके अधीन रहे।

इन्द्र॑वा॒यू सु॑स॒न्दृशा॑ सु॒हवे॒ह ह॑वामहे ।
यथा॑ नः॒ सर्व॒ऽ इज्जनो॑ऽनमी॒वः स॒ङ्गमे॑ सु॒मना॒ऽ अस॑त् ॥ ८६ ॥

ऋ० १० । १४१ । ४ ॥

तापस ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

८६—इन्द्रवायू बृहस्पतिः सुहवेह हवामहे । यजा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् । ऋ० ॥

भा०—(सुसंदृशौ) उत्तम रीति से निष्पक्षपात, निष्पाप भाव से देखने वाले (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति दोनों को सूर्य और वायु के समान (इह) इस राज्य में (हवामहे) हम बुलाते, अपना प्रधान स्वीकार करते हैं। (यथा) जिससे (नः) हमारे (सर्वः इत् जनः) सभी जन (संगमे) परस्पर मिलने के अवसर में (सुमनाः) उत्तम चित्त वाले (असत्) होकर रहें।

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय ऽआचक्रे हव्यदातये ॥ ८७ ॥
ऋ० ८ । ६० । १ ॥

जमदग्निः । मित्रावरुणौ । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य (मित्रावरुणा) प्राण और उदान दोनों को (अभिष्टये) अभीष्ट सुख और (हव्यदातये) प्राप्त करने योग्य परम पद की प्राप्ति के लिये (आचक्रे) यत्न करता है (सः मर्त्यः) वह पुरुष (देवतातये) इन्द्रियों के विशेष हित के लिये (ऋधक्) अति समृद्धिमान् शक्तिशाली होकर भी (इत्था शशमे) सचमुच शान्ति को प्राप्त कर लेता है। (२) उसी प्रकार (यः) जो (नूनं) निश्चय से (मित्रावरुणा) प्रजा के स्नेही न्यायाधीश और शत्रुओं और दुष्टों के वारक श्रेष्ठ राजा दोनों का (हव्य-दातये) ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों के प्रदान और स्वयं प्राप्त करने के लिये (आचक्रे) आश्रय लेता है (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (देवतातये) विद्वान् और विजयी पुरुषों के हित के लिये (ऋधक्) समृद्धिमान् होकर भी (इत्था) इस प्रकार से (शशमे) बहुत अधिक शान्ति प्राप्त करता है, वह मान, मद, गर्व नहीं करता और स्वतः उपद्रव रहित भी रहता है। उसके यश और समृद्धि में दूसरे उपद्रव नहीं करते।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ८८ ॥
ऋ० ७ । ७४ । ३ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) स्त्री पुरुषों के समान राजा प्रजाजनो ! अथवा पूर्वोक्त राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले दो अधिकारी राजा और सभापति पुरुषो ! आप दोनों (आयातम्) आओ । (उप भूषतम्) इस स्थान को सुभूषित करो । अथवा दोनों समीप होकर रहो । हे (वृषणा) सुखों के वर्षाने वाले ! तुम दोनों (मध्वः पिबतम्) अन्न व उसके उत्तम रस को पान करो । जिस प्रकार सूर्य और मेघ पृथ्वी से जल ग्रहण करते हैं और फिर उसी पर बरसा देते हैं उसी प्रकार (पयः दुग्धम्) उत्तम पुष्टिकारक दूध और अन्न और जल से राष्ट्र को पूर्ण करो और (जेन्यावसू) विजयशील धन के स्वामी तुम दोनों (नः) हम प्रजाओं को (मा मर्धिष्टम्) कभी विनाश मत करो और (नः आगतम्) हमें सदा प्राप्त होवो ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥

ऋ० १ । ४० । ३ ॥

कण्वः । विश्वेदेवाः । भुरिग् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(ब्राह्मणः पतिः) धन, वेद और महान् राष्ट्र का पालक पुरुष (प्र एतु) हमें प्राप्त हो । (सूनृता) शुभ सत्यमयी वाणी (देवी) ज्ञान से पूर्ण विदुषी स्त्री के समान हमें (प्र एतु) प्राप्त हो । (देवाः) विद्वान् पुरुष और वीर सैनिक गण (नः) हमारे (वीरं) शूरवीर (नर्यम्) सब पुरुषों के हितकारी, नर श्रेष्ठ, (पंक्तिराधसम्) पंक्ति, पांचों जनों को अथवा सेना की पंक्तियों को अथवा पांचों प्रकार के धनों के स्वामी या अरि, मित्र, अरि-मित्र, मित्र-मित्र और स्वकीय इन पांचों प्रकार के राष्ट्रों के वशकारी (यज्ञम्) प्रजापति रूप सबके पूज्य और सबके संगतिकारक पुरुष को (अच्छनयन्तु) साक्षात् प्राप्त करावें । ऐसे को राजा बनावें ।

चन्द्रमा॑ऽअप्स्व॒न्तरा सु॑प॒र्णो धा॑वते दि॒वि ।
र॒यिं पि॒शङ्गं॑ ब॒हुलं पु॑रु॒स्पृह॒ᳬं हरि॑रेति॒ कनि॑क्रदत् ॥ ९० ॥

(प्र० द्वि०) १ । १०५ । १ ॥

त्रित ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—जैसे (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अप्सु अन्तरा) जलों या जलमय मेघों या अन्तरिक्ष में गति करता है और (सुपर्णः) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य या उत्तम पक्षों से युक्त विशाल पक्षी (दिवि धावते) आकाश में गति करता है और जिस प्रकार (कनिक्रदत्) खूब गर्जना करता हुआ (हरिः) सिंह, या हिनहिनाता हुआ अश्व गति करता है और तीनों में से प्रत्येक (पिशङ्गम्) सुवर्ण के समान उज्ज्वल (बहुलम्) बहुत अधिक (पुरु-स्पृहम्) बहुतों को अच्छा लगने हारा मनोहर रूप धारण करता है उसी प्रकार राजा, सभाध्यक्ष (अप्सु अन्तरा) आप्त प्रजाजनों के बीच (चन्द्रमाः) चन्द्र के समान आह्लादक कान्ति से युक्त होकर और (दिवि) ज्ञान प्रकाश में या राजसभा में (सुपर्णः) उत्तम पालन और ज्ञानमय साधनों से युक्त होकर सूर्य या महागरुड़ के समान विजयी होकर (धावते) गति करे और वह (हरिः) अश्व या सिंह के समान सबको आगे ले जाने में समर्थ, सब का मन हरने हारा, सबके दुःखों का नाशक होकर (कनिक्रदत्) गर्जन करता हुआ (पिशङ्गम्) सुवर्ण के समान उज्ज्वल, (बहुलम्) बहुत अधिक (पुरुस्पृहम्) बहुतों से वाञ्छित (एवम्) सबकी इच्छानुकूल (रयिम् एति) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ।

दे॒वन्दे॑वं॒ वो॑ऽव॑से दे॒वन्दे॑वम॒भिष्ट॑ये ।
दे॒वन्दे॑वᳬंहुवेम॒ वाज॑सातये गृ॒णन्तो॑ दे॒व्या धि॒या ॥ ९१ ॥

ऋ० ८ । २७ । १३ ॥

मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(देव्या धिया) उत्तम भावों से उज्ज्वल, प्रकाशमान विद्वान्, ईश्वर और वीर राजा के योग्य आदर बुद्धि (गृणन्तः) स्तुति करते हुए

हम लोग (अवसे) रक्षण, ज्ञान और सुख प्राप्ति के लिये हम (देवं देवम्) प्रत्येक विद्वान् को और (अभीष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये (देवं देवम्) प्रत्येक व्यवहार कुशल पुरुष को और (वाजसातये) संग्राम विजय के लिये और अन्नादि ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (देवं देवम्) प्रत्येक विजयेच्छु वीर पुरुष को आदरपूर्वक बुलावें और अपनावें।

दिवि पृष्ठो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन्।
क्ष्मया वृधान ऽओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥९२॥

मेध ऋषिः। वैश्वानरो देवता। निचृद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त लोकों का हितकारी, (अग्निः) प्रकाश स्वरूप सूर्य जिस प्रकार (बृहन्) महान् होकर (दिवि) प्रकाश में, तेज में (पृष्टः) पूर्ण रूप से स्थित होकर (क्ष्मया) पृथिवी के साथ (ओजसा) तेजो बल से (वृधानः) समस्त औषधियों को बढ़ाता हुआ (चनोहितः) अन्न के लिये अति हितकारी होता है और (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः बाधते) अन्धकार को दूर करता है। उसी प्रकार (अग्निः) सबका अग्रणी नायक एवं विद्वान् (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों का हितकारी, (बृहन्) स्वयं महान् होकर (दिवि) ज्ञान विज्ञान से युक्त राज-सभा के बीच (पृष्टः) तेज और ज्ञान से सिक्त अथवा अभिषिक्त होकर (क्ष्मया) अपने बड़े सामर्थ्य से पृथिवी रूप राष्ट्र से और (ओजसा) तेज, पराक्रम से (वृधानः) वृद्धि करता हुआ, (चनोहितः) अन्न आदि ऐश्वर्यों को धारण करने वाला होकर (ज्योतिषा) ज्ञान ज्योति, तेज से (तमः) प्रजा के दुःखकारी कारण, शोक, दुःख रूप अन्धकार को (बाधते) नष्ट करता है।

इन्द्राग्नी अपादियम्पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिꣳशत्पदा न्यक्रमीत् ॥९३॥
ऋ० ६। ५९। ६॥

सुहोत्र ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। प्रवल्हिका। भुरिग् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इयम्) यह (अपात्) पाद रहित होकर (पद्वतीभ्यः) पाद वालियों से भी (पूर्वा) पूर्व (आ अगात्) आती है। (शिरः हित्वा) शिर त्याग कर (जिह्वया वावदत्) जीभ से बोलती है। (चरत्) चलती है और (त्रिंशत् पदा) तीस पग (नि अक्रमीत्) चलती है। यह प्रहेलिका का शब्दार्थ है। इसकी योजना उषा और वाणी दोनों पक्षों में है। जैसे—

उषा पक्ष में—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान गुरु और शिष्य, राजा और प्रजाजनो ! (इयम्) यह उषा विना पगों वाली होने से 'अपात्' है। अथवा सूर्य के अभाव में प्रथम प्रकट होने से निराधार सी दीखती है इसलिये 'अपात्' है। यह (पद्वतीभ्यः) पैरों वाली सोती हुई प्रजाओं से पूर्व (आ अगात्) उदय होकर आती है, वह (शिरः हित्वा) शिर को छोड़ अर्थात् विना शिर रूप सूर्य के, उदय होने के पूर्व ही (जिह्वया) वाणी, या पक्षियों आदि की जिह्वा द्वारा (वावदत्) बोलती, शब्द करती और (चरत्) कालक्रम से विचरती है और (त्रिंशत् पदा) तीस मुहूर्त्त रूप पदों को (नि अक्रमीत्) चलती है (दया०, सायण)।

वाणी के पक्ष में—हे इन्द्र ! और हे अग्ने ! हे प्राण और हे पुरुष ! (इयम् अपाद्) वह वाणी पाद रहित, गद्य वाणी (पद्वतीभ्यः पूर्वा आ अगात्) पदों वाली, पद्यमयी वाणी से भी पूर्व आती है, वह मनुष्य के मन में अन्धकार में उषा के समान, ज्ञान रूप से प्रकट होती है (शिरः हित्वी) शिर अर्थात् प्रथम पद या मुख्य, आख्यात पद को छोड़ कर (जिह्वया वावदत्) वाणी द्वारा बोली जाती है। (चरत्) और इस प्रकार प्रकट होती हुई (त्रिंशत् पदा) तीस पद अर्थात् तीस अंगुल (नि अक्रमीत) गति करती है अर्थात् मूल आधार से लेकर मुख तक ३० अंगुल गति करती है। (महीधर)। अथवा—उषापक्ष में यह पादरहित होकर पाद वाली, सोती प्रजाओं से पूर्व ही आ जाती है और (शिरः हित्वी)

प्राणियों के शिर को प्रेरित करती हुई प्राणियों के जिह्वा द्वारा शब्द करती हुई (चरत्) उच्चारण करती है। ३० मुहूर्त्त को पार करती है। (सायण)।

वाणी पक्ष में अर्थान्तर—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र, जीव और अग्ने जाठर अग्ने! यह तुम्हारी अद्भुत क्रिया है कि वाणी (इयम्) यह (पद्वतीभ्यः पूर्वा) सुबन्त, तिङन्त पदों से युक्त प्रकट वाणी से पूर्व (अपात्) पाद रहित, अव्यक्त रूप में ही अन्तःकरण में (आ अगात्) प्रकट होती है। वह प्रथम (शिरः हित्वी) शिरोभाग, तालु को प्रेरणा करके (जिह्वया) जीभ द्वारा (वावदत्) बोली जाती हुई (चरत्) प्रकट होती या उच्चारण की जाती है और पुनः (त्रिंशत् पदानि) तीस पदों या स्थानों को अर्थात् मूल देश से लेकर जिह्वा तक तीस अंगुल परिमाण शरीर भाग को व्याप लेती है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्भाष्य में विद्युत् के पक्ष में इस मन्त्र की योजना की है। मन्त्र अधिक विचार की अपेक्षा करता है। (३) विद्युत् और अग्नि विना पाद अर्थात् सार आदि आधार के भी आधार सहित जाने वाले पदार्थों से अधिक तीव्र गति से जाकर अपना शिर मुख्य स्थान न छोड़ कर वाणी रूप से बोलती है। दिन रात के तीसों मुहूर्त्त चलती है। रेडियो द्वारा भाषण का यह वैद्युतिक प्रयोग वेद ने बतलाया है।

देवा॑सो॒ हि ष्मा॒ मन॑वे॒ सम॑न्यवो॒ विश्वे॑ सा॒कꣳ सरा॑तयः।
ते नो॑ अ॒द्य ते ऽअ॑प॒रं तु॒चे तु नो॒ भव॑न्तु वरिवो॒विदः॑ ॥ ९४ ॥

ऋ० ८। २७। ९४ ॥

मनुर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। पंक्तिः। मध्यमः ॥

भा०—(विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान्, बिजयी एवं व्यवहार-कुशल पुरुष (मनवे) मननशील मनुष्य के हित के लिये (साकम्) एक साथ (समन्यवः) समान ज्ञान, मान, तेज, क्रोध या पराक्रम युक्त (सरातयः) समान रूप से दानशील, निष्पक्षपात होकर (हि स्म) रहा करें और वे (अद्य) आज और (अपरम्) आगामी भविष्य में भी (नः) हमारे और (नः तुचे) हमारे दुःखहारी पुरुषों या सन्तानों के हित के

लिये (वरिवोविदः) धन ऐश्वर्य के प्राप्त करने और कराने करने वाले (भवन्तु) हों। 'तुचे'—'तुग्' इति अपत्य नाम, तोजयति हिनस्ति हि पितुर्दुःखमिति तुक् पुत्रः ॥ इति सायणः ॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त ऽइन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ ९५ ॥

ऋ० ८ । ७६ । २ ॥

नृमध ऋषिः । मरुत्वान् इन्द्रो देवता । भुरिग् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति (अशस्तिहा) शासन व्यवस्था से रहित उच्छृङ्खल पुरुषों को दण्ड देने में समर्थ होकर (अभिशस्तीः) सब ओर से आने वाली हिंसाकारिणी सेनाओं और अपवादों को (अप-अधमत्) दूर भगा दे और इस प्रकार वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता होकर (द्युम्नी) अन्नादि से समृद्ध और ऐश्वर्यवान् (अभवत्) होता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे (बृहद्भानो) अति अधिक तेज से युक्त अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे (मरुद्गण) वीर सैनिकों के गणाधीश्वर (देवाः) विजयशील पुरुष विद्वान् एवं व्यवहार कुशल वैश्यगण भी (ते) तेरे (सख्याय) मित्र भाव के लिये (येमिरे) यत्न करते एवं नियम व्यवस्था में रहते हैं।

प्र व ऽइन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ९६ ॥

ऋ० ८ । ७८ । ३ ॥

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान तीव्र वेग से शत्रुओं पर आक्रमण करने और उनको मारने वाले वीर प्रजास्थ पुरुषो ! आप लोग (वः) अपने में से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (बृहते) बड़े पुरुष के लिये (ब्रह्म अर्चत) धन, अन्न या आदर प्रदान करो। (शतक्रतुः) सैकड़ों प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्यों से युक्त (वृत्रहा) विघ्नकारी, नगर घेरने वाले शत्रु को मेघ को

सूर्य के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ वीर पुरुष ही (शतपर्वणा) सैकड़ों के पालन करने वाले एवं सैकड़ों अवयवों, पोरुओं एवं शस्त्रास्त्रों या सेना के दलों से युक्त (वज्रेण) वीर्यवान् सैन्यबल और शस्त्रास्त्र समूह से (वृत्रं हनति) शत्रु को नाश करे ।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यᳬ शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ ९७ ॥

ऋ० ८ । ३ । ८ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । महेन्द्रो देवता । सतो बृहती । मध्यमः ॥

भा०—जिस प्रकार (विष्णवि) व्यापक पृथ्वी पर (सुतस्य मदे) प्राप्त हुए जल से पूर्ण हो जाने पर (इन्द्रः) सूर्य (अस्य) इस मेघ के (शवः) विद्युत् बल और (वृष्ण्यम्) वर्षण सामर्थ्य को (वावृधे) बढ़ाता है । उसी प्रकार (सुतस्य) अभिषेक द्वारा स्थापित (विष्णवि) व्यापक राष्ट्र में (मदे) हर्ष, सुख और समृद्धि से तृप्त, भरे पूरे रहने पर (इत्) ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (शवः) अपना बल और (वृष्ण्यम्) प्रजा पर सुख सेचन या वर्षा के सामर्थ्य को और सेना बल को उसी प्रकार बढ़ावे ।

इमा उ त्वा० । यस्यायम्० । अयᳬ सहस्रम्० । ऊर्ध्व ऊ षु णः०

भा०—'इमा उ त्वा०', 'अस्यायम्०' 'अयं सहस्रम्०' ये तीनों प्रतीकें अ० ३३।८१-८३ तक के तीनों मन्त्रों की हैं । 'ऊर्ध्व ऊ षु णः'० यह प्रतीक अ० ११।४२ मन्त्र की है ।

इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३४] आदित्ययाज्ञवल्क्यावृषी ॥

ओ३म् ॥ यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैवं॒ तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒वैति॑ ।
दू॒र॒ङ्ग॒मं ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रेकं॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥१॥

[१-६] शिवसंकल्प आदित्ययाज्ञवल्क्यौ वा ऋषी । मनो देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ शिवसंकल्पसूक्तम् । शिवसंकल्पोपनिषत् ।

भा०—(यत्) जो (मनः) मन, संकल्प विकल्प करने वाला अन्तःकरण (जाग्रतः) जागते हुए पुरुष का (दूरम् उद् आ एति) दूर दूर के पदार्थों तक संकल्प द्वारा ही जाता है और (सुप्तस्य) वह ही सोते हुए पुरुष का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) उसके भीतर आ जाता है । (तत्) वह (उ) निश्चय से (ज्योतिषाम्) प्रकाश वाले ग्रह नक्षत्रादि के बीच सूर्य के समान, नाना विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रिय गण के बीच में (दूरंगमम्) दूर तक पहुँचने वाला (ज्योतिः) प्रकाशक साधन है । वह ही (दैवम्) देव अर्थात् विषयों में रमण करने वाले आत्मा का ही (एकम्) एकमात्र भीतरी साधन है । (तत्) वह मेरा (मनः) मन, ज्ञान का साधन, इन्द्रिय सदा (शिवसंकल्पम्) शुभ, संकल्प वाला (अस्तु) हो ।

येन॒ कर्मा॑ण्य॒पसो॑ मनी॒षिणो॑ य॒ज्ञे कृ॒ण्वन्ति॑ वि॒दथे॑षु॒ धीराः॑ ।
यद॑पू॒र्वं य॒क्षम॒न्तः प्र॒जानां॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥

मनः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(येन) जिस मन से (अपसः) कर्म करने हारे, कर्मण्य पुरुष और (मनीषिणः) मनस्वी, दृढ़ निश्चयी, ज्ञानी और (धीराः) ध्याननिष्ठ योगी जन, (विदथेषु) यज्ञों, ज्ञानयुक्त व्यवहारों, सभास्थानों और युद्धादि के अवसरों में और (यज्ञे) यज्ञ या परम उपासनीय पूज्य परमेश्वर

के निमित्त (कर्माणि) नाना उत्तम कर्म (कुर्वन्ति) करते हैं और (यत्) जो (प्रजानाम् अन्तः) समस्त प्रजाओं के भीतर (अपूर्वम्) अपूर्व, अद्भुत, भीतरी इन्द्रिय (यक्षम्) सब अन्य इन्द्रियों की सुसंगति, सुव्यवस्था करने वाला है (तत्) वह (मे मनः शिवस कल्पम् अस्तु) मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ३

मनः। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(यत्) जो मन (प्रज्ञानम्) सबसे उत्तम ज्ञान का साधन है जो (चेतः) यथार्थ ज्ञान और स्मरण करने का साधन है और जो (धृतिः च) धारण अर्थात् चिरकाल तक स्मरण रखने का साधन है और (यत्) जो (प्रयासु) प्रजाओं, प्राणियों के भीतर (अमृतम्) कभी नष्ट न होने वाला (अन्तः) भीतर ही (ज्योतिः) सब पदार्थों का प्रकाशक गृह में दीपक के समान ज्योति भी है। (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किञ्चन कर्म) कुछ भी कर्म (न क्रियते) नहीं किया जाता (तत् ते मनः) वह मेरा मन (शिव संकल्पम्) शिव, शुभ वाला, उत्तम विचारवान् (अस्तु) हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥

मनः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(येन) जिसके द्वारा (इदम्) यह (भूतम्) अतीत, भूतकाल, (भुवनम्) वर्त्तमान काल और (भविष्यत्) भविष्यत् काल के (सर्वम्) समस्त पदार्थ (अमृतेन) अमृत, नित्य आत्मा के साथ मिलकर (हरिगृहीतम्) जाने जाते हैं और (सप्तहोता) जैसे ब्रह्मा आदि सात ऋत्विजों से यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार (येन) जिस अन्तःकरण द्वारा शिर में स्थित विषयों के ग्रहण करने वाले चक्षु आदि सात इन्द्रियों अथवा शरीर को धारण और जीवन देने वाले सात धातुओं से युक्त

(यज्ञः) आत्मा, देहरूप यज्ञ (तायते) सम्पादन किया जाता है (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसंकल्पम्) शुभ संकल्प वाला (अस्तु) हो ।

यस्मिन्नृचः साम यजूᳬषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तᳬसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

मनः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(रथनाभौ अराः इव) रथ के चक्र की नाभि में जिस प्रकार अरे लगे होते हैं उसी प्रकार (यस्मिन्) जिस मन में (ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्र, (साम) सामवेद और (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं अर्थात् वेद आदि नाना विज्ञान पढ़ लेने पर स्मृति रूप से जिसमें रहते हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्रजाओं, प्राणियों के (सर्वम् चित्तम्) समस्त चित्त, समस्त पदार्थों का ज्ञान भी (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान और पट में सूत्रों के समान ओत प्रोत अर्थात् पिरोये हुए हैं (तत्) वह मेरा (मनः) मननशील अन्तःकरण और उससे युक्त आत्मा (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ वेद तथा परमेश्वर आदि के ज्ञान, पठन मनन आदि उत्तम विचार परम्परा से युक्त हो ।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

मनः । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सुषारथिः = सु-सारथिः) उत्तम सारथि, कोचवान् (अभीशुभिः) बागों से (वाजिनः) वेगवान् (अश्वान् इव) अश्वों को जिस प्रकार (नेनीयते) ले जाता है उसी प्रकार (यत्) जो मन, (अभीशुभिः) शीघ्र गतियों और प्रेरक वृत्तियों से (वाजिनः) ज्ञान और बल से युक्त (मनुष्यान्) मननशील प्राणियों को (नेनीयते) ले जाता है और (यत्) जो (हृत्-प्रतिष्ठम्) हृदय स्थान में स्थित और (अजिरम्) जरा आदि दशाओं से रहित, सदा बलवान्, अथवा विषयों के प्रति इन्द्रियों को ले जाने और स्वयं संकल्प द्वारा जाने में समर्थ है और जो (जविष्ठम्) सबसे अधिक

वेगवान् है (तत् ते मनः) वह मेरा मन (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ संकल्प वाला हो।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ ७ ॥

ऋ० १ । १८७ । १ ॥

अगस्त्य ऋषिः । पितुर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः । अन्नस्तुतिः ॥

भा०—मैं उस (महः) महान् (धर्माणम्) शरीरों और राष्ट्रों के धारण करने वाले (तविषीम्) बलवान् (पितुम्) सबके पालक, अन्न के समान सबके जीवनों के आधार आत्मा और राजा के (स्तोषम्) गुणों का वर्णन करता हूँ। (यस्य ओजसा) अन्न के बल पर जैसे पुरुष (वृत्रं विपर्वम् वि अर्दयत्) विघ्नकारी कालरूप मृत्यु को भी खण्ड खण्ड कर काल पर वश पा लेता है उसी प्रकार जिसके पराक्रम से (त्रितः) तीनों कालों में व्याप्त उत्तम, मध्यम, अधम तीनों में प्रतिष्ठित अथवा शत्रु, मित्र और उदासीन तीनों पर विजयशील होकर (वृत्रम्) राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को, मेघ को सूर्य के समान (विपर्वम्) उसके पर्व-पर्व, खण्ड-खण्ड काट कर (वि अर्दयत) विविध उपायों से दण्डित करता है। त्रितः—त्रिस्थान इति म०। त्रिषु कालेषु इति द०। विस्तीर्णतम् इति सा०।

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शञ्च नस्कृधि।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण ऽआयूंषि तारिषः ॥ ८ ॥

अथर्व० ७ । २० । २ ॥

[९] ब्रह्मा ऋषिः । अनुमतिर्देवता । निचृद् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अनुमते) अनुकूल मति से युक्त, सब कार्यों की अनुमति, अर्थात् (स्वीकृति) देने वाले सभापते ! अथवा राजसभे ! तू (नः) हमें

८—त्वं मंससे 'इति अथर्व०। (तृ० च०) 'जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि-ररास्व नः' इति अथर्व०।

(अनु मन्यासै) अनुमति, स्वीकृति दिया कर । तू (शं च कृधि) सुख कल्याणकारी कार्य किया कर। (क्रत्वे) उत्तम मति, या बुद्धि और (दक्षाय) बल, सम्पादन करने के लिये ही (नः हिनु) हमें प्रेरित कर। (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषः) खूब बढ़ा।

अनु नो॒ऽद्यानु॑मतिर्य॒ज्ञं दे॒वेषु॑ मन्यताम् ।
अ॒ग्निश्च॑ हव्य॒वाह॑नो॒ भव॑तं दा॒शुषे॒ मय॑ः ॥ ६ ॥

अथर्वा ऋषिः । अनुमतिर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अद्य) आज (अनुमतिः) स्वीकृति देने वाला सभापति, (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत राज्य कार्य को (देवेषु) विद्वान् पुरुषों में (अनुमन्यताम्) स्वीकार करे अर्थात् राष्ट्र कार्य को विद्वान् के आधार पर चलावे और (हव्यवाहनः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला (अग्निः) अग्रणी नायक, तेजस्वी, तेजस्वी राजा, सभापति (दाशुषे) दानशील, करप्रद प्रजा के लिये (मयः भवतम्) सुखकारी हों।

सिनी॑वालि॒ पृथु॑ष्टुके॒ या दे॒वाना॒मसि॒ स्वसा॑ ।
जु॒षस्व॑ ह॒व्यमाहु॑तं प्र॒जां दे॑वि दिदिड्ढि नः ॥ १० ॥

ऋ० २ । ३२ । ६ ॥ अथर्व ७ । ४६ । १ ॥

गृत्समद ऋषिः । सिनीवाली देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (सिनीवालि) समस्त प्रजाओं को पालन पोषण के सामर्थ्य से बांधने वाली, प्रतिपदा की चन्द्रकला और अमावास्या के समान नव राजचन्द्र से विराजने वाली राजसभे ! हे (पृथुष्टुके) बड़े भारी संघशक्ति से युक्त ! तू (या) जो (देवानाम्) देवों, विद्वानों, विजयेच्छु और व्यवहार कुशल, पुरुषों को (स्वसा) उत्तम रीति से बैठाने वाली, विद्वान् सभासदों से बनी (असि) है। तू (आहुतम्) समस्त राष्ट्र से ग्रहण किये गये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर और सञ्चित बल को (जुषस्व) स्वीकार कर और हे (देवि) दिव्य गुणों से युक्त राजसभे ! तू (नः प्रजां दिदिड्ढि)

हमारी प्रजा को उत्तम मार्ग दर्शा। उत्तम सुख प्रदान कर। (२) स्त्री के पक्ष में—हे (सिनीवालि) गृह का पालन करने वाली ! प्रेम बन्धन में स्वयं बंधने और भरण पोषण करने योग्य ! हे (पृथुष्टुके) विशालबन्धन, विशाल कामना युक्त, विशाल केशपाश से युक्त ! बड़ी स्तुति योग्य, यशस्विनि ! हे (देवि) कामना युक्त प्रियतमे ! (या) जो तू (देवानाम्) विद्वानों के बीच में (स्वसा) सुभूषित, सुन्दर रूपवती होकर (असि) विराजती है तू मेरे (आहुतम्) दिये हुए (हव्यम्) स्वीकार करने योग्य अन्न वस्त्रालंकारादि पदार्थ को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर और (नः) हमें (प्रजाम्) उत्तम सन्तान (दिदिड्ढि) प्रदान कर उसको उत्तम शिक्षा दे।

'सिनीवाली'—दृष्टचन्द्राऽमावास्या सिनीवालीति सायणः। सिनमिति अन्ननामसु व्याख्यातम्, बालं पर्व इति देवराजः। सिनी प्रेमबद्धा चासौ बलकारिणी चेति दया०। सिनमन्नं भवति। सिनाति भूतानि। वालं पर्व। पर्व वृणोतेः। तस्मिन्नवतीति वा। वालिनी वा, वालेनैवास्यामणुत्व-त्वाच्चन्द्रमाः सेवितव्यो भवति इति वा। निरु० ११। ३१। १०॥

'स्वसा'—सु असा भवति। स्वेषु सीदति वा। निरु० ११।३१।११॥

पञ्च॑ न॒द्यः॒ सर॑स्वती॒मपि॑ यन्ति॒ सस्रो॑तसः।
सर॑स्वती॒ तु प॑ञ्च॒धा सो दे॒शेऽभ॑वत्स॒रित्॥ ११॥

गृत्समद ऋषिः। सरस्वती देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(सस्रोतसः) एक समान स्रोत वाली नदियां जैसे अधिक जल वाली, बड़ी नदी में मिलकर उसी में लीन हो जाती हैं उसी प्रकार (पञ्च) पांचों (नद्यः) समृद्ध प्रजाएं (सरस्वतीम्) प्रशस्त वेद ज्ञान वाली विद्वत्सभा या विद्वान् को (सस्रोतसः) समान-ज्ञानप्रवाह वाली होकर (अपियन्ति) आ मिलती हैं उसी में लीन हो जाती हैं। (सा उ) वह (सरस्वती) सरस्वती उत्तम वेद ज्ञान को धारण करने वाली विद्वत्सभा और विद्वान् (पञ्चधा) पांचों प्रकार के जनों को धारण करने वाला होकर (देशे) देश, राष्ट्र में (सरित्) नदी के समान ज्ञान रूप जल को फैलाने

वाला (अभवत्) हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद पांचों समृद्ध प्रजाएं हैं। वेदमयी वाणी पांचों को पालती पोषती है। वह नदी के समान सबके लिये समान रूप से उपयोगी, सुखजनक और पाप मलादि धोने वाली हो।

वाणी के पक्ष में—(पञ्चनद्यः) नदियों के समान प्रवाहरूप से इन्द्रिय नालिकाओं से बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियां (सस्रोतसः) एक समान मनरूप स्रोत से ही बहती हैं। वे पांचों (सरस्वतीम् अपियन्ति) वाणी रूप में लीन होती हैं। अर्थात् पांचों ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। (सा उ) वह वाणी (देशे) स्व-स्थान, मुख में, (सरित्) नदी के समान ही धारा रूप से निकलती (अभवत्) है।

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो ऽअङ्गि॑रा ऽऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॑सोऽजायन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१२॥

ऋ० १ । ३१ । १ ॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् जगती । निषादः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (अङ्गिराः) शरीर में रस के समान अथवा अग्नि के समान तेजस्वी (ऋषिः) मन्त्रार्थद्रष्टा, (देवानाम्) विद्वानों और तेजस्वी पुरुषों के बीच में (देवः) सबसे अधिक विद्वान्, तेजस्वी और विजयी और (प्रथमः) सबसे प्रथम, (शिवः सखा) कल्याणकारी मित्र (अभवः) हो। (तव) तेरे (व्रते) बनाये नियम व्यवस्था में रह कर (कवयः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी पुरुष (विद्मनापसः) समस्त कर्त्तव्य कर्मों को जानने वाले हों और (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वीर पुरुष (भ्राजद्-ऋष्टयः) प्रखर, तेजस्वी, शस्त्रों वाले (अजायन्त) हों। (२) परमेश्वर के पक्ष में— परमेश्वर ! तू ही सबसे प्रथम ज्ञानवान् सबका द्रष्टा, सब देवों का देव, सबका कल्याणकारी, मित्र है। उसके व्रत में दीक्षित, विद्वान् सब सत्कर्मों और ज्ञानों के द्रष्टा हो जाते हैं।

त्वन्नो॑ऽअग्ने तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेष॒ꣳरक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१३॥

ऋ० १ । ३१ । १२ ॥

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! हे (देव) दानशील ! सर्वद्रष्टः ! (तव व्रते) तेरे नियम व्रत में रहने वाले (नः) हमें (त्वम्) तू (तव पायुभिः) अपने पालनकारी सामर्थ्यों से (नः मघोनः) हमारे धन सम्पन्न पुरुषों और (तन्वः च) हमारे शरीरों को भी (रक्ष) पालन कर । हे (वन्द्य) वन्दनीय ! हे स्तुति करने योग्य ! तू हमारे (तोकस्य) पुत्र (त्राता) रक्षक और (तनये) पुत्र के पुत्र, पौत्रादि सन्तति और (गवाम्) गौ आदि पशुओं का भी (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाणः) रखवाला (असि) है ।

उ॒त्ता॒नाया॒मव॑ भरा चिकि॒त्वान्त्स॒द्यः प्रवी॑ता॒ वृष॑णं जजान ।
अ॒रु॒षस्तू॑पो॒ रुश॑दस्य॒ पाज॒ऽइडा॑यास्पु॒त्रो व॒युने॑ऽजनिष्ट ॥ १४ ॥

ऋ० ३ ।·२९ । ३ ॥

देवश्रवोदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(उत्-तानायाम्) उत्तम रूप से विस्तृत पृथिवी में हे राजन् ! तू (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (अव भर) अपने अधीन प्रजा का भरण पोषण कर । इससे (प्रवीता) अच्छी प्रकार कामना युक्त स्त्री के समान प्रेम से बंधकर प्रजा भी (सद्यः) शीघ्र ही (वृषणम्) सब सुखों के वर्षक, वीर्यवान् राजा को (जजान) उत्पन्न करती है । वह (अरुषस्तूपः) हिंसा रहित ज्वालामय अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है । (अस्य) उसका (पाजः) पालन सामर्थ्य (रुशत्) शत्रुओं का नाशक होता है और वह (इडायाः पुत्रः) पृथ्वी का पुत्र, पृथ्वीनिवासी पुरुषों को दुःखों से त्राण करने में समर्थ होकर (वयुने) उत्तम ज्ञान कर्त्तव्य कर्म में भी (अजनिष्ट) सामर्थ्यवान् हो जाता है । (२) स्त्री पुरुष पक्ष में—(अरुषस्तूपः) अपने

पराक्रम से स्त्री को कष्टदायी न होकर पति (अस्य रुशत् पाजः) अपने तेजोमय वीर्य को (चिकित्वान् उत्तानायाम् अव भर) रोगरहित, गृहस्थ उत्तान पत्नी में धारण करावे। वह (प्रवीता सद्यः वृषणं जनान) प्रेम से बद्ध होकर शीघ्र ही अग्नि को अरणि के समान वीर्यवान् पुत्र को उत्पन्न करे। वह कामना युक्त होकर (वृषणम्) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष को प्राप्त कर पुत्र रूप से उत्पन्न करे। (इडायाः) उत्तम स्त्री या बीजारोपण योग्य भूमि के (वयुने पुत्रः अजनिष्ट) गर्भाशय में वह तेजोरूप वीर्य ही पुत्र रूप से उत्पन्न होता है।

इडा॑यास्त्वा प॒दे व॒यं नाभा॑ पृथि॒व्या ऽ अधि॑।
जात॑वेदो॒ नि धी॑मह्य॒ग्ने ह॒व्याय॒ वोढ॑वे ॥ १५ ॥

ऋ० ३। २९। ४॥

देवश्रवोदेववातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन्! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, अग्रणी सेनानायक, (त्वा) तुझको (वयम्) हम (पृथिव्याः नाभा अधि) पृथिवी के केन्द्र में और (इडायाः पदे अधि) स्तुति योग्य प्रजा के प्रतिष्ठित पद पर अथवा वाणी या आज्ञा प्रदान करने के आज्ञापक पद पर (हव्याय) स्तुति योग्य राजपद के (वोढवे) धारण करने के लिये (निधीमहि) स्थापित करते हैं। (२) आचार्य पक्ष में—हे विद्वन्! तुझको हम पृथिवी के बीच, उत्तम वाणी के प्रतिष्ठित आचार्य पद पर, प्रदान योग्य ज्ञान दान के लिये स्थापित करें।

प्र म॑न्महे शवसा॒नाय॑ शू॒षमा॑ङ्गू॒षं गिर्व॑णसे ऽअङ्गिर॒स्वत्।
सु॒वृ॒क्तिभि॑ स्तुव॒तऽऋ॑ग्मि॒याया॒र्चा॑मा॒र्कं नरे॒ विश्रु॑ताय ॥ १६ ॥

ऋ० १। ६२। १॥

[१६-१७] नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हम लोग (शवसानाय) दुष्टों के नाशक बल वृद्धि चाहने वाले (गिर्वणसे) समस्त स्तुतियों के पात्र (अंगिरस्वत्) वायु सूर्य और

अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान् (सुवृक्तिभिः) उत्तम शत्रुओं का वर्जन करने वाली शक्तियों से (स्तुवते) स्तुतियोग्य (ऋग्मियाय) विद्वान्, (विश्रुताय) विविध शौर्य आदि गुणों द्वारा प्रख्यात, (नरे) नायक के (शूषम्) बल और (आङ्गूषम्) घोषणा करने का अधिकार या यशोवृद्धि को (प्रमन्महे) अच्छी प्रकार चाहें और (सुवृक्तिभिः) उत्तम रीति से हृदय को खींचने वाली और पापनाशक ज्ञान वाणियों से (स्तुवते) शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रवचन करने वाले (ऋग्मियाय) स्तुतियोग्य एवं वेदमन्त्रों के ज्ञाता, (विश्रुताय) विविध विद्याओं में प्रसिद्ध विद्वान् के (अर्कम्) स्तुति योग्य ज्ञान का (अर्चाम) आदर करें। (२) परमेश्वर के पक्ष में—विज्ञान के प्राप्त करने के लिये सर्व स्तुति योग्य प्राण के समान सर्व जीवनाधार, ज्ञानी, स्तुति योग्य, प्रसिद्ध परमेश्वर के बलकारी वेदमय आघोपरूप मन्त्रों या स्तुति योग्य स्वरूप की स्तुति करें और उसका विचार और चिन्तन करें।

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यᳪ शवसानाय साम।

येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा ऽअर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥१७॥

ऋ० १। ६२। २॥

नोधाः। इन्द्रः। निचृद् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोग (शवसानाय) बल वृद्धि के इच्छुक (महे) महान् राष्ट्र के लिये (आङ्गूष्यम्) घोषणा करने योग्य, कीर्तिजनक, (महि नमः) बड़ा भारी आदर एवं शत्रु नमाने में समर्थ बल और अन्नादि ऐश्वर्य और (साम) साम, स्तुति वचन, (प्र भरध्वम्) प्रदान करो, (येन) जिससे (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) श्रेष्ठ पालक जन (पदज्ञाः) पद अर्थात् ज्ञान योग्य तत्वों के जानने वाले (अंगिरसः) ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (अर्चन्तः) योग्य रूप से वर्त्तते हुए (गाः) नाना भूमियों, ज्ञानवाणियों और गौ आदि समृद्धियों को (अविन्दन्) प्राप्त करते हैं। परमेश्वर और आचार्य के पक्ष में—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के

लिये (आंगूष्यं साम महि नमः प्र भरध्वम्) आंगूष्य साम अर्थात् स्तुति योग्य सामगान और विजय प्रकट करो। जिसके बल में हमारे पूर्व के पालक, गुरुजन और (अंगिरसः) ज्ञानवान् पुरुष (पदज्ञाः) आत्मस्वरूप को जानने हारे होकर (अर्चन्तः) स्तुति करते हुए (गाः) वेदवाणियों को ज्ञान रश्मियों के समान प्राप्त करते और औरों को प्रदान करते हैं।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांᳫंसि। तितिक्षन्ते ऽअभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १८ ॥ ऋ० ३ । ३० । १ ॥

देवश्रवोदेववातौ ऋषी । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! आचार्य ! प्रभो ! (त्वा) तुझको (सोम्यासः) राष्ट्र-ऐश्वर्य प्राप्त करने हारे उसके योग्य (सखायः) मित्रगण (त्वा) तुझे (इच्छन्ति) चाहते हैं। (सोमं सुन्वन्ति) सोम, ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हैं। अथवा ऐश्वर्यवान् सबके आज्ञापक तेरा (सुन्वन्ति) अभिषेक करते हैं और (प्रयांसि दधति) मनोहर अन्नादि उत्तम पदार्थों को धारण करते और प्रदान करते हैं और (अभिशस्तिम्) शत्रुओं के द्वारा किये जाने वाले घोर शस्त्राघातों और निन्दाप्रवादों को भी (तितिक्षन्ते) सहते हैं। हे (इन्द्र) राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! (जनानाम्) प्रजाजनों के बीच में (प्रकेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और कीर्तिमान् (त्वत्) तुझ से (कः चन) दूसरा कौन है ? कोई भी नहीं। (२) हे परमेश्वर ! सोमरस और ब्रह्मानन्द रस के इच्छुक जन तुझे चाहते हैं। वे सोम, परमेश्वर की स्तुति करते हैं। निन्दा वचनों को सहते हैं और तितिक्षा का अभ्यास करते हैं। हे परमेश्वर ! तुम से बड़ा ज्ञानी दूसरा कौन है ?

न ते दूरे परमा चिद्रजाᳫंस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्। स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने ऽअग्नौ ॥ १९ ॥ ऋ० ३ । ३० । २ ॥

देवश्रवोदेववातौ । इन्द्रः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् ! (परमा चित् रजांसि) दूर से दूर के लोक, प्रजाजनों के निवासस्थान और शत्रुओं के देश भी (ते) तेरे लिये (दूरे न) दूर नहीं हैं। तू (हरिभ्याम्) अश्वों से ही (आ प्र याहि) सब देशों में आया जाया कर। (स्थिराय) स्थिर (वृष्णे) सुखों के वर्षक, बलवान् तेरे लिये ही (इमा) ये सब (सवना) ऐश्वर्य उत्पादक कार्य (कृता) किये जाते हैं और (समिधाने अग्नौ) अति प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार (सवाना कृता) यज्ञ कर्म करने पर (ग्रावाणः) मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार तुझ नायक, पुरुष के अग्नि के समान युद्ध में प्रज्वलित हो जाने पर (ग्रावाणः) ज्ञानों का उपदेश करने वाले विद्वान् एवं पाषाणों के समान दुष्टों के दलन करने वाले बलवान् पुरुष (युक्ताः) योग्य स्थानों पर नियुक्त हों। (२) परमेश्वर को दूर से दूर का स्थान भी दूर नहीं। वह अपने धारण और आकर्षण सामर्थ्य से सब में व्याप्त है। उसके ही किये हुए ये सब कार्य हैं। हृदय में प्रदीप्त हो जाने पर ही ये सब (ग्रावाणः) समस्त स्तुतिकर्त्ता विद्वान् योग द्वारा उसका साक्षात् करते हैं।

अषा॑ढं यु॒त्सु पृत॑नासु प॒प्रिꣳ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।
भ॒रे॒षु॒जाꣳसु॑क्षि॒तिꣳ सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥२०॥

ऋ० १ । ९१ । २१ ॥

२०—२३ गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! सेनापते ! (युत्सु) युद्धों में (अषाढम्) शत्रुओं से पराजित न होने वाले और (पृतनासु) सेनाओं में (पप्रिम्) पूर्ण बलवान्, सबके रक्षक, (स्वर्षाम्) सबको सुख, ऐश्वर्य के देने वाले (अप्साम्) मेघ के समान सबको प्राण अन्न देने वाले अथवा प्रजाओं के धन को स्वयं न खा जाने वाले, (वृजनस्य) शत्रुओं के वारण करने वाले सैन्य बल के (गोपाम्) रक्षक, (भरेषुजाम्) संग्रामों और यज्ञों एवं प्रजा के भरण पोषण के कार्यों में प्रसिद्ध (सुक्षितिम्) उत्तम निवासवर्ग, से युक्त, उत्तम भूमि के स्वामी, (सुश्रवसम्) उत्तम यश ऐश्वर्य और

अन्नादि से समृद्ध (जयन्तम्) विजय करने हारे (त्वाम् अनु) तेरे ही हर्ष के साथ हम प्रजाजन भी (मदेम) प्रसन्न एवं सुखी रहें ।

सोमो॑ धे॒नुᳬं सोमो॒ऽअर्व॑न्तमा॒शुᳬं सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॑ ददाति ।
सा॒द॒न्यं॑ विद॒थ्य॒ᳬं स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥ २१ ॥

गोतमः । सोमः । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(सोमः) सबका प्रेरक, अभिषिक्त राजा (धेनुं ददाति) दुधार गौ देता है । (सोमः) वह अभिषेक योग्य, आज्ञापक राजा ही (आशुम् अर्वन्तम् ददाति) वेगवान् अश्वसैन्य और कर्म कुशल वीर पुरुष प्रदान करता है । (यः) जो प्रजाजन अपने आप को (अस्मै) इस राजा के अधीन (ददाशत्) दे देता है उस प्रजा को वह (सादन्यम्) उत्तम गृह, राजसभा और उत्तम पदों पर विराजने योग्य, (विदथ्यम्) ज्ञान-सत्संग, यज्ञ आदि के योग्य (सभेयम्) सभा में कुशल, (पितृश्रवणम्) पिता, पालक गुरु जनों को उपदेश और आज्ञाओं के श्रवण करने वा पिताओं के यश कीर्ति फैलाने वाले पुरुष भी (ददाति) प्रदान करता है ।

त्वमि॒मा ऽओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो ऽअ॑जनय॒स्त्वङ्गाः ।
त्वमा त॑तन्थो॒र्व॒न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥ २२ ॥

गोतमः । सोमः । विराड् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे (सोम) अभिषिक्त राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! मेघ जिस प्रकार जल वर्षा कर (इमा ओषधीः) इन नाना ओषधियों को पैदा करता है उसी प्रकार (त्वम्) तू इन नाना शत्रु संतापक बल और तेज को धारण करने वाली वीर सेनाओं और वीर पुरुषों को (अजनयः) उत्पन्न करता है । (त्वम्) मेघ जिस प्रकार जलों की वर्षा करता है उसी प्रकार तू (अपः अजनयः) जलों के समान शान्तिदायक आप्त पुरुषों, उत्तम बुद्धि और कर्म व्यवस्था को (अजनयः) प्रकट करता है । (त्वं गाः) तू ही गौ आदि पशु और राजाज्ञा रूप वाणियां प्रकट करता है । (त्वम्) तू (अन्तरिक्षम्) वायु के समान विशाल अन्तरिक्ष और सबको आवरण और रक्षा करने

वाले रक्षक, शासक विभाग को (आततन्थ) विस्तृत कर और (त्वम्) तू ही (ज्योतिषा) सूर्य के समान प्रकाश से (तमः) अन्धकार के समान प्रजा के कष्टदायी और शोक के हेतु दुःखों को (ववर्थ) निवारण कर। (२) परमात्मा के पक्ष में—वह समस्त अन्न आदि ओषधि, जल, पशु प्रदान करता, आकाश को बनाता और सूर्य से अन्धकार और ज्ञान से मोह को दूर करता है।

दे॒वेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गꣳ स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य।
मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॑स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्सा॒ गवि॑ष्टौ ॥२३॥

ऋ० १। ९१। २३॥

गोतमः। सोमः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (सहसावन्) बलपूर्वक शत्रु पर विजय लाभ करने हारे! हे (देव) राजन्! प्रजाओं के सुखदाता एवं शत्रु पर विजय करने के इच्छुक! तू (देवेन मनसा) विजय की कामना वाले मन से (नः) हमारे (रायः भागम्) ऐश्वर्य को ले लेने वाले शत्रु को (अभियुध्य) युद्ध में परास्त कर। तू (उभयेभ्यः) शत्रु और मित्र दोनों पक्षों के लोगों के (वीर्यस्य) बलों पर (ईशिषे) स्वामित्व करने में समर्थ है। शत्रु (त्वा मा तनत्) तुझे न व्याप ले, तुझे न दबा ले! तू (गविष्टौ) बाणों के निरन्तर प्रहारों के स्थान संग्राम में (प्र चिकित्स) शत्रुओं को रोगों के समान दूर करने का यत्न कर, अथवा (प्र चिकित्स) युद्ध से प्राप्त क्षत आदि की उत्तम चिकित्सा का प्रबन्ध कर। अथवा—(रायः भागं नः अभियुध्य) ऐश्वर्य का भाग हमें प्राप्त करा। (गविष्टौ उभयेभ्यः प्र चिकित्स) सुख के निमित्त, हमारे ऐहिक, पारमार्थिक सुखों के बीच में आये विघ्न निवारण कर। (मही०, दया०, उवट)।

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न्।
हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व ऽआगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥२४॥

ऋ० १। ३५। ८॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(सविता) सबका प्रेरक, सञ्चालक, ऐश्वर्य का उत्पादक सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी, (देवः) विजिगीषु राजा (हिरण्याक्षः) प्रजा के प्रति हित और रमणीय चक्षु वाला, सौम्य दृष्टि होकर (दाशुषे) भेंट और कर प्रदान करने वाले प्रजाजन को (वार्याणि) वरण करने योग्य, उत्तम उत्तम (रत्नानि) रत्न, रमणयोग्य पदार्थों को (दधत्) स्वयं धारण करता और प्रदान करता हुआ (आगात्) प्राप्त हो और सूर्य जिस प्रकार (अष्टौ ककुभः) ४ दिशा, ४ उपदिशा आठों को, (पृथिव्याः योजना) पृथ्वी पर के समस्त प्राणियों और (त्री धन्व) तीनों लोकों और (सप्त सिन्धून्) प्रवाहित होने वाले स्थूल सूक्ष्म जलों को भी (वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार राजा भी आठों दिशाओं और पृथ्वी के साथ योग रखने वाले या कोश, योजनादि भागों या पृथ्वी से युक्त प्राणियों या (त्री धन्व) तीनों अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश और गतिशील नद नालों या सातों समुद्रों को (वि अख्यत्) विशेष रूप से देखे । सब पर अपनी दृष्टि रक्खे ।

महर्षिदयानन्दः—ऋग्वेदे—'पृथिव्या मध्ये स्थितानामेकोनपञ्चाशत्-क्रोशपर्यन्तेऽन्तरिक्षे स्थूलसूक्ष्मलघुगुरुत्वरूपेण स्थितानामपां सप्तसिंधिवति संज्ञा' । यजुर्वेदभाष्ये-पृथिवीमारभ्य द्वादशक्रोशपर्यन्तं गुरुत्वलघुत्वभूतानां सप्त विधानामपामवयवाः' इत्यादि उभयविधलेखनं सुविचार्य्यम् अत्र ॥

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वीऽअ॒न्तरी॑यते । अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम्नृ॑णोति ॥२५॥

हिरण्यस्तूपः । सविता देवता । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता) रसों और प्रकाशमय किरणों का उत्पादक सूर्य (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण के समान तीक्ष्ण किरणों को जलादि ग्रहण करने वाले हाथों के समान धारण करता वह (विचर्षणिः) समस्त विश्व को अपने प्रकाश से दिखलाता, तीव्र ताप से पदार्थों को फाड़ता

और विश्लेपण करता है। वह (उभे द्यावापृथिवी अन्तः) आकाश और और पृथिवी दोनों के बीच में स्थित होकर गति करता और (अमीवाम्) रोगकारी पीड़ाओं और रात्रि के अन्धकार को (अप बाधते) दूर करता है। वह (सूर्यम्) सूर्य अपने ही स्वरूप को (वेति) प्रकट करता है, (कृष्णेन) अन्धकार के नष्ट करने वाले (रजसा) तेज से (द्याम्) आकाश को (अभि ऋणाति) सब प्रकार से व्याप लेता है उसी प्रकार यह (सविता) राष्ट्र के सब ऐश्वर्यों का उत्पादक, सबका प्रेरक राजा (हिरण्य-पाणिः) सबके हितकारी और रमणीय व्यवहारों वाला, (विचर्षणिः) समस्त मनुष्यों में विशेष पुरुष, एवं विविध प्रकार से सबका द्रष्टा होकर (उभे द्यावापृथिवी अन्तः) राजवर्ग और प्रजावर्ग या शत्रु और मित्र दोनों राष्ट्रों के बीच में (ईयते) आ खड़ा होता है। वह दोनों के बीच मध्यस्थ-रूप से सर्वमान्य होता है तब ही वह (आमीवाम्) रोग पीड़ा के समान दुःखदायी शत्रु सेना को भी (अप बाधते) दूर करता है और (सूर्यम् वेति) सूर्य पद को प्राप्त करता है और वह (कृष्णेन रजसा) शत्रु बल को कर्षण अर्थात् क्षीण कर देने वाले तेज से (द्याम्) देदीप्यमान् राजसभा या उच्च पद को (ऋणोति) प्राप्त करता है। अथवा—जब (सूर्यम् = सूर्यः) सूर्य ही (वेति) अस्त हो जाता है तब (द्याम् कृष्णः न रजसा कृणोति) आकाश को काले अन्धकार से ढक देता है। (दया० यजुर्भाष्ये) अथवा—जब वह सूर्य (सूर्यम्) रश्मि समूह को (वेति) प्रकट करता है तब (कृष्णेन रजसा) आकृष्ट लोकों द्वारा अपना प्रकाश प्राप्त करवाता है। (दया० ऋग्भाष्ये)।

हिरण्यहस्तो॒ऽअसु॑रः सुनी॒थः सु॑मृडी॒कः स्ववा॑ँ यात्व॒र्वाङ्।
अ॒प॒सेध॑न्र॒क्षसो॑ यातु॒धाना॒नस्था॑द्दे॒वः प्र॑तिदो॒षं गृ॑णा॒नः ॥ २६ ॥

ऋ० १। ३५। १० ॥

हिरण्यस्तूपः। सविता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(हिरण्यहस्तः) सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त और सब

दिशाओं में अपने किरणरूप हस्तों वाला, (असुरः) सबका प्राणदाता, बलवान्, (सुनीथः) सुखपूर्वक सबको प्राप्त, (सुमृडीकः) उत्तम सुखप्रद, (स्ववान्) उत्तम गुणों धनों से युक्त (अर्वाङ् याति) अपने गुणों को प्रकट करता हुआ सूर्य या वायु जिस प्रकार प्राप्त होता है उसी प्रकार यह राजा और सभापति (हिरण्यहस्तः) प्रजा के हित और रमणीय सुखकारी पदार्थों को और सुवर्ण आदि बहुमूल्य धनैश्वर्यों को अपने हाथ में, अपने अधीन रख कर तेजस्वी (असुरः) समस्त प्रजाओं को प्राण देने वाला, उन पर अनुग्रह करने और उनको वृत्ति देने वाला, (सुनीथः) उत्तम मार्ग से प्रजा को चलाने हारा या उत्तम स्तुतियोग्य, (सुमृडीकः) सुखकारी, दयालु, (स्ववान्) धनाढ्य, एवं अपने आत्मबल से युक्त होकर (अर्वाङ् यातु) शत्रु के अभिमुख और प्रजा के प्रति भी मान करे और वह (यातु-धानात्) प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, एवं दण्डित करने योग्य (रक्षसः) दुष्ट, चोर, डाकू आदि प्रजापीड़क लोगों को (अप सेधन्) दूर करता हुआ (प्रतिदोषम्) प्रजा के प्रत्येक दोष के सुधार के लिये उनको (गृणानः) उत्तम मार्गोपदेश करता हुआ (देवः) दानशील, विद्वान्, सर्वद्रष्टा राजा (अस्थात्) सिंहासन पर स्थिति प्राप्त करे। अथवा (प्रतिदोषं गृणानः) प्रति रात्रि काल में या प्रतिदिन लोगों को सावधान करता हुआ विराजे।

'रक्षसः'—रक्षो रक्षयितव्यमस्मात् । इति निरु० । ४ । १८ ॥

'प्रतिदोषम्'—प्रतिजनं यो दोषः तम् । श्रुतिस्मृतिविहितधर्मपराङ्मुखानां यावन्तो दोषास्तावतो गृणानः इति महीधरः ।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता ऽअन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो ऽअद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो ऽअधि च ब्रूहि देव
॥ २७ ॥ ऋ० १ । ३० । ११ ॥

हिरण्यस्तूपः । सविता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सवितः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! राजन् ! (ते) तेरे बनाये (ये) जो (पूर्व्यासः) पूर्व के विद्वानों, आप्त जनों से बनाये, चले

और पालन किये गये (सुकृताः) उत्तम धर्म कृत्य, (अन्तरिक्षे) और आकाश में विद्यमान (अरेणवः) धूलि रहित स्थानों के समान (अरेणवः) विद्वानों के हृदय में निर्दोष निर्मल सदाचार मर्यादा, मार्ग या व्रताचरण हैं (तेभिः) उन (सुगेभिः) सुख से चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (नः) हमें (अद्य) आज और सदा ही (रक्ष) पालन कर। हे (देव) दानशील, विद्वन्! तेजस्विन् राजन्! (नः) हमें तू (अधि ब्रूहि च) सन्मार्गों का उपदेश भी कर।

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ २८ ॥ ऋ० १। ४६। १५॥

प्रस्कण्व ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(उभा) दोनों (अश्विना) विद्या और अधिकारों में व्याप्त अध्यापक, सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष दोनों मुख्य अधिकारी (पिबतम्) राष्ट्रैश्वर्य का उत्तम रस के समान पानवत्, पालन करें और (उभा) दोनों (नः) हमें (शर्म) सुख, शरण (अविद्रियाभिः) अखण्डित, कभी नष्ट न होने वाले दृढ़, त्रुटि रहित, छल छिद्र रहित एवं आनन्दित, उत्तम (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (शर्म) सुख एवं शरण, उत्तम गृह आदि साधन (यच्छतम्) प्रदान करें। 'अविद्रियाभिः'—'दृ विदारणे' इत्यस्मादौणादिकः इयक् महो०। घञर्थे कस्ततो घस्तद्धित इति दया०। द्रा कुत्सायां गतौ इत्यस्मादौणादिकः किः। अविद्रिर्निन्दा, तद्विरोधनीं स्तुतिं यान्तीति अविद्रियाः, ताभिरिति सायणः।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २९ ॥
ऋ० १। ११२। २४॥

कुत्स ऋषिः। अश्विनौ देवते। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अश्विनौ) दिन और रात्रि, सूर्य और चन्द्र दोनों के समान तेज, प्रभाव तथा सर्व जनों को आह्लाद करने वाले सेनाध्यक्ष और सभा-

ध्यक्ष आप दोनों (अस्मे वाचम्) हमारी वाणी को (अश्वस्वतीम्) उत्तम कर्म युक्त (कृतम्) करो। हे (दस्रा) शत्रुओं और प्रजा के पीड़ाकारी दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाश करने वालो! हे (वृषणा) प्रजा पर सुखों के वर्षण करने वालो! तुम दोनों (अश्वस्वतीम् मनीषाम् कृतम्) शुभ कर्म से युक्त मन की इच्छा बुद्धि को उत्पन्न करो। मैं प्रजाजन (वाम्) तुम दोनों को (अद्यूत्ये) द्यूत आदि छल युक्त कार्यों या शर्तों रहित कार्य में अथवा (अद्यूत्ये) प्रकाश रहित, अन्धकार के समय अज्ञात स्थानों में और (अवसे) प्रजा के रक्षण कार्य करने के लिये (वाम्) आप दोनों को (निह्वये) निरन्तर बुलाता हूँ। आप दोनों (वाजसातौ) संग्राम में या ऐश्वर्य प्राप्ति कार्य में (नः) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भवतम्) समर्थ होवो। 'अद्यूत्ये'—द्यूतादागतं, द्यूते भवं वा द्यूत्यम्। न द्यूत्यमद्यूत्यं तस्मिन्।

द्युभि॑र॒क्तुभि॒ः परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी ऽउ॒त द्यौः॑
॥ ३० ॥ ऋ० १। ११२। २५॥

कुत्स ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अश्विना) व्यापक अधिकार और सामर्थ्य वाले सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष, तुम दोनों (द्युभिः अक्तुभिः) दिनों और रात्रियों में (अरिष्टेभिः) अविनष्ट, एवं मंगलकारक, सुखप्रद, हितकारी (सौभगेभिः) सौभाग्यों, धन सम्पदाओं से (अस्मान् परिपातम्) हम प्रजाजनों की रक्षा करो। (तत्) तब (मित्रः वरुणः) मित्र स्नेही और वरुण, दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश और दण्डाध्यक्ष दोनों (नः) हमारे पालन के कार्य को (मामहन्ताम्) और अधिक उत्तम एवं कीर्ति योग्य बनावें। (अदितिः) अखण्ड राज्यशासन करने वाली राजसभा और (सिन्धुः) राज्यप्रबन्ध द्वारा देशों और प्रजाओं को परस्पर बांधने वाला, समुद्र के समान गम्भीर राजा (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी के समान विस्तृत और

सूर्य के समान तेजस्वी दोनों (मामहन्ताम्) राजा के रक्षण कार्य को उन्नत करें।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ३१ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३३ । ४३ ॥

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस ऽआ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥३२॥

अथर्व० १९ । ४७ । १ ॥

कशिपा नाम भरद्वाजकन्या ऋषिका । रात्रिर्देवता । पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (रात्रि) रात्रि के समान समस्त प्रजाओं को सुख देने वाली ! सबको दान एवं वेतनादि देने वाली राजशक्ते ! (पार्थिवम्) पृथिवी का (रजः) समस्त लोक (पितुः) पालन करने वाले वायु और सूर्य के समान तेजस्वी बलवान् पुरुष के (धामभिः) धारण सामर्थ्यों और तेजों, पराक्रमों से (अप्रायि) पूर्ण रहे और तू (बृहती) बड़ी शक्ति वाली होकर (दिवः सदांसि) उषःकाल जिस प्रकार आकाश में फैलता है उसी प्रकार राजसभा के (सदांसि) नाना अधिकार पदों पर (वितिष्ठसे) विशेष रूप से स्थिर रह और (तमः) अन्धकार जैसे सर्वत्र फैल कर आंखों को निर्बल कर देता है और (त्वेषम्) प्रकाश जैसे सर्वत्र फैल कर प्राणियों को सामर्थ्यवान् करता है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तेरा (त्वेषं तमः) अति तेजस्वी रूप मित्रगण को अधिक सामर्थ्यवान् और शत्रुओं को निर्बल करने वाला बल (आवर्त्तते) सर्वत्र फैले। यहां राज्य प्रबन्ध करने वाली शक्ति 'रात्रि' शब्द से कही गयी है।

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ३३ ॥ ऋ० १।९२।१३॥

गोतमः ऋषिः । उषो देवता । निचृत् परोष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (वाजिनीवति) वाजिनी अर्थात् अश्व रथ आदि सेना से

युक्त (उषः) शत्रुओं को दान करने वाली, उनका नाश करने वाली, दण्डशक्ते ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (तत्) उस नाना प्रकार के (चित्रम्) अद्भुत धन को (आ भर) प्राप्त करा (येन) जिससे हम लोग (तोकं च) दुःखों के नाशक पुत्रों और (तनयं च) सन्तति के विस्तार करने वाले पौत्र आदि को भी (धामहे) धारण करें। स्त्री के पक्ष में—(वाजिनीवति उषः) बल, वीर्य, ज्ञान, बल और अन्नादि से समृद्ध उषा के समान शोभा से युक्त स्त्री संग्रह करने योग्य धन को प्राप्त करे, पुत्र पौत्रों का धारण पोषण करे।

प्रातर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्र॑ꣳ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑।
प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रꣳ हुवेम ॥ ३४ ॥

ऋ० ७। ४१। १॥

वसिष्ठ ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। निचृत् जगती। निषादः॥

भा०—(प्रातः) जब पांच घड़ी रात्रि रहे तब प्रभात वेला में, प्रातः-काल, हम लोग (अग्निं हवामहे) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करें। ज्ञानवान् आचार्य को नमस्कार करें। (प्रातः इन्द्रम्) प्रातः काल में हम उस समस्त ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर का स्मरण करें और परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें और ज्ञान के द्रष्टा आचार्य की उपासना करें। (प्रातः मित्रावरुणा हवामहे) प्रातःकाल ही हम मित्र अर्थात् प्राण के समान सबके स्नेहकारी, जीवनप्रद, प्रिय और वरुण अर्थात् अपान के समान सर्व मलनाशक और शक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करें। प्रातःकाल हम लोग प्राण और अपान की साधना प्राणायाम द्वारा करें। प्रातःकाल हम लोग मित्र, स्नेही और श्रेष्ठ पुरुष को नमस्कार आदि करें। (प्रातः अश्विना) माता पिता को प्रातः नमस्कार करें। सूर्य, द्यौ और पृथ्वी और दिन और रात्रि के उत्पादक परमेश्वर की भी प्रातः उपासना करें। (भगम) सबके सेवन करने योग्य, (पूषणम्) सबके पोषक, (ब्रह्मणस्पतिम्) वेद और ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर और ब्रह्म, अन्न, बल, यश और

ज्ञान के पालक विद्वान् तेजस्वी पुरुष की (प्रातः) प्रातःकाल, सब कार्यों से प्रथम, (सोमम्) सबके अन्तर्यामी प्रेरक, (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलाने हारे, सर्वरोगनाशक, सर्वज्ञानोपदेशक परमेश्वर की उपासना करें और इसी प्रकार विद्वान्, रोगहारी वैद्य और ज्ञानी विद्वानों का संग भी प्रातः सर्व कार्यों के प्रथम करें। प्रातःकाल ही (सोम) सोम आदि औषधियों का सेवन और (रुद्र) जीव आत्मा का चिन्तन भी प्रातः-काल ही किया करें। महर्षि दयानन्द।

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ ३५ ॥

वसिष्ठः। भगः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—(यः) जो परमेश्वर (अदितेः) अखण्ड शक्ति और अखण्ड ब्रह्माण्ड का (विधर्त्ता) विविध प्रकार से लोकों को धारण करने हारा है उस (जितम्) सबके विजेता और सबके उत्कृष्ट (भगम्) सबके भजन करने योग्य और ऐश्वर्यशील, (उग्रम्) दुष्टों के प्रति सदा दण्ड देने वाले उग्र, अतिभयंकर परमेश्वर को (वयम्) हम (प्रातः) प्रातःकाल ही (हुवेम) स्मरण करें। (यम्) जिस (भगम्) भजन करने योग्य परमेश्वर की (आध्रः) अधीर, अतृप्त, भोगेच्छु या दरिद्र पुरुष (चित्) और (तुरः चित्) अति शीघ्रकारी, शत्रुओं का नाशक, बलवान् पुरुष और (राजाचित्) ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से प्रकाशमान् राजा भी (मन्यमानः) आदर सत्कार एवं प्रेम से मनन करता हुआ (भक्षि) मुझे ऐश्वर्य का प्रदान कर (इति) इसी प्रकार (आह) प्रार्थना किया करता है। (२) राजा के पक्ष में—हम उस ऐश्वर्यवान् राजा को सबसे प्रथम प्रातः बुलावें (यः अदितेः विधर्त्ता) जो पृथ्वी का विविध उपायों से पोषण करता है (यं मन्यमानः) जिसका आदर पोषण करता हुआ (आध्रः) दरिद्र और (तुरःचित् राजाचित्) शत्रुहिंसक

बलवान् पुरुष और राजा भी (इति आह) ऐसा ही कहता है कि तू (भगं भक्षि) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य का विभाग कर, धन सम्पदा बांट। 'आध्रः' दरिद्रः इति सायणः। अपुत्रस्य पुत्रः [अथवा अतृप्तस्य पुत्रः इति वा स्यात्, न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र] ? इति दया०। ध्रै तृप्तौ। न तृप्यति स अध्रः। दीर्घश्छान्दसः। यद्वा आ समन्तात् ध्रः। अध्र एव वा आध्रः। स्वार्थे तद्धितः। इति महीधरः।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३६॥

वसिष्ठः भगवान्। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (प्रणेतः) उत्कृष्ट मार्ग में ले जाने वाले ! उत्तम न्याय के करने हारे ! हे (सत्यराधः) सज्जनों के योग्य धनैश्वर्यों के स्वामिन् ! सत्य के पालक, सत्यधन ! तू (नः) हमें (ददत्) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ (धियम् उद् अव) हमारे कर्म और वृद्धि को उन्नत कर। अथवा (नः धियं ददत् उद् अव) हमें सद्बुद्धि और सत्कर्म की शिक्षा प्रदान करता हुआ उन्नत कर। हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें (गोभिः) वेदवाणियों, गौवों और (अश्वैः) विद्वानों और अश्वों से (प्र जनय) उन्नत कर। हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! हम (नृभिः) उत्तम कुलनायक और नेता पुरुषों से (नृवन्तः) उत्तम नेता पुत्र, भृत्य और सहायकों से युक्त (प्र स्याम) भली प्रकार हों।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व ऽ उत मध्ये ऽ अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाᳯसुमतौ स्याम ॥ ३७ ॥

वसिष्ठः। भगः। पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (उत) और हम भी (इदानीम्) अब (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् हों। (उत) और (अह्नाम्) दिनों के (प्रपित्वे) प्रारम्भ और (मध्ये) बीच में भी और (सूर्यस्य उदिता) प्रेरक

सूर्य के उदय काल में और सूर्य के समान तेजस्वी राजा के अभ्युदय के समय में (वयम्) हम सब (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों की (सुमतौ) शुभ, सुखजनक सम्मति में (स्याम) रहा करें। अभ्युदय काल में ईर्षावश हम लोग दुर्बुद्धि से नष्ट न हो जांय।

भग॑ एव भग॑वाँ२ऽ अस्तु देवास्तेन॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम।
तं त्वा॑ भग॒ सर्व॒ ऽ इज्जो॑हवीति॒ स नो॑ भग पुर॒ ऽ ए॒ता भ॑वे॒ह ॥३८॥

वसिष्ठः। भगवान्। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) देवगण, विजयशील एवं विद्वान् पुरुषो ! (भगः) सबके भजन करने योग्य परमेश्वर और ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (भगवान् अस्तु) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी हो। (तेन) उसके द्वारा (वयम) हम भी (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् हों। हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! (सर्व इत्) समस्त जन भी (तं त्वा) उस तुझे ही (जोहवीति) बार बार तेरा ही स्मरण करता, तुझे ही पुकारता है। हे (भग) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! राजन् ! (इह) इस लोक में (सः) वह तू (नः) हमारे (पुरः एता) आगे चलने हारा, नायक (भव) हो।

सम॑ध्व॒राये॒षसो॑ नमन्त दधि॒क्रावे॑व॒ शुच॑ये प॒दाय॑।
अ॒र्वा॒ची॒नं व॑सु॒विदं॒ भग॑ नो॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ ऽआ व॑हन्तु ॥३९॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (अध्वराय) हिंसारहित, परम पवित्र यज्ञ के लिये (सं नमन्त) अच्छी प्रकार आती हैं, प्रकट होती हैं। उसी प्रकार (अध्वरस्य) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य प्रजापालन रूप राज्य कार्य के लिये (उपसः) शत्रुदाहक तेजस्वी पुरुष (सं नमन्त) अच्छी प्रकार एकत्र होते हैं और (दधिक्रावा) पीठ पर पुरुष को धारण करके चलने में समर्थ अश्व जिस प्रकार (पदाय) प्राप्त करने योग्य दूर देश को प्राप्त होता है उसी प्रकार (दधिक्रावा) राष्ट्रकार्य को अपने ऊपर धारण करके उसके चलाने और पराक्रम करने में समर्थ राजा (शुचये) अत्यन्त शुद्ध, तेजस्वी, ईर्षा, द्वेष, लोभ, काम, राग आदि से रहित, ईमानदार,

धर्मयुक्त (पदाय) पद प्राप्त करने के लिये (सं नमतु) प्राप्त हो। इसी प्रकार (दधिक्रावा) ध्यान बल से भ्रमण करने वाला योगी शुचि पद, परम पावन परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये यत्न करता है और (वाजिनः अश्वाः) वेगवान् अश्व (रथम् इव) जिस प्रकार रथ को धारण करते हैं उसी प्रकार (अश्वाः) विद्या अधिकार में व्यापक सामर्थ्य वाले (वाजिनः) अन्न आदि ऐश्वर्य और ज्ञानों वाले विद्वान् पुरुष (रथम्) रथयुक्त, एवं सुख देने वाले (अर्वाचीनम्) साक्षात्, (वसुविदम्) ऐश्वर्य को देने और करने वाले (भगम्) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का (आ वहन्तु) उपदेश करें और ऐश्वर्यवान् राजा व राज्य को धारण करें।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न ऽ उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥४०॥

ऋ० ७।४१।७॥

वसिष्ठः। उषाः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जिस प्रकार (उषासः) प्रभातवेलाएं (अश्वावतीः) वेगवान् वायु और व्यापनशील प्रकाश से युक्त होने से 'अश्वावती' और (गोमतीः) किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और (वीरवतीः) विविध पदार्थों को कंपाने वाले वायु या सूर्यरूप पुत्र से युक्त 'वीरवती' और (भद्राः) सुखदायी होने से 'भद्रा' हैं, वे (घृतं दुहानाः) ओसरूप जल को प्रदान करती हैं। उसी प्रकार (उषासः) शत्रुओं का दहन या नाश करने में समर्थ सेनाएं (अश्वावतीः) अश्वारोहियों से युक्त (गोमतीः) बैल आदि नाना पशुओं से युक्त (वीरवतीः) वीर पुरुषों वाली (भद्राः) उत्तम, सुखकारी होकर (सदम्) हमारे गृह, राजसभा या आश्रयस्थान, राष्ट्र और राष्ट्रपति को (उच्छन्तु) प्राप्त हों, उसके यश और प्रताप को विकसित करें। वे (घृतं दुहानाः) तेज को पूर्ण करती हुईं (विश्वतः प्रपीताः) सब प्रकार से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा हृष्ट-पुष्ट, सुरक्षित होकर रहें। हे अग्रणी, वीर पुरुषो! (यूयम्) तुम लोग (नः) हमारी (सदा) सदा काल

(स्वस्तिभिः = सु अस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (पात) रक्षा करो। स्त्रियों के पक्ष में—(अश्वावतीः) विद्या और बल में व्याप्त एवं अश्व के समान हृष्ट पुष्ट, उत्तम पतियों से युक्त, (गोमतीः) पूर्ण इन्द्रियों, वेदवाणियों और गौ आदि पशुओं से समृद्ध, (वीरवतीः) पुत्रों से युक्त, (भद्राः) सुखदायिनी होकर (नः सदम् उच्छन्तु) हमारे गृह की शोभा को बढ़ावें। वे (घृतं दुहानाः) गौओं के समान प्रेम रस को भरपूर करती हुईं (विश्वतः प्रपीताः) सब प्रकार उत्तम हृष्ट-पुष्ट, सुरक्षित या बालकों द्वारा स्तन्य पान की जाने वाली हों। हे विद्वान् पुरुषो ! तुम उत्तम श्रेयस्कर साधनों से हमें पालन करो।

पूषन्तव॑ व्र॒ते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न।
स्तो॒तार॑स्त ऽ इ॒ह स्म॑सि ॥ ४१ ॥ ऋ० ६ । ५४ । ६ ॥

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः सुहोत्रो वा । पूषा । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (पूषन्) सबके पोषक परमेश्वर और राजन् ! हम (तव) तेरे बनाये (व्रतम्) आचरण करने योग्य कर्म, नियम एवं सदाचार में रह कर (कदा चन) कभी भी (न रिष्येम) पीड़ित न हों, कष्ट न पावें। (स्तोतारः) तेरे गुण गान करने हारे हम विद्वान् लोग (ते) तेरे ही होकर (इह) इस जगत् में (स्मसि) रहें।

प॒थस्प॑थः॒ परि॑पतिं वच॒स्या का॑मेन कृ॒तो ऽ अ॒भ्या॑नड॒र्कम्।
स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑धियꣳ सीषधाति॒ प्र पू॒षा ॥४२॥
ऋ० ६ । ४६ । ८ ॥

ऋजिश्वा । पूषा । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो (पूषा) सब प्रजाओं का पोषण पालन करने वाला राजा (वचस्या) वेदोक्त वचन और (कामेन) शुभ और प्रबल अभिलाषा से (कृतः) निष्पन्न, दृढ़, होकर (पथः पथः परिपतिम्) प्रत्येक धर्म मर्यादा और उत्तम मार्ग के सब प्रकार से पालक, (स्वामी) (अर्कम्) स्तुति करने योग्य सूर्य के तेजस्वी पद को (अभिनाड्) साक्षात् सबके सन्मुख

प्राप्त है (सः) वह (नः) हमें (चन्द्राग्राः) सुवर्णादि से सुभूषित समृद्ध (शुरुधः) शोक पीड़ादि के रोकने वाली सम्पदाएं (रासत्) प्रदान करे और वह ही (धियं धियम्) प्रत्येक काम को (प्र सीषधाति) उत्तम रीति से चलावे।

अथवा—मैं (कामेन कृतः) प्रबल अभिलाषा से युक्त हो (वचस्या) उत्तम वेद वचनों से (पथः पथः परिपतिं) प्रत्येक सन्मार्ग-मर्यादा के पालक (अर्कम् अभ्यानड्) पूजनीय परश्मेर को साक्षात् प्राप्त होऊं। वह (चन्द्राग्राः) आह्लाद से भरी हुई (शुरुधः) शोकनाशनी उत्तम वाणियों को (रासत्) हमें प्रदान करें। वह सर्वपोषक (धियं धियं प्र सीषधाति) हमारी बुद्धि और कर्म को अच्छे मार्ग पर चलावे।

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा ऽ अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ ४३ ॥ ऋ० १ । २२ । १८ ॥

(४३, ४४) मेधातिथिः । विष्णुः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(विष्णुः) व्यापक (गोपाः) गतिमान् लोकों का पालक, सबका रक्षक, (अदाभ्यः) कभी नष्ट और खण्डित न होने वाला, नित्य परमेश्वर (त्रीणि पदा) तीन जानने या प्राप्त होने योग्य, तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीन प्रकार के पदार्थों और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप व्यवहारों को (विचक्रमे) विविध प्रकार से बनाता है और (अतः) उसी से (धर्माणि) समस्त संसार के धारक नियमों को (धारयन्) धारण करता है। 'त्रीणि पदा' कारण-स्थूल-सूक्ष्मरूपाणि इति दया० यजुर्भाष्ये। भूम्यन्तरिक्षसूर्यरूपेण त्रिविधं जगद् इति तत्रैव भावार्थे स एव। अग्नि-वाय्वादित्याख्यानि इति उवटमहीधरौ। सबके रक्षक नित्य परमेश्वर ने ज्ञान करने योग्य वेद तीन ऋग्, यजुः, साम बनाये। उससे ही वह समस्त धर्म मर्यादाओं को धारण करता है, इसी प्रकार राजा वेदत्रयी से समस्त मर्यादाओं और धर्मों को धारण करे। तीनों लोक जाग्रत, स्वप्न,

सुषुप्ति एवं सर्ग, स्थिति, प्रलय ये तीन पद हैं, उनसे ही समस्त स्थावर जंगम प्राणियों और लोकों को प्रभु धारण करता है।

तद्विप्रा॑सो विप॒न्यवो॑ जागृ॒वांसः॒ समि॑न्धते।
विष्णो॒र्यत्प॑र॒मं प॒दम् ॥ ४४ ॥ ऋ० १ । २२ । २१ ॥

मेधातिथिः । विष्णुः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान्, मेधावी (विपन्यवः) विविध प्रकार से ईश्वर की स्तुति करने हारे (जागृवांसः) सदा जागृत अप्रमादी रह कर, (विष्णोः) व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर का (यत् परमं पदम्) जो सर्वोत्कृष्ट स्वरूप, परम पद, मोक्ष है। (यत्) उसको ही (सम् इन्धते) भली प्रकार प्रकाशित करते, उसी की साधना करते हैं। राजा के पक्ष में—सावधान विद्वान् पुरुष, महान् शक्तिशाली राजा के ही सर्वोत्कृष्ट पद को प्रकाशित करें, उसको उत्तम विचारों से उत्कृष्ट बनावें।

घृ॒तव॑ती॒ भुव॑नानामभि॒श्रियो॒र्वी पृ॒थ्वी म॑धु॒दुघे॑ सु॒पेश॑सा।
द्यावा॑पृथि॒वी वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा॒ विष्क॑भिते ऽ अ॒जरे॒ भूरि॑रेतसा ॥४५॥
ऋ० ६ । ७० । १ ॥

भारद्वाजः । द्यावापृथिव्यौ । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथ्वी दोनों जैसे (घृतवती) जल और प्रकाश से युक्त, (भुवनानाम्) लोक-लोकान्तरों को (अभिश्रिया) सब प्रकार से शोभा और आश्रय देने वाले, (मधुदुघे) जल एवं मधुर पदार्थों के सेवन करने वाले, (सुतेजसा) उत्तम रूप वाले तेज और सुवर्णादि से युक्त, (अजरे) कभी जीर्ण या विनष्ट न होने वाले और (भूरि-रेतसा) बहुत अधिक उत्पादक सामर्थ्य और जल से युक्त होकर भी (वरुणस्य) सूर्य, वायु और सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के (धर्मणा) धारणसामर्थ्य से (विष्कभिते) विशेष रूप से थमे हैं, वे अपनी नियममर्यादा को नहीं छोड़ते, उसी प्रकार राजवर्ग, प्रजावर्ग दोनों (घृतवती) पराक्रम और तेज से युक्त और घृत आदि पुष्टिकारक अन्न से युक्त हों। वे (भुवनानाम्

अभिश्रिया) समस्त प्राणियों और लोकों के आश्रय देने वाले, समृद्ध हों। दोनों (उर्वी) विशाल (पृथ्वी) विस्तृत सामर्थ्य वाले, (मधुदुघे) शत्रुपीड़क बल और मधुर अन्न से भरे पूरे, एक दूसरे को पूरने वाले, (सुपेशसा) उत्तम रूपवान् सुवर्णादि से मण्डित हों, (वरुणस्य धर्मणा) स्वयं वरण किये गये श्रेष्ठ राजा के बनाये धर्म, नियम, राज्यव्यवस्था द्वारा (विष्कभिते) मर्यादा में स्थित हों, (अजरे) कभी नष्ट न हों और (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान् बलवान् हों। इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी स्नेहयुक्त, लक्ष्मीसंपन्न, मधुर स्वभाव वाले, सुवर्णादि आभूषणों से युक्त, सुरूप, सुन्दर, बुढ़ापे से रहित, अति बल वीर्य से युक्त, ब्रह्मचारी होकर (वरुणस्य) परस्पर वरण करके स्वयंवर धर्म से, अथवा सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के बनाये धर्म से नियमित होकर रहें।

ये नः सपत्ना ऽअप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्। वसवो रुद्रा ऽ आदित ऽ उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥ ४६ ॥ ऋ० १० । १२८ । ९ ॥

विहव्यः । वस्वादयो लिङ्गोक्ताः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (सपत्नाः) शत्रुगण हैं (ते) वे (अप भवन्तु) हमसे दूर रहें। (तान्) उनका हम लोग (इन्द्रियाग्निभ्याम्) सूर्य से जिस प्रकार मेघ और अन्धकार छिन्न भिन्न होते और अग्नि से जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है उसी प्रकार इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी राजा वा वायु के समान बलवान् और अग्नि के समान तेजस्वी नायक पुरुषों से या विद्युत् और वायु के अस्त्रों से (अव बाधामहे) विनष्ट करें। (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले जन (रुद्राः) शत्रु को रुलाने वाले वीर पुरुष और (आदित्याः) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण ये सब मिलकर (उपरिस्पृशम्) सबके ऊपर के पद पर पहुँचे हुए, (उग्रम्) अति बलवान् (मा) मुझको (चेत्तारम्) सबको सत्यासत्य बतलाने और चेताने वाला (अधिराजम्) अधिराज, (अक्रन्) बनावें। अथवा—(वसवः)

पृथिवी आदि आठ वसु, (रुद्राः) १० प्राण और एक आत्मा और १२ मास सब मुझे यथार्थ विज्ञ, राजा बनावें।

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नीरपांश्ठंसि मृक्षत॑ꣳ सेधतं द्वेषो भवत॑ꣳ सचाभुवा॥ ४७॥ ऋ० १। ३४। ११॥

हिरण्यस्तूपः। अश्विनौ। जगती। निषादः॥

भा०—(नासत्या) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों सत्याचरणयुक्त, (अश्विना) विद्या और अधिकार में व्यापक एवं एक दूसरे का उपभोक्ता होकर (त्रिभिः एकादशैः) तीन ग्यारह अर्थात् तेंतीस (देवैः) विद्वान् राजसभासदों या अध्यक्षों द्वारा (मधुपेयम्) ज्ञान, मधुर स्वभाव और बलपूर्वक रक्षा करने योग्य राष्ट्र को (आ यातम्) प्राप्त हों। (आयुः प्रतारिष्टम्) आयु, जीवन की वृद्धि करें, दीर्घ जीवन भोगें। (अपांसि) सब प्रकार के पापों को (निर मृक्षतम्) सर्वथा शुद्ध करें। (द्वेषः नि सेधतम्) आपस के द्वेष को दूर करें और (सचा भुवा भवतम्) सब कार्यों में एक साथ मिलकर पुरुषार्थशील होकर रहें। (२) इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी पृथिवी आदि पदार्थों सहित मधुर स्नेह से प्राप्त होने योग्य पालने योग्य, गृहस्थ के मधुर उपभोग प्राप्त करें। जीवन की वृद्धि करें, पापों को दूर करें, सदा साथ मिल कर रहें।

एष व स्तोमो मरुत ऽ इयङ्गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥ ४८॥
ऋ० १। १६५। १५॥

अगस्त्यः। मरुतः। पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! एवं प्रजापुरुषो! (मान्यस्य) मान करने योग्य एवं मनन करने हारे शत्रुओं का स्तम्भन करने वाले और (मांदार्यस्य) मुझे यह वीर सेनानायक काटेगा इस प्रकार का शत्रुगण में

भय उत्पन्न करने हारे, सबको हर्ष देने हारे (कारोः) क्रियाकुशल सेनापति का (वः) तुम्हारे ही हित के लिये (एषः स्तोमः) यह शस्त्रास्त्र समूह या नियम या अधिकार व्यवस्था या सैनिक संघ है और (इयं गीः) यह सबकी वाणी अर्थात् आज्ञा है। उसको आप लोग (वयाम्) दीर्घजीवन वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरों की रक्षा के लिये (इषा) इच्छापूर्वक (आ अयासिष्ट) प्राप्त होवो। हम लोग (इषम्) अन्न और सर्वप्रेरक (जीरदानुम्) दीर्घ जीवन देने वाले (वृजनम्) दुःखों के वारक बल को (विद्याम) प्राप्त करें।

सहस्तोमाः सहच्छन्दस ऽ आवृतः सहप्रमा ऽ ऋषयः सप्त दैव्याः। पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा ऽ अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥ ४९ ॥ ऋ० १०। १३०। ७॥

प्राजापत्यो यज्ञ.। ऋषयः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(रथ्यः) रथारोही पुरुष (न) जिस प्रकार (रश्मीन्) घोड़ों की रासों को थामते हैं और वे (सहस्तोमाः) अपने दल के सदा साथ रहते हैं, (सहच्छन्दसः) एक साथ एक चाल से चलते हैं, (सहप्रमाः) वे एक साथ प्रयाण करते हैं और (पूर्वेषाम् पन्थाम् अनुदृश्य रश्मीन् अनु आलेभिरे) अपने से पहले गये हुए योद्धा नेताओं के मार्ग को देखकर घोड़ों की रासों को चलाते हैं उसी प्रकार (धीराः) ध्यान-योगशील, धीर, पुरुष (दैव्याः) विजयशील देव, राजा या परमेश्वर के अनुयायी, भक्त, (सप्त) शरीर में सात प्राणों के समान, एवं सदा सर्पणशील, आगे बढ़ने वाले, (ऋषयः) तर्कशील, ज्ञानद्रष्टा विद्वान् ऋषिगण भी (पूर्वेषां पन्थाम्) अपने पूर्व के विद्वान् पुरुषों के मार्ग को (अनुदृश्य) भली प्रकार देख कर (सहस्तोमाः) एक साथ वेदस्तुतियों का प्रवचन करने वाले, (सहच्छन्दसः) एक साथ गुरु के अधीन वेदपाठ करने वाले, (सहप्रमाः) एक साथ समान रूप से यथार्थ ज्ञान करने हारे, (दैव्याः) गुण कर्म में कुशल

(आवृताः) गुरुकुलों से समावर्त्तन से स्नातक होकर (रश्मीन् अनुआलेभिरे) गृहस्थ और राजकार्य की रासों को ग्रहण करते हैं।

आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥ ५० ॥

दक्ष। हिरण्यं तेजः। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(इदम्) यह (आयुष्यम्) आयु के बढ़ाने वाला, (वर्चस्यम्) तेज ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन का हितकारी, (रायः पोषम्) धन समृद्धि को बढ़ाने वाला, (औद्भिदम्) दुःखों और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ, (वर्चस्वत्) उत्तम तेज और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त, (हिरण्यम्) सब प्रजा को हितकर और सबको सुख देने वाला, सुवर्ण के समान तेजस्वी शस्त्र बल (माम्) मुझ राष्ट्रपति को (जैत्राय) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये (आविशतात्) प्राप्त हो।

न तद्रक्षांꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत्।
यो बिभर्त्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥ अथर्व० १। ३५। २॥

दक्षः। हिरण्यं तेजः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—(तत्) उस पूर्वोक्त तेज को (न रक्षांसि) न सत्कार्यों में विघ्न करने दूसरे को पीड़ा देने वाले दुष्ट पुरुष और (न पिशाचाः) न प्राणियों के मांस रुधिरादि खाने वाले अत्याचारी लोग (तरन्ति) लांघते हैं। (हि) क्योंकि (एतत्) वह (प्रथमजम्) सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ सर्वश्रेष्ठ, (देवानाम् ओजः) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों का परम बल, पराक्रम है। (यः) जो (दाक्षायणः) दक्ष, व्यवहारकुशल, बलवान् पुरुष से सञ्चालन योग्य, (हिरण्यम्) प्रजाओं के हितकर और सुखकारी बल, (बिभर्त्ति) धारण करता है (सः) वह (देवेषु) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों के बीच (दीर्घम् आयुः कृणुते) दीर्घ जीवन उत्पन्न करता है और

(सः) वह ही (मनुष्येषु दीर्घम् आयुः कृणुते) मनुष्यों के भी जीवन को चिरस्थायी कर देता है। जो राजा अपने सेनाबल को पुष्ट करता है उसके बल का पार दुष्ट, राक्षस और पिशाच भी नहीं पाते। वह अपने वीर पुरुषों और प्रजाजनों के जीवनों की रक्षा करता है। (२) ब्रह्मचर्य पक्ष में—(देवानां हि एतत् प्रथमजं ओजः) विद्वान् पुरुषों की आयु के प्रथम भाग में उत्पन्न ब्रह्मचर्यरूप वीर्य है जिसको राक्षस और पिशाच नहीं पार कर सकते। दक्ष, अर्थात् बुद्धिमान् पुरुषों से प्राप्त होने योग्य उसको जो धारण करता है वह विद्वानों और मनुष्यों में अपने जीवन को बहुत दीर्घ बना लेता है।

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म ऽ आ बध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥५२॥

अथर्व० १। ५५। १॥

दक्षः। हिरण्यं तेजः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(दाक्षायणाः) दक्ष अर्थात् वीर्य, बल और प्रज्ञा के आश्रय और दक्ष, सेनाबल के 'अयन', मुख्य अधिकारों पर स्थित वीर पुरुष (यद्) जिस बल को (सुमनस्यमानाः) उत्तम चित्त होकर (शतानीकाय) सैकड़ों सैनिकों के स्वामी सेनापति के लिये (आबध्नन्) बांधते हैं, उसको नियम व्यवस्था पर नियुक्त करते हैं। (तत्) उसी सैन्यबल को मैं (मे) अपने राष्ट्र के लिये (शतशारदाय) सौ बरस के दीर्घजीवन तक के काल के लिये (आबध्नामि) बांधता हूँ, और (यथा) जिससे मैं (आयुष्मान्) दीर्घ आयु से युक्त होकर (जरदष्टिः) जरावस्था का भोग करने वाला पूर्णायु (आसम्) होऊं। (२) ब्रह्मचर्य के पक्ष में—बलों और विज्ञानों के निधान विद्वान् पुरुष जिस विज्ञान और व्रतपालन रूप 'हिरण्य' वीर्य को शुभ चित्त हो बलवान् एवं सौ वर्षों तक जीवन प्राप्त करने, एवं सैकड़ों विद्याओं को मुख से कहने में समर्थ होने के लिये नियम से पालन करते हैं उसी का मैं भी सौ वर्ष तक पूर्णायु प्राप्त करने के लिये नियमपूर्वक पालन करूं।

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज ऽ एकपात्पृथिवी समुद्रः । विश्वे देवा ऽ ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता ऽ अवन्तु ५३

ऋ० ६ । ५० । १४ ॥

ऋजिश्वा । लिंगोक्ताः । भुरिक् पङ्क्तिः । पंचमः ॥

भा०—राजपक्ष में—(बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाला (अहिः) मेघ के समान सबके ऊपर शासक पद पर रह कर कभी न क्षीण होने वाला, सदा ऐश्वर्यों का वर्धक, (एकपात्) एकमात्र मोक्षरूप पाद चरण या स्वरूप से युक्त, (अजः) कभी उत्पन्न न होने वाले परमेश्वर के समान स्वयं (एकपात्) एक अद्वितीय होकर राष्ट्र के पालन करने वाला (अजः) सब राष्ट्र का मुख्य सञ्चालक, शत्रुओं का स्वयं उच्छेत्ता, (पृथिवी) पृथिवी के समान सर्वाश्रय और (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीर अनेक रत्नों का आश्रय, (नः शृणोतु) हमारे कष्टों और प्रार्थनाओं को श्रवण करे । (विश्वे) समस्त (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (हुवानाः) एक दूसरे से स्पर्धापूर्वक बढ़ने हारे (देवाः) देवगण और (कविशस्ताः) विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुषों से कहे गये, (स्तुताः) स्तुतियुक्त एवं उत्तम (मन्त्राः) मनन करने योग्य विचार एवं वेदमन्त्र सभी (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें । (२) परमेश्वर सर्वाश्रय होने से 'बुध्न्य' है । कभी नाश न होने से 'अहि' है । उत्पन्न न होने से 'अज' है । एकमात्र ज्ञानमय मोक्षस्वरूप होने से 'एकपात्' है । सर्वाश्रय और सब जगत् का विस्तार करने वाला होने से 'पृथिवी' है, समस्त लोकों का उद्भव होने से 'समुद्र' है । वह हमारी प्रार्थना श्रवण करे ।

इमा गिर ऽ आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि । शृणोतु मित्रो ऽ अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो ऽअंशः ॥ ५४ ॥

ऋ० २ । २७ । १ ॥

कूर्मो गार्त्समदः । आदित्या राजानः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं विद्वान् पुरुष (राजभ्यः) प्रजाओं से अधिक तेज वाले राजा रूप (आदित्येभ्यः) सूर्य के समान तेजस्वी और अदिति, पृथ्वी के रक्षण, पालन, विभाजन आदि में कुशल शासक पुरुषों को (इमाः गिरः) इन वेदवाणियों का (सनात्) सदा से (जिह्वा) वाणी द्वारा (जुहोमि) उपदेश करूं और (मित्रः) सबका स्नेही, सबको मरण से बचाने वाला, (अर्यमा) शत्रुओं को नियम में बांधने वाला, न्यायकारी, (भगः) ऐश्वर्यवान् (तुविजातः वरुणः) बहुत से प्रजाजनों या सैनिक गणों में यशस्वी बलवान् और दुष्टों और पापों के वारण में समर्थ पुरुष (दक्षः) दक्ष, चतुर, बुद्धिमान् (अंशः) सबके योग्य अंशों का विभाजन करने वाला इस प्रत्येक अधिकारी (शृणोतु) ज्ञान-वाणियों का श्रवण करे। (२) अथवा—(राजभ्यःआदित्येभ्यः इमा सनात् गिरः जुह्वा आजुहोमि) प्रदीप्त तेजस्वी आचार्यों से मैं नित्य वेदवाणियों को ग्रहण करूं। उनको मित्र आदि जन श्रवण करें।

सप्त ऽ ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो ऽ अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

कण्वः। शरीर-सत्रसदो अध्यात्मप्राणाः। भुरिग् जगती। निषादः ॥

भा०—(सप्त) सात (ऋषयः) विषयों को दिखाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि (शरीरे) शरीर में (प्रतिहिताः) प्रति विषय ज्ञान के लिये स्थापित हैं और वे (सप्त) सातों (अप्रमादम्) विना प्रमाद के इस (सदम्) विना प्रमाद के इस (सदम्) आश्रय शरीर की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं और वे (सप्त) सातों (आपः) सूक्ष्म व्यापनशील प्राण (स्वपतः) शयन करने वाले पुरुष के (लोकम्) द्रष्टा आत्मा को (ईयुः) प्राप्त हो उसी के भीतर लीन हो जाते हैं, उस समय भी (अस्वप्नजौ) आत्मा में अप्यय अर्थात् लीन न होने वाले, निद्रारहित दो (सत्रसदौ) (सदा साथ रहने वाले (देवौ) देव, दिव्य गुणयुक्त 'प्राण' और 'अपान'

गति करते हैं। उसी प्रकार (शरीरे) इस राष्ट्ररूप शरीर में (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः) सात द्रष्टा विद्वान् पुरुष भिन्न-भिन्न पदों पर स्थापित किये जायं, वे सातों आप्त पुरुष शयन करते हुए, असावधान दशा में प्रजाजन के रहते हुए भी (लोकम् ईयुः) समस्त पदार्थों के दर्शन करने वाले मुख्य पुरुष को प्राप्त रहते हैं और उस समय भी (सत्रसदौ) सज्जनों के कार्य में अधिष्ठित (अस्वप्नजौ) कभी भी सोने या प्रमाद न करने वाले (देवौ) दो विद्वान् पुरुष नियुक्त हों।

सप्त ऋषयः—त्वक्-चक्षुःश्रवण-रसन-घ्राण-मनो-बुद्धिलक्षणाः इति महीधरः। षडिन्द्रियाणि मनःसप्तमानि इत्युवटः।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ ५६॥

ऋ० १। १०। १॥

[५६—५७] कण्वो घौरः। [५६—५८] ब्रह्मणस्पतिः।
निचृद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) महान् ऐश्वर्य और बड़े राष्ट्र के पालक! राजन्! विद्वन्! तू (उत्-तिष्ठ) उठ, उदय को प्राप्त हो। (देवयन्तः) तुझे देव उत्तम राजा बनाने की इच्छा करते हुए (त्वा ईमहे) तुझे प्रार्थना करते हैं। (मरुतः) मनुष्य, प्रजागण व शिष्य (सुदानवः) उत्तम दानशील होकर (उप प्रयन्तु) तेरे समीप आवें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सचा) संघशक्ति से (प्राशूः भव) शत्रु पर शीघ्र यान करने हारा और राष्ट्र का उत्तम भोक्ता व उपदेष्टा हो।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥ ५७॥

ऋ० १। ४०। ५॥

कण्वः। ब्रह्मणस्पतिः। विराड् बृहती। मध्यमः॥

भा०—राजमन्त्री के पक्ष में—(ब्रह्मणस्पतिः) वेद विद्या का पालक विद्वान् पुरुष (नूनम्) निश्चय से (उक्थ्यम्) प्रवचन करने योग्य श्रेष्ठ (मन्त्रम्) मन्त्र, मनन योग्य विचार का (प्र वदति) उपदेश करता है। (यस्मिन्) जिसमें (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वरुणः) दुखों और पापों का निवारक शासक ये (देवाः) सब विद्वान् गण (ओकांसि) अपने आश्रय-स्थान (चक्रिरे) बनाते हैं। (२) परमेश्वर के पक्ष में—(यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे) जिस परमेश्वर में विद्युत्, चन्द्र, प्राण, वायु और अन्य पृथिवी आदि लोक और समस्त विद्वान् अपना आश्रय किये हुए हैं वह ब्रह्मणस्पति महान् जगत् और वेद का पालक परमेश्वर ही (उक्थ्यम्) उपदेश और श्रवण करने योग्य (मन्त्रम्) वेदमन्त्रों का भी (प्रवदति) उपदेश करता है। सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् । योग० ॥

ब्रह्म॑णस्पते॒ त्वम॒स्य य॒न्ता सू॒क्तस्य॑ बोधि॒ तन॑यं च जिन्व ।
विश्वं॒ तद्भ॒द्रं यदव॑न्ति दे॒वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥

ऋ० २ । २३ । १९ ॥

गृत्समदः । बृहस्पतिः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) महान् राष्ट्र के पालक ! विद्वन् ! आचार्य ! (यन्ता त्वम्) सब राष्ट्र को नियम में रखने हारा तु (अस्य सूक्तस्य) इस उत्तम उपदेश योग्य प्रवचन का (बोधि) स्वयं ज्ञान कर, औरों को उपदेश कर। हमारे (तनयं च) पुत्र आदि को (जिन्व) विद्या आदि में पुष्ट कर। (यत्) जब (देवाः) देव, विद्वान् पुरुष (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) तब (विश्वम्) समस्त कार्य (भद्रम्) सबको कल्याणकारी होता है। हम (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (विदथे) संग्राम में और ज्ञानसभा और यज्ञ में (बृहत् वदेम) बड़ा यश व ज्ञान का उपदेश करें। परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर समस्त जगत् का नियन्ता है। वह वेदमय सूक्त का ज्ञान कराने वाला है। हमारे पुत्रादि का पोषणकर्त्ता,

समस्त कल्याणमय पदार्थ और आचरण को विद्वान् लोग पालन करें। हम यज्ञ में महान् वेद ज्ञान का प्रवचन, उच्चारण करें अथवा यज्ञ में हम उस महान् परमेश्वर की स्तुति करें। जैसे:—

य इमा विश्वा० । विश्वकर्म्मा० । यो नः पिता० ।
अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि० ॥ ५८ ॥

भा०—'य इमा विश्व०' अ० १७।१७॥ 'विश्वकर्मा०' अ० १७।२६॥ 'यो नः पिता०' अ० १७।२७॥ 'अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि०' अ० ११।८३॥ इन चारों मन्त्रों की व्याख्या उन-उन स्थानों पर देखो।

॥ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ऋ० ३५, आदित्या देवाः वा ऋषयः। पितरो देवताः ॥

॥ ओ३म् ॥[1] अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः अस्य लोकः सुतावतः । [2]द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥ १ ॥

पितरः । १ पिपीलिकामध्या गायत्री । षड्जः ॥ २ प्रजापत्याबृहती । मध्यमः ॥

भा०—(असुम्नाः) दूसरों को सुख न देने वाले, दुःखदायक, (देवपीयवः) विद्वानों, उत्तम पुरुषों और उत्तम गुणों के नाशक (पणयः) दूसरों के द्रव्य से व्यवहार करने वाले, धूर्त्त पुरुष (इतः) इस राष्ट्र से (अप यन्तु) दूर चले जांय। यह (लोकः) लोक, प्रजाजन (सुतावतः) अभिषेक को प्राप्त वा पुत्रादि प्रजा के स्वामी (अस्य) इस राजा के अधीन

१—अथ पितृमेधसम्बन्धिनो मन्त्राः ॥

है। वह ही (यमः) सब राष्ट्र का नियन्ता होकर (द्युभिः) प्रकाश से युक्त, (अहोभिः अक्तुभिः) दिन और रातों से (व्यक्तम्) प्रकाशित (अवसानम्) स्थान (अस्मै) इस बसने वाले लोक समूह को (ददातु) प्रदान करे। परमेश्वर के पक्ष में—दुष्ट पुरुष दूर हों। उत्तम कर्म करने वाले का यह लोक है। सर्वनियन्ता परमेश्वर इस जीव को दिन रात सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि से प्रकाशित लोक प्रदान करता है।

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँ लोकमिच्छतु।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः॥ २॥

सविता देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—राजा के पक्ष में—हे पुरुष! (सविता) सबका प्रेरक राजा (ते शरीरेभ्यः) तेरे सम्बन्धी जनों के शरीरों के भरण-पोषण के लिये (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (लोकम्) पर्याप्त स्थान जितने की उत्तम रीति से देख भाल कर सके (इच्छतु) देवे। (तस्मै) इस राजा के लिये (उस्रियाः) बैल (युजन्ताम्) जोड़े जायं। (२) परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर जीव के शरीरों के लिये पृथिवी में स्थान दे। जीव के शरीर में, रथ में बैलों के समान ज्ञानग्राहक प्राण प्रदान करता है। अथवा, उसे देह से देहान्तर और लोक से लोकान्तर में जाने के लिये किरणों से युक्त करता है। किरणों द्वारा जीव लोक-लोकान्तर में गमन करते हैं।

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा।
वि मुच्यन्तामुस्रियाः॥ ३॥

सविता। उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—कृषिपक्ष में—हल वाह देने पर क्षेत्र को (वायुः) वायु (अग्नेः) आग की (भ्राजसा) ज्वाला से और (सविता) सूर्य (सूर्यस्य वर्चसा) अपने ही प्रकाश से (पुनातु) पवित्र करे। इसलिये (उस्रियाः) बैल (वि मुच्यन्ताम्) छोड़ दिये जायं। (२) जीव पक्ष में—जब जीव

शरीर त्याग कर जाता है तो उसे (वायुः) वायु, ज्ञानी पुरुष (अग्नेः आजसा) अग्नि या परमेश्वर की दीप्ति से और (सविता सूर्यस्य वर्चसा) सर्वोत्पादक सूर्य प्रभु अपने प्रकाश से पवित्र करे। देहान्तर प्राप्ति के समय वे पूर्वोक्त (उस्रियाः) सहयोगी कारण भी (वि मुच्यन्ताम्) उससे छूट जायं।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज ऽ इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ४॥

ऋ० १०। ९७। ५॥

वायुः सविता च। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे मनुष्यो! क्योंकि (वः) आप लोगों का (नि-सदनम्) नियम में रहना (अश्वत्थे) अश्वारूढ़ सावधान, क्षत्रिय राजा के अधीन है और (वः वसतिः) आप लोगों का निवासस्थान भी (पर्णे) पालन करने हारे राजा के अधीन (कृतः) किया गया है, अतः (यत्) जब (पुरुषम्) अपने गुरु या अध्यक्ष राजा को (सनवथ) उसका भाग दे चुको तो आप लोग (गोभाजः) पृथिवी की उपज और वेद वाणी का सेवन करने वाले (इत्) ही होकर (किल) निश्चय से (असथ) रहो। व्याख्या देखो अ० ११।७९॥ (२) परमेश्वर के पक्ष में—हे जीवो! तुम लोगों की स्थिति (अश्वत्थे) कल तक भी स्थिर न रहने वाले, अनित्य और (पर्णे) पत्ते के समान चञ्चल संसार में है। इसलिये (यत्) जब तुम (पुरुषम् सनवथ) परमेश्वर की उपासना करो तो (गोभाजः इत्किल असथ) वेदवाणी, इन्द्रिय, किरण आदि का सेवन करने वाले ज्ञानवान्, भोगवान् होवो।

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ ऽ आ वपतु।
तस्मै पृथिवि शं भव ॥ ५॥

वायुसवितारौ। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे जीव! (सविता) सबका प्रेरक राजा (ते शरीराणि) तेरे शरीरों को तेरे सम्बन्धी जनों को (मातुः) माता के समान पालक पोषक

पृथिवी के (उपस्थे) ऊपर (आवपतु) स्थापित करे। हे (पृथिवि) पृथिवी! (तस्मै) उस प्रजाजन को तू (शं भव) कल्याणकारिणी हो। (२) जीव के प्रजनन पक्ष में—हे जीव उत्पादक पिता तेरे शरीरों को (मातुः) जननी के (उपस्थे) प्रजननाङ्ग में (आवपतु) बीज रूप से वपन करे। हे (पृथिवि) पृथिवी के समान आश्रय देने वाली माता! उस गर्भगत जीव को तू (शं भव) शान्तिदायिनी हो। सविता, सूर्य पृथ्वी पर जीव जगत् के उत्पन्न होने का कारण है। वही जल के साथ जीवन भी संचारित करता है।

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

प्रजापतिः। उष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे (असौ) पुरुष प्रजाजन! (त्वा) तुझको मैं (प्रजापतौ) प्रजा के पालक राजा के अधीन (उप-उदके लोके) पानी के समीप स्थित प्रदेश में (निदधामि) नियत रूप से स्थापित करता हूँ। वह प्रजापालक राजा ही (नः) हमारे (अघम्) पापाचरण, परस्पर घात प्रतिघात आदि को (नः) हममें से (अप शोशुचत्) मल को अग्नि से जलाकर नष्ट कर देने के समान दूर कर शुद्ध करे। (२) हे जीव! जलादि जीवनोपयोगी लोक में मैं तुझे स्थापित करता हूँ। उस परमेश्वर के अधीन तू रह, वही हमारे पापों को दग्ध करे, दूर करे।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते ऽ अन्य ऽ इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाꣳरीरिषो मोत वीरान् ॥ ७ ॥

ऋ० १०। १८। १॥

यमपुत्रः संकसुकः। मृत्युः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (मृत्यो) दुष्टों के मारने वाले राजन्! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) देवों-विद्वानों के गमन करने योग्य मार्ग से (इतरः) कोई और भिन्न मार्ग है तू उस (परं पन्थाम् अनु) दूसरे मार्ग को लक्ष्य करके

(परा इहि) (चक्षुष्मते) आंखों वाले, बुद्धिमान् और (शृण्वते) कानों वाले, प्रजाहितैषी (ते) तुझे (ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ कि तू (नः) हमारी (प्रजाम्) प्रजा को (उत) और (वीरान्) वीर पुरुषों को (मा रीरिषः) मत मार, उनका नाश मत कर, नियन्ता राजा शिष्टजनों के सदाचार से अतिरिक्त सदाचार के मार्ग पर दृष्टि रक्खे। वह आंख से प्रजा का व्यवहार देखे, कानों से उभय पक्ष को सुने। व्यर्थ प्रजा और वीर पुरुषों को न सतावे। (२) मृत्यु के पक्ष में—हे मृत्यो ! तू (देवयानात्) अर्थात् विद्या के बल पर मोक्ष मार्ग के अतिरिक्त मार्ग से जो अर्थात् ज्ञानमार्गियों के लिये मृत्यु नहीं है। जन्म मरण का चक्र पितृयाण वालों और अविद्या-मार्गियों को है। चक्षुष्मान् और कर्णवान् पुरुष तुझे ज्ञान का उपदेश करता है जिससे बाल और युवा पुत्रों को मृत्यु न सतावे।

शं वातः श९ँ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥ ८ ॥

विश्वेदेवाः। अनुष्टुप्। गान्धारः।

भा०—हे पुरुष ! हे जीव ! हे प्रजाजन ! (वातः) वायु (ते शम्) तुझे सुखकारी और कल्याणकारी हो, (घृणिः ते शम्) सूर्य तुझे सुखकर हो (इष्टकाः) ईंटों से बने गृह आदि, तथा यज्ञ कर्म वा इष्ट अभिलषित पदार्थ और प्रिय सम्बन्धी जन (ते शं भवन्तु) तुझे शान्तिदायक हों। (पार्थिवासः अग्नयः) पृथिवी पर के प्रसिद्ध अग्नि, विद्युत् आदि सभी (ते शं भवन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें, वे (त्वा) तुझे (मा अभि शूशुचन्) न सतावें, दग्ध न करें।

कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्ष९ँ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥ ९ ॥

विश्वेदेवाः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे जीव ! प्रजाजन ! राजन् ! (दिशः) दिशाएं, दिशाओं के समस्त प्रजाजन (ते) तेरे लिये हितकारी (कल्पन्ताम्) हों। (आपः

तुभ्यम् शिवतमाः) आप्त जन और जल भी तेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी हों। (सिन्धवः तुभ्यं शिवतमाः भवन्तु) बहने वाले नद नदियां और राष्ट्र को सूत्र में बांधने वाले बलवान् पुरुष तेरे लिये कल्याणकारी हों। (अन्तरिक्षं तुभ्यं शिवम्) अन्तरिक्ष, आकाश तथा अन्तरिक्ष के समान मध्यस्थ जन तेरे लिये सुखकर हों। (सर्वाः दिशः ते कल्पन्ताम्) समस्त दिशाएं और उपदिशाएं अथवा उत्तम उपदेश देने हारे गुरुजन तुझे सुखकर हों।

अश्मन्वती रीयते सꣳ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये ऽ असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥१०॥

ऋ० १०। ५३। ८॥

सुचीकः। विश्वेदेवाः। निचृत्। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो! (अश्मन्वती) पत्थरों से भरी हुई नदी (रीयते) जा रही हो तो (सं रभध्वम्) उसको पार करने के लिये तैयारी करते (उत् तिष्ठत) उठ खड़े होवो और (प्रतरत) उसको अच्छी प्रकार पार करो (अत्र) उसमें ही (ये अशिवाः असन्) जो असुखकर, दुखदायी मल हों उनको हम (जहीमः) त्याग देते और (वयम्) हम (वाजान्) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को नदी से (उत् तरेम) उत्तम रीति से प्राप्त करें। उसी प्रकार (अश्मन्वती रीयते) शस्त्रों से युक्त यह सेना चल रही है। (संरभध्वम्) शत्रुविजय का उद्योग करो। (उत् तिष्ठत) उठो, (प्र तरत) आगे बढ़ो। (अत्र) इस संग्राम में (ये अशिवाः असन्) जो हमारे कल्याणकर शत्रु हैं उनको (जहीमः) त्याग दें और (वयम्) हम (वाजान् अभि) संग्रामों और ऐश्वर्यों को (उत् तरेम) उत्तम रीति से प्राप्त करें।

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव॥ ११॥

शुनःशेपः। आपः। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (अपामार्ग) दुष्टों को दूर करके राष्ट्र के कण्टकों को शोधन करने हारे राष्ट्रपते! (त्वम्) तू (अस्मत्) हमसे (अघम् अप सुव) पाप, परस्पर के घात प्रतिघात को दूर कर। (किल्विषम् अप सुव) व्यर्थ, विचारशून्यता से पर-अपकार करने के पाप कृत्य को दूर कर। (कृत्याम् अप सुव) शत्रु से प्रयुक्त गुप्त हत्या के घातक प्रयोग को दूर कर। (रपः अप) बलात्कार से स्त्री आदि पर किये व्यभिचार आदि पाप को भी दूर कर। (दुःस्वप्न्यम् अप सुव) दुःखसहित निद्रा होने के कारण को भी दूर कर। अघ, किल्विष, कृत्या, रपः, दुष्वप्न्य आदि यद्यपि सभी सामान्यतः पापवाचक हैं, वे भिन्न-भिन्न प्रकारों के अपराधों को दिखाते हैं। कृत्या 'दुष्वप्न्य' और अपामार्ग के प्रकरण अथर्ववेद भाष्य में स्पष्ट से किये हैं। अपामार्ग औषधि, जैसे स्वप्नदोष आदि रोगों को दूर करती है। उसी के सदृश से प्रजा के भीतर से पापों और हत्या आदि दुष्कर्मों को दूर करने वाला 'अधिकारी' भी 'अपामार्ग' है।

सुमित्रिया न ऽ आप ऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १२ ॥

आपः। निचृदनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६। २२ ॥ अ० २०। १९ ॥

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳ स्वस्तये।
स न ऽ इन्द्र ऽ इव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥ १३ ॥

अनड्वान् कृषीवलः। स्वराडनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—(अनड्वाहम्) शकट को खींचने के लिये जिस प्रकार लोग बड़े बैल को प्राप्त करते हैं और 'अनः' अर्थात् यज्ञ धारण करने वाले अग्नि को जिस प्रकार याज्ञिक लोग ग्रहण करते हैं उसी प्रकार (अनड्वाहम्) गाड़ी के समान राष्ट्र के शकट को उठाने में समर्थ (सौरभेयम्) सुरभि अर्थात् समस्त सुखदायी कामधेनु, उत्तम भूमि के परम हितकारी, मातृ-

भूमि के सच्चे पुत्र राजा को हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरभामहे) प्राप्त करें, स्थापित करें। (सः) वह (इन्द्रः इव) सूर्य और वायु के समान तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यवान् सेनापति और राजा होकर अथवा (देवेभ्यः इन्द्रः इव) इन्द्रियों के लिये आत्मा के समान (वह्निः) समस्त राज्याङ्गों और देवों को वहन करने में समर्थ और उनका नेता होकर (संतरणः भव) सबको भली प्रकार युद्ध आदि और राज्यकार्यों के पार लगाने वाला, नाव के समान आश्रय और कर्णधार के समान नायक हो।

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १०। २१ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो ऽ अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

संकसुकः। मनुष्यो मृत्युरीश्वरो वा। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(जीवेभ्यः) जीवों की रक्षा के लिये मैं राजा (इमम्) इस (परिधिम्) नगर के चारों ओर परकोट के समान रक्षा के साधन (दधामि) स्थापित करता हूँ। जिससे (अपरः) दूसरा शत्रु पुरुष (एषाम्) इन मेरे प्रजाजनों के (एतम्) इस (अर्थम्) धन को (मा नु गात्) प्राप्त न करे। वे प्रजाजन (पुरूचीः) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले होकर (शतं शरदः जीवन्तु) सौ-सौ वर्ष जीवें। (पर्वतेन) शत्रु को जिस प्रकार पर्वत आदि अलङ्घ्य पदार्थ से परे रक्खा जाता है उसी प्रकार (मृत्युम्) मृत्यु, उसके कारण रूप शत्रु और हिंसक जीवों को भी (पर्वतेन) पालन-पोषण सामर्थ्यों से युक्त राजा द्वारा तथा पर्व, अध्यायों और काण्डों से युक्त वेद के ज्ञानकाण्ड द्वारा और पर्व अर्थात् बाण आदि शस्त्रों से युक्त सेना द्वारा (अन्तःदधताम्) दूर करें।

अग्न ऽ आयूंषि पवसऽ आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १९ । ३८ ॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥१७॥

वैखानसः । अग्निः । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (हविषा) अन्न के समान ग्रहण योग्य षष्ठांश राज-कर से (वृधानः) बढ़ता हुआ (आयुष्मान्) दीर्घायु होकर (घृतप्रतीकः) तेज को सबके प्रति दर्शाने हारा अथवा जल के समान शान्तस्वभाव, अथवा तेजस्वी मुख वाला होकर और (घृतयोनिः) मेघस्थ जल में रहने वाले विद्युत् या समुद्रवासी अग्नि या घृत से तीव्र अग्नि के समान तेजस्वी पराक्रमी बनकर (एधि) राष्ट्र में रह । (गव्यं चारु मधु घृतं पीत्वा) गौ के उत्तम मधुर घृत को पान करके जिस प्रकार अग्नि तेज को धारण करता है उसी प्रकार (गव्यम्) अर्थात् पृथिवी के हितकारी, (चारु) उत्तम एक देश से देशान्तरों में जाने वाले, (मधु) मधुर एवं शत्रुओं के पीड़ा देने वाले, बलस्वरूप (घृतम्) तेजस्वी सैन्यबल रूप तेज को धारण करके, (पिता पुत्रम् इव) पुत्र की पिता के समान (इमान्) इन राष्ट्र के प्रजाजन की (स्वाहा) उत्तम प्रकार से (अभि रक्षतात्) रक्षा कर ।

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क ऽ इमाँ २॥ आ दधर्षति ॥ १८ ॥

ऋ० १० । १५५ ॥ ५ ॥

भारद्वाजः शिरिम्बिठः । इन्द्रः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(इमे) ये राजा के जन और प्रजावर्ग भी (गाम्) पृथ्वी को और वाणी को (परि अनेषत) प्राप्त करते हैं अथवा (गाम्) शकट के वहन करने वाले बैल के समान कार्य-भार को उठाने में समर्थ पुरुषपुंगव को (परि अनेषत) सब प्रकार से नेता रूप से स्वीकार करें । (अग्निम्)

अग्नि के समान तेजस्वी और अग्रणी नायक को ही (परि अह्वपत) सर्वत्र ले जावें और (देवेषु) विद्वान् ब्राह्मणों के अधीन (श्रवः अक्रत) वेदोपदेश का श्रवण करें। तब (इमान्) इन विद्वान्, निष्ठ पुरुषों को (कः) कौन (आदधर्षति) पराजित कर सकता है। (२) सब लोग ब्रह्मचर्य से गौ, वेद-वाणी का अभ्यास करें, फिर अग्नि-आधानपूर्वक गृहस्थ करें, फिर श्रवण योग्य ब्रह्म विद्या का विद्वानों से श्रवण करें। फिर मृत्यु भी उनको नहीं पछाड़ सकता।

क्रुव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ १९ ॥

अथर्व० १२ । २ ॥

दमनः । क्रव्यादग्निर्जातवेदाश्च । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं (क्रव्यादम्) कच्चा मांस खाने वाले, (अग्निम्) आग के समान संतापकारी दुष्ट जन को (दूरं प्र हिणोमि) दूर भगाऊं। (रिप्रवाहः) पापों के फैलाने वाला या धारने वाला पुरुष (यमराजम्) नियन्ता राजा को (गच्छतु) प्राप्त हो, वह राजा के दमनकारी बल के अधीन रहे और (इतरः) दूसरा पुण्यकर्मा (जातवेदाः) अग्नि के समान तेजस्वी बलवान् वेदज्ञ पुरुष है (अयम्) यह (इहैव) यहां, इस राष्ट्र में ही (प्रजानन्) उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त होकर (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ और अधिकार को भी (वहतु) प्राप्त करे।

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके।
मेदसः कुल्या ऽ उप तान्त्स्रवन्तु सत्या ऽ एषामाशिषः सं नमन्ता थं स्वाहा ॥ २० ॥

जातवेदाः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन्! हे ज्ञानवन् पुरुष! तू (पितृभ्यः)

पालन करने वाले पुरुषों के हित के लिये (वपाम्) बीज वपन करने योग्य भूमि को (वह) प्रदान कर, अथवा उनके हित इस भूमि को तू स्वयं धारण कर और (यत्र) जहां (पराके) दूर देश में भी तू (एना) इनको (निहितान्) नियुक्त हुआ या स्थित हुआ जाने, वहां भी उनकी रक्षा के लिये (वपां वह) शत्रुओं के खण्डन करने वाली सेना को पहुँचा। इसी प्रकार (मेदसः) जल की (कुल्याः) धाराएं, नहरें (तान् उप स्रवन्तु) उन तक पहुँचे। (एषाम्) उनकी (आशिवः) कामनाएं (स्वाहा) उत्तम क्रिया द्वारा (सत्याः) सत्य एवं सज्जनों के हितकारी होकर (सं नमन्ताम्) फलें फूलें, पूरी हों।

[1]स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। [2]अप नः शोशुचदघम् ॥ २१ ॥

ऋ० । १ । २२ । १५ ॥

मेधातिथिः । पृथिवी । १ निचृद् गायत्री । २ प्राजापत्या गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (पृथिवी) पृथिवि ! तु (नः) हमारे लिये (स्योना) सुखकारणी, (अनृक्षरा) कांटों और बाधक शत्रु और दुष्ट पुरुषों से रहित और (निवेशनी) बसने योग्य भव हो। तू (सप्रथाः) सब प्रकार से विस्तृत होकर (नः) हमें (शर्म यच्छ) शरण और सुख और प्रदान कर। (नः) हमारे (अघम) पाप को (अप शोशुचत्) दग्ध करके दूर कर।

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ २२ ॥

अग्निः । स्वराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्ने ! अग्रणी नायक ! विद्वन् ! (त्वम्) तू अस्मात् इस प्रजाजन से ही (अधिजातः असि) ऊपर अध्यक्ष रूप से अधिकारवान् है इसलिये (अयम्) यह लोक भी (त्वत्) तेरे से ही (पुनः) पुनः

(जायताम्) ऐश्वर्यवान् हो। (असौ) वह तू (स्वर्गाय लोकाय) सुखप्रद जनसमूह के हित के लिये (सु-आहा) उत्तम कर्म और सत्य न्याय कर।

इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३६-४०] दध्यङ् आथर्वण ऋषिः। (अ० ३६) शान्तिकरणः ॥

॥ ओ३म् ॥ ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ १ ॥

अग्निः। पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(ऋचं वाचं प्रपद्ये) मैं स्तवनशील वाणी के तुल्य ऋग्वेद को प्राप्त होऊं। (मनो यजुः प्रपद्ये) मैं मननशील अन्तःकरण के तुल्य यजुर्वेद को प्राप्त होऊं। (साम प्राणं प्रपद्ये) प्राण अर्थात् योगाभ्यासादि उपासना के निदर्शक सामवेद को प्राण के तुल्य जानूं और प्राप्त करूं। (चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये) 'चक्षुः', वेद अर्थात् अथर्ववेद को 'श्रोत्र', कर्ण के समान जानकर उसको धारण करूं। अथवा वाणी से ऋग्वेद को, मन से यजुर्वेद को, प्राण बल से सामगान के वेद को और चक्षु और श्रोत्र के अनुभव को मैं प्राप्त करूं। (वाग् ओजः) वाणी, मानस बल और (सह) उनके साथ (ओजः) शरीर-बल और (प्राणापानौ) प्राण और अपान उच्छ्वास और निःश्वास दोनों (मयि) मुझ में विद्यमान रहें।

अथातः प्रवर्ग्याग्निकाश्वमेधोपनिषत्।

१—सहोजो० इति काण्व०।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

बृहस्पतिः । निचृत्पांक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(मे) मेरे (चक्षुषः) आंख, (हृदयस्य) हृदय और (मनसः) मन का (यत् छिद्रम्) जो छिद्र या त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियों का छिद्र (अति तृण्णम्) अति अधिक पीड़ित हो (तत्) उसको (बृहस्पतिः) महान् राष्ट्र का स्वामी और बड़े जगत् का पालक परमेश्वर और वेदवित् विद्वान् (मे) मेरे उसको (दधातु) पुष्ट करे और (यः) जो (भुवनस्य पतिः) समस्त भुवनों, प्रदेशों और लोकों का स्वामी परमेश्वर है वह (नः शं भवतु) हमें सुखकारी शान्तिदायक हो ।

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥
कया नश्चित्र ऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ५ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥

भा०—(३—६) इन चारों मन्त्रों की व्याख्या देखो अ० ३ । ३५, २७, ३९—४१ ॥

कया त्वं न ऽ ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् ।
कया स्तोतृभ्य ऽ आ भर ॥ ७ ॥ ऋ० ८ । ८२ । १६ ॥

इन्द्रः । वर्धमाना गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वृषन्) सुखों और ऐश्वर्यों के वर्षक परमेश्वर एवं राजन् ! (त्वम्) तू (कया ऊत्या) किस प्रकार की रक्षाविधि से (अभि प्र मन्दसे) प्रजाओं को प्रसन्न करता है और (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील विद्वानों के (कया)

किस पालन क्रिया से (आ भर) सब प्रकार से समृद्धि प्राप्त करता है ? उससे हमें भी समृद्ध कर ।

इन्द्रो विश्वस्य राजति ।
शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

इन्द्रः । द्विपाद् विराड गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (विश्वस्य राजति) समस्त संसार के बीच में प्रकाशमान है । राजा समस्त राष्ट्र में (राजति) तेजस्वी हो । वह (नः) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे शम् अस्तु) दोपाये मनुष्य, भृत्य आदि और चौपाये पशुओं के लिये भी कल्याणकारी हो ।

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा ।
शन्न ऽ इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

ऋ० १ । ९० । ९ ॥

मित्रादयो लिङ्गोक्ताः । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(मित्रः नः शम्) प्राण के समान सबका स्नेही, ईश्वर और राजा हमें सुखकारी हो । (वरुणः नः शम्) वह जल के समान हमें शान्तिप्रद हो । (अर्यमा नः शं भवतु) न्यायाधीश और न्यायकारी परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो । (इन्द्रः) शत्रु का नाशकारी, परमैश्वर्यवान्, (बृहस्पतिः) बड़े भारी राष्ट्र का पालक राजा और बृहती वेदवाणी का पालक, आचार्य, परमेश्वर (नः शम्) हमें सुखदायी हो । (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत प्रकार से चेष्टा करने वाला परमेश्वर और महान् विक्रमशील राजा, (विष्णुः) सेनापति, व्यापक सामर्थ्यवान् ईश्वर (नः शम्) हमें सुखदायक हो ।

शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥ १० ॥

अथर्व० ७ । ६९ । १ ॥

वातादयः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वातः) वायु (नः) हमें (शं पवताम्) सुखकारी होकर बहे। वह व्याधिजनक न हो। (नः सूर्यः शं तपतु) हमारे लिये सूर्य शान्तिदायक होकर तपे। रोगों को नष्ट करे। (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ (देवः) जलप्रद (पर्जन्यः) उत्तम रस बरसाने वाला मेघ और धर्म मेघमय प्रभु (नः शम् अभिवर्षतु) हमें सुख शान्ति वर्षे।

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु नः॒ शꣳ रात्री॑ः॒ प्रति॑ धीयताम्। शं न॑ऽइन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शं न॒ऽइन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या। शं न॑ऽ इन्द्रापू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः॥११॥

ऋ० ७।३५।१॥

इन्द्राग्न्यादयो लिङ्गोक्ताः। अतिशक्वरी। पंचमः॥

भा०—(नः) हमारे लिये (अहानि शं भवन्तु) दिन सुखकारी हों। (रात्रीः) रातें भी (नः शम्) हमें शान्तिदायक (प्रतिधीयताम्) रहें। (इन्द्राग्नी) विद्युत और अग्नि (अवोभिः) अपने नाना रक्षासाधनों से (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण, सूर्य और मेघ, विद्युत् और जल दोनों भी (रातहव्या) प्रजा को अन्न देने वाले होकर (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रापूषणा) इन्द्र और पूषा, सूर्य और पृथिवी (वाजसातौ) अन्नों और ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने के निमित्त संग्राम में (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम, सूर्य और ओषधिगण (सुविताय) उत्तम फल प्रदान करने और उत्तम सन्तान प्रसव करने के लिये (शंयोः) रोगों का शमन और भय संकट का निवारण करें।

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।
शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः॥१२॥

आपः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे परमेश्वर! हे विद्वन्! हे राजन्! (देवीः आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल, विद्वान् आप्त पुरुष, उत्तम कर्म और ज्ञान (नः अभि-

ष्टये) हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करने के लिये (शं नः) हमें शान्तिदायक हों और वे (पीतये भवन्तु) पान और पालन करने के लिये भी हों। वे ही (नः) हमें (शंयोः अभिस्रवन्तु) शान्ति सुख के वर्षण करने और बढ़ाने वाले हों।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३५। २१॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽ ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥
तस्मा ऽ अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

भा०—[१४-१६] तीनों मन्त्रों की व्याख्या [अ० ११। ५०-५२]

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवा शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

अथर्व० १९। ९। १४ ॥

ईश्वरः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(द्यौः) महान् आकाश या सूर्य (शान्तिः) शान्ति देने वाला हो (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, (पृथिवी) पृथिवी, (आपः) जल, (ओषधयः) ओषधिगण, (वनस्पतयः) वट आदि बड़े वृक्ष, (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वान्गण और तेजोमय पदार्थ और (ब्रह्म) चारों वेद और परमेश्वर और अन्न ये सभी (शान्तिः) शान्ति के देने वाले होने से शान्तिमय हों। (सर्वं शान्तिः) सब पदार्थ शान्तिप्रद हों। (शान्तिः एव शान्तिः) शान्ति

स्वयं हृदय को शान्ति दे, दुःखों का शमन करे। (सा) वह परम (शान्तिः) शान्ति (मा एधि) मुझे प्राप्त हो।

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥ अथर्व० ४। ११। १६ ॥

ईश्वरः। भुरिग् जगती। निषादः ॥

भा०—हे (दृते) समस्त दुःखों और अज्ञानों के विदारक! महावीर! राजन्! परमेश्वर! (मा दृंह) मुझे दृढ़ कर। (मा) मुझको (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणी गण (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से देखें और (अहम्) मैं भी (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षे) देखूं। हम सब (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षामहे) एक दूसरे को देखा करें।

दृते दृꣳह मा। ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्।
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

ईश्वरः। आर्च्युष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे (दृते) अज्ञान और पापनाशक! राजन्! परमेश्वर! (मा दृंह) मुझ प्रजाजन और उपासक को दृढ़ कर। मैं (ते) तेरे (संदृशि) सम्यक् ज्ञानस्वरूप दर्शन और अध्यक्षता में (ज्योक् जीव्यासम्) दीर्घ जीवन जीऊं। (ते संदृशि) तेरे निष्पक्षपात उत्तम शासन में (ज्योक् जीव्यासम्) दीर्घ जीवन व्यतीत करूं।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽअस्त्वर्चिषे। अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

लोपामुद्रा। अग्निः। भुरिग् बृहती। मध्यमः ॥

भा०—व्याख्या देखो १७। ११ ॥

नमस्ते ऽ अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

भगवान् ईश्वरः । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(विद्युते ते नमः) विद्युत् के समान तेजस्वी तुझे नमस्कार है। (स्तनयित्नवे ते नमः) मेघ के समान गर्जन करने वाले तुझे नमस्कार है। हे (भगवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् एवं परमेश्वर! (यतः स्वः समीहसे) क्योंकि तू ही समस्त प्राणियों को सुख देने के लिये समस्त व्यापार कर रहा है अतः (ते नमः अस्तु) तुझे सदा नमस्कार हो।

यतो॑ यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ ऽ अभ॑यं कुरु ।
शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्यो॒ऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ ॥ २२ ॥

ईश्वरः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे भगवन्! राजन्! ईश्वर! तू (यतः यतः समीहसे) जिस-जिस कारण से जिस-जिस स्थान और कर्म से (सम् ईहसे) चेष्टा करे (ततः नः अभयं कुरु) वहां-वहां से तू हमें भयरहित कर। (नः प्रजाभ्यः शं कुरु) हमारी प्रजाओं के लिये शान्ति प्रदान कर (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं के लिये (अभयम् कुरु) अभय प्रदान कर।

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ ऽ आप॒ ऽ ओष॑धयः सन्तु दुर्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु
यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

सोमः । विराडनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥

तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तं पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त् । पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तꣳ शृणु॑याम श॒रदः॑ श॒तं प्र ब्र॑वाम श॒रदः॑ श॒तमदी॑नाः। स्याम श॒रदः॑ श॒तं भूय॑श्च श॒रदः॑ श॒तात् ॥ २४ ॥

ऋ० ७ । ६६ । १६ ॥

सूर्यः । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(तत्) वह (देवहितम्) देवों-विद्वानों का हितकारक, (पुरस्तात्) सर्वत्र समक्ष (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करने में कुशल एवं शुद्ध, तेजस्वी, (चक्षुः) आंख के समान सबका निरीक्षक, सर्वाध्यक्ष होकर

(उत् चरत्) सब उत्तम पद पर विराजे और कार्य करे। उसी प्रकार परमेश्वर भी (पुरस्तात्) पूर्व काल से ही शुद्ध सर्वज्ञ देवों विद्वानों का हितकारी (उत् चरत्) सब से उच्च है। वह सर्वद्रष्टा, सबको आंख के समान पदार्थ निदर्शक रहकर शुद्ध तेज प्रदान करता है। उसी के प्रताप से हम (शरदः शतम्) सौ बरसों तक (पश्येम) देखें। (शरदः शतं शृणुयाम) सौ बरसों तक श्रवण करें। (शरदः शतं प्र ब्रवाम) सौ बरसों तक उत्तम रीति से बोलें। (शरदः शतम् अदीनाः स्याम) सौ बरसों तक दीनता रहित होकर रहें। (शरदः शतात् भूयः च) और सौ बरसों से भी अधिक वर्षों तक हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें और अदीन होकर रहें।

इति षट्त्रिंशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे नारिरसि ॥ १ ॥

[अ० ३७] दध्यङ् आथर्वणः। सविता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५। १४ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ २ ॥

श्यावाश्वः। सविता। जगती। निषादः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५। १४ ॥

१—अथातो महावीरसम्भरणम्।

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

दध्यङ् आथर्वणः। द्यावापृथिव्यौ। ब्राह्मी गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(देवी) दिव्य गुणों से युक्त (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी, सूर्य और भूमि के समान राजा-प्रजावर्गो! (वाम्) तुम दोनों के (मखस्य) परस्पर त्रुटिरहित राज्यपालन रूप यज्ञ के (शिरः) सिर के समान मुख्य पुरुष को (पृथिव्याः) पृथिवीनिवासिनी प्रजा के (देवयजने) विद्वानों, राजगण और विजिगीषु पुरुषों के यज्ञस्थान या एकत्र होने के स्थान में (राध्यासम्) प्राप्त करें। हे वीर पुरुष! (त्वा) तुझको (मखाय) त्रुटि-रहित राज्यपालनरूप यज्ञ के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझे (मखस्य शीर्ष्णे) राष्ट्ररूप यज्ञ के शिर या मुख्य पद के लिये नियत करता हूँ।

देव्यो वम्रयो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ४ ॥

वम्रयः। यज्ञः। निचृदार्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(वम्रयः) उपजाप करने और देश-देशान्तर और पृथिवी-निवासिनी प्रजा के चरित्रों को राजा तक वमन करने या पहुँचाने हारी उपजापकारिणी संस्थाएं या धन प्रदान करने वाली प्रजाएं (देव्यः) उत्तम गुण वाली, विजयशील हों, वे ही पृथिवी या (भूतस्य) समस्त प्राणियों के बसने के पूर्व (प्रथमजाः) विद्यमान रहती हैं। वह सबसे श्रेष्ठ हैं। (पृथिव्याः देवयजने) पृथिवी पर विद्वान् राजाओं के एकत्र होने के स्थान, सभाभवन के बीच में हे प्रजाजनो! (वः) तुम्हारे (मखस्य) त्रुटिरहित राज्य कार्य के (शिरः अद्य राध्यासम्) मुख्य पुरुष को आज नियत करता हूँ। हे वीर पुरुष! (मखाय त्वा) तुझ योग्य पुरुष को मैं प्रजा-पालन रूप यज्ञ एवं पूजनीय मुख्य पद के लिये नियुक्त करता हूँ। (त्वा मखस्य शीर्ष्णे) तुझे मानयोग्य राज्य के शिरोमणि पद के लिये नियुक्त करता हूँ।

'मखः' महेः खश्चेति खः प्रत्ययो हलोपश्च । यद्वा मख गतौ । घः । मख इत्येतद् यज्ञनामधेयम् । छिद्रप्रतिषेधसामर्थ्यात् । छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः । मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति । गो० उ० २ । ५ । स एव मखः स विष्णुः । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ एव वै मखो य एष तपति । श० १४ । १ । ३ । ५ ॥ स एव मखः स विष्णुः । तत इन्द्रो मखवान् अभवत् । मखवान् ह वैतं मघवानित्याचक्षते । परोक्षम् । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ इन्द्रो वै मघवान् । श० ४ । १ । २ । १५ ॥ पूजनीय पद 'मख' है या सग्राम या एकत्र होने और प्राप्त होने का स्थान या पद 'मख' है । इससे यज्ञ और संग्राम दोनों मख शब्द वाच्य हैं । मख यज्ञ का नाम है । 'ख' छिद्र कहाता है । छिद्र या त्रुटि का न होना प्रत्युत सम्पूर्ण होना और पूर्ण व्यवस्था या यज्ञ 'मख' है । 'मख' विष्णु, व्यापक शक्तिमान् परमेश्वर और राजा दोनों कहाते हैं । 'मख' यह सूर्य है उसके समान तेजस्वी प्रतापी राजा भी मख है । व्यापक राष्ट्र मख है । उसका पति मखवान् इन्द्र-राजा या सेनापति 'मखवान्' होने से 'मघवान्' कहाता है । (२) स्त्रियों के पक्ष में—हे (देव्यः वम्रयः) स्वल्प उमर की देवी, कन्याओ ! आप लोग (भूतस्य) उत्पन्न होने वाले, सन्तान के भी (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न होती हैं । (वः मखस्य अद्य शिरः राध्यासम्) आप लोगों के भावी गृहस्थ रूप यज्ञ के मुख्य पति को मैं तुम्हारे मन के अनुकूल बनाऊं । हे योग्य पुरुष ! सुसंगत, पूज्य पतित्व के लिये गृहस्थ के मुख्य पद के लिये तुझे वरता हूँ ।

इयत्यग्रं ऽआसीन्मखस्यं तेऽद्य शिरों राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखायं त्वा मखस्यं त्वा शीर्ष्णे ॥ ५ ॥

यज्ञः । स्वराड् ब्राह्मी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे पृथिवि ! पृथिवीनिवासिनी प्रजे ! (अग्रे) पहले (इयती) इतनी ही (आसीत्) रही अर्थात् विजयशील, उत्साही राजा के लिये बड़ी भारी पृथ्वी भी थोड़ी है । हे पृथिवि ! (ते मखस्य) तेरे ऊपर पूज्य

(पृथिव्याः देवयजने शिरः राध्यासम्) पृथिवी पर विजिगीषु पुरुषों के एकत्र होने के स्थान, संग्रामभूमि और सभाभवन में मुख्य सेनापति को मैं प्राप्त करूं। हे योग्य पुरुष ! (मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे) संग्राम, राज्यशासन और उसके शिरोमणि पद के लिये तुझे वरण करता हूँ। 'इयति । अग्रे' इत्यादि पदपाठो महर्षिदयानन्दसम्मतश्चिन्त्यः शतपथविरोधात् ।

इन्द्रस्यौजः स्थ मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ६ ॥

आदाराः । यज्ञः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! वीर सैनिक पुरुषो ! आप लोग ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रु के नाश करने वाले सेनापति के (ओजः स्थ) पराक्रम स्वरूप हो। (वः यज्ञस्य शिरः राध्यासम्) आप के यज्ञ, राष्ट्रपालन के मुख्य पदाधिकारी को मैं स्थापित करता हूँ। इत्यादि पूर्ववत् । इस प्रकार भिन्न सेनादलों के मुख्य पुरुषों को नियुक्त किया जाय ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरन्नर्यम्पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ७ ॥

कण्वः । ईश्वरः । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्म, महान् ऐश्वर्य, वेदज्ञान का पालक राजा और विद्वान् (प्र एतु) उत्तम पद को प्राप्त हो। (सूनृता देवी) शुभ सत्यज्ञान से युक्त विदुषी और विद्वत् सभा (प्र एतु) उत्तम पद को प्राप्त हो। (वीरम्) वीर, शूर, सब दुःखों और शत्रुओं के प्रक्षेपक, नाशक, (नर्यम्) सब मनुष्यों के हितकारी, (पंक्तिराधसम्) सेना की पंक्तियों को वश में करने में समर्थ वीर पुरुष को (देवाः) विजयी, युद्धक्रीड़ाशील सैनिक और

उत्तम विद्वान् जन (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ अर्थात् प्रजापति पद को (नयन्त) प्राप्त करावें। (मखाय त्वा, मखस्य शीर्ष्णे त्वा) पूज्य पद और यज्ञ या संग्राम के प्रमुख स्थान के लिये तुझे नियुक्त करते हैं। इत्यादि।

मुखस्य शिरोऽसि। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखस्य शिरोऽसि। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखस्य शिरोऽसि। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ८ ॥

दध्यङ् आथर्वणः। यज्ञः। स्वराड् अतिधृतिः। मध्यमः ॥

भा०—हे योग्य पुरुष ! तू (मखस्य) पूजनीय व्यवस्था, राष्ट्र आदि के कार्य में (शिरः असि) शरीर में शिर के समान, ज्ञानवान्, विचारशील और प्रमुख है। (त्वा मखाय मखस्य शीर्ष्णे०) इत्यादि पूर्ववत्। महर्षि ने, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वनस्थ और मुमुक्षु आदि पक्षों में प्रमुख पुरुषों के स्थापनपरक अर्थ किये हैं। भावार्थ में अन्य-अन्य स्थानों में भी प्रमुख पुरुषों के स्थापन का निर्देश है। यज्ञपक्ष में तीन महावीरों की कल्पना है। सेना, राष्ट्रपालन और गृहस्थ तीनों में समान योजना है।

[1]अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। [2]अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ९ ॥

दध्यङ् आथर्वणः। विद्वान्। १, २ अति शक्वरी। पंचमः ॥

भा०—जिस प्रकार कच्चे मट्टी के बर्तन को (अश्वस्य शक्ना) घोड़े की लीद को जला कर उससे या कण-कण में व्याप जाने वाले अग्नि की ताप

शक्ति से संतप्त कर पकाया जाता है उसी प्रकार हे वीर नेता पुरुष ! (त्वा) तुझको (वृष्णः) बलवान् वीर्यवान्, शत्रुओं को और प्रजाओं को व्यवस्था में बांधने में समर्थ (अश्वस्य) आशुगामी, व्यापक सामर्थ्यवान् और बहुत से राष्ट्र के बड़े पदाधिकारी पुरुष के (शक्ना) शक्ति, अधिकार, सामर्थ्य से (पृथिव्याः देवयजने) पृथिवी के विजयी विद्वान् पुरुषों के एकत्र होने के स्थान, संग्राम, यज्ञ और सभाभवन में (धूपयामि) तुझे अधिक बलवान्, सुशोभित और सामर्थ्यवान् करता हूँ। 'मखाय त्वा०' अश्वस्य त्वा० इत्यादि पूर्ववत् ।

ऋजवे॑ त्वा साधवे॑ त्वा सुक्षित्यै॑ त्वा॑ । मखाय॑ त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे॑ । मखाय त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे॑ । मखाय॑ त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे॑ ॥ १० ॥

दध्यङ् आथर्वणः । विद्वांसः । स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! (त्वा ऋजवे) तुझको आदित्य के समान प्रकाशमान कुटिलतारहित सत्य दर्शाने वाले न्यायकारी पद के लिये नियुक्त करता हूँ। (साधवे त्वा) वायु के समान सबका प्राण प्रदान करने वाले, सबको अपने वश करने वाले उत्तम पद के लिये स्थापित करता हूँ और (सुक्षित्यै त्वा) पृथिवी के समान सब प्रजाओं के सुख से निवास कराने वाले पद के लिये नियुक्त करता हूँ। सुविधानुसार इन तीन पदों पर तीन अथवा एक ही अधिकारी शिरोमणि स्थापित किया जा सकता है। वे अधिकार और कर्त्तव्य भेद से तीन हैं। (मखाय त्वा०) इत्यादि पूर्ववत्।

यमाय॑ त्वा मखाय॑ त्वा सूर्य॑स्य त्वा तप॑से । देवस्त्वा॑ सविता मध्वा॑नक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृश॑स्पाहि । अर्चिर॑सि शोचिर॑सि तपो॑ऽसि ॥ ११ ॥

दध्यङ् आथर्वणः । धर्मः सविता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

१०—इति महावीरसंभरणम् ।

११—अतो महावीरप्रोक्षणम् । अभिषेक इति यावत् ।

भा०—हे विद्वन् ! वीर पुरुष ! (यमाय) सूर्य जिस प्रकार ग्रह, उपग्रहों और पृथ्वी आदि को अपने नियम में रखता है उसी प्रकार समस्त राष्ट्र को नियम में रखने वाले पद के लिये (त्वा मखाय) पूजनीय उत्तम प्रजापति पद के लिये तुझको (सूर्यस्य तपसे त्वा) सूर्य के समान संतापन करने में समर्थ 'तपस्' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। (सविता) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, परमेश्वर (त्वा) तुझको (मध्वा) मधुर अन्न आदि ऐश्वर्य और शत्रुपीड़क बल से (आनक्तु) युक्त करे। हे विद्वन् ! तू उस वीर पुरुष को (पृथिव्याः संस्पृशः) भूमि पर स्पर्श होने से अर्थात् उसे सामान्य जनों में अनादृत होने से (पाहि) बचा। अथवा हे राजन् ! तू राष्ट्र की पृथिवी पर आक्रमण करने वाले शत्रु से बचा। तू (अर्चिः असि) अग्नि की ज्वाला के समान दाहकारी है। (शोचिः असि) विद्युत् की दीप्ति के समान संतापकारी है। तू (तपः असि) सूर्य के ताप के समान तपस्वी, संतापकारी और धर्मात्मा है।

अनाधृष्टा पुरस्ताद॒ग्नेराधि॑पत्य॒ऽआयु॑र्मे दाः । पु॒त्रव॑ती दक्षिण॒त ऽइन्द्र॒स्याधि॑पत्ये प्र॒जां मे॑ दाः । सु॒षदा॑ प॒श्चाद्दे॒वस्य॑ सवि॒तु-राधि॑पत्ये॒ चक्षु॑र्मे दाः । आश्रु॑तिरुत्तर॒तो धा॒तुराधि॑पत्ये रा॒यस्पोषं॑ मे दाः । विधृ॑तिरु॒परि॑ष्टा॒द् बृह॒स्पते॒राधि॑पत्य॒ ऽओजो॑ मे दाः विश्वा॑भ्यो मा ना॒ष्ट्राभ्य॑स्पाहि । मनो॒रश्वा॑सि ॥ १२ ॥

पृथिवी । स्वराड् उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे पृथिवि ! [१] (अनाधृष्टा) शत्रु से कभी धर्षण नहीं की जाकर तू (पुरस्तात्) पूर्व की दिशा से (अग्नेः) अग्नि अर्थात् सूर्य के (आधिपत्ये) स्वामित्व में रह कर (आयुः) जीवनप्रद अन्न का प्रदान करती है उसी प्रकार तू अग्नि के समान तेजस्वी शत्रुसंतापक, प्रतापी, अग्रणी नायक के स्वामित्व में रहकर (मे) मुझ प्रजाजन को (आयुः दाः) आयु प्रदान कर। (२) हे पृथिवि ! (पुत्रवती) पुत्रों वाली पति के अधीन

रहकर उत्तम प्रजा को प्रदान करती है, इसी प्रकार तू भी (पुत्रवर्ती) पुरुषों को दुःखों से बचाने वाले वीर पुरुष से युक्त होकर (दक्षिणतः) दक्षिण दिशा से (इन्द्रस्य आधिपत्ये) विद्युत् या सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष के स्वामित्व में रहकर (मे) मुझ राष्ट्र के राज-वर्ग को उत्तम (प्रजां दाः) प्रजा, सन्तति प्रदान कर । (३) हे पृथिवि ! तू (सुषदा) सुख से बैठने और बसने योग्य समतल होकर (पश्चात्) पश्चिम से (देवस्य सवितुः) प्रकाशमान सूर्य के अधीन रहकर चक्षु, उत्तम दर्शनशक्ति प्रदान करती है । जिस समतल भूमि पर सूर्य का प्रकाश विस्तृत पड़ता है दूर तक स्पष्ट दिखाई देता है । उसी प्रकार तू (देवस्य सवितुः) दानशील, विजिगीषु सूर्य के समान तेजस्वी, सबके प्रेरक पुरुष के अधीन रहकर (मे) मुझ शासक को (चक्षुः) ज्ञान चक्षु एवं प्रजा पर निरीक्षण करने का बल (दाः) प्रदान कर । (४) (आश्रुतिः) सब तरफ से उत्तम रीति से श्रवण करने हारी होकर (उत्तरतः) उत्तर दिशा से (धातुः) धारण करने वाले, वायु के समान व्यापक, बलशाली पुरुष के (आधिपत्ये) स्वामित्व में रहकर (रायः पुष्टिः) धन समृद्धि और पशु सम्पत्ति को (मे दाः) मुझे प्रदान कर । (५) (विधृतिः) विविध पदार्थों और विशेष ज्ञान के धारण में समर्थ होकर तू (बृहस्पतेः) बृहती, वेद-वाणी के पालक विद्वान् पुरुष के (आधिपत्ये) स्वामित्व में, (मे) मुझे (ओजः) बल, पराक्रम एवं ब्रह्मचर्यपूर्वक वीर्य (दाः) प्रदान कर । (६) (मा) मुझको (विश्वाभ्यः) समस्त (नाष्ट्राभ्यः) नाश करने वाली दुष्ट स्वभाव की शत्रुसेनाओं से (पाहि) सुरक्षित रख । तू (मनोः) मननशील पुरुष के (अश्वा) भोग करने योग्य (असि) है । शरीर के पांच मुख्य भाग हैं नाक, मुख, प्रजननाङ्ग, चक्षु, मन और धारण बुद्धि । इनके पांच कार्य हैं प्राण और अन्न का ग्रहण, प्रजा प्राप्त करना, देखना, दूर का श्रवण करना, ज्ञान प्राप्त करना । इन सब शक्तियों से युक्त पृथिवीनिवासिनी प्रजा क्रम से (१) अन्न और प्राण के बल से वह शत्रु से कभी पराजित

नहीं होती। ऐसी प्रजा अपने नायक के अधीन रहकर राजा के राज्य की आयु को बढ़ाती है। (२) खूब प्रजाओं, सन्ततियों से पृथिवीनिवासिनी प्रजा पुत्रवती होकर सेनापति को वीर सैनिक प्रदान करती है। (३) सुख से जिसमें राजा शासन करता है वह प्रजा दूरदर्शिनी है वह कभी अन्धी होकर द्रोह नहीं करती। वह शान्ति से दूर तक देखने और गम्भीर विचारने का अवसर प्रदान करती है। (४) समृद्ध प्रजा राजा की आज्ञा-पालन करने वाली 'आश्रुति' है। वह अपने पोषक राजा के अधीन रहे तो और समृद्ध होती है। (५) राष्ट्रपालक या सेनानायक के अधीन रह कर राष्ट्र की विविध प्रजाओं को अपने भीतर धरती है वह 'विधृति' है। उसमें बल पराक्रम की मात्रा बहुत है। वह राजा को सब विपत्तियों से बचावे। वह मननशील राजा के ही भोग्य हो, मूर्ख, अत्याचारी राजा उसको भोग न सके।

स्वाहा॑ म॒रुद्भिः॒ परि॑ श्रीयस्व।
दि॒वः स॒ꣳस्पृश॑स्पाहि मधु॒ मधु॒ मधु॑॥ १३॥

विद्वान्। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (मरुद्भिः) प्रजागणों और हे वीर सेनापते! तू शत्रुओं को मारने वाले वीर सैनिकों से (परिश्रीयस्व) सब तरफ से आश्रय बन। वे तेरा आश्रय लें। तू उनके द्वारा पृथ्वी का भोग कर। तू इस राष्ट्र को (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी राज गण के (संस्पृशः) तीक्ष्ण स्पर्श करने वाले कष्टदायी कारण से (पाहि) रक्षा कर और (मधु मधु मधु) कर्म, उपासना और ज्ञान, इनका सेवन कर और इसी प्रकार शरीर में स्थित प्राण, उदान, व्यान के समान तीनों ब्रह्मबल, क्षात्रबल और धनबल प्रदान कर।

गर्भो॑ दे॒वानां॑ पि॒ता म॑ती॒नां पतिः॑ प्र॒जाना॑म्।
सं दे॒वो दे॒वेन॑ सवि॒त्रा ग॑त॒ सꣳ सूर्ये॑ण रोचते॥ १४॥

१४—अथातो 'मा मा हिंसीः'। (२०) इत्यन्तं महावीरपरिक्रमणम्।

ईश्वरः । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—सेनापति और राजा के पक्ष में—(देवानां गर्भः) देव, विजयशील वीर सैनिकों और विद्वानों, शासकों को अपने अधीन ग्रहण करने वाले सूर्य के समान, (पिता मतीनाम्) मननशील, मेधावी, पुरुषों का पालक, (प्रजानाम् पतिः) प्रजाओं का स्वामी (देवः) दानशील, तेजस्वी विजयी होकर (सवित्रा) सब संसार के प्रेरक (सूर्येण देवेन) सूर्य देव के समान (संगत) पृथ्वी से भली प्रकार युक्त होता है और (संरोचते) उसी के समान प्रकाशित होता है। (२) ईश्वर के पक्ष में—ईश्वर तेजस्वी समस्त सूर्य आदि पदार्थों के भीतर व्यापक, सबको अपने भीतर लेने वाला, सविता, सूर्य के समान प्रकाशित है।

समग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दे॒वेन॑ सवि॒त्रा सꣳ सूर्ये॑णारोचिष्ट । स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दैव्ये॑न सवि॒त्रा सꣳ सूर्ये॑णारूरुचत ॥ १५ ॥

अग्निः । निचृद् ब्राह्मी अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अग्निः) वह महान् वीर सेनापति अग्नि के समान तेजस्वी होने और अग्रणी होने से 'अग्नि' है। इसी गुण से वह (अग्निना संगत) अग्नि के साथ मेल खाता है, उसकी उससे तुलना की जाती है। वह (देवेन सवित्रा) देव, सर्वप्रेरक (सूर्येण) सूर्य के साथ (सम्) तुलना पाकर (अरोचिष्ट) प्रकाशित होता है। वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी होकर (स्वाहा) उत्तम, सत्य वाणी और सत्य क्रिया से और (तपसा) धर्मानुष्ठान और तपस्या से (संगत) युक्त होता है। वह भी (दैव्येन सवित्रा सूर्येण) देवों, पृथिवी आदि में सर्वोत्तम ऐश्वर्यकारी, सबके प्रेरक सूर्य के साथ तुलना पाकर (सम् अरूरुचत) भली प्रकार सदा प्रकाशित होता है। (२) परमेश्वरपक्ष में—यह अग्नि स्वयंप्रकाश परमेश्वर के द्वारा प्रकाशित है और सूर्य के प्रकाश से भी प्रकाशित होता है। उस परमेश्वर को सत्य क्रिया, धर्मानुष्ठान से तुम लोग जानो।

धर्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता देवो देवानाममर्त्य-स्तपोजाः वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥

ईश्वरः । भुरिग् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(दिवः तपसः धर्त्ता) प्रकाशमान द्यौलोक को और ताप को सूर्य धारण करता है उसी प्रकार वह (दिवः) राजसभा या तेज को धारण करने हारा, (पृथिव्याम्) इस पृथिवी पर और (तपसः) तप, धर्माचरण और शत्रुसंतापक बल का (धर्त्ता) धारण करने हारा होकर (देवानाम्) विद्वानों में (देवः) तेजस्वी, राजा (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न होकर (तपोजाः) तप और धर्मानुष्ठान के बल से अधिक सामर्थ्य-वान् हो। वह (अस्मे) हमें (देवायुवम्) विद्वान् पुरुषों विजयशील सैनिकों और शासकों को एक ही काल और स्थान में एकत्र कर लेने वाली (वाचम्) वाणी को (नि यच्छ) प्रदान करे। (२) परमेश्वर सूर्य का धारक तेजस्वी, अमरणधर्मा देवों का देव, तप से प्रकट होने वाला है। वह हमें विद्वानों से और पृथिव्यादि लोकों और उत्तम ज्ञानों का लाभ कराने वाली वेदवाणी प्रदान करे।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
सध्रीचीः स विषूचीर्वसान ऽ आ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥१७॥

ऋ० १ । १६४ । १ ॥

ईश्वरः । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं (गोपाम्) सबके रक्षक, (अनिपद्यमानम्) अचल, स्थिर, विपत्तियों से नष्ट न होने वाले वीर और (पथिभिः) नाना मार्गों से (आ च परा च चरन्तं च) समीप और दूर देशों में जाते हुए सर्वत्र शासक को (अपश्यम्) देखता हूँ। यह (सध्रीचीः) अपने साथ रहने वाली और (विषूचीः) नाना दिशाओं में विस्तृत प्रजाओं में भी (वसानः) शासक रूप से रहता हुआ (भुवनेषु अन्तः) समस्त लोकों में (आ परीवर्त्ति) सर्व प्रकार से सर्वोपरि रहता है। (२) सूर्य के पक्ष में—अपने साथ रहने

वाली और सर्वत्र फैलने वाली दिशाओं या रश्मियों को धारण करता हुआ वह सब लोकों में व्याप्त होता है। (३) परमेश्वर समस्त दिशाओं में व्यापक, सबका रक्षक है, ज्ञानमार्गों से हमें इस लोक में और परलोक में भी प्राप्त, ध्रुव रक्षक है।

विश्वा॑सां भु॒वां प॑ते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते॒ विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते। दे॒व॒श्रुत्त्वं दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र प्रावी॒रनु॑ वां दे॒ववी॑तये। मधु॒ माध्वी॑भ्यां॒ मधु॒ माधू॑चीभ्याम् ॥१८॥

ऋ० १। ११६। १२॥

ईश्वरः। अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—हे राजन्! हे ईश्वर! हे (विश्वासाम्) समस्त (भुवाम्पते) भूमियों के पालक! स्वामिन्! (विश्वस्य मनसः पते) समस्त प्रजा की मनों और आत्माओं के स्वामिन्! (विश्वस्य व च सस्पते) समस्त वेद-वाणियों और (सर्वस्य वचसः पते) लौकिक वचनों व प्रजा की वाणियों के स्वामिन्! हे (देवश्रुत्) देवों-विद्वानों को श्रवण करने एवं शासकों, वीर पुरुषों से आज्ञारूप से श्रवण करने योग्य, दोनों में प्रसिद्ध! हे (धर्म) तेजस्विन्! सबके प्रकाशक, श्रवणशील, दयार्द्र! तू (देवः) सूर्य के समान तेजस्वी, दाता, रक्षक होकर (देवान् पाहि) देवों, विद्वानों की रक्षा कर। हे राजप्रजावर्गो! हे स्त्री पुरुषो! वह राजा (वां) तुम दोनों को (देववीतये) दिव्य गुणों और वीर सैनिकों की प्राप्ति के लिये (प्र अवीः) उत्तम रीति से तृप्त व पालन करे। (माध्वीभ्याम्) मधुर गुणों से युक्त विद्या और सुशिक्षा इन दोनों के (मधु) सारयुक्त ज्ञान को और (माधूचीभ्याम्) मधु, ब्रह्म-विज्ञान प्राप्त करने वाले शिक्षक और शिष्य गण की प्रजाओं के (मधु) मधुर गुण युक्त सत् चरित्र की भी (प्र अवीः) उत्तम रीति से रक्षा करे और प्रदान करे।

हृ॒दे त्वा॒ मन॑से त्वा दि॒वे त्वा॒ सूर्या॑य त्वा।
ऊ॒र्ध्वो ऽअ॑ध्व॒रं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि ॥१९॥

ईश्वरः । विराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! (त्वा) तुझको (हृदे) हृदय की चेतनता को प्राप्त करने, उसकी स्वस्थता के लिये (मनसे त्वा) विज्ञानयुक्त अन्तःकरण और मन की स्वस्थता के लिये और (दिवे त्वा) विद्या प्रकाश के लिये और (सूर्याय त्वा) सूर्यादि लोकों के विज्ञान के लिये ध्यान करते हैं। तू सबसे (ऊर्ध्वः) ऊंचा है। तू (अध्वरम्) अहिंसामय और राष्ट्रमय यज्ञ को (दिव) उत्तम व्यवहार में और (देवेषु) विद्वानों में (धेहि) स्थापन कर । हे राजन् ! हृदय, चित्त और राजसभा में सूर्य के समान तेजस्वी पद के लिये तुझे स्थापित करते हैं। तू सबसे ऊंचा हो, ज्ञानपूर्वक विद्वान् पुरुषों के आश्रय में इस राष्ट्रमय यज्ञ को स्थापित कर ।

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः । त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहꣳ सह पत्या भूयासम् ॥ २० ॥

ईश्वरः । निचृदतिजगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! हे परमेश्वर ! (नः पिता असि) तू हमारे पिता के समान पालक है। (नः) पिता एवं गुरु के समान ही (बोधि) हमें ज्ञानवान्, शिक्षित कर । (ते नमः अस्तु) तुझे नमस्कार हो । (मा मा हिंसीः) मुझ प्रजाजन को मत मार, बिनष्ट मत कर। हम समस्त प्रजाजन (त्वष्टृमन्तः) त्वष्टा, तेजस्वी, प्रजापति रूप स्वामी वाले होकर (त्वा सपेम) तुझे प्राप्त हों। तू (पुत्रान् पशुन्) पुत्रों और पशुओं को (मयि धेहिः) मुझ में पालक पतिवत् धारण करा । (अस्मान्) हम में (प्रजाम्) उत्तम सन्तान, प्रजा को धारण करा। मैं प्रजा (अरिष्टा) मङ्गलमयी स्त्री के समान सब गुणों वाली होकर (सह पत्या) पति के साथ भार्या के समान तुझ प्रजापति के साथ (भूयासम्) रहूँ । (२) परमेश्वर हमारा पिता है,

२०—पशून्यपि धेह्यरिष्टा० इति काण्व० ।

गुरु है, हमें ज्ञानवान् बनाता है। विनष्ट न करे। हम उत्तम गुणवान् उत्तम पदार्थों और शिल्पों से युक्त होकर उसे प्राप्त हों, हमें पशु प्रदान करे, प्रजा दे। उसकी प्रजा होकर स्वामी से युक्त होकर रहे। (३) गृहस्थ में—हे पितः! हे श्वशुर! तू हमारा पिता है हमें सचेत कर। हमें कष्ट मत दे। हे पते! हम स्त्री जन प्रजननसामर्थ्य से युक्त होकर पति को प्राप्त हों। हमें सन्तान धारण कर। मैं स्त्री सुमङ्गली होकर पति के साथ रहूँ।

अहः केतुना जुषताᳪं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषताᳪं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥ २१ ॥

ईश्वरः। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(सुज्योतिः) उत्तम ज्योतियुक्त (अहः) दिन के समान प्रकाशस्वरूप तेजस्वी पुरुष (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय (केतुना) सूर्य के समान तेजस्वी, आज्ञापक कर्म और प्रज्ञावान् पुरुष या उत्तम ज्ञापक चिह्न और ज्ञान से (जुषताम्) युक्त हो और (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति या तेज वाली (रात्रिः) सब प्रजाओं के सुख ऐश्वर्य देने वाली राज्यव्यवस्था (ज्योतिषा केतुना) दीपक अग्नि वा चन्द्र के समान ज्योतिर्मय, तेजस्वी सबके आज्ञापक, विद्वान् राजा से (स्वाहा) सत्य और उत्तम कर्म द्वारा (जुषताम्) युक्त हो। (स्वाहा) हमारी यह उत्तम इच्छा पूर्ण हो। अथवा तेजस्वी राजा के दायीं बायीं आंखों के समान दो विद्वान् नियुक्त हों। रात्रि और दिन दोनों तेज हमें प्राप्त हों, हमें सुख प्रदान करें।

इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददेऽदित्यै रास्नासि ॥ १ ॥

[ऋ०] दध्यङ् आथर्वणः । सविता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे पृथिवि ! पृथिवीनिवासिनि प्रजे ! हे स्त्रि ! (देवस्य) कान्तियुक्त, कामनावान् (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए संसार में (अश्विनोः) सूर्य के समान दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष धर्मों से युक्त दायें बायें देहों के (बाहुभ्याम्) बाहुरूप बलवीर्यों से और (पूष्णः हस्ताभ्याम्) पूषा सर्वपोषक पति या स्वामी के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) मैं तुझको (आददे) ग्रहण करता हूँ । राजा या स्वामी होकर पृथिवी को स्त्री के समान स्वीकार करता हूँ । मैं पति तुझ स्त्री को अपने बाहुओं और हाथों से स्वीकार करता हूँ । हे राज्यव्यवस्थे ! राजसभे ! तू (अदित्यै) पृथिवी की (रास्ना असि) गाय के बंधी रस्सी के समान बांधने वाली, प्रजाओं को सत्य उपदेश करने वाली, सन्मार्ग पर चलाने वाली है ।

'रास्ना' रास् शब्दे । भ्वादि० । निपातनान्नक् औणादिः । रास्ना ।

इड़ ऽएह्यदित ऽ एहि सरस्वत्येहि ।
असावेह्यसावेह्यसावेहि ॥ २ ॥

गौः । सरस्वती । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(इडे) हे स्तुति योग्य ! उत्तम वाणी से युक्त ! तू (एहि) आ । हे (अदिते) अखण्डिते ! पृथिवि ! तू (एहि) प्राप्त हो । हे (सरस्वति) उत्तम विज्ञानों से युक्त ! उत्तम जलधाराओं, तालाबों से युक्त ! पृथिवि ! (एहि) प्राप्त हो । इसी प्रकार हे (असौ) अमुक अमुक नाम और गुणों वाली ! सस्यश्यामले ! शुभ्रज्योत्स्ना फुल्लद्रुमदलशालिनि ! तू (एहि) मुझे अपने पालक राजा को प्राप्त हो । (२) राजसभा के पक्ष में—हे (इडे)

वाणि ! स्तुत्ये ! हे (अदिते) अखण्ड शासन वाली ! हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति ! विद्वत्सभे ! (असौ) दशावरे, त्र्यवरे इत्यादि (एहि) तू प्राप्त हो। (३) स्त्रीपक्ष में—हे (इडे) स्तुत्ये, वन्द्ये ! हे (अदिति) अखण्ड-चरित्रे हे (सरस्वति) आनन्दप्रदे ! ज्ञानवति ! (असौ) हे वरानने ! अखण्डित अनिन्दिताङ्गि ! इत्यादि (एहि) तू मुझ पति को प्राप्त हो।

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽ उष्णीषः।
पूषासि घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥

पूषा। भुरिक्साम्नी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे राज्यव्यवस्थे एवं राजन् ! जैसे रज्जु गाय को वश करने हारी होती है उसी प्रकार तू (अदित्यै) पृथिवी की (रास्ना) बागडोर है। तू ही उसको वश करने वाली और सन्मार्ग पर चलाने हारी है। तू (इन्द्राण्या) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की लक्ष्मी की राजसभा की (उष्णीषः) पगड़ी के समान शिर की शोभा है। बछड़ा जिस प्रकार गौ का प्रेमपात्र उससे उत्पन्न और उसी के दिये दूध से पलता है और वायु जिस प्रकार सबको प्राण द्वारा पुष्ट करता है, उसी प्रकार तू भी (पूषा) पृथ्वी को पोषण करने हारा और उसका प्रेमपात्र होकर उसी के दुग्ध से स्वयं पुष्ट होने हारा (असि) है। तू (घर्माय) तेजस्वी पद एवं प्रजा को नाना सुख प्रदान करने के लिये (दीष्व) कृपा कर। (२) गृहस्थपक्ष में—(अदित्यै रास्नासि) हे पुरुष ! तू अखण्डचरित्र वाली सदाचारिणी स्त्री की बागडोर है। 'इन्द्राणी' अर्थात् पति वाली, सती सौभाग्यवती स्त्री का सिरमौर है। उसका पोषक है। (घर्माय) वीर्यसेचन या पुत्रोत्पत्ति के निमित्त स्त्री का पालन कर। (३) स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि ! तू अखण्ड यश या अखण्डवीर्यवान् कुमार को सम्बन्ध में बांधने वाली, गृहनीति की प्रमुख, भूमि के समान पोषक है, तू गृहस्थ यज्ञ के लिये मनोयोग दे, उसमें आत्मसमर्पण कर।

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

अश्व्यसरस्वतीन्द्राः । आर्ची पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे पृथिवि ! (अश्विभ्याम्) प्रजा के स्त्री और पुरुषों के लिये (पिन्वस्य) प्रचुर धनैश्वर्य प्रदान कर । (सरस्वत्यै पिन्वस्व) उत्तम ज्ञानवान् विद्वत्सभा के लिये भी ऐश्वर्य प्रदान कर । (इन्द्राय पिन्वस्व) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति और राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य प्रदान कर । हे पुरुषो ! (इन्द्रवत्) ऐश्वर्य युक्त राज्य को (स्वाहा) उत्तम, सत्य नीति से संचालित करो । (इन्द्रवत स्वाहा) विद्युत् आदि से युक्त पदार्थों का उत्तम रीति से ज्ञान करो । (२) स्त्री अपने माता पिता, सरस्वती, आचार्याणी और वेद के विद्वानों और (इन्द्राय) सौभाग्यशाली पति को अन्न द्वारा तृप्त करे, समस्त यज्ञ (इन्द्रवत्) अपने पति के संग करे ।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः ।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः ।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥ ऋ० १ । १६४ । ४९ ॥

दीर्घतमा । वाग् देवता । निचृदतिजगती । निषादः ॥

भा०—हे (सरस्वति) सरस्वति ! उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों एवं ज्ञानों से युक्त राजसभे ! (स्तनः) माता का स्तन जिस प्रकार (शशयः) बालक को सुख की नींद सुलाने वाला, (मयोभूः) सुखजनक (रत्नधा) उत्तम ज्ञान और बल का दाता एवं रम्य, बालक का पोषक, (वसुवित्) प्राणों को प्राप्त कराने वाला है और जिससे समस्त (वार्याणि) वरण करने योग्य गुणों और बलों को माता पुष्ट करती है उसी प्रकार (ते) तेरा (स्तनः) उत्तम दुग्ध के समान मधुर ज्ञानोपदेश प्रदान करने वाला पुरुष, सभापति (शशयः) प्रजा को सुख शान्ति से रखने वाला है (यः) जो (मयोभूः) प्रजा के कल्याण, सुख को उत्पन्न करता है, (यः रत्नधा) जो रमण योग्य

उत्तम गुणों और ऐश्वर्यों और उत्तम नररत्नों का पालन-पोषण करता है, (यः वसुवित्) जो वसु नामक ब्रह्मचारियों को आचार्य के समान, विद्वानों को प्राप्त करता, या राष्ट्र में बसने वाले उत्तम प्रजाजनों को ऐश्वर्य प्राप्त कराने हारा है और जो (सुदत्रः) उत्तम दानशील है (येन) जिससे तू राजसभा (विश्वा) समस्त (वार्याणि) वरण करने योग्य, वाञ्छनीय ऐश्वर्यों, कार्यों और राज्यांगों को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (तम्) उस 'स्तन' अर्थात् ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में (धातवे) प्रजा को धारण, पालन-पोषण करने के लिये (अकः) नियुक्त कर। (उरु) मैं विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष आकाश का (अनु एमि) अनुयायी होऊं, उसका अनुकरण करूं। मैं नियुक्त विद्वान् भी अन्तरिक्ष, मेघ के समान ज्ञान और ऐश्वर्य की धाराओं से वर्षा कर प्रजा को पुष्ट करूं। सरस्वती वेद वाणी का उपदेष्टा आचार्य, सरस्वती का उपदेश करने से उसका 'स्तन' है। वह बालक के समान शिष्य को शान्तिप्रद, सुखजनक, उत्तम ज्ञानपोषक वसु ब्रह्मचर्य द्वारा प्राणों को पुष्ट करता, उत्तम ज्ञान दान करता है, उससे ही सब प्राप्य ज्ञानों और वीर्यों को पुष्ट करता है। आचार्य भी अन्तरिक्षगत मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञानवर्षण करे। मेघ के समान आचार्य प्रजापति का वर्णन देखो बृहदारण्यक उप०। (३) गृहस्थपक्ष में—पुरुष अन्तरिक्ष के समान पुत्रादि पर अनुग्रहकारी एवं स्त्री का भरणपोषणकारी हो। 'स्तनः'—ष्टन वन शब्दे। भ्वादिः। स्तन गदी देवशब्दे। चुरादिः स्तनतीति स्तनः आचार्यो विद्वान् आज्ञापकः। स्तनयतीति स्तनः मेघः।

गा॒य॒त्रं छन्दो॑ऽसि॒ त्रैष्टु॑भं॒ छन्दो॑ऽसि॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॑ त्वा॒ परि॑-गृह्णाम्य॒न्तरि॑क्षे॒णोप॑यच्छामि। इन्द्रा॑श्विना॒ मधु॑नः सार॒घस्य॑ घ॒र्मं पा॑त॒ वस॑वो॒ यज॑त॒ वाट्। स्वाहा॒ सूर्य॑स्य र॒श्मये॑ वृष्टि॒-वन॑ये ॥ ६ ॥

अश्विनौ। निचृदत्यष्टिः। गान्धारः।

भा०—हे (इन्द्र) विद्वान् पुरुष ! (गायत्रं छन्दः असि) गायत्री छन्द २४ अक्षरों से युक्त होता है, उसी प्रकार तू २४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यों से युक्त हो। (त्रैष्टुभं छन्दः असि) त्रिष्टुप छन्द ४४ अक्षरों से युक्त है, उसी प्रकार तू ४४ वर्षों के अक्षय बल वीर्यों से युक्त हो। अथवा, हे राजन् ! उत्तम शासक सभापते ! प्रजापालक ! तू गायत्री छन्द से प्रकाशित अर्थ या अग्नि के समान उत्तम ज्ञानप्रकाशवान् त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाशित अर्थ के समान, छन्द या ऐश्वर्यवान् के गुणों से युक्त अथवा ब्राह्मबल और क्षात्रबल से युक्त हो। हे (अश्विना) राजा प्रजावर्गो ! (द्यावापृथिवीभ्याम्) द्यौ, सूर्य और पृथिवी, उन दोनों के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों के हित के लिये (त्वा) तुझ पुरुष को (परिगृह्णामि) उचित पद के लिये स्वीकार करता हूँ। (अन्तरिक्षेण उपयच्छामि) सूर्य अन्तरिक्ष से, मेघ द्वारा वर्षण और वायु द्वारा सबका प्राण धारण कराता है उसी प्रकार मैं तुझ योग्य विद्वान् पुरुष से प्रजा पर ज्ञानैश्वर्य के वर्षण के निमित्त (उप यच्छामि) तुझे स्वीकार करता हूँ। (२) गृहस्थ पक्ष में—हे (अश्विना) स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों गायत्री और त्रिष्टुप् छन्दों के समान २४ या ४४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यवान् होवो। अथवा अग्नि और सूर्य या मेघ के समान तेजस्वी, प्रतापी, वीर्यवान् हो। (द्यावापृथिवी त्वा अन्तरिक्षेण उपयच्छामि) जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच अन्तरिक्ष एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कराता है और अन्तरिक्ष के द्वारा ही सूर्य पृथिवी या जल वर्षण करता और अन्न पैदा करता है पृथिवी अन्तरिक्ष द्वारा सूर्य की रश्मियों का ग्रहण करती है उसी प्रकार (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष अर्थात् स्नेहमय हृदय द्वारा ही पुरुष और स्त्री परस्पर विवाहित होते हैं। वही उनमें आदान-प्रतिदान का कारक है, उस द्वारा मैं पुरुष स्त्री को और स्त्री पुरुष को पत्नी और पतिरूप से स्वीकार करें। हे (वसवः) पृथिवी आदि प्रजाओं को बसाने वाले पदार्थों के समान यशस्वी, एवं बसने वाले प्रजास्थ पुरुषो ! आप लोग (स्वाहा) उत्तम दान-

प्रतिदान और सत्य वाणी द्वारा (सारघस्य) मधु मक्खी के बने विशुद्ध (मधुनः) मधु के समान मधुर व्यवहार के (धर्मम्) तेजोयुक्त पराक्रम से सम्पन्न, राज्यरूप परम लाभ का (पात) पालन करो या उत्तम रस, आनन्द का पान, उपभोग करो और (वाट्) उत्तम व्यवहार से ही (यजत) परस्पर लो, दो, सुसंगति करो। (सूर्यस्य) सूर्य के (वृष्टिवनये) वृष्टि प्रदान करने वाले (रश्मये) किरणों से पृथिवी, वायु आदि 'वसु' नामक पदार्थ 'मधु' अर्थात् जल और अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा प्रजा के प्रति ऐश्वर्यादि वर्षण करने वाले रश्मि अर्थात् राज्यप्रबन्ध के कार्य के लिये (वसवः) समस्त प्रजागणो! (यजत) तुम कर प्रदान करो, परस्पर संगत रहो। (२) गृहस्थपक्ष में— हे स्त्री पुरुषो! (सारघस्य मधुनः धर्मं पात) मधुमक्खियों के बनाये मधु के रस, मधुपर्क का पान करो और मधुर गृहस्थ धर्म, यज्ञ का पालन एवं रसास्वादन करो। अथवा सहस्रों भ्रमरों द्वारा संगृहीत मधु का जिस प्रकार स्त्री पुरुष उपभोग करते हैं उसी प्रकार गतिशील प्राणों के द्वारा सञ्चित मधुर, सुखप्रद (धर्मम्) सेचन करने योग्य वीर्य का (पात) पालन करो एवं गृहस्थोचित कार्य में उपयोग करो। (वाट) यज्ञाहुति के समान हो (यजत) उस सार पदार्थ का, श्रेष्ठ फल के लिये प्रदान करो और परस्पर संगत होवो। क्यों? सूर्य के समान (वृष्टिवनये रश्मये) वृष्टि अर्थात् वीर्यसेचन आदि कार्य तथा उससे उत्पन्न पुत्रादि लाभ के लिये।

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा। सरिराय त्वा वाताय स्वाहा। अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा। अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा॥ ७॥

वातनामानि। ऋष्टिः। मध्यमः॥

भा०—(१) मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझ राजा, विद्वान् पुरुष को (वाताय) प्राण वायु के समान, (समुद्राय) समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले

'समुद्र' वा मेघादि से जलवर्षण करने वाले वायु के पद के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से स्वीकार करता हूँ। (त्वा) तुझको (सरिराय वाताय) समस्त प्राणियों में एक साथ और एक समान चेष्टा उत्पन्न करने वाले वायु के समान सर्वप्रेरक शासक पद के लिये (स्वाहा) मैं शासक रूप से सत्य वाणी से स्वीकार करता हूँ। (अनाधृष्याय वाताय त्वा स्वाहा) प्रबल वात या आंधी को कोई काबू नहीं कर सकता उसी प्रकार शत्रुओं से कभी न दबने वाले, प्रचण्ड पराक्रमी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूँ। (त्वा अप्रतिधृष्याय वाताय स्वाहा) प्रतिस्पर्धी द्वारा दमन न किये जा सकने वाले प्रचण्ड तेजस्वी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूँ। (अवस्यवे वाताय त्वा स्वाहा) रक्षा करने वाले प्राण वायु के समान विद्यमान रक्षक पद के लिये तुझको मैं सत्य क्रिया से स्वीकार करता हूँ। (अशिमिदाय वाताय त्वा स्वाहा) अखण्ड शक्ति वाले वायु के समान अक्षत वीर्यवान् सामर्थ्यवान् पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूँ। (२) स्त्री पुरुष पक्ष में—स्त्री के लिये पुरुष वायु के समान प्राणप्रद समुद्र के समान अनन्त, मेघवत् सुखपूर्वक अभिलाषाओं का प्रेरक पूरक, दूसरे से धर्षण योग्य न हो, प्रतिस्पर्धा में न दबे, रक्षण में कुशल हो। वायु के समान सुखजनक, सुशीतल, अदृश्य, उत्साहवान्, प्राणप्रिय हो। इसी निमित्त स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को स्वीकार करे। वह अक्षत वीर्य, कर्म और सामर्थ्यवान् अथवा क्लेश कर्म को दूर करने वाला, 'अशिमिदाय' क्लेशात्मकं कर्म शिमि, तन्न ददाति इत्यशिमिदः तस्मै क्लेशविवर्जकायेति महीधरः। शिमीत कर्मनाम क्लेशात्मकं चैतत् अक्लेशदाय इति उवटः। शिमीति कर्मनाम शमयतेर्वा। इति यास्कः निरु० ५। २। ७॥ न शिमिं शान्तिं द्यति खण्डयति इति अशिमिदः। न शिमिं क्लेशयुक्तं कर्म ददाति इति वा। शिमिः शक्तिः न दीयते खण्ड्यते यस्य सोऽशिमिदः तस्मै। यदद्यते भुज्यते तदन्नं तन्मेदते यस्मिन् तस्मै रसायेति दया०।

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा। सवित्र त्वं ऽ ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥

इन्द्रः । अष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(वसुमते) धन ऐश्वर्य से युक्त बसने वाली प्रजा और बसने वाले उत्तम पुरुषों से युक्त और (रुद्रवते) शत्रुओं से रुलाने वाले वीर पुरुषों से युक्त या प्राणों से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पद के लिये (त्वा) तुझको मैं प्रजावर्ग स्वीकार करता हूँ। (आदित्यवते इन्द्राय स्वाहा) आदित्य अर्थात् १२ हों मासों से युक्त सूर्य के समान आदित्य ब्रह्मचारी, पूर्ण विद्वानों या आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण से युक्त ऐश्वर्यवान्, राजपद के लिये तुझको मैं स्वीकार करता हूँ। (अभिमातिघ्ने इन्द्राय त्वा) अभिमानी शत्रुओं के नाशकारी इन्द्र, सेनापति पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूँ। (सवित्रे) सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वप्रेरक, (ऋभुपते) ऋत, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, विद्वानों से युक्त, (विभुमते) व्यापक सामर्थ्यवान्, एवं विशेष बल और ज्ञान के उत्पादक पदार्थों, मन्त्रों और विद्वानों से युक्त, (वाजवते) अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम बल के स्वामी, पद के लिये (त्वा) तुझको (स्वाहा) उत्तम रीति से स्वीकार करता हूँ (बृहस्पतये) महान् राष्ट्र के पालक पद के लिये और (विश्वदेव्यावते) समस्त देवों, राजा और विद्वान् शासकों के हितकारी कार्य के पालक पद के लिये (स्वाहा) तुझे उत्तम रीति से हम स्वीकार करते हैं। स्त्री पुरुष भी एक दूसरे को, धन, प्राण की रक्षा, ऐश्वर्यवृद्धि, शत्रुनाश, शिल्पियों की रक्षा, अन्न, वेदवाणी, समस्त विद्वानों और हितकारी कार्यों के लिये स्वीकार करें।

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा घर्माय। स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ९ ॥

वायुर्यमः । भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अंगिरस्वते) अंगारों के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुषों और प्राण विद्युदादि विद्या के ज्ञाता विद्वानों से संयुक्त और (पितृमते) पालक पुरुषों से युक्त (यमाय) सर्वनियन्ता राजा के पद के लिये (त्वा स्वाहा) उत्तम सत्यवाणी से तुझ को स्वीकार करता हूँ। (घर्माय स्वाहा) अति तेजस्वी यज्ञ, प्रजापति पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूँ। (घर्मः) तेजस्वी पद (पित्रे) पालक पुरुष को (स्वाहा) उत्तम रीति से प्रदान किया जाय। स्त्री पुरुष पक्ष में—हम दोनों (घर्मः) स्वयं तेजस्वी या वीर्यवान् होकर उत्तम ज्ञानी, पालक जनों से युक्त सन्तान के लिये यज्ञ के लिये उत्तम सत्य वाणी और क्रिया द्वारा एक दूसरे को स्वीकार करें। 'समुद्राय त्वा वाताय (मं० ७) से लेकर 'यमाय' त्वा० इत्यादि तक १२ नाम वायु गुणभेद से हैं। यह शतपथकार का मत है। गुणभेद से उपमानोपमेयभाव से इसकी संगति लगानी चाहिये।

विश्वाऽ आशा॑ दक्षिण॒सद्विश्वा॑न्दे॒वानया॑डि॒ह ।
स्वाहा॑कृतस्य घ॒र्मस्य॒ मधोः॑ पिबतमश्विना ॥ १० ॥

अश्विनौ। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे (अश्विना) राष्ट्र के भोग करने वाले उसके स्वामी राज-प्रजावर्ग तुम दोनों ! (स्वाहाकृतस्य) एक दूसरे के प्रति सत्य संकल्प और सत्य वाणी द्वारा उत्पन्न किये (घर्मस्य) राष्ट्ररूप यज्ञ के अति प्रदीप्त या जलसेचन से प्राप्त (मधोः) मधुर अन्न का (पिबतम्) उपभोग करो। वह राष्ट्र का नियन्ता विद्वान् राजपुरोहित (दक्षिणसत्) दक्षिण दिशा में विराजमान प्रखर, सूर्य के समान तेजस्वी एवं (दक्षिणसत्) राजासन के दक्षिण भाग और दायें ओर में विराजमान होकर (विश्वाः आशाः) समस्त दिशाओं की प्रजाओं और (देवान्) समस्त उत्तम विद्वान्, वीर पुरुषों और राजाओं को (इह) इस राष्ट्र में या सभाभवन में (अयाट्) संगत

१०—अयाळिह० इति काण्व० ।

करता, आदर करता है। (२) यज्ञपक्ष में—वेदी के दक्षिण भाग में अध्वर्यु विराज कर जलादि देवों के विशोधन के लिये अग्नि में आहुति प्रदान करता है। (अश्विनौ) दोनों स्त्री पुरुष (स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतम्) आहुति किये यज्ञशेष का उपभोग करें।

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः।
स्वाहाग्नये याज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥ ११ ॥

यज्ञः। विराडुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे विद्वन्! (इमम् यज्ञम्) इस राष्ट्ररूप यज्ञ, प्रजापालक राजा को (दिवि धाः) राजसभा के आधार पर धारण कर (इमं यज्ञम्) इस प्रजापालक सबके संगति कराने में कुशल पुरुष को (दिवि) उत्तम ज्ञान में या राजसभा के ऊपर सभापति रूप से स्थापित कर। (याज्ञियाय) यज्ञ, राष्ट्रव्यवस्था के हितकर, उसको संभालने में योग्य (अग्नये) ज्ञानवान्, अग्रणी तेजस्वी पुरुष को (स्वाहा) उत्तम अधिकार, मान और आदर एवं अन्नादि पदार्थ प्रदान करो। (यजुर्भ्यः) अन्य उसके साथ राज्यकार्यों में सहयोग देने वाले शासक जनों को भी (शम्) शान्तिसुख प्राप्त हो अथवा (यजुर्भ्यः) यजुर्वेद के मन्त्रों में प्रतिपादित क्षत्रियोचित राज्य-कर्मों से शान्त स्थापित करो।

अश्विना घर्मं पातं हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ १२ ॥

अश्विनौ। आर्ची पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे (अश्विनौ) राज-प्रजावर्गो! हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों (अहर्दिवाभिः) दिन और रात सदा, (हार्द्वानम्) हृदय को प्रिय लगने वाले, (घर्मम्) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र को (ऊतिभिः) रक्षासाधनों से (पातम्) पालन करो। (तन्त्रायिणे) शस्त्रों और शिल्पों के जानने वाले और कुटुम्ब और उसके समान समस्त राज्यतन्त्र के धारण करने हारे गृहपति और राजा को और (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और पृथिवी के

समान राजा प्रजा वर्गों और स्त्री-पुरुषों को (नमः) अधिकार, मान और अन्न प्राप्त हों।

अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवीऽअमंसाताम्। इहैव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥

आश्विनौ। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे राजप्रजावर्गो! आप दोनों (द्यावापृथिवी अनु) सूर्य और पृथिवी के समान परस्पर उपकारक होकर (घर्मम्) राष्ट्रपति का पालन और राष्ट्र-ऐश्वर्य को रस के समान (पातम्) पालन और उपभोग करो। (अनु अमंसाताम्) एक दूसरे का आदर, मान करो। (इह एव) यहां, (रातयः) विद्यादि सुखों और ऐश्वर्यों के दान भी (सन्तु) हों। स्त्री-पुरुष अपने गृहस्थरूप यज्ञ की रक्षा करें, नाना दान भी करें।

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥ १४ ॥

द्यावापृथिव्यौ। अतिशक्वरी। पंचमः॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष! तू (इषे) अन्न की वृद्धि के लिये प्रजावर्ग को (पिन्वस्व) पुष्ट कर। (ऊर्जे पिन्वस्व) बल पराक्रम के लिये पुष्ट कर। (ब्रह्मणे पिन्वस्व) ब्रह्म, वेद और वेदज्ञ ब्राह्मणों की वृद्धि के लिये पुष्ट कर। (क्षत्राय पिन्वस्व) क्षात्रबल और क्षत्रियों की वृद्धि के लिये पुष्ट कर। (द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व) सूर्य, पृथिवी और उनके समान स्त्री और पुरुषों की वृद्धि के लिये भी पुष्ट कर। हे राजन्! (धर्मा असि) समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होने से तू 'धर्मा' है। (सुधर्मा असि) उत्तम रीति से धारण में शक्तिमान् होने से तू 'सुधर्मा' है। तू (अमेनिः असि) हिंसारहित हो। (अस्मे) हमें (नृम्णानि) मनुष्यों के हितकारी ऐश्वर्य (धारय) धारण करा। (ब्रह्म धारय) वेद और वेदज्ञ ब्राह्मण वर्ग

को धारण कर (क्षत्रम्) वीर्य, वीर्यवान् वीर पुरुषों को धारण कर । (विशं धारय) वैश्य प्रजा को धारण कर ।

स्वाहा॑ पू॒ष्णे श॒रसे॒ स्वाहा॒ ग्राव॑भ्यः॒ स्वाहा॑ प्रति॒र॒वेभ्यः॑ । स्वाहा॑ पि॒तृभ्य॑ ऊ॒र्ध्वब॑र्हिभ्यो घ॒र्म॒पाव॑भ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬं स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑ ॥ १५ ॥

पूषादयो लिङ्गोक्ताः । स्वराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(पूष्णे) अन्न और वायु के समान प्रजा को पोषण करने वाले (शरसे) और शत्रु को बाण के समान मारने वाले वीर पुरुष को (स्वाहा) उत्तम मान, आदर प्राप्त हों । (ग्रावभ्यः स्वाहा) मेघों के समान गर्जना करने वाले वीरों और ज्ञानोपदेष्टा गुरु जनों को उत्तम आदर प्राप्त हो । (प्रतिरवेभ्यः स्वाहा) गुरु के कहे वचनों को दोहराने वाले शिष्यों अथवा प्रतिस्पर्धियों के प्रति उत्तर देने वाले, राष्ट्र के प्राणों के समान वीर पुरुषों को उत्तम अन्न एवं मान प्राप्त हो । (ऊर्ध्ववर्हिभ्यः) प्राची दिशा की ओर उगे कुशादि काटने वाले, पालक यज्ञशील सोमयाजी विद्वानों के उत्कृष्ट पदों तक वृद्धि करने हारे और (घर्मपावभ्यः) यज्ञ और अपने प्रखर तेज से सबके हृदयों और देश के शासन को पवित्र करने हारे (पितृभ्यः) सबके गुरुजन, माता पिता के समान अथवा ऋतुओं के समान उत्तम विद्वानों को (स्वाहा) उत्तम अन्न, आदर पद प्राप्त हो । (द्यावापृथिव्याम् स्वाहा) सूर्य और अन्तरिक्ष या भूमि के समान राजा रानी, राजा प्रजावर्ग और उत्तम स्त्री पुरुषों के लिये उत्तम मानसूचक वचन और अधिकार और अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों । (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) समस्त विद्वान् दानशील, विजयेच्छु पुरुषों को उत्तम आदर प्राप्त हो ।

स्वाहा॑ रु॒द्राय॑ रु॒द्रहू॑तये॒ स्वाहा॒ सं ज्योति॑षा॒ ज्योतिः॑ । अहः॒ के॒तुना॑ जुषता॒ᳬं सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑ । रात्रिः॑ के॒तुना॑ जुषता॒ᳬं

सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा। मधुं हुतमिन्द्रतमे ऽ अग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते ऽ अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ १६ ॥

रुद्रादयः। भुरिगतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—(रुद्रहूतये) दुष्टों को रुलाने, वीर पुरुषों को आह्वान करने वाले, उनके आज्ञापक, (रुद्राय) रुद्ररूप सेनापति को (स्वाहा) उत्तम आदर प्राप्त हो। (स्वाहा) सत्य वाणी से (ज्योतिः) ज्योति, प्रकाश (ज्योतिषा) अपने से अधिक बल प्रकाश से मिल कर एक हो जाता है उसी प्रकार वीर पुरुष वीर सेनापति से मिलकर एक हो जायं। (अहः केतुना) दिन उसके व्यापक प्रवर्त्तक सूर्य से युक्त होता है उसी प्रकार (सुज्योतिः) उत्तम, तेज वाला सेनापति (स्वाहा) उत्तम सत्य वचन द्वारा (ज्योतिषा) तेजस्वी पुरुष से (संजुषताम्) सुसंगत हो, (केतुना) रात्रि के ज्ञापक चन्द्र से (रात्रिः) सब प्राणियों को सुख देने वाली रात्रि युक्त होती है उसी प्रकार (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष से (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति वाली (रात्रिः) सब प्रजा को सुखदायी राज्य-व्यवस्था (स्वाहा) उत्तम, सत्यक्रिया द्वारा (जुषताम्) संयुक्त रहे। (इन्द्रतमे) अति वीर्यवान् तेजस्वी (अग्नौ) आग में (हुतम् मधु) आहुति किये हुए मधुर सुगन्धयुक्त अन्नादि पदार्थ को हम उपभोग करते हैं उसी प्रकार तुझ (इन्द्रतमे) सबसे अधिक बलवान्, ऐश्वर्यवान् (अग्नौ) शत्रु को आग के समान जला डालने वाले तेजस्वी राजा के अधीन (हुतम्) प्रदान किये (मधु) पृथिवीरूप राष्ट्र का हम प्रजाजन (अश्याम) भोग करें। हे (देव) विजिगीषो! हे (घर्म) तेजस्विन्! राजन्! (ते नमः अस्तु) तुझे अन्न, आदर, बल, वीर्य प्राप्त हो। (मा) मुझ प्रजावर्ग को तू (मा हिंसीः) मत मार, पीड़ित मत कर। (२) सामान्य जीवों के पक्ष में—(रुद्रहूतये रुद्राय) प्राणों की आहुति से जीने वाले जीव के लिये (ज्योतिषा ज्योतिः सम् जुषताम्) प्रकाश के साथ प्रकाश संगत करे। (केतुना) बुद्धिपूर्वक

(अहः रात्रिः) दिन और रात्रि को भी (ज्योतिषा ज्योतिः) ज्ञान से सद्-गुणों को और मनन चिन्तन से धर्मादि तत्वों को संगत कर सेवन करो। अति तीव्र अग्नि में आहुति किये घृतादि मधुर पदार्थों को हम प्राप्त हों। हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। आप हमें पीड़ित न कर पालन करें।

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः। उत श्रवसा पृथिवीᳯं सᳯं सीदस्व महाँ२ऽ असि रोचस्व देववीतमः। वि धूममग्ने ऽ अरुषं मियध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ १७ ॥

अग्निः। त्र्यवसाना निचृद् अति शक्वरी। पंचमः ॥

भा०—हे वीर विद्वन् ! राजन् ! (महिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (इमं दिवम्) इस तेजस्वी सूर्य को भी (अभि बभूव) मात करे। वह (विप्रः) विविध प्रजाओं को पूर्ण करने वाला और (सप्रथाः) सर्वत्र एक साथ फैलने वाला है। (उत) और (श्रवसा) यश और ऐश्वर्य के बल से तू (पृथिवीम्) पृथिवी पर (सं सीदस्व) अच्छी प्रकार विराजमान हो। तू (महान् असि) बड़ा, बड़े सामर्थ्य वाला है। (देववीतमः) दिव्य गुणों से अति अधिक प्रकाशमान होकर (रोचस्व) सबको प्रिय हो। हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे (मियेध्य) शत्रुओं के नाश करने में समर्थ ! अग्नि अन्धकार के समय अपने तेज से भभकते हुए लाल धुएं को छोड़ता है उसी प्रकार तू भी (अरुषम्) रोषरहित, प्रेमयुक्त, देदीप्यमान, प्रताप शाली (दर्शतम्) दर्शनीय, (धूमम्) शत्रुओं के कंपाने वाले सेनाबल को (वि सृज) विविध दिशाओं में भेज और विजय कर।

'दिवं' अविद्यादिगुणप्रकाशमिति दया० तत् चिन्त्यम् ॥

या ते घर्म दिव्या शुग्या गायत्र्याᳯं हविर्धाने। सा तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा। या ते घर्मान्तरिक्षे शुग्या त्रिष्टुभ्याग्नीध्रे। सा तऽ आ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा। या ते घर्म पृथिव्याᳯं शुग्या जगत्याᳯं सदस्या। सा तऽआ प्यायतां निष्ट्यायतां तस्यै ते स्वाहा ॥ १८ ॥

यज्ञो घर्मः । भुरिगाकृतिः । पंचमः ॥

भा०—हे (घर्म) तेजस्विन् ! राजन् ! (या) जो (ते) तेरी (दिव्या) दिव्य पदार्थ की दीप्ति के समान, उत्तम गुणों की (शुक्) कान्ति, (गायत्र्याम्) वेदों के गान करने वाले ब्राह्मण विद्वानों की रक्षा करने वाला राज्यनीति में और (हविर्धाने) उत्तम संग्रह योग्य कर, अन्नादि पदार्थों को ग्रहण करने में है (सा) वह (ते) तेरी (आप्यायताम्) खूब, बढ़े, वह (निः स्त्यायताम्) खूब प्रबल हो और (ते) तेरे (तस्यै) उस शक्ति के लिये (स्वाहा) तुझे उत्तम यश प्राप्त हो। हे (घर्म) वायु के समान तेजस्विन् बलवन् ! राजन् ! (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में वायु के समान या (शुक्) जो तेरी प्रचण्ड शक्ति (आग्नीध्रे) अग्नियों के समान प्रदीप्त, तेजस्वी वीर पुरुषों को धारण पोषण करने के कार्य में और (त्रिष्टुभि) विविध क्षात्रशक्ति में है (ते सा) वह तेरी (आप्यायताम्) खूब बढ़े। (निः स्त्यायताम्) दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) उससे तुझे उत्तम यश प्राप्त हो। हे (घर्म) तेजस्विन् ! (जगत्याम्) जंगम जीवों से युक्त इस सृष्टि में (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (या) जो (ते) तेरी (सदस्या) राजसभा में प्रकट होने वाली (शुक्) शोभा कान्ति और शक्ति है (सा ते आप्यायताम्) वह तेरी शक्ति बढ़े। (निः स्त्यायताम्) दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) तेरी उस शक्ति की खूब कीर्ति हो।

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि ।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुवितायु नव्यसे ॥ १९ ॥

यज्ञः । निचृदुपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (परस्पाय) दूसरों को पालन करने प्रजा को शत्रु से बचाने के लिये हो। अतः तू (क्षत्रस्य) क्षत्रियों और राष्ट्र के बल (ब्राह्मणः) विद्वान् ब्राह्मणों धनैश्वर्य और अन्न और (तन्वं पाहि) शरीरों विस्तृत सम्पत्ति की रक्षा कर। (विशः धर्मणा) प्रजाओं के कर्त्तव्य नियम और धर्म से (नव्यसे) नये से नये, उत्तम (सुविताय) शुभ पदार्थों के प्राप्त

करने एवं उत्तम मार्ग चलने और राज्य शासन के कार्य के लिये हम (त्वा अनुक्रामाम) तेरा अनुगमन करें तेरी आज्ञा पालें।

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२०॥

यज्ञः। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष! राजन्! (चतुःस्रक्तिः) तू चारों दिशाओं में प्रबल हथियारों वाला हो। तू (ऋतस्य नाभिः) सत्य, न्यायव्यवस्था, धर्म मर्यादा और कानून का नाभि, केन्द्र हो। (सः) वह तू (सप्रथाः) विस्तृत शक्ति (सः) वह तू (सप्रथाः) अति विस्तृत यश और राष्ट्र वाला होकर (विश्वायुः) पूर्ण आयु होकर, जीवन भर (नः) हमारी रक्षा कर। (सः) वह तू (नः) हमारे कल्याण के लिये (सर्वायुः सप्रथाः) पूर्ण जीवन को प्राप्त हो और विस्तृत कीर्ति वाला हो। हम लोग (द्वेषः) द्वेष करने वाले और (ह्वाः) कुटिल चाल वाले और (अन्यव्रतस्य) अन्य, भिन्न शत्रु के कर्मों वाले पुरुष को (अप सश्चिम) दूर करें। शत्रुवाच्यान्यशब्दः प्रायो वेदे दृश्यते। यथा 'अन्यांस्तपन्तु हेतयः०' इत्यादि।

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥

यज्ञः। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे (घर्म) मेघ के समान प्रजा पर सुख समृद्धि के वर्षक और सूर्य के समान तेजस्विन्! (ते) तेरा (एतत्) यह इतना बड़ा (पुरीषम्) ऐश्वर्य और राज्यपालन करने का सामर्थ्य है। तू (तेन) उससे (वर्धस्व) बढ़ और (अप्यायस्व च) खूब समृद्ध हो और प्रजा को भी पुष्ट कर। (वयम् च) हम भी (वर्धिषीमहि) बढ़ें और (आ प्यासिषीमहि) खूब लक्ष्मी से समृद्ध और तृप्त हों।

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥

यज्ञः । परोष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(वृषा) शत्रुओं को रोकने में समर्थ, प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने वाला पुरुष मेघ के समान (अचिक्रदत्) गर्जन करता है। (हरिः) प्रजाओं के दुःखों को हरने और सूर्य के समान प्रजा से कर लेने वाला होकर, (मित्रः न) सूर्य के समान सबके प्रति समान भाव से स्नेही, न्यायकारी, (दर्शतः) सब से दर्शनीय और सबका द्रष्टा है। वह ही (सूर्येण) सूर्य के समान तेज से (सं दिद्युतत्) अच्छी प्रकार चमके। वह शौर्य, वीर्य, बल, पराक्रम और उपकार आदि अपने गुणों को प्रकाशित करे। वह (उदधिः) सागर के समान गम्भीर हो और (निधिः) कोश, खजाने के समान सब ऐश्वर्यों का रक्षक हो।

सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २१ ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २३ ॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ।२६।

इन्द्रः । स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(यावती) जितने बड़े (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि या सूर्य और भूमि और उनके समान स्त्री पुरुष एवं राजा प्रजावर्ग हैं और (यावत्) जहां तक (सिन्धवः) सातों समुद्र (वि तस्थिरे) विविध दिशाओं में फैले हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे लिये (तावन्तम्) वहां तक का (ग्रहम्) शासनाधिकार (ऊर्जा) बल पराक्रम से (गृह्णामि) ग्रहण

करूं और वहां तक ही मैं (मयि) अपने में (अक्षितम्-ग्रहम्) अक्षय, ग्रहणसामर्थ्य को (गृह्णामि) धारण करूं।

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः। घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥ २७ ॥

यज्ञः। पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—(मयि) मुझ प्रजावर्ग में (त्यत्) वह अलौकिक, अपूर्व, वाञ्छनीय (बृहत्) बड़ा भारी (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य बल प्राप्त हो। (मयिः तक्षः) मुझमें बल, प्रज्ञा, बुद्धि प्राप्त हो। (मयि) मुझ राजा के अधीन (क्रतुः) बड़ा भारी ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रबल और राज्यकार्य प्राप्त हो। इस प्रकार (घर्मः) तेजस्वी राजा (त्रिशुक्) अग्नि, विद्युत, सूर्य तीनों के समान तेजस्वी होकर (विराजा ज्योतिषा) विराट् प्रकाश, विविध राजोचित तेज और (ब्रह्मणा तेजसा) ब्रह्म, वेदमय, बड़े भारी ऐश्वर्यमय तीक्ष्ण प्रताप के (सह) साथ (विराजति) विराजे, शोभा को प्राप्त हो।

पयसो रेतऽ आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराᳬसमाम्। त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः। इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमतऽ उपहूतऽ उपहूतस्य भक्षयामि ॥ २८ ॥

यज्ञः। स्वराड् धृतिः। पंचमः ॥

भा०—(पयसः रेतः आभृतम्) दूध से शरीर में वीर्य धारण किया जाता है और (पयसः) वृष्टि के जल से (रेतः) पृथ्वी के ऊपर ओषधि और प्राणियों के उत्पादक बीज (आभृतम्) पुष्ट और प्राप्त होता है उसी प्रकार मैं राजा (पयसः) राष्ट्र के पोषण करने वाले ऐश्वर्य बल से (रेतः) उसमें उत्पादक सामर्थ्य अर्थात् प्रजा और ऐश्वर्य के पदार्थों के पैदावार के सामर्थ्य को (आभृतम्) प्राप्त कराऊं और पुष्ट कराऊं। गौ को दोहन करके उसके दुग्ध का सभी उपभोग करते हैं और वृष्टि जल के द्वारा

प्रभूत अन्न को प्रति वर्ष प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (तस्य) उस राष्ट्रैश्वर्य के (दोहम्) योग्य रीति से प्राप्त पूर्ण ऐश्वर्य को हम लोग (उत्तराम् उत्तराम् समाम्) उत्तरोत्तर आने वाले वर्ष में प्राप्त करें और उसका उपभोग करें। हे सुषम्ण) उत्तम सुखयुक्त प्रजाजन ! (ते क्रत्वे) तेरे कर्म और ज्ञान की वृद्धि के लिये (सुषम्णस्य) उत्तम सुख से युक्त (ते) तेरे (दक्षस्य) बल और (त्विषः) कान्ति को (संवृक) स्वीकार करने वाला होकर मैं (अग्निहुतः) अग्रणी, तेजस्वी नायक द्वारा स्वीकृत होकर (उप-हूतः) आदरपूर्वक बुलाया जाकर ही मैं (इन्द्रपीतस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुषों वा प्रजाजन से भुक्त या पालित और (प्रजापतिभक्षितस्य) प्रजा के पालक माता पिताओं द्वारा खाये गये, उपयुक्त, (मधुमतः) मधुर अन्नादि ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र को मैं सेनापति और राजा (भक्षयामि) उपभोग करूं। महावीर का समस्त प्रकरण, ब्रह्मचर्य परमेश्वरोपासना, योग द्वारा आत्म-साधना और सूर्य चन्द्र आदि परक भी है, विस्तारभय से नहीं लिखा।

इत्यष्टात्रिंशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः। पृथिव्यै स्वाहा-ग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥ १ ॥

प्राणादयो लिङ्गोक्ताः । पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(साधिपतिकेभ्यः) अधिपति, आत्मा या मन के सहित शरीर में विद्यमान प्राणों के समान राष्ट्र में अपने अधिपति, अध्यक्षों के सहित

(प्राणेभ्यः) उत्तम जीवन वाले, राष्ट्र को चेतन बनाये रखने वाले प्रजाजनों को (स्वाहा) उत्तम रीति से अन्न आदि प्राप्त हो। (पृथिव्यै अन्तरिक्षाय अग्नये वायवे दिवे सूर्याय स्वाहा) पृथिवी और उस पर रहने वाले प्रजा-जन को उत्तम अन्न प्राप्त हो। 'अन्तरिक्ष' को उत्तम आहुति और राजा प्रजा के बीच के मध्यस्थ कार्यकर्त्ता को आदर और अग्नि, वायु प्रकाश और सूर्य इनको उत्तम घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों की आहुति और इनकी उत्तम ज्ञानपूर्वक प्राप्ति हो। (वायवे स्वाहा) वायु को उत्तम आहुति प्राप्त हो और वायु के समान सबको जीवन देने वाले एवं उसके समान शत्रु को उखाड़ देने वाले राजा को आदर प्राप्त हो। (दिवे स्वाहा) सब तेजस्वी सूर्य चन्द्रादिक के आश्रय स्थान आकाश के समान सब तेजस्वी पुरुषों के आश्रय राजा को उत्तम अन्न, यश, ऐश्वर्य प्राप्त हो (सूर्याय स्वाहा) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को उत्तम अन्न और आदर प्राप्त हो।

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥ २ ॥

दिगादयः। भुरिग् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(दिग्भ्यः) दिशाओं और उनके वासी प्रजाओं को (चन्द्राय) चन्द्र के समान आह्लादक राजा को (नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) नक्षत्रों के समान अपने स्थान से विचलित न होने वाले वीर पुरुषों को (अद्भ्यः) जलों के समान शीतल स्वभाव, मल, पाप के दूर करने वाले आप्त पुरुषों को (वरुणस्य) मेघ और समुद्र के समान सर्वश्रेष्ठ राजा को (नाभ्यै) अपने में सबको बांध लेने वाले, नाभि के समान केन्द्रस्थ पुरुष को (पूताय) पवित्र करने वाले स्वयं पवित्र पुरुष को (स्वाहा) मान, आदर, अन्न, यश प्राप्त हो। (२) अथवा—(१) मन सहित समस्त प्राणों को बलवान् करने के लिये उत्तम साधन करो। पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश और सूर्य इनको सुखकारी बनाने के लिये उत्तम साधन करो। (२) दिशाएं,

चन्द्र, नक्षत्र, जल, समुद्र, नाभि और शरीर की पवित्रता के लिये भी उत्तम साधनों का प्रयोग करो।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा ।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥३॥

वागादयः । स्वराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वाचे) वाणी के सुधार और उसकी उत्तम शिक्षा के लिये, (प्राणाय, प्राणाय) दायें बायें प्राणों की स्वच्छता और बल के लिये (चक्षुषे, चक्षुषे) दायें बायें आंखों के उत्तम शक्ति के लिये, (श्रोत्राय, श्रोत्राय) दायें बायें कानों की श्रवण शक्ति के लिये (सुआहा ६) उमम अन्न खाओ, उत्तम रीति से इनका उपयोग लो और उनको सन्मार्ग में चलावो ।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय ।
पशूनाᳬं रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥४॥

श्रीः । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(मनसः) मन, मननशील अन्तःकरण की (कामम्) इच्छा और (आकूतीम्) अभिप्राय जतलाने की शक्ति और (वाचः) वाणी के (सत्य) यथार्थ, सत्य भाषण को मैं (अशीय) प्राप्त करूं अर्थात् मन से दृढ़ इच्छा और प्रबल अभिप्राय ज्ञापन का अभ्यास करूं और वाणी से सत्य बोलूं। (पशूनाम्) पशुओं के (रूपम्) नाना प्रकार के (अन्नस्य) अन्न के (रसः) नाना सार रूप रस और (यशः श्रीः) यश और ऐश्वर्य ये सब (मयि) मुझ पुरुष में (स्वाहा) उत्तम कर्म और वाणी से (श्रयताम्) आवें और स्थिर हों।

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः सᳬं सन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यतऽआश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः कलथन्। मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाणऽआग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥ ५ ॥

५—विष्कन्दयाव० इति काण्वः ।

प्रजापतिर्महावीरः । कृतिः । निषादः ॥

भा०—(संभ्रियमाणः) प्रजाएं जब राजा को नाना ऐश्वर्यों से पुष्ट करती हैं तब वह (प्रजापतिः) प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' है । (सम्भृतः सम्राट्) वह अच्छी प्रकार परिपुष्ट हो जाता है तब वह प्रजा में उत्तम रीति से सर्वत्र ऐश्वर्य से प्रकाशित होने से 'सम्राट्' है। (संसन्नः वैश्वदेवः) अच्छी प्रकार राजसभा में विराज कर समस्त विद्वानों से आदर पाने के कारण 'वैश्वदेव' है । (प्रविक्तः घर्मः) ऊंचे आसन को प्राप्त होकर वह तेजस्वी होने से 'घर्म' है । (उद्यतः तेजः) उन्नत पद पर स्थिर होकर वह तेजस्वी एवं तीक्ष्ण स्वभाव होने से 'तेज' या सूर्य के समान है । (पयसि आश्विनः) जल द्वारा अभिषेक कर लेने पर स्त्री पुरुष अथवा राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों द्वारा अभिषित होने के कारण वह 'आश्विन' है । (विस्यन्दमाने पौष्णः) विशेषरूप से वेग से गमन करते हुए वह राजा पृथिवी के हित के लिये प्रवृत्त होने के कारण 'पौष्ण' है । (कुथन् मारुतः) जब वह शत्रुओं का नाश कर रहा होता है तब वह मारने वाले सैनिकों का स्वामी होने से 'मारुत' है । (शरसि संतायमाने मैत्रः) शत्रुनाशक सेनाबल के स्थान स्थान पर विस्तृत कर देने पर अथवा जलाशय, तड़ाग आदि कृषि के साधनों के फैला देने पर वह (मैत्रः) प्रजा के प्रति स्नेहवान् और प्रजा को भरण पोषण से रक्षा करने वाला होने से वह सूर्य के समान तेजस्वी राजा 'मित्र' है । (वायव्यः ह्रियमाणः) वेग से युद्धक्षेत्र में रथादि साधनों से जाता हुआ वह 'वायु' के समान तीव्रगामी होकर शत्रु की जड़ों को हिला देने वाला होने से 'वायव्य' है । (हूयमानः आग्नेयः) वह बराबर शत्रु के ऐश्वर्यों से उनके शरीर से मानो आहुति पाता हुआ, अग्नि के समान प्रचण्ड होने के कारण 'आग्नेय' है । (हुतः वाक्) सब प्रजाओं द्वारा अपना राजा स्वीकार किया जाकर, सबको आज्ञा देने वाला होने से 'वाक्' स्वरूप है । वह सबको आज्ञा देता है । इस प्रकार ये १२ स्वरूप राजा के समझने चाहिये ।

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीयऽ आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऽ ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे वरुणो दशमऽ इन्द्रऽ एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥ ६ ॥

सावित्रादयः। विराड्धृतिः। धैवतः॥

भा०—राजा के बारह रूप। (प्रथमे अहनि सविता) पहले दिन वह सूर्य के समान सबका प्रेरक, आज्ञापक और ऐश्वर्य का उत्पादक होने से 'सविता' है। (द्वितीये अग्निः) दूसरे दिन वह अग्नि के समान मार्गप्रकाशक अग्रणी होने से 'अग्नि' है। (तृतीये वायुः) तीसरे दिन वायु के समान बलवान् हो जाने से वह 'वायु' है। (चतुर्थे आदित्यः) चौथे दिन आदित्य के समान जलों के समान करों के ग्रहण करने से 'आदित्य' है। (चन्द्रमाः पञ्चमे) पाचवें दिन चन्द्र के समान आह्लादक होने से 'चन्द्रमा' है। (षष्ठे ऋतुः) छठे दिन सबको नाना पदार्थों के प्राप्त कराने और सबको नाना प्रकारों से सुखी करने वाला होने से 'ऋतु' है। (मरुतः सप्तमे) सातवें दिन सैनिकों के रूप में या प्रजा साधारण के रूप में विद्यमान होने से वह 'मरुत्गण' ही है। (अष्टमे बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का पालक होने से 'बृहस्पति' है। (मित्रः नवमे) नवें दिन वह सर्वत्र स्नेहवान् होने से 'मित्र' है। (वरुणः दशमे) दसवें दिन वह सबसे वरण योग्य होने से 'वरुण' है। (एकादशे इन्द्रः) ग्यारहवें दिन विद्युत् के समान तेजस्वी होने से 'इन्द्र' है और (विश्वेदेवाः द्वादशे) बारहवें दिन समस्त विद्वानों के बीच में निष्पक्षपात होकर रहने से विश्वदेवों अर्थात् विद्वानों से सम्मति में भिन्न न होने से 'विश्वदेवमय' है। (२) जीवपक्ष में—वह मरणोत्तर प्रतिदिन क्रम से सूर्य, आग, वायु, रश्मि, चन्द्र, ऋतु, वायु, प्राण, उदान और विद्युत् और शेष सब दिव्य पदार्थ इनमें उत्तरोत्तर प्राप्त होने से उस-उस रूप का होकर विचरता है और कर्मफलों का भोग करता है।

उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॒ ध्वा॒न्तश्च॒ धुनि॑श्च ।
सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भियु॒ग्वा च॑ वि॒क्षिपः॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

मरुतः । भुरिग गायत्री । षड्जः ॥

भा०—वह राजा (उग्रः च) भयंकर और सदा वायु के समान प्रचण्ड वेग से शत्रु पर आक्रमण करने से 'उग्र' है । (भीमः च) उनको भयप्रद होने से 'भीम' है । (ध्वान्तः च) अन्धकार के समान मूढ़ कर देने वाला होने से 'ध्वान्त' है । (धुनिः च) कंपा देने वाला होने से 'धुनि' है । (सासह्वान् च) बराबर पराजित करने में समर्थ होने से 'सासह्वान्' है । (अभियुग्वा) उन पर आक्रमण करने से 'अभियुग्वा' है और उनको तितर वितर कर देने से 'विक्षिप' है । (स्वाहा) वह अपने ही उत्तम कर्मों के कारण उन नामों से मान पाने योग्य है । (२) जीवपक्ष में—जीव, तीव्र स्वभाव, भयंकर तामस, कम्पमान, सहनशील, आसक्त विक्षिप्त और [चकारसे] शान्त, निर्भय, प्रकाशमान, स्थिर, असहनशील, विक्षिप्त आदि अपने कर्मफलों से हो जाता है ।

अ॒ग्निꣳ हृद॑येना॒शनिꣳ॑ हृदया॒ग्रेण॑ पशु॒पतिं॑ कृत्स्न॒हृद॑येन भ॒वं य॒क्ना । श॒र्वं मत॑स्नाभ्या॒मीशा॑नं म॒न्युना॑ महादे॒वम॑न्तः पर्श॒व्येनो॒ग्रं दे॒वं व॑नि॒ष्ठुना॑ वसिष्ठ॒हनुः॒ शिङ्गी॑नि को॒श्याभ्या॑म् ॥ ८ ॥
उ॒ग्रं लोहि॑तेन मि॒त्रꣳ सौव्र॑त्येन रु॒द्रं दौव्र॑त्ये॒नेन्द्रं॑ प्रक्री॒डेन॑ म॒रुतो॒ बले॑न सा॒ध्यान् प्र॒मुदा॑ । भ॒वस्य॑ कण्ठ्य॒ꣳ रु॒द्रस्या॑न्तः पा॒र्श्व्यं॑ महादे॒वस्य॒ यकृ॑च्छ॒र्वस्य॑ वनि॒ष्ठुः प॑शु॒पतेः॑ पुरीतत् ॥ ९ ॥

प्रजापतिः (८) अग्न्यादयः (९) उग्रादयः । (८) भुरिगष्टिः । मध्यमः (९) आकृतिः । पंचमः ॥

८, ९—'तत्राग्निं हृदयेन,' 'उग्रं लगोहितेन' इति द्वेकण्डिके ब्राह्मणरूपे देवताऽवयवसम्बन्धविधानादिति महीधरः ।

भा०—(१) राजा के सर्वदेवमय शरीर का अलंकाररूप से वर्णन। वह (हृदयेन अग्निम्) हृदय से अग्नि को धारण करता है। (हृदयाग्रेण अशनिम्) हृदय के अगले भाग से वह विद्युत् को धारण करता है। (कृत्स्नं हृदयेन पशुपतिम्) समस्त हृदय के भाग से वह पशुओं के पालक प्राणवायु को धारण करता है। (यक्ना भवम्) यकृत, कलेजे से वह सर्वत्र विद्यमान आकाश को धारण करता। है (मतस्नाभ्यां शर्वम्) गुर्दों से वह जल को धारण करता है। (मन्युना ईशानम्) मननशील, चित्त या मन्यु, क्रोध से सब पर शासन करने वाले ऐश्वर्यवान् विद्युत् को धारण करता है। (अन्तः पर्शव्येन) भीतर की पसुलियों से (महादेवम्) सबसे बड़े देव, अन्तर्यामी परमेश्वर को धारण करता है। (वनिष्ठुना) आंतों से (उग्रं देवम्) तीव्र देव, अग्नि को जाठर रूप से धारण करता है। (वसिष्ठहनुः) समस्त प्रजा को बसाने हारे लोगों में से सबसे श्रेष्ठ होकर शत्रु को हनन करने वाले साधनों से सम्पन्न होकर (कोश्याभ्याम्) कोश में रखने योग्य शस्त्रों और ऐश्वर्य से (शिङ्गीनि) समस्त प्राप्त करने योग्य कीर्तिजनक पदार्थों को कोश में और गुणों को हृदयकोश में धारण करता है।

भा०—हे राजन्! तू (लोहितानि) तपे लोहे के समान तीक्ष्ण स्वभाव से (उग्रम्) अति उग्र, प्रचण्ड पुरुष को वश कर। (सौव्रत्येन) उत्तम-उत्तम व्रत और सुखकारी नियम कर्मों के पालन से (मित्रम्) मित्रों को अपने वश कर। (दौर्व्रत्येन) दुष्टों के प्रति दुःखदायी, कष्टप्रद कार्यों से (रुद्रम्) प्रजा को कष्टों से रुलाने वाले पुरुष को वश कर। (प्रक्रीडेन) उत्तम, मन को बहलाने वाले क्रीड़ा विनोद से (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को वश कर। (बलेन) बल से, सेनाबल के कार्य से (मरुतः) मारने हारे सैनिकों को, अथवा बल या सेना द्वारा मनुष्यों को वश कर। (प्रमुदा) अतिहर्षकारी सुखप्रद उपाय से (साध्यान्) वश करने योग्य लोगों को वश कर। (२) अध्यात्म में—उग्र आदि नाना

प्राणों के नामभेद हैं। (कण्ठ्यम्) कण्ठ में विद्यमान उत्तम स्वर गायन आदि (भवस्य) सत्तावान् प्रशंसायोग्य सामर्थ्यवान् प्राण का कार्य है। (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने वाले प्राण का स्थान (अन्तःपार्श्व्यम्) पसुलियों के भीतर का स्थान है। (यकृत् महादेवस्य) बड़ी भारी दीप्ति वाले या जाठर अग्नि ज्वाला से युक्त पित्त का स्थान (यकृत्) यकृत्, कलेजा है, (शर्वस्य वनिष्ठुः) भुक्त अन्न को सूक्ष्म-सूक्ष्म अणु करके सर्वत्र अंगों में पहुँचाने वाले जाठर बल का स्थान आंतें हैं। (पशुपतेः) दर्शनशील इन्द्रियों अथवा कर्मकर भृत्य के समान शरीर के काम करने वाले अंगों के पालक आत्मा का स्थान (पुरीतत्) पुरीतत् नामक हृदय की नाड़ी है।

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥ १० ॥

अग्निः। आकृतिः। पंचमः॥

भा०—(लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा) रोमों को उत्तम अन्न बल प्राप्त हो। वे स्वच्छ रोगरहित रहें। (त्वचे स्वाहा) त्वचा के प्रत्येक भाग को उत्तम रीति से रक्खो। (लोहिताय स्वाहा) रक्त के प्रत्येक भाग को स्वच्छ रक्खो। (मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा) मेद, धातु के प्रत्येक अंश को स्वच्छ और रोगरहित करो। (मांसेभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः स्वाहा) देह में मांसों के प्रत्येक अंश को विकाररहित, नीरोग रक्खो। (स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा) प्रत्येक स्नायु को बलवान्, अविकृत रक्खो। (अस्थभ्यः स्वाहा अस्थभ्यः स्वाहा) प्रत्येक हड्डी को बलवान् और दोषरहित रक्खो। (मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा) मज्जा के प्रत्येक भाग को उत्तम तथा अविकृत, स्वच्छ रक्खो। (रेतसे स्वाहा) वीर्य की वृद्धि के

लिये भी उत्तम प्रयत्न करो और (पायवे स्वाहा) गुदा इन्द्रिय के मल-शोधक अंग को स्वच्छ रक्खो। शरीर में विद्यमान उक्त धातुओं के समान राष्ट्र में भी घटक अवयवों को अच्छी प्रकार यत्नपूर्वक रक्खो, उनको उत्तम अन्न आदि प्रदान करो।

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ११ ॥

अग्निः। स्वराड जगती। निषादः॥

भा०—(आयासाय स्वाहा) अंगों के व्यापक श्रम के लिये (स्वाहा) उत्तम अन्न खाओ। (प्रायासाय स्वाहा) उत्तम कोटि के परिश्रम के लिये भी उत्तम अन्न खाओ। इसी प्रकार (संयासाय) मिलकर अंगों के एकत्र यत्न करने के लिये, (वियासाय) विविध अंगों के श्रम के लिये, (उद्यासाय) उठाने के परिश्रम के लिये भी। (शुचे) स्वच्छ रहने और शरीर की कान्ति के लिये। (शोचते) शुद्ध विचार करने वाले आत्मा के लिये। (शोचमानाय स्वाहा) उत्तम तेजस्वी विचार प्रकाशित करने के लिये और (शोकाय) तेज के प्राप्त करने के लिये (स्वाहा) उत्तम आहार करो। (२) राष्ट्र में भी आयास, वियास आदि नाना यत्न और बलसाध्य कार्यों के लिये तेज, बल के बढ़ाने के लिये और तेज, बल बढ़ाने वाले विद्वान् जनों का उत्तम मान, आदर किया जाय।

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥ १२ ॥

अग्निः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

१२—तपसे स्वाहा तप्यमाना० इति काण्व०।

भा०—(तपसे) धर्माचरण, तप का अनुष्ठान, (तप्यते) तपस्या करने वाले पुरुष, (तप्यमानाय) विद्याभ्यासादि करने वाले ब्रह्मचारी (तप्ताय) सिद्ध तपस्वी, परिव्राजक आदि और (घर्माय) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों का (स्वाहा) उत्तम आदर करो। धर्मकार्यों और धर्म के कार्य करने वालों के लिये उत्तम दान करो। (निष्कृत्यै) पापों का निवारण करने, (प्रायश्चित्यै) बिगड़े कार्यों और पाप आचरणों को सुधारने और (भेषजाय) शारीरिक कष्टों को चिकित्सा द्वारा दूर करने के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से यत्न किया जाय।

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ १३ ॥

अग्निः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(यमाय स्वाहा) राष्ट्र नियन्त्रण करने वाले राज्यव्यवस्थापक का उत्तम आदर और शरीर के नियामक वायु का तर्पण करें, सर्व-नियन्ता परमेश्वर का सदा स्मरण करें। (अन्तकाय स्वाहा) दुष्टों का अन्त करने वाले राजा को आदर और सब शरीरों के अन्त करने वाले मृत्यु का उपाय और परमेश्वर का स्मरण करें। (मृत्यवे स्वाहा) सबको मारने वाले वीर का आदर, मृत्यु का उपाय और सर्वदुष्ट-मारक परमेश्वर की उपासना करें। (ब्रह्मणे स्वाहा) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति और विशाल राष्ट्र की रक्षा का उपाय करें, परम ब्रह्म परमेश्वर की उपासना करें। (ब्रह्महत्यायै स्वाहा) ब्रह्म, ब्रह्मज्ञ वेदज्ञान के विनाश के निवारण का उत्तम उपाय करो। अथवा ब्रह्म अर्थात् महान् ऐश्वर्य की हत्या अर्थात् प्राप्ति का उपाय करो और ब्रह्म, परमेश्वर की प्राप्ति का उपाय करो। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) राष्ट्र के सभी देव, शासक, विद्वानों का उचित आदर, मान करो। शरीर के सभी प्राणों की साधना करो, जगत् के सभी दिव्य पदार्थों का ज्ञानपूर्वक सदुपयोग करो। (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा)

राष्ट्र में राजा और प्रजावर्ग, स्त्री और पुरुष दोनों का उत्तम साधन और अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्त हों। आकाश और पृथिवी दोनों का उत्तम रीति से ज्ञान करो।

॥ इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

[अ० ४०] दध्यङ् आथर्वणः।

॥ ओ३म् ॥ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥

आत्मा। अनुष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(जगत्याम्) इस सृष्टि में (यत् किंच) जो कुछ भी (जगत्) चर, प्राणी, जंगम संसार या गतिशील है (इदम्) वह (सर्वम्) सब (ईशा) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से (वास्यम्) व्याप्त है। (तेन त्यक्तेन) उस त्याग किये हुए, या (तेन) उस परमेश्वर से (त्यक्तेन) दिए हुए पदार्थ से (भुञ्जीथाः) भोग सुख अनुभव कर। (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन लेने की (मा गृधः) चाह मत कर। अथवा (धनं कस्य स्वित् ?) धन किसका है ? किसी का भी नहीं। इसलिये (मा गृधः) लालच मत कर। 'ईशा' ईश्वरेण सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना इति दया०। ईश ऐश्वर्ये। क्विप्। ईष्टे इतीट्। ईशिता परमेश्वरः। स हि सर्वजन्तूनामात्मा सन् ईष्टे इति मही०। 'इदं सर्वं' प्रकृत्यादिपृथिविपर्यन्तं। इति दया०। प्रत्यक्षतो दृश्यमानं सर्वं इति मही०। 'जगत्यां' गम्यमानायां सृष्टौ इति दया०। लोकत्रये इति मही०।

१—अथातो ज्ञानकाण्डम्।

पृथिव्यामति उवटः। 'तेन त्यक्तेन' 'तेन वर्जितेन तच्चित्तरहितेन' इति दया०। तेनानेन सर्वेण त्यक्तेन त्यक्तस्वस्वामिभावसम्बन्धेन इत्युवटः। अथवा—(त्यक्तेन तेन भुञ्जीथाः) अपना स्वामित्व और चित्त से त्याग किये अर्थात् ममता या संग से रहित इस भोग्य पदार्थ से भोग अनुभव कर। इति दया०। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः—तेन त्यागेन आत्मानं पालयेथाः इति शंकरः। इस त्याग से अपना पालन कर।

राष्ट्रपक्ष में—इस (जगत्याम्) पृथ्वी पर जितना (जगत्) जंगम पदार्थ, पशु पक्षी आदि और (इदं सर्वम्) यह सब जड़ पदार्थ (ईशावास्यम्) शक्तिमान्, ऐश्वर्यवान् राजा द्वारा अधिकार करने योग्य हैं। उससे छोड़े गये या प्रदान किये का तू प्रजावर्ग भोग कर और आपस में कोई भी एक दूसरे के धन की चाह मत कर, मत ललचा।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥

आत्मा। भुरिग् अनुष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(इह) इस संसार में मनुष्य (कर्माणि) वेद में बतलाये हुए निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्षों तक (जिजीविषेत्) जीना चाहे। हे मनुष्य (एवम्) इस प्रकार (त्वयि) तुझ (नरे) कार्य करने वाले पुरुष में (कर्म न लिप्यते) कर्म का लेप नहीं होगा। (इतः अन्यथा) इससे दूसरे किसी प्रकार से (न अस्ति) कर्म का लेप लगे बिना नहीं रहता। 'कर्म' कर्माणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि इति दया०। मुक्तिहेतुकानि इति उवटः। कर्म अधर्म्यमवैदिकं मनोऽर्थसम्बन्धि कर्म। दया०।

राष्ट्रपक्ष में—इस राष्ट्र में कर्म अर्थात् कर्त्तव्य पालन करते हुए सौ बरसों तक लोग जीना चाहें। हे पुरुष ! इस प्रकार तुझ नेता पुरुष में कर्म का लेप अर्थात् दोष नहीं लगेगा। इससे दूसरा कोई और प्रकार

नहीं, राष्ट्र में कोई निकम्मा नहीं रहे। सब अपना-अपना कर्त्तव्य पालन करें।

असुर्या नाम ते लोका ऽ अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ ३॥

आत्मा। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(ते) वे (लोकाः) लोक अर्थात् मनुष्य (असुर्याः) असुर कहाने योग्य, केवल अपने प्राण को पोषण करने हारे पापाचारी हैं, जो (अन्धेन) अन्धकाररूप (तमसा) आत्मा को ढक लेने वाले तमोगुण से (आवृताः) ढके हैं। (ये के च) जो कोई (जनाः) लोग भी (आत्महनः) अपने आत्मा का घात करते हैं, उसके विरुद्ध आचरण करते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (अपि) और जीवनकाल में भी (तान्) उन उक्त प्रकार के लोकों को ही (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। 'लोकाः' ये लोकन्ते पश्यन्ति ते जनाः। लोक्यन्ते दृश्यन्ते भुज्यन्ते कर्मफलानि यत्रेति लोका जन्मानि। राष्ट्रपक्ष में—वे सूर्यरहित स्थान गहरे अन्धकार से ढके हैं जो आत्मा अर्थात् जीवों के देहों का नाश करते हैं। वे उन स्थानों पर जीते भी रक्खे जाते हैं और मरकर तो परलोक में वे तामस दशाओं का अनुभव करते ही हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽआप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ ४॥

ब्रह्म। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अनेजत्) अपनी अवस्था से कभी च्युत न होने वाला, परिणामरहित, (एकम्) अद्वितीय, (मनसः जवीयः) मन से भी अधिक वेगवान् ब्रह्म है। (पूर्वम्) सबके पूर्व सबसे आगे, (अर्षत्) गति करते हुए (एनत्) उसको (देवाः) पृथिवी आदि तत्त्व और चक्षु आदि इन्द्रियगण

३—०प्रेत्याभि० इति काण्व०।

(न आप्नुवन्) नहीं प्राप्त होते। (तत्) वह पर-ब्रह्म (तिष्ठत्) अपने स्वरूप में स्थित, कूटस्थ स्थिर होकर भी (धावतः) विषयों के प्रति जाते हुए (अन्यान्) अपने से भिन्न अन्य मन आदि इन्द्रियों को (अति एति) लांघ जाता है उनकी पहुँच से परे रहता है। (तस्मिन्) उस सर्वव्यापक में ही (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गति करने वाला वायु और उसके समान जीव भी (अपः) कर्म (दधाति) करता है। (२) राष्ट्रपक्ष में—उस आत्मा के आश्रय पर (मातरिश्वा) प्राण गति करता है।

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद्दू॒रे तद्व॑न्ति॒के ।
तद॒न्तर॑स्य॒ सर्व॑स्य॒ तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः ॥ ५ ॥

आत्मा । अनुष्टुप् । गांधरः ॥

भा०—(तत् एजति) वह क्रिया करता है (तत् न एजति) वह क्रिया नहीं करता। वह स्वयं कूटस्थ, निष्क्रिय होकर समस्त ब्रह्माण्ड को गति दे रहा है। (तत् दूरे) वह अधर्मात्मा, अविद्वान् पुरुषों से दूर है। (तत् उ अन्तिके) वह ही धर्मात्मा और विद्वानों के समीप है। (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् और जीवों के (अन्तः) भीतर, (तत्) वह ही और (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्त्तमान है। वह सर्वव्यापक है।

यस्तु सर्वा॑णि भू॒तान्या॒त्मन्न॒ेवानु॒पश्य॑ति ।
स॒र्व॒भू॒तेषु॑ चा॒त्मानं॒ ततो॒ न वि चि॑कित्सति ॥ ६ ॥

आत्मा । निचृद् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यः तु) जो पुरुष (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों और प्राणरहित पदार्थों को भी (आत्मन् एव) परमात्मा पर ही आश्रित (अनु पश्यति) विद्याभ्यास, धर्माचरण और योगाभ्यास कर साक्षात् कर लेता है और (सर्वभूतेषु च) समस्त प्रकृति आदि पदार्थों में (आत्मानम्)

परमेश्वर को व्यापक जानता है। (ततः) तब वह (न विचिकित्सति) संदेह में नहीं पड़ता।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। तस्मिन् दृष्टे परावरे। गीता

यस्मि॑न्त्सर्वा॑णि भू॒तान्या॒त्मैवाभू॑द्विजान॒तः।
तत्र॒ को मोह॒ः कः शोक॑ऽएक॒त्वम॑नु॒पश्य॑तः ॥ ७ ॥

आत्मा। निचृद् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(यस्मिन्) जिस ब्रह्मज्ञान की दशा में (सर्वाणि भूतानि) समस्त जीव, प्राणी (आत्मा एव अभूत्) अपने आत्मा के समान ही हो जाता है, अर्थात् समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं उस (एकत्वम् अनु पश्यतः) एकता या समानता को प्रतिक्षण देखने वाले (विजानतः) विशेष आत्मज्ञानी पुरुष को (तत्र) उस दशा में फिर (कः मोहः) कौन सा मोह और (कः शोकः) कौन सा शोक रह सकता है ?

स पर्य॑गाच्छु॒क्रम॑का॒यम॑व्र॒णम॑स्नावि॒रꣳ शु॒द्धमपा॑पविद्धम्।
क॒विर्म॑नी॒षी परि॒भूः स्व॑य॒म्भूर्या॑थातथ्य॒तोऽर्था॒न् व्य॑दधाच्छा॒श्वती॒भ्यः समा॑भ्यः ॥ ८ ॥

आत्मा। स्वराड् जगती। निषादः॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (परि अगात्) सर्वत्र व्यापक है। वह (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमय अथवा तीव्र शक्तिमय, शीघ्र गति देने वाला, (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण नामक तीनों शरीरों से रहित, (अव्रणम्) व्रण, घाव आदि से रहित, (अस्नाविरम्) स्नायु आदि बन्धनों से रहित, शुद्ध, अविद्यादि दोषों से रहित, सदा पवित्र, (अपापविद्धम्) पापों से सदा (कविः) मुक्त, क्रान्तदर्शी, मेधावी, (मनीषी) सबके मनों को प्रेरणा करने वाला, (परिभूः) सर्वत्र व्यापक, सबका वशयिता, (स्वयम्भूः) स्वयं अपनी सत्ता से सदा विद्यमान, माता पिता द्वारा जन्म

न लेने हारा है वह (यथातथ्यतः) यथार्थरूप से, ठीक-ठीक (शाश्वतीभ्यः) सनातन से चली आयीं (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये अर्थात् समस्त पदार्थों को (वि अदधात्) रचता है और उनका ज्ञान प्रदान करता है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ सम्भूत्याᳩरताः ॥ ९ ॥

आत्मा । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(ये) जो (असंभूतिम्) सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों वाली अव्यक्त प्रकृति की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) चले जाते हैं। (ये उ) और जो (संभूत्याम्) महत् आदि विकारमय सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं, उसी में मग्न हो जाते हैं (ते) वे (ततः) उससे भी (भूयः इव) अधिक गहरे (तमः) अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं अर्थात् केवल प्रकृति के उपासक परमानन्द परमेश्वर की आनन्दमय परम ज्योति को प्राप्त नहीं करते, वे जड़ोपासना में मग्न रहते हैं और जो प्रकृति विकारों की ही उपासना करते हैं वे भी सुख नहीं पाते। अथवा—(असम्भूतिम्) इस देह को छोड़ कर पुनः आत्मा अन्य देह में उत्पन्न नहीं होता, जो इसी प्रकार मानते हैं वे गहरे अज्ञान में रहते हैं और जो (सम्भूतिम्) आत्मा ही कर्मानुसार उत्पन्न होता है मरता है और ईश्वर कुछ नहीं है ऐसा मानते हैं वे उससे भी गहरे अंधकार में पड़ते हैं।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

आत्मा । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सम्भवात्) उत्पन्न होने अर्थात् कार्यजगत् से (अन्यत् एव) अन्य ही फल (आहुः) कहते हैं। (असम्भवात्) नहीं उत्पन्न

होने अर्थात् कारणरूप प्रकृति के ज्ञान से (अन्यत्) अन्य ही फल (आहुः) कहते हैं। (ये) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमें (तत्) इस तत्व को (विचक्षिरे) विशेष रूप से बतलाते हैं, उन (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों से (एति) इस विषय का (सुश्रुम) श्रवण करें।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयँ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

आत्मा। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(संभूतिम्) जिसमें नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस कार्य सृष्टि और (विनाशं च) जिसमें विनाश अर्थात् कारण में लीन होते हैं (उभयम्) दोनों को (यः) जो (सह) एक साथ (वेद) जान लेता है। वह (विनाशेन) सबके अदृश्य होने के परम कारण को जान कर (मृत्युम्) देह को छोड़ने के धर्म के भय को (तीर्त्वा) पार करके, उसको सर्वथा त्याग कर (संभूत्या) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्व को जान कर (अमृतम्) उस अमर अविनाशी मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है। संभूतिः = सम्भवैकहेतुः परं ब्रह्म। विनाशः = विनाशधर्मकं शरीरमिति उवट।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ विद्यायाँ रताः ॥ १२ ॥

आत्मा। निचृद् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(ये) जो लोग (अविद्याम्) अविद्या अर्थात् नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा से भिन्न पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा (उपासते) करके जानते हैं, उसी प्रकार मिथ्या ज्ञान में मग्न रहते हैं वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। वे बड़े अज्ञान में रहते हैं और (ये उ) जो भी (विद्यायाम् रताः) विद्या अर्थात् केवल शास्त्राभ्यास में ही (रताः) लगे रहते हैं वे (ततः भूयः इव) उससे भी अधिक (तमः) अज्ञानान्धकार में कष्ट पाते हैं।

अ॒न्यदे॒वाहुर्वि॒द्याया॑ऽ अ॒न्यदा॑हु॒रवि॑द्यायाः ।
इति॑ शुश्रुम॒ धीरा॑णां॒ ये न॒स्तद्वि॑चचक्षि॒रे ॥ १३ ॥

आत्मा । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(विद्यायाः) विद्या का फल और कार्य (अन्यत् एव आहुः) दूसरा ही बतलाते हैं और (अविद्यायाः अन्यत् आहुः) अविद्या का फल और ही बतलाते हैं। (ये नः तद् विचचक्षिरे) जो हमें विद्या और अविद्या के स्वरूप का उपदेश करते हैं हम उन (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों के मुखों से (इति शुश्रुम) इस तत्व का श्रवण किया करें।

वि॒द्यां चावि॑द्यां च॒ यस्तद्वेदो॒भय॑ꣳ स॒ह ।
अवि॑द्यया मृ॒त्युं ती॒र्त्वा वि॒द्यया॒मृत॑मश्नुते ॥ १४ ॥

भा०—(विद्यां च अविद्याम् च) विद्या और अविद्या (यः) जो (तत् उभयं वेद) इन दोनों के स्वरूप को जान लेता है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्युं तीर्त्वा) मृत्यु को पार करके (विद्यया अमृतम् अश्नुते) विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है। अविद्या—शरीरादि जड़ पदार्थ द्वारा पुरुषार्थ करके। विद्या—शुद्ध चित्त से सम्यग् तत्वदर्शन करके। (दया०) स्वर्गाद्यर्थानि कर्माणि आत्मज्ञानं चेति उवटः। अविद्या अग्निहोत्रादि लक्षणा, इति मही०।

वा॒युरनि॑लम॒मृत॒मथे॒दं भस्मा॑न्त॒ꣳ शरी॑रम् ।
ओ ३ म् क्रतो॑ स्मर । क्लि॒बे स्म॑र । कृ॒तꣳ स्म॑र ॥ १५ ॥

भा०—(वायुः) वायु, प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय आदि (अनिलम्) उक्त प्राणों के मूलकारण, वायु तत्व और (अमृतम्) अमृत आत्मा यह एक दूसरे के आश्रित हैं। वायु के आश्रय प्राण, प्राणों के आश्रय आत्मा जीवन धारण करता है। (अथ) और पश्चात् (इदम्) यह शरीर (भस्मान्तम्) राख हो जाने तक ही

है। इसलिये हे (क्रतो) कर्म के कर्त्ता जीव ! और प्रज्ञावान् पुरुष ! अथवा हे संकल्पमय जीव ! तू (ओ३म् स्मर) ओं३कार का स्मरण कर। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है और (क्लिबे) अपने भरसक सामर्थ्य और प्रयत्न से साधे हुए लोक की प्राप्ति के लिये (स्मर) अपने अभीष्ट का स्मरण कर। (कृतं स्मर) अपने किये हुए अच्छे बुरे कर्मों का स्मरण कर।

अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम ऽ उक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

भा०—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! करुणामय प्रभो ! तू हमें (सुपथा) धर्म के उपदेश मार्ग से (राये) विज्ञान, धन और सुख प्राप्त करने के लिये (सुपथा) सन्मार्ग से (नय) ले चल। (विश्वानि वयुनानि) सब उत्तम ज्ञानों को और मार्गों लोकों को (विद्वान्) जानता हुआ (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल व्यवहार को (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे हम (भूयिष्ठाम्) बहुत बहुत (नमः उक्तिम्) स्तुतिवचन (विधेम) करें।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ॥१७॥

भा०—(हिरण्मयेन) सबके हृदयग्राही, हित और रमणीय ज्योतिर्मय (पात्रेण) पालक द्वारा (सत्यस्य) सत्य आत्मा और परमात्म तत्व का (अपिहितम्) ढका हुआ (मुखम्) मुख खोला जाता है। (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) सूर्य अर्थात् प्राण में (पुरुषः) पुरुष, शक्तिमान् प्रकाशकर्त्ता है (असौ अहम्) वह ही मैं हूँ। (ओ३म्) सब संसार का रक्षा करने हारा वह (खम्) आकाश के समान व्यापक, अनन्त और आनन्दमय है और वही (ब्रह्म) गुण, कर्म, स्वभाव में सबसे बड़ा है। (२) अथवा, ढकने से जैसे वस्तु छिपी रहती है उसी प्रकार ज्योतिर्मय पदार्थों से परम शक्ति का सत् पदार्थों में विद्यमान मेरा सत्यस्वरूप छिपा है, दृष्टान्त के रूप से जो महान् शक्ति सूर्य में विद्यमान है वही मैं हूँ।

यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ गीता १५ । १२ ॥

ओ३म् खं ब्रह्म ॥

॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इति यजुर्वेदः समाप्तः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ इति समाप्तं यजुर्वेदालोकभाष्यम् ॥

ऋषिवस्वङ्कचन्द्रा-(१९८७) ब्दे चैत्रे मासि सिते दले ।

नवम्यां शशिवारे च यजुः शुक्लं समाप्यते ॥



